ॐ

माण्डूक्योपनिषद्



भाषा टीका सहित ॥

जिसमें

ॐकार स्वरूपका प्रतिपादन व ब्रह्म और आत्मा की अभेदताका निरूपण, आगम, वैतथ्याख्य, अद्वैताख्य व अलातशान्ताख्य इन चार प्रकरणों में अच्छेप्रकार निरूपण कियागयाहै ॥

जिसको

श्रीमान् सर्वैश्वर्य्य सम्पन्न श्री मुंशीनवलकिशोरजीने भारत वर्षीय जनोंके उपकारार्थ बहुतसा धन व्ययकरके कोलाख्य नगर निवासी पचोली यमुनाशंकर नागर ब्राह्मण से सरल देश भाषामें उल्थाकराय स्वयन्त्रालय में मुद्रित कराय प्रकाशित किया ॥

द्वितीय बार

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेख़ाने में छपा

फ़रवरी सन १९०७ ई० ॥

इस किताब का हक़महफूज़ है बहक़ इस छापख़ाने के ॥



भूमिका ॥

सर्वसुज्ञ आत्मजिज्ञासु पाठक जनोंको विदितहो कि यहसर्व उपनिषदोंका सारभूत महाउपनिषद् मंडूक्यनाम ऋषीश्वरद्वारा इस मनुष्यलोकमें प्रकटहुआहै अतएव इसको , मांडूक्यउपनिषद्, इस नामसे कहतेहैं । अथवा जैसे दादुर (मेंडक) प्रायःतीन छलांग (कुदान) मारके जलमें प्राप्तहोताहै, तैसेही आत्मारूपी मेडक जाग्रदादि अवस्थारूप पादरूपी स्थानोंसे उछलके अपने वास्तविक निरुपाधि ब्रह्मस्वरूप जलको प्राप्तहोताहै । अर्थात् अन्तःकरण विशिष्ट आत्मरूप मेडक इस उपनिषद्के विचाररूप बलसे, प्रथम जाग्रदवस्थादि प्रथम पादरूप स्थानसे उछलके स्वप्नावस्थादिरूप द्वितीय पादरूप स्थानको प्राप्तहोता है, पश्चात् उन स्वप्नावस्थादि पादरूप स्थानसे उछल सुषुप्ति अवस्थादिरूप तृतीयपादरूप स्थानको प्राप्तहोताहै, पुनः उस तृतीय पादरूप स्थानसे उछलके चतुर्थ अमात्रिक अपने परब्रह्मस्वरूप जलको प्राप्त होताहै " शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते सआत्मा सविज्ञेय " तिसआत्मरूप मेडकका प्रतिपादक होनेसे इस उपनिषद्को , मांडूक्य , नामसे कहतेहैं ॥ अरु यह उपनिषद् " ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति " " एतदालम्बनंश्रेष्ठमेतदालम्बनंपरम्, एतदालम्बनंज्ञात्वा ब्रह्म लोकेमहीयते " इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे, संन्यासियों करके उपास्य अरु ब्रह्मप्राप्तिमें सर्वोत्तम श्रेष्ठ आलम्बन जो त्रिमात्रिक ॐकार, केवल तिसकाही प्रतिपादक अरु ब्रह्म आत्माकी अभेदता का बोधकहोनेसे सर्व उपनिषदोंमें मुख्यहै । अरुजो कदापि कोई ऐसाकहै कि सर्वही उपनिषद् ब्रह्म आत्माकी अभेदताके बोधकहैं तब इसमें क्या विशेषताहै, तो तिसका यह समाधानहै कि अन्य

जे उपनिषदहैं सो ब्रह्म आत्माकी अभेदताके बोधकहैं परन्तु उन में सृष्टिकरण अरु प्राणादिकोंकी उपासना आदिक अन्य प्रसंगभी हैं अरु इस उपनिषद्में केवल ॐकारके प्रतिपादनसे ब्रह्मआत्मा की अभेदताही प्रकाशित है, तिससे इतर सृष्टिकरणादिक नहीं, अतएव यह उपनिषद् केवल ब्रह्म आत्माकी अभेदताका बोधक होनेसे सर्व उपनिषदोंमें मुख्यहै । अतएव उक्त हेतुओंकरके इस उपनिषद्को मुख्यत्व होनेसे श्रीशंकराचार्य्य महाराजके परमगुरु श्रीगौडपादाचार्य्य कृत इसके अर्थबोधक श्लोकबद्ध कारिका है, तिस कारिकाके चारप्रकरणहैं, जहां, प्रथम आगम प्रकरण, द्वितीय वैतथ्याख्यप्रकरण, तृतीय अद्वैताख्य प्रकरण, चतुर्थ अलातशान्ताख्य प्रकरण, इसप्रकार चार प्रकरणहैं ॥ अरु इन चारोंप्रकरण से बाह्य इसभाषा भाष्यकारकृत सर्व उपनिषदोंमेंसे संग्रहकिया प्रणवोपासना, अरु सप्तसिद्धान्तियों के मतानुसार प्रणवोपासना अरु प्रणवके ॐकारादिदर्शनामोंके अर्थविचार, अरु अन्यऋषियोंके मतानुसार मात्राओंकेभेदसे उपासनविचार, अरु अकारादि मात्रा का क्रमशः लय चिंतवनविचार, इन सर्वके संग्रहका, एक संग्रह प्रकरणनाम पंचम प्रकरणभी कहाहै, सो एतदर्थहै कि प्रणवोपासनाके जिज्ञासुको इस एकही पुस्तक के अवलोकन से अनेक ऋषियोंके मतानुसार ॐकारकी उपासना जानने में आवे ॥ अरु श्रीगौडपादीय कारिका सहित इस उपनिषद्ऊपर श्रीभगवत्पाद पूज्य श्रीशंकराचार्य्यजीकृत संस्कृत भाष्य है अरु तिसभाष्यपर संस्कृतमें आनन्दगिरिकृत टीकाहै, अरु तिस भाष्य अरु टीकाके अनुसारही द्विजवर श्रीपंडितराज पीताम्बरजी महाराज कृत भाषा दीपिकानामटीकाहै । अरु जैसे सम्यक् प्रकार संस्कृत विद्याके अभ्यास विना अरु किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य्यसे अध्ययन किये विना सभाष्य उपनिषदोंका अर्थ जानने में आवे नहीं, अरु तैसेही जो केवल भाष्यके अक्षरानुसारही जे पंडित पीताम्बरजी कृत अक्षरार्थ टीका तिसका भी यथार्थ जानना सर्व

साधारणपुरुषों को सुगम नहीं। एतदर्थ मैं श्रीपरिव्राजाचार्य्य परमहंस स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वतीजी महाराजका अतिअल्पज्ञ शिष्य यमुनाशंकर नामक नागर ब्राह्मण, उक्त भाष्यकार अरु टीकाकार के कहे अनुसारही भाषाभाष्य नामक टीका करताहौं तिसमें अपनी अल्प बुद्धिके अनुसार कुछ विशेष भी कहौंगा॥

सर्व्वसे साधारण विनय॥

मुझ अल्पज्ञकरके कहेहुये इस मांडूक्यउपनिषद् के भाषाभाष्य में जो कछु अनुचित कथनहोय तिसको सर्वविवेकी पाठकजन क्षमाकरके सुधारलेवें इति॥

सूचना इस भाषाभाष्यान्तर चिह्नोंकी॥

।। इस चिह्नान्तर में भाषान्तर मूल श्रुति, श्लोक॥
( ) इस चिह्नान्तर में भाषान्तर श्रुति, श्लोकके अक्षरार्थ॥
" " इस चिह्नान्तरमें प्रमाणविषयक अन्य श्रुति, श्लोक॥
( ) इस चिह्नान्तरमें प्रमाणविषयकश्रुतिश्लोककेअक्षरार्थ॥
[ ] इस चिह्नान्तरमें संक्षेपसे आनन्दगिरिका अक्षरार्थ॥
।। इस चिह्नान्तर में भाषाभाष्यकारकृत अर्थानुवाद॥
; , इत्यादि-चिह्न साधारण विराम॥

इति चिह्नसूचना॥

अथ शान्तिपाठः ॥

ॐ सहनाववतुसहनौभुनक्तुसहवीर्य्यंकरवावहै । तेजस्वीनाव धीतमस्तु माविद्विषावहै ॥

ॐशान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

शान्तिःपाठगुरुस्तुति ॥

ॐशन्नोमित्रः शंवरुणः शन्नोभवत्वर्य्यमाशन्नइन्द्रोबृहस्पतिः शन्नोविष्णुरुरुक्रमः नमोब्रह्मणेनमस्तेवायोत्वमेवप्रत्यक्षंब्रह्मासि त्वमेवप्रत्यक्षंब्रह्मवदिष्यामिऋतंवदिष्यामिसत्यंवदिष्यामितन्मामवतु तद्वक्तारमवतुअवतुमामवतुवक्तारम् ॥ ॐ शान्तिः ३ ॥

ॐब्रह्मविदाप्नोतिपरम् ॥

ॐ सत्यंज्ञानमनंतंब्रह्म" "सोयमात्मा" "नांतःप्रज्ञंन बहिःप्रज्ञंनोभयतोप्रज्ञं नप्रज्ञानघनंनप्रज्ञं नाप्रज्ञं अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणम् चिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपंचोपशमं शिवमद्वैतंचतुर्थंमन्यन्ते" "सआत्मा, अपहतपाप्मा विजरोविमृत्युर्विशोकोविजिघत्सोपिपासःसत्यकामः सत्यसंकल्पःसोन्वेष्टव्यसविजिज्ञासितव्यः" "तद्ब्रह्मेति" "इहैवान्तःशरीरे सौम्यसपुरुषः" निहितंगुहायां" "दृश्यतेत्वग्रयाबुद्ध्यासूक्ष्मयासूक्ष्मदर्शिभिः" "आत्मावाअरेदृष्टव्योश्रोतव्योमन्तव्यो निदिध्यासितव्योसाक्षात्कर्त्तेति" "सयोह वै तत्परमं ब्रह्मवेद ब्रह्मैवभवति"

"नातःपरमस्ति"

"ब्रह्मानन्दंपरमसुखदंकेवलंज्ञानमूर्त्तिं"
"द्वंद्वातीतंगगनसदृशंतत्त्वमस्यादिलक्ष्यं"
"एकंनित्यंविमलमचलंसर्वधीसाक्षिभूतं"
"भावातीतंत्रिगुणरहितंसद्गुरुंतंनमामि"

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ अथर्ववेदीय ॥

मांडूक्योपनिषद्

श्रीगौड़पादीयकारिका सहित मांडूक्योपनिषद्प्रारभ्यते ६ ॥

श्रीमद्भाष्यकारस्वामी श्रीशंकराचार्य्यकृत ॥

मंगलाचरणम्

प्रज्ञानांशुप्रतानैःस्थिरचरनिकरव्यापिभिर्व्याप्यलोकान् भुक्त्वाभोगान् स्थविष्ठान् पुनरपिधिषणोद्भासितान् कामजन्यान् ॥ पीत्वासर्वान् विशेषान् स्वपितिमधुरभुङ्मायया भोजयन्नोमायासंख्यातुरीयं परममृतमजंब्रह्मयत्तन्नतोऽस्मि १ ॥

हे सौम्य! भाष्यकार श्रीशंकराचार्य्य कहते हैं कि "परममृतमजं ब्रह्म यत्तन्नतोऽस्मि" 'अमृत अज जो परब्रह्म है तिसको मैं नमता (नमस्कारकरता) हूँ;' [अर्थात्, श्रीगौडपादाचार्य को श्रीनारायणके (वा श्रीशुकाचार्यके) प्रसाद से प्राप्तहुये, अरु मांडूक्यउपनिषद्के अर्थको प्रकटकरनेके परायण जो श्रीगौड़पादाचार्यकृत कारिका संज्ञक श्लोक तिन सहित मांडूक्योपनिषद्के व्याख्यान करनेको इच्छा करतेहुये भगवान् भाष्यकार श्रीशङ्कराचार्य्य आपकरके करने को इच्छित जे भाष्य तिसकी निर्विघ्न समाप्ति के अर्थपर देवता के स्वरूप के स्मरणपूर्वक शिष्टाचाररूप प्रमाणकरके सिद्ध तिस पर देवताके अर्थ नमस्कार रूप मंगलाचरणकोकरतेहुये,अर्थसेइसग्रन्थकेआरंभविषे वांछित विषयादिक

[अर्थात् ग्रन्थके प्रयोजन, विषय, सम्बन्ध, अरु अधिकारी] चार प्रकारके अनुबंधको भी सूचित करतेहैं । तिनमें विधिमुखसे वस्तु का प्रतिपादनहै, इस प्रक्रिया को देखावतेहैं । अरु यहां { ब्रह्म यत्तन्नतोऽस्मि } (जो परब्रह्म है तिसको मैं नमताहों) इस कहने करके मैं (इसअहं) शब्दके [विषयत्वंपदके लक्ष्य] अर्थकी तिस तत् शब्दके लक्ष्यार्थसे एकता के स्मरणरूप नमनको सूचितकरनेवाले आचार्य ने तत्पदके लक्ष्यार्थरूप ब्रह्मका प्रत्यगात्मापना सूचन करके तत्पद अरु त्वंपदके अर्थकी एकतारूप ग्रन्थका विषय सूचित किया॥अरु"यत्" (जो)इस शब्दको प्रसिद्ध अर्थका प्रकाशक होनेसे वेदान्तशास्त्र करके प्रसिद्ध जो ब्रह्म है तिसको मैं नमता हों, इस संबन्ध से मङ्गलाचरणभी श्रुतिकरकेही करते हैं । अरु ब्रह्मको अद्वितीय होनेसेही जन्ममरण के अभाव से [अर्थात् एक अद्वैत परिपूर्ण अखण्डब्रह्म में जन्ममरणके हेतुरूप द्वैतका अभाव है तातें] "अमृतमजं" (अमृत अरु अजन्मा) इस प्रकार कहा है अरु जन्म मरणरूप जो बन्ध है सोई संसार है [अरु ब्रह्म में जन्मरणरूप बन्धलक्षण संसारका अत्यन्ताभाव है] तातें तिस बन्धके निषेधसे [आत्माविषे] स्वरूपसेही असंसारीभावके देखावनेवाले आचार्यने यहां सर्व अनर्थोंकी निवृत्तिरूप इस ग्रन्थका प्रयोजन प्रकाशित किया है] ॥ वो परब्रह्म कैसाहै "{ प्रज्ञानांशु प्रतानैः" { प्रकृष्ट ज्ञानरूपहै } अर्थात् [जब वेदान्तशास्त्र उपनिषद् प्रमाणसे सिद्ध ब्रह्म, स्वरूपसे अद्वितीय अरु असंसारी है तब तीन अवस्था करके युक्त भोक्ता जीवहै इसप्रकारका अनुभव कैसेहोताहै । अरु [जीवको दुःखसुखका] भोगावनेवाला कोई, ईश्वरहै इसप्रकार कैसे श्रवणहोताहै । अरु विषयोंका समूहरूप भोज्य (भोगनेयोग्यसामग्री) [ब्रह्मसे] भिन्न कैसे दृष्टआवती है । सो यह सर्वएक अद्वैतविषे विरोधको प्राप्तकरेगा । यह आशंकाकरके एकअद्वैत ब्रह्मविषे ,जीव, जगत् ,अरु ईश्वर, यह सर्व [रज्जुमें सर्पवत्] कल्पित संभवे हैं , इसअभिप्रायसे यहांकहते

है] जन्मादि । जायते । अस्ति, वर्द्धते, विपरिणमते, विपक्षीयते विनश्यति, यह षट्भाव । विकार रहित प्रकृष्ट ज्ञानस्वरूप जो ब्रह्महै "प्रज्ञानंब्रह्म"(प्रज्ञान ब्रह्महै) इसश्रुति प्रमाणसे, । तिस सूर्यवत् बिम्बस्थानी ब्रह्मके किरणरूप, जो सूर्यके प्रतिबिम्ब के तुल्य निरूपण कियाहै । अरु बिम्बके तुल्य ब्रह्मसे पृथक् वा भेद करके असत्य चिदाभास (चैतन्यब्रह्मकाआभास) जीवहै, तिनके वृक्षादिक स्थिर, अरु मनुष्यादिकचर, इसप्रकारके उद्भिजादि चारखानिके स्थिर चर प्राणियों के समूह विषे व्यापनेवाले विस्तारों से लोक जो विषय तिनके अर्थ व्याप्तहोके [इस कथनसे उक्त विषयोंसे जीवोंका सम्बन्ध कहा] देवताके अनुग्रह सहित बाह्येन्द्रियोंद्वारा बुद्धिके तिस तिस विषयाकार परिणामसे जन्यतारूप अतिशय स्थूलतावाले सुखदुःखके साक्षात्काररूप भोगों को भोगिके, अर्थात् [यहां 'तान्भुक्त्वा" (तिनको भोगके) इस पदसे अरु "स्वपितीति" । सोवता है । इस अग्रिमकहने के पदसे सम्बन्ध है । इस कथनसे जाग्रदवस्था ब्रह्मविषे कल्पित है, ऐसा कहाजानना] पुनः [यहांसे तिसही ब्रह्मविषे स्वप्नकी कल्पनाको देखावते हैं] भी बुद्धिसे प्रकाशितहुये, अरु अविद्या, काम, अरु कर्म, से जन्य भोगोंको भोगके सर्व [इसप्रकार ब्रह्म विषे । जाग्रत् स्वप्न । दोनों अवस्थाकी कल्पना को देखायके अब तहांहीं सुषुप्तिकी कल्पनाको देखावैहै] जाग्रत् अरु स्वप्नरूप स्थूल अरु सूक्ष्म विषयों को अज्ञातरूप अपने आत्मा विषे लय करके जो ब्रह्म सोवता है, अर्थात् कारणके अभावसे स्थित होताहै, अरु जो मधुरभुक् [सुषुप्तिविषे आनन्दकी प्रधानता है इस अभिप्रायसे ब्रह्मको । मधुरभुक् वा आनन्दभुक् । यह विशेषण देतेहैं] (आनन्दका भोक्ता) है, अरु जो ब्रह्म प्रतिबिम्बके तुल्यहुआ हमारेविषे मायाकृत मिथ्यारूपा तीनोंअवस्थाके संबन्धीपनेवत् सम्बन्धीपनेको सम्पादनकरके हमकोमायासे भोगावताहुआ वर्त्तनाहै । अरु निम्ममायाकल्पित मिथ्यासंग्याकीअपे-

योविश्वात्मा विधिज विषयान्प्राश्यभोगान्स्थविष्ठा
न् पश्चाच्चान्यान्स्वमति विभवान्ज्योतिषास्वेनसूक्ष्मा
न् । सर्वानेतान्पुनरपिशनैःस्वात्मनिस्थापयित्वा, हि
त्वासर्वान्विशेषान्विगतगुणगणःपात्वसौनस्तुरीयः २

जासे तुरीय (चतुर्थ) अर्थात् शुद्ध आत्माकोचतुर्थ संख्यासे कहा
है सो मायाकरके कल्पित जे जाग्रदादि तीनोंअवस्था तिसकीअपे-
क्षासे है नतु सर्वसंख्याऽतीत विषे संख्या कोई नहीं। [तिसही
ब्रह्मकोतीनोंअवस्थासे पृथक्होनेकरके तिसकीज्ञानमात्र स्वरूप-
ताको देखावे हैं] मरणरहित अमृत अरु जन्मरहित अज, पर
[अर्थात् ब्रह्मको मायावी होनेकरके तिस विषे निकृष्टभावकी
प्राप्तिकी आशंकाकरके तिसके निवारणार्थ "पर" यह पदकरके
उत्कृष्टताही कहिये है, क्योंकि ब्रह्मकोमाया (आरोप) द्वारातिस
मायासे सम्बन्धके हुयेभी स्वरूप करके मायासे ब्रह्मका सम्बन्ध
नहीं। क्योंकितुल्य जातीय धाधर्मादिकवालों का सम्बन्ध सम्भ-
वे है अरु ब्रह्म सत्यचैतन्य आनन्द निर्गुण एकरसहै अरु माया
तिससे विपरीति असत्य जड़दुःख सगुणनानारूप वालीहै, ताते
उक्त प्रकारके ब्रह्माका उक्तप्रकारका मायासेसम्बन्ध स्वरूप सेही
संभवे नहीं । एतदर्थ ब्रह्मविषे कैसे निकृष्टताहोवेगी किन्तु किसी
प्रकार भी नहीं। यह अर्थहै] ब्रह्मकेअर्थमें नमस्कारकरताहौं १॥

हे सौम्य!जो [प्रथमश्लोक विषे विधिमुखसेवस्तुके प्रतिपादन
की प्रतिज्ञाको आश्रयकरके 'तत्' पदके लक्ष्यअर्थसे आरंभ करके
तिसकी 'त्वं' पदके लक्ष्यार्थ भूत प्रत्यगात्मस्वरूपता प्रतिपादन
किया । अरुविषय अरु फलके कथन से, सम्बन्ध, अरु अधिकारी
सूचनकिये । अब इस द्वितीय श्लोकविषे निषेधमुखद्वारा वस्तु
मात्रके प्रतिपादनकी प्रतिज्ञाको आश्रय करके 'त्वं, पदकेवाच्या-
र्थसे प्रारम्भकरके तिसकी 'तत्, पदके लक्ष्यार्थ भूतअसंसारी
शुद्ध ब्रह्मरूपताकी प्रतीति करावने हैं । तहां प्रथम 'त्वं, पदके

लक्ष्यार्थरूप स्वतःसिद्ध चिदात्माविषे आरोपित जाग्रदवस्थाको उदाहरण करते हैं] यह प्रत्यगात्मा अविद्या अरु कालसे उत्पन्न हुये जे धर्म अधर्मरूप विधि तिससे जन्यजे सूर्य्यादिक देवता तिनके अनुग्रह सहित वाह्यकरण (चक्षुरादि इन्द्रिय) द्वाराबुद्धि के परिणाम विषय होने करके अत्यन्त स्थूल अरु भोगने के योग्य होनेकरके भोगशब्दके वाच्य भोग्योंको साक्षात् अनुभव करके स्थितहुआ, पंचीकृत पंच महाभूत अरु तिनका कार्यरूप स्थूल जगन्मय विराट्का शरीररूप विश्व है तिस जाग्रत् स्थानरूप विश्वविषे अहंमम (मैं अरु मेरा) यह अभिमान वान्हुआ विश्व (विश्वाभिमानी) जीवरूप होता है। अरु पश्चात् [अबतिसही चैतन्य आत्मा विषे स्वप्नावस्थाके आरोपको कहते हैं] जे जाग्रत् के हेतु कर्महैं तिनके क्षयहोने से अनन्तर स्वप्नके हेतुजे कर्म हैं तिनके उद्भव होनेसे जाग्रतके स्थूल विषयों से इतर, अरु तिसही हेतुसे सूक्ष्म, अरु वाह्य इन्द्रियोंको विषयों से निवृत्त होनेकरके 'अविद्या, काम,अरु कर्म्म, इनसे प्रेरणाको प्राप्तहुई अपनी बुद्धि तिसके प्रभावसेही उत्पन्नहुये अन्तःकरणकी वासनामय, अरु स्वप्नविषे भी सूर्यादिकों के प्रकाश के । जो केवल जाग्रत्के सूर्य्यादिकों के प्रकाशके संस्कार युक्त बुद्धिकरके कल्पित हैं । अस्तहुये केवल । स्वयंज्योतिः । आत्मरूप प्रकाश करकेही प्रकाशित हुये (विषय किये गये जे भोग्यपदार्थ तिनको अनुभव करके, अपंचीकृत । तन्मात्रारूप । पंचमहाभूत अरु तिनके कार्यरूप सूक्ष्म प्रपंचमय हिरण्यगर्भ के शरीररूप स्वप्नावस्थाके ताईं अभिमान । अहंमम (मैं मेरा) भाव । करता हुआ । चैतन्यआत्माही । तैजसनामक जीवरूप होता है । पुनः [अब तिसही चिदात्माविषे सुषुप्ति अवस्थाकी कल्पना को देखावे हैं] भी स्थूल अरु सूक्ष्म उभय शरीररूप उपाधिद्वारा जाग्रत् अरु स्वप्नरूप उभय अवस्थारूप स्थानोंविषे प्रवृत्ति होनेसे हुआ जो श्रम तिसकी उत्पत्तिके अनन्तर तिस श्रमके परित्याग करने

की इच्छाके होनेसे स्थूल अरु सूक्ष्मके विभागकरके जाग्रत् अरु स्वप्नरूप उभयस्थानों विषे स्थित, इन प्रसंग विषे प्राप्तहुये सर्व भी भोग्यरूप विशेषों को धीरेसे । क्रमशः वा बिनाही क्रमशः । अज्ञात कारणरूप अपने स्वरूप विषे । अर्थात् सुषुप्ति से उठके कहता है कि ऐसे सोये जो कुछ भी खबर न रही इस अज्ञात लक्षणवान् कारण अविद्या तिसकी पृथक्सत्ताका अभावहै, क्योंकि उस अज्ञात अविद्याका परिणाम उसके प्रकाशक साक्षी अधिष्ठान ज्ञानस्वरूप आत्माविषे होता है जैसे कल्पित सर्पका रज्जुविषे, अरु जिसका परिणाम जिस अधिष्ठानरूप होताहै सो उसहीका स्वरूप होताहै, ताते अपनी पृथक् सत्ताके अभावसे अध्यस्त अविज्ञातरूप अविद्या भी सर्वाधिष्ठान आत्मस्वरूपही है । स्थापन करके अव्याकृतरूप उपाधिकी प्रधानतावाला हुआ । वोही चैतन्यआत्मा । प्राज्ञनामक जीवरूप होताहै । सो [अब जाग्रदादि तीनों अवस्थारूप स्थानों करके युक्त, अरु "नान्तःप्रज्ञंनबहिःप्रज्ञं" (अन्तःप्रज्ञनहीं, बाह्यप्रज्ञनहीं) इत्यादि निषेधमुख श्रुतिवाक्य श्रवणसे उत्पन्नहुआ जो प्रमाणज्ञान तिसविषे आरूढहुये तिसही प्रत्यगात्माके कार्य कारणरूप सर्व अनर्थ विशेषों को श्रुतिप्रमाण जन्यज्ञानके प्रभाव सेही त्यागकरके निरुपाधि परिपूर्ण ज्ञानरूप सेही सिद्धहुये तत्त्वको कथन करते हैं । अरु मंगलार्थ तिसकी प्रार्थना करते हैं] यह सर्वगुणोंके समूहकी कल्पनासे रहित अरु नित्य ज्ञानरूप स्वस्वभाववाला तुरीयरूप परमात्मा सर्व कार्य कारणरूप अनर्थोंके भेदोंको भी श्रुतिप्रमाण जन्य ज्ञानके प्रभाव सेही परित्याग करके, अरु व्याख्यानके कर्त्ता होनेकरके अरु श्रोताहोने करके स्थितहुये हमको पुरुषार्थ विषे विघ्नकारी कारण के । अर्थात् पुरुषार्थ विषे जे विघ्नों के कारण तिनके । निषेध (अभाव) पूर्वक मोक्षके प्रदानसे अरु तिसकेहेतु ज्ञानके प्रदान से रक्षणकरो २ ॥

इति भाष्यकारकृतमंगलाचरणम् ॥

अथ भाष्योपरिटीकाकारस्वामीआनन्दगिरिकृतमंगलाचरणम् ॥

ॐपरिपूर्णपरिज्ञानपरितृप्तिमतेऽले । विष्णवेजिष्णवेतस्मैकृष्णनामभृतेनमः १ शुद्धानन्दपदाम्भोजद्वन्द्वमद्वन्द्वतास्पदम् । नमस्कुर्वेपुरस्कर्तुन्तत्त्वज्ञानमहोदयम् २ गौडपादीयभाष्यंहिप्रसन्नमिवलक्ष्यते । तदर्थोऽतिगम्भीरस्तद्व्याकरिष्येस्वशक्तितः ३ पूर्वैर्यद्यपिविद्वांसोव्याख्यानमिहचक्रिरे । तथापिमन्दबुद्धीनामुपकारायपत्यते ४ ॥

ॐमित्येतदक्षरमिदꣳसर्वंतस्योपव्याख्यानंभूतंभवद्भविष्यदितिसर्वमोंकारएव । यच्चान्यत्त्रिकालातीतंतदप्योंकारएव १ ॥

हे सौम्य, । यह [जिसको उद्देश करके मंगलाचरण किया, तिसको कथन करने को आदिविषे व्याख्यान करनेयोग्य मंत्रके प्रतीक (प्रथमपद) को ग्रहणकरते हैं] ॐ इसप्रकारका जो अक्षरहै, सो यह सर्वहै । तिसका उपव्याख्यान वेदान्त [यह क्या शास्त्रपने करके व्याख्यान करने को इच्छित है, वा प्रकरणपने करके व्याख्यान करने को इच्छितहै । तहां जो प्रथमपक्ष कहो कि शास्त्रपने करके व्याख्यान करनेको इच्छितहै, सो बने नहीं, क्योंकि इसबिषे शास्त्रके लक्षणके अभावसे इस ग्रन्थको अशास्त्रपनाहै ताते । अरु एक प्रयोजन से सम्बन्धवाला सर्व अर्थका प्रतिपादक शास्त्रहोताहै । सो इस ग्रन्थविषे एक मोक्षरूप प्रयोजनपना तो है परन्तु सर्व अर्थका प्रतिपादकपनानहीं । एतदर्थ शास्त्रके लक्षणके अभावसे इसग्रन्थको अशास्त्रपना युक्तही है ॥ अरु जो द्वितीयपक्ष कहो कि इसको प्रकरणपने करके युक्त होने से व्याख्यान करने को इच्छित है, तो सो भी बने नहीं, क्योंकि प्रकरणके लक्षण का भी इसविषे अभाव है। यह आशंका करके कहेहै यहां यह अर्थहै कि शास्त्रके एकदेशसे सम्बन्धवाला अरु

शास्त्रके अन्यकार्य विषे स्थित जो होय सो प्रकरण ऐसा कहते हैं। अरु यह ग्रन्थ प्रकरणपने करके व्याख्यान करने को इच्छितहै क्योंकि यह निर्गुण वस्तुमात्र का प्रतिपादकहै ताते, अरु तिसके प्रतिपादन के संक्षेपरूप अन्यकार्योंका भी होनाहै ताते, इसग्रन्थ विषे प्रकरणके लक्षण सर्वही हैं ताते। यहग्रन्थ व्याख्यान करने को इच्छित है।] शास्त्रके अर्थकासार संग्रहरूप चारप्रकरणवाला "ॐ मित्येतदक्षरमित्यादि" (यह ॐ इसप्रकारका अक्षर है) इत्यादिरूप ग्रन्थ है तिसका आरम्भ करते हैं [इसग्रन्थ को प्रकरण रूपहुये भी विषयादिक अनुबन्ध रहिततारूप दोषकी की हुई इस ग्रन्थके व्याख्यान करनेकी अयोग्यताहै,यह आशंका करके कहतेहैं] याहीते इससे पृथक् सम्बन्ध विषयअरु प्रयोजन कथनकरनेको योग्य नहीं, किन्तु जो वेदान्तशास्त्रविषे सम्बन्ध विषय अरु प्रयोजनहैं सोई यहां कथनकरनेयोग्यहैं। तथापि प्रकरणके व्याख्यान करनेकी इच्छावाले पुरुषकरके संक्षेपसे कथन करनेयोग्यहै। तहां श्रीभाष्यकार स्वामीकरके प्रयोजनादि अनुबन्धके कथनकी योग्यताके सिद्धहोनेसे शास्त्रअरु प्रकरणकेमोक्षरूप प्रयोजनवान्‌पनेकी प्रतिज्ञा करतेहैं] प्रयोजनवत् साधनोंका प्रकाशक होनेकरके विषयसे सम्बन्धवाला जो शास्त्र सो परम्परा से श्रेष्ठ 'विषय, सम्बन्ध, अरु प्रयोजनवाला होताहै॥ प्र०॥ पुनः तिसकाप्रयोजन क्याहै, ॥उ०॥ तहांकहतेहैं, जैसेरोगकरके आतुरपुरुषको रोगकी निवृत्ति होनेसे स्वस्थता होतीहै, तैसेही। अन्तःकरणादि उपाधिवाले। दुःखी आत्माको। दुःखकेहेतु। द्वैतप्रपंच की निवृत्तिके होनेसे जो अद्वैतभावरूप स्वस्थताहोवे है सोईप्रयोजनहै। अरुद्वैतप्रपञ्च अविद्याका किया है अतएव विद्याकरके तिसकी निवृत्ति होतीहै एतदर्थ ब्रह्मविद्याके प्रकाशनार्थ इसग्रन्थ का आरम्भ करतेहैं "यत्रहि द्वैतमिवभवति"। "यत्रवाऽन्यदिवस्यात्तत्राऽन्योऽन्यत्पश्येदन्योऽन्यद्विजानीयात्" "यत्रत्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केनकंपश्येत्केनकं तद्विजानीयात्, इत्यादि" (जहांही

द्वैतवत् होताहै, जहांवा अन्यवत् होताहै,तहां अन्य अन्यको देखे, अन्य अन्यको जाने। अरु जहांतो इसको सर्व आत्माही होता हुआ तहां किसकरके किसकोदेखे किस करके किसको जाने। इत्यादि अनेक श्रुतियोंके प्रमाणकरके इसअर्थकी सिद्धिहै । तहां [विषय प्रयोजनादि अनुबन्धके आरंभद्वारा ग्रंथके आरंभके स्थितहुये आदिविषे इस कारिकारूपी ग्रंथके चारप्रकरण एकसेएक अमिलित विषय, ज्ञानकी सुगमताके अर्थ सूचनकरनेको योग्यहै, इस प्रकार कहके प्रथम प्रकरणके विषयको निरूपण करतेहैं][गौड़पादीय कारिकाविषे प्रथम ॐकारके निर्णयार्थ आगमप्रधान आत्मतत्त्वके निश्चयका उपायरूप प्रथम प्रकरण है । अरु रज्जुआदिकों विषे सर्पादिकोंके विकल्पकी निवृत्ति होनेसे रज्जुकेयथार्थ स्वरूपकी प्राप्तिवत्, जिस [अब वैतथ्यनामक द्वितीय प्रकरण के अवान्तर विषयको देखावते हैं] द्वैतप्रपंचकी निवृत्ति होनेसे अद्वैतकी प्राप्तिहोतीहै, तिस द्वैतके हेतुसे मिथ्यापनेके प्रतिपादनार्थ द्वितीय प्रकरणहै ।[अब अद्वैत नामक तृतीय प्रकरणकेअर्थ विशेषकेकहनेकाआरंभ करतेहैं] तैसे अद्वैतकोभीद्वैतकी सापेक्षतासे मिथ्यापनेकी प्राप्तिकेहुये युक्तिसे तिसके परमार्थपने के जनावनेके अर्थ तृतीयप्रकरणहै [अब अलातशान्ति नामक चतुर्थ प्रकरणके अर्थ विशेषको कहतेहैं] अद्वैतके परमार्थभावके निश्चयके विरोधीरूप जे वेदविरुद्ध अन्यवादहैं तिनको परस्पर में विरोधी होनेसे उनको अयथार्थताके कारण युक्तिकरकेही तिनके निराकरणार्थ चतुर्थ प्रकरणहै । पुनः [ॐकारके निर्णयरूप द्वार से आत्मज्ञान प्राप्तिका उपायरूप प्रथम प्रकरणहै, इसप्रकारजो कहा सो अयुक्तहै, क्योंकि ॐकारके निर्णयको आत्मज्ञान होने की हेतुताकी अयोग्यता है। अर्थात् आत्मज्ञान होनेकी हेतुताके योग्य ॐकारका विचार नहीं । अरु अन्य अर्थकाज्ञान अन्यअर्थ के ज्ञानविषे व्याप्तिविना उपयोगताको पावता नहीं, अर्थात् ॐकारके अर्थका ज्ञान आत्मज्ञानके अर्थज्ञानमें अव्यान होने मे

ॐकारके अर्थकाज्ञान आत्मज्ञानहोनेमें उपयोगी होतानहीं । अरु यहां । ॐकारके विचार अरु आत्मज्ञानविषे । धूम अरु अग्निवत् व्याप्ति देखते नहीं, अरु ॐकारको आत्माका कार्यपना युक्तनहीं । क्योंकि आकाशादिकोंका अवशेषहै ताते । अरु तिस ॐकारको आत्मावत् सर्वात्मा होनेकरके तिसके कार्यपने का व्याघात है ताते । इसप्रकार मानताहुआ वादी पूर्व कहे प्रमाण प्रथम प्रकरणके अर्थविषे आक्षेप करेहै] ॐकारके निर्णयविषे आत्मतत्त्वकी प्राप्तिका उपायपना कैसे प्रतिपादन करतेहो, इस शंकापर कहतेहैं [हम । धूम अग्निवत् । अनुमान प्रमाणके आश्रयसे ॐकारके निर्णयको आत्मज्ञानका उपायनहीं जानते कि जिसकरके व्याप्तिका अभावरूप दोष प्राप्तहोवे, किन्तु श्रुतिवाक्यके शब्द प्रमाण से ॐकारका निर्णय आत्मज्ञानका हेतुहै, इसप्रकार समाधान करतेहैं]"ॐमित्येतत्"। "एतदालम्बनंश्रेष्ठम्"। "एतद्वैसत्यकाम परश्चापरश्च ब्रह्म यदोंकारः । तस्माद्विद्वानेतेनैवायतने नैकतर मन्वेति"। "ॐमित्यात्मानंयुञ्जीत" । "ॐमितिब्रह्म"। "ॐकार एवेदं सर्वम्" (ॐ इसप्रकारका यह, आलम्बन श्रेष्ठ है, हे सत्यकाम!यह जो पर अरु अपररूप ब्रह्महै सो ॐकार है, ताते विद्वान् इसही साधनसे उभयके मध्य एकको प्राप्तहोता है, ॐ इसप्रकार आत्मा (बुद्धि) को योजनाकरे, ॐयह ब्रह्महै, ॐकार ही यह सर्व है। इत्यादि अनेक श्रुतियोंके प्रमाणसे। सर्पादि [ननु आपकरके व्याप्तहुये भ्रांतिवाले सन्मात्र चिदात्माविषे प्राणादि विकल्पको कल्पित होनेसे आत्माको सर्वका आश्रयपनाहै परन्तु ॐकारको वो सर्वका आश्रयपनाहै नहीं क्योंकि तिसके अनुस्यूतपनेका अभावहै ताते, यहआशंका होनेसे तहां कहतेहैं] विकल्प के आश्रय रज्ज्वादिकोंवत्, जैसे अद्वैतरूप आत्मा परमार्थकरके सत् रूपहुआ प्राणादि विकल्पोंका आश्रय है । तैसे प्राणादिरूप विकल्पों को विषय करनेवाला वाणीरूप प्रपंच ॐकारही है । अरु सो [ननु अर्थों के समूह को आत्मरूप आश्रयवाला होने

करके, अरुॐकाररूप आश्रयवालाहोनेकरके, वाणीरूप प्रपंचको दोनों आश्रय प्राप्तहुये, ऐसा कहना बनेनहीं, इसप्रकार कहते हैं] ॐकार आत्माका स्वरूपही है, क्योंकि ॐकार आत्माका वाचक है ताते। अरु ॐकार के विकार शब्दके उच्चारणका विषय प्राणादि सर्वआत्माका विकल्पनामसे भिन्ननहीं, क्योंकि "वाचारम्भणंविकारोनामधेयं" (वाणी से उच्चारणकिया विकार नाममात्र है) अरु " तदस्येदंवाचातन्त्या नामभिर्दामभिः सर्व्वं सितम् "। " सर्वंह्रीदंनामानीत्यादि" (सो इसका यह सर्ववाणी रूप तन्तुसे नामरूपा दामों (रज्जुओं) से बद्ध (बँधे) हैं। सर्व ही यह नामविषे हैं। इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे ॐकारकोसर्व का आश्रयपना बनेहै। [प्रथम प्रकरणके अर्थको प्रतिपादन करके तिस अर्थविषे मूल श्रुतिको प्रकट करतेहैं] एतदर्थ यह श्रुति "ओमित्येतदक्षरमिदꣳसर्व्वं " (ॐइसप्रकारका यह अक्षर यह सर्वहै) इसप्रकारकहे हैं। जोयहविषयरूप अर्थोंका समूहहै तिसकोनामसे अभिन्नहोने करके, अरु नामको ॐकारसे अभिन्नहोने करके ॐकारही यह सर्वहै । अरु जो परब्रह्म नामके कथनरूप उपाय पूर्वकही जानने में आवता है सो ॐकारही है। [अब "तस्य" (तिसका) इत्यादिरूप मूलश्रुतिकेभागको प्रकटकरके व्याख्यान करते है] " तस्योपव्याख्यानंभूतं भवद्भविष्यदिति सर्व्वमोंकारएव " (तिसका उपव्याख्यानहै,' भूत, वर्तमान, भविष्यत्'यह सर्व ॐकारही है) अर्थात् तिस इस पर अरु अपर रुप 'ॐ' इसप्रकार के अक्षरको ब्रह्मकी प्राप्तिका उपाय होनेसे, अरु ब्रह्मके समीप (नाम) होनेकरके विप्रकृष्ट कथनरूप प्रसंगविषे प्राप्त जो उपाख्यानहै, सो सम्यक्प्रकार जाननेके योग्यहै। अरु उक्त न्यायसे ' भूत, वर्तमान, भविष्यत्' इन तीनोंकालोंकरकेपरिच्छेद (भेद) करने के योग्य जो वस्तुहै सोभी सर्व ॐकारही है। " यच्चान्यत्त्रिकालातीतंतदप्योङ्कारएव " (जो अन्य तीनोंकालों से अतीत (भिन्न) है सो भी ॐकारही है) अर्थात् जो अन्य

सर्व्वंह्येतद्ब्रह्मायमात्माब्रह्मसोयमात्माचतुष्पात्२॥

तीनोंकालों से पृथक् कार्यरूप लिंगसे जानने योग्य. अरु काल करके परिच्छेद करने को अयोग्य। कारणरूप। अव्याकृतादिक हैं। वा सर्वका कारण परमात्मा है। सो भी ॐकारही है। अर्थात् आकाशको सर्वत्र पूर्ण होनेसे उसको देशकृत परिच्छेद नहीं, परन्तु "एतस्माद्वाएतस्मादात्मन आकाशःसंभूत" इत्यादि प्रमाणसे आकाशको उत्पत्तिवाला होनेसे वो अपनी उत्पत्ति के पूर्वकाल में अभावरूप है ताते आकाश को कालकृत परिच्छेदहै, ताते आकाशादि सर्वकार्य भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान, इनकालत्रय कृत परिच्छेदवलाहै, अरु आकाशादि सर्वकार्योंका करण जे सत् चेतन्य परमात्मा ब्रह्महै सो "अजोनित्यः" इत्यादि अनेकश्रुतियों के प्रमाणसे उत्पत्ति विनाश से रहित अजन्मा नित्य सत्यहै, एतदर्थ उसविषे कालकृत भी व्यवधान नहीं। इस कहने का अभिप्राय यह है कि "भूतंभवद्भविष्यदितिसर्व्वमोंकारएव" इस श्रुतिसे आकाशादि सर्व्वकार्य जो उत्पत्ति विनाशवालाहै सो सर्व कालत्रय के परिच्छेदवाला ॐकारका वाच्यहै "तदेववाच्यंप्रणवोहिवाचको" इत्यादिप्रमाणसे। अरु "यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योंकारएव" इन श्रुतिवाक्यसे, जो कालत्रयके विच्छेदवाले कार्य्यरूप पदार्थोंसे अन्यजो सर्वका कारण अधिष्ठान सर्वात्मा परब्रह्महै सो ॐकारकालक्ष्यहै, ऐसाजानना।॥ यहां [वाच्य अरु वाचकको एकही सत् वस्तुविषे कल्पितहोने करके तिनकी एकरूपताको कथनकियाहैताते, पुनः (सर्वंयहब्रह्महै) इसप्रकार क्यों कहते हैं, ऐसा जहां विकल्प है, तहां उक्त अर्थके अनुवादपूर्वक अग्रिमवाक्य के फलसहित तात्पर्य्यको कहतेहैं] नाम (वाचक) अरु नामी (वाच्य) इनकी एकता के होने से भी नामकी प्राधान्यता से यह निर्देश कियाहै १ ॥

२हेसौम्य! "ॐ"[वाच्यको वाचकपनेके कथन करकेही तिन

[वाच्य वाचककी] एकताकी सिद्धिसे, पुनः वाचक की वाच्य रूपताका कथनरूप व्यतिहार (उलटायके कथन) करना व्यर्थ है, यह आशंका करके कहते हैं। यहां यह अर्थहै कि वाच्य से वाचककी एकताको न कथन करके वाचकसेही वाचक की एकता के कथन करने से उपाय अरु उपेय की करीहुई जो एकता, सो मुख्यनहीं, किन्तु गौणहै, इसप्रकारकी आशंका प्राप्त होवेगी, तिसके निवारणार्थ व्यतिहारका कथन सफल है] " ॐमित्येतदक्षरमिदंसर्व्वं" इत्यादि नामकी प्रधानता से निर्देशकरी वस्तुका पुनः नामी की प्रधानता से जो निर्देश कहिये कथन है, सो नाम अरु नामी की एकताके निश्चयार्थ है। अरु अन्यथा नामके विषे नामीका निश्चय होवेगा, अरु नामीकी नामरूपता गौणहै, इस प्रकारकी शंका उत्पन्न होवेगी। अरु वाच्य अरु वाचकरूप नामी अरु नामकी एकता के निश्चयका इन दोनोंको एकही प्रयत्न से एक कालविषे लय करताहुआ तिससे विलक्षण ब्रह्मको [कि जिसविषे नाम अरु नामी इत्यादि कोई भी कल्पना नहीं] प्राप्त होता है, यह प्रयोजन है। अरु तैसेही आगे कहेंगे कि "पादामात्रामात्राश्चपादा" (पाद जो हैं सो मात्रा हैं अरु जो मात्राहैं सो पादहैं)। सोई [कहेहुये वाचकके वाच्यसे अभेदविषे वाच्यको प्रकटकरके योजना करते हैं] कहतेहैं "सर्व्वंह्येतद्ब्रह्मायमात्माब्रह्म" (सर्वही यह ब्रह्महै, यह आत्माब्रह्म है) अर्थात् सो सर्वकार्य अरु कारणही ब्रह्महै। सर्व जो यह ॐकारमात्र है, इसप्रकार श्रुतिने कहाहै, सो यह ब्रह्महै। इसप्रकार सो परोक्षपने करके कथनकिये ब्रह्मको प्रत्यक्ष (अपरोक्ष) विशेष करके निर्देश करते हैं। यह आत्माब्रह्महै। यह "अयं" (यह) इसकरके 'विश्व, तैजस, प्राज्ञ, अरु तुरीय, इन चार पादवाला होने से विभाग को प्राप्तहुये आत्माको प्रत्यगात्मारूप होने करके कथन करने को जो इच्छित अर्थ तिसके निश्चयार्थकसाधारण शरीरके हस्ताग्र (अंगुली वा करतल) को अपने हृदय देशपर्यंत लेआवनेरूप

व्यापारमय अभिनय से "अयमात्मा" (यह आत्मा है) [अर्थात् " अंगुष्ठमात्रःपुरुषोऽन्तरात्मा सदाजनानांहृदये सन्निविष्टः" इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे अंगुष्ठप्रमाण हृदयनामक मांसपिंडी जो वक्षस्थलके मध्यहै, तिसके सम्बन्धसे तिलकेमध्य 'घटमें आकाशवत्, अंगुष्ठमात्र चैतन्य पुरुष है तिसको सर्वका द्रष्टा होने से प्रत्यक्षकरके 'अहं आत्माहै, इसप्रकार अंगुलि निर्देशसे कहतेहैं] इसप्रकार कहते हैं। "सोऽयमात्मा चतुष्पात्" (सो यह आत्मा चारपादवाला है) अर्थात् सो [अब "सोऽयं" (सो यहहै) इत्यादिरूप अन्यवाक्य को प्रकटकरके व्याख्यानकरतेहैं] यह ओंकारका वाच्य अरु पर (सर्वाधिष्ठान) अरु अपर (प्रत्यगात्मा) रूप होनेकरके स्थितहुआ आत्मा चारपादवालाहै। तहां दृष्टान्त कहते हैं, कार्षापणके पादवत्, [आत्माको सर्वाधिष्ठान होने करके अपरोक्षतासे पर (श्रेष्ठ) पनाहै.अरु उसको प्रत्यगात्मरूपतासे अपर (अश्रेष्ठ) पनाहै, तिस हेतुकरके कार्यकारण रूपसे सर्वका स्वरूप (अपनाआप) होने करके स्थितहुआ जो आत्मा तिसके ज्ञानकी सुगमताके अर्थ उस विषे चारपाद की कल्पना कियाहै, तिस विषे दृष्टान्त कहते हैं। यहां यह अर्थहै कि कोई एक देश विषे षोडशपण अन्नके माप करने के पात्र विशेषका नाम 'कार्षापण, कहते हैं, [अर्थात् किसी एकपात्र विशेषमें एकमनके प्रमाण अन्न विशेष पूर्णता से आवताहै अरु उस एकही पात्र में 'एकमन, पौनमन, आधमन, पावमन, इसप्रकारमापने के चार चिह्न होनेसे उस पात्रकी चार पादवाला कल्पना करते हैं तैसे] तहां उसपात्रविषे व्यवहारकी बाहुल्यता सिद्धयर्थ पादोंकी विशेष कल्पना करते हैं,। तैसेही इस आत्मा विषे भी पादोंकी कल्पना जाननी। परन्तु जैसे गौको चार पादवाली कहते हैं तैसे आत्मा चार पादवाला कहनेको शक्य नहीं,क्योंकि आत्माकोजोनिष्कल निरवयवादि भावकी प्रतिपादक श्रुतियां हैं तिनसे विरोध होवेगा याते] गौके पादवत् नहीं [विश्वसे आदिलेके तुरीयपर्यन्त] चार

जागरितस्थानोबहिःप्रज्ञःसप्ताङ्गएकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरःप्रथमःपादः ३॥

पादरूप । पदार्थोंविषे जो पाद शब्द है, सो जब करण व्युत्पत्ति वाला । अर्थात् साधनरूप अर्थवाला। होवे तब विश्वादिकोंवत् तुरीयकेभी साधन कोटिविषे प्रवेशके होनेसे ज्ञेयवस्तुकी । अर्थात् मुमुक्षुपुरुष करके श्रवणादि साधनोंद्वारा तुरीयआत्माको आत्म-त्वसे जानना है तिसकी । असिद्धि होवेगी, अरु जब पाद शब्द विश्वादिक सर्वविषे कर्म व्युत्पत्ति (विषयरूपअर्थ) वालाहोवे है, तब सर्व को ज्ञेयरूप होनेसे उनको ज्ञानके साधनताकी असि-द्धि होवेगी। यह आशंकाकरके पादशब्दकी प्रवृत्तिको विभागकर के प्रकट करते हैं] विश्वादिक तीनोंके मध्य पूर्वपूर्व । पादोंकेउत्तर उत्तर पादों विषे । विलयकरने से तुरीयाका निश्चय होता है। अरु इसप्रकार होनेसे पादशब्द तुरीयाके कारणभावका साधन होताहै, अरु प्राप्तहोता है। इसप्रकार होनेसे पादशब्द तुरीयके कर्म कहिये 'विषय, भावका साधन होता है। परन्तु निरवयवरूप आत्माको उभयप्रकारके पादोंकी कल्पना बने नहीं २॥

३ हे सौम्य! [आत्माकेचारपाद तो दूरसेंही निषेधकियेहैं; इस प्रकार वादीशंकाकरे है] प्र० ॥ आत्माका चारपादकरके युक्तपना कैसेहै, उ० ॥ तहां कहते हैं, "जागरितस्थानोबहिःप्रज्ञः" जागरि-तस्थान बहिःप्रज्ञ है; अर्थात् जाग्रत् अवस्था है । स्थान अर्थात् अभिमानका विषय । जिसका, ऐसा जागरितस्थानहै। अरु बहिर जो आत्मा को अपने आप आत्मत्वसे भिन्न विषय, तिन विषे है प्रज्ञा [प्रज्ञा जो बुद्धि, तिसको प्रथम अन्तर होने की प्रसिद्धि से, तिसका "बहिःप्रज्ञः" बाह्य के विषय वाली यह विशेषण अयुक्त है, ऐसी आशङ्काकरके तिसका व्याख्यान करते हैं। यहां यह भाव है कि, चेतन्यरूप जो स्वरूप भूत प्रज्ञा है सो बाह्य विषयों विषे भासती नहीं, क्योंकि वो प्रज्ञा विषय

की अपेक्षासे रहितहै ताते, किन्तु बुद्धिरूपजो प्रज्ञाहै सो वाह्यके विषयों विषे भासतीहै] जिसकी सो कहिये बहिःप्रज्ञ । अर्थात् अविद्याकृत [वाह्य विषयोंका वास्तवकरके अभावसे, वो प्रज्ञा (जो अन्तर है) सो वाह्यविषयोंविषे कैसे भासतीहै, ऐसीआशङ्का करके कहते हैं । यहां यहतात्पर्य्य है कि, (आत्मविषयिणी) स्वरूप भूत जो प्रज्ञा है, सो वास्तवसे वाह्यविषयवाली नहीं अङ्गीकार कियाहै, परन्तुबुद्धिवृत्तिरूप जो (विषयादिवस्तुविषयिणी निश्चयात्मक) अज्ञानकरके कल्पित प्रज्ञाहै, सो वाह्यविषयोंवालीप्रज्ञा होतीहै । अरु सो बुद्धिवृत्तिरूप प्रज्ञाभी वास्तवसे वाह्य विषय भावको अनुभव नहींकरती क्योंकि अज्ञानकरके कल्पित होनेसे वास्तवमें उस प्रज्ञाका अभावहै । अरुउस (प्रज्ञाका विषय) वाह्य विषय सोभी अज्ञानकरके कल्पित है ताते । एतदर्थ बुद्धिवृत्तिका जो वाह्य विषयोंका प्रकाशकपना है सो प्रातिभासिक (कल्पित) है]जोवाह्यप्रज्ञाहै सोवाह्य के विषयवाली (विषयाकार) ही भासेहै तैसे [अब पूर्व के विशेषणसे इतर विशेषणको योजनाकरते हैं] "तस्यहवैतस्यात्मनो वैश्वानरस्यमूर्द्धैव सुतेजाश्चक्षुर्विश्वरूपः प्राणःपृथग्वर्त्मात्मा सन्देहोबहुलोवस्तिरेवरयिः पृथिव्येवपादो" "अग्निहोत्रकल्पनाशेषत्वेनाग्निमुखत्वेनाहवनीय उक्तः" तिस इस वैश्वानररूप आत्माका सुन्दरतेजवाला स्वर्गलोक मस्तक है, अरु श्वेतरक्तादि नानाप्रकारके गुणोंवाला सूर्य्य उसका चक्षु है, अरु नानाप्रकारकी (तिर्यक्) गतिसे विचरनेके स्वभाववाला वायु उसका प्राणहै, अरु विस्तृततारूपगुणवाला आकाश उसका देहमध्यभाग है, अरु उनका हेतुरूप जल उसका मूत्रस्थान है, अरु पृथिवी उसके दो पादहैं । अरु अग्निहोत्रकी कल्पना विषे उपयोगी होनेकरके आहवनीय नामवाला जो अग्निहै सो उसके मुखरूपसे कहाहै। इसप्रकारश्रुतिकरके उक्त यहसातहैं अङ्गजिसके ऐसा "सप्तांग" (सातअङ्गवाला) है । अरु "एकोनविंशतिमुखः" (एक ऊन वीस मुखवालाहै) अर्थात् तैसेही [अब अन्य विशेष-

णोंकी योजना करतेहैं] पांच ज्ञानेन्द्रिय अरु पांचकर्म्मेन्द्रिय; अरु प्राणादिभेदसे पांच वायु, अरु मन, बुद्धि, चित्त, अरु अहङ्कार, यह चार अन्तःकरणकी वृत्तियां, यह सर्व मिलके हुये जो उन्नीस १६ सोई मुखवत् उसके मुख (ज्ञानकेद्वार) [यहां ज्ञानपदकर्मकाउपलक्षण है, एतदर्थ ज्ञानके साधन अरु कर्मके साधन इस विश्व नामवाले जीवके मुख (ज्ञान अरु कर्मके साधन) हैं। यहां इस प्रकार विवेचनकरने को योग्य है, तहां पांच ज्ञानेन्द्रियां अरु एक मन अरु एक बुद्धि, इनसातको पदार्थोंकों को ज्ञानविषे साधनपना प्रसिद्ध है, अरु वागादि कर्मेन्द्रियों को वचनादि कर्म्मों विषे साधनपना प्रसिद्ध है। पुनः प्राणोंको ज्ञान अरु कर्म इन दोनों विषे परम्परासे साधनपना है । क्योंकि प्राणोंके होनेसेही ज्ञान अरु कर्मकी उत्पत्तिहै, अरु तिनकेअभावसे ज्ञान कर्मकीअनुपपत्तिहै ताते। अरु अहङ्कारको भी प्राणवत् ज्ञान कर्म दोनोंविषे साधनपना माननेके योग्यही है।अरु चित्तको भी चैतन्याभास के उदयविषे साधनपना कहाहै] जिसके, इसप्रकारका उन्नीस १६ मुखवाला है । अरु " स्थूलभुग्वैश्वानरःप्रथमःपादः " (स्थूल भुक् वैश्वानर है सो प्रथम पादहै) अर्थात् [पूर्वोक्त विशेषणों करके युक्त वैश्वानरका " स्थूलभुक् " ऐसा अन्य विशेषण है, तिसका विभागकरते हैं, यहां शब्दादिक विषयोंका स्थूलपना है सो दिशादिक देवता के अनुग्रह सहित श्रोत्रादिक इन्द्रियों से ग्रहणहोनेरूप है] सो ऐसे विशेषणोंवाला वैश्वानर उक्त उन्नीस द्वारोंसे शब्दादिक स्थूल विषयोंको भोगता है ताते सो ' स्थूल भुक् है, अरु [अब वैश्वानर शब्दका प्रसंग विषे प्राप्त विश्व जीवको विषय करनेपना स्पष्ट करते हैं] " विश्वेषांनराणामनेकधानयनाद्विश्वानरः । यद्वाविश्वश्चासौ नरश्चेति वैश्वानरः विश्वानर एव वैश्वानरः " (सर्व नरों को अनेक प्रकारसे लेजाता है एतदर्थ विश्वानर है) अथवा विश्व ऐसा जो नर सो कहिये विश्वानर । विश्वानरही सर्व [विश्व ऐसा

पनाहै । अतएव ऐसे अध्यात्म अरु अधिदैवके अभेदको लेके उक्त प्रकारसे चार पादवान्पनेको कहने को इच्छित होने से पूर्व पूर्व पादको उत्तरोत्तर पादरूप से विलय करने से जिज्ञासुकी तुरीय स्वरूप विषे स्थिति सिद्धहोतीहै] यह दोपहै नहीं, क्योंकि अधि दैव सहित सर्वप्रपंचके इसआत्माके स्वरूपसे चारपादपना कहने को इच्छित होनेकरके । अरु ऐसे [जब इसप्रकार जिज्ञासु मुमुक्षुकी तुरीय विषे स्थिति अंगीकार करते हैं, तब तत्त्वज्ञानके प्रतिबंधक प्रातिभासिक कहिये कल्पित द्वैतकी निवृत्ति के हुये ‹ अद्वैत परिपूर्णब्रह्ममें हौं › इसप्रकार महावाक्यार्थका साक्षात्कार सिद्धहोवैहै,इसप्रकार फलितको कहतेहैं] सर्व प्रपंचकी निवृत्तिके हुये, अद्वैतकी सिद्धि होतीहै, सो सर्व भूतोंविषे स्थित एक आत्मा देखा (अनुभवकिया) होताहै, अरु सर्व भूत आत्माविषे देखेहुये होते हैं । इसप्रकार " यस्तुसर्वाणिभूतान्यात्मन्येवानुपश्यति" ‹ जो सर्वभूतोंको आत्माविषेही देखताहै › इसईशावास्यउपनिषद्के षष्ठ मन्त्ररूप श्रुतिका अर्थ समाप्त कियाहोताहै [अध्यात्म अरु अधिदैवके अभेदके अंगीकार रूपद्वार से पूर्वोक्तरीत्या तत्त्व ज्ञानके । होनेके । अंगीकारविषे दोष कहते हैं] अन्यथा अपने देहकरके परिच्छिन्नही प्रत्यगात्मा सांख्यादिमतवादियोंवत् अनुभव कियाहोवेगा । अरु तैसे [ननु, आत्माकी एकता विषे सुखादिकोंके भेदकी व्यवस्थाके असंभव से । अर्थात् जो कदापि सर्व शरीरों में एकही आत्मा मानिये तो एकके सुखसे सर्वही सुखी, अरु एकके दुःखसे सर्वही दुःखी, अरु एकके बन्धसे सर्वही बद्ध, अरु एकके मुक्तसे सर्वही मुक्त, ऐसा होना चाहिये, परन्तु सो न होके कोई सुखी है, कोई दुःखी है, कोई बद्धहै, कोई मुक्त है, सो सर्वको प्रकट अरु युक्तही है, अरु शरीर २ प्रति भिन्न भिन्न आत्मा मानने से कोई सुखी अरु कोई दुःखी इत्यादि जो लोक विषेव्यवस्था है सो यथार्थ है अरुसोई सर्व शरीरोंविषे भिन्न भिन्न आत्माका बोधक लिंग है । शरीर शरीरकेप्रति आत्माका भेद

स्वप्नस्थानोऽन्तः प्रज्ञः सप्ताङ्गएकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक्तैजसोद्वितीयःपादः ४ ॥

सका व्याख्यान करते हैं] " स्वप्नस्थानो " ‹ स्वप्नरूप स्थान वाला › अर्थात् स्वप्न, हे ममलक्षण अभिमानका विषयरूपस्थान जिस तैजसरूप द्रष्टाका ऐसा जो स्वप्नस्थानवाला, ['स्वप्न' इस पदके निरूपणार्थ तिसके कारणको निरूपण करते हैं] जाग्रत की जो प्रज्ञा (बुद्धि) है सो अनेक साधनोंवाली अरुबाह्य (स्थूल) को विषयकरनेवाली हुयेवत् भासमान, अरु मनरूप स्फुरण-मात्रहुई तिसप्रकारके संस्कारको मनविषे धारणकरे है। तैसे संस्कारवाला सोमन, चित्रित [जाग्रत्की वासनाकरके युक्त हुआ जो मन सो स्वप्नविषे जाग्रत्वत् भासताहै, इस अर्थ विषे दृष्टान्त कहतेहैं। जैसे चित्रकरके युक्तहुआ जो पट सो चित्रवत् भासताहै । अर्थात् अनेक रंगोंके सूत्रकरके निर्मित बेल बूटादि वाला पट चित्रवत् भासताहै । तैसे जाग्रत्के संस्कार करके (जो मनही करके कल्पित हैं) युक्त हुआ जो मन सो जाग्रत्वत्ही भासताहै, यह युक्तहै, इत्यर्थः] पटवत्बाह्यके साधनकी अपेक्षा से रहित,अरु,अविद्या,काम, कर्म, से प्रेरणा को प्राप्तहुआ जाग्रत् वत् भासताहै । अरु ऐसेही बृहदारण्यकी श्रुतिविषे कहा भी है "अस्य लोकस्य सर्व्वावतोमात्रामपादायेति " " तथा परे देवे मनस्येकीभवतीति " " प्रस्तुत्यात्रैष देवःस्वप्नेमहिमानमनुभवती त्याथर्व्वणे" ‹ इस सर्व साधनकी सम्पत्तिवाले लोककी मात्रा (लेशरूप वा सूक्ष्म वासना) को ग्रहणकरके सोवता है › अरु ऐसेही अथर्वणवेदके ब्राह्मण प्रश्नोपनिषद्विषेभीकहाहै, तथाच। ‹ मनरूप परदेव विषे एकवत् होताहै › ऐसे प्रसंगविषे प्राप्तकरके ‹ इस स्वप्नविषे यह (मनाख्य) देव महिमाको अनुभव करताहै › अरु [ननु विश्वकी बाह्यइन्द्रियों से जन्य प्रज्ञाको, अरु तैजस की मनसे जन्य प्रज्ञाको अन्तर स्थितहोनेकी तुल्यता से, तैजस का

"अन्तःप्रज्ञः" (अन्तरकी प्रज्ञावाला) यह विशेषण व्यावर्त्तक (विश्वादिकोंसे पृथक् करनेवाला) नहीं है, जहां ऐसी शंकाहै, तहां कहते हैं] इन्द्रियोंकी अपेक्षासे मनको अन्तर स्थित होनेकरके स्वप्नविषे अन्तर है, तिस मनकी वासनारूप प्रज्ञाहै जिसकी ऐसा जो "अन्तःप्रज्ञ" (अन्तरकी प्रज्ञावाला है) अरु "सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः" (सातअंग अरु उन्नीस मुखवाला है) (अर्थात् यह तैजस जो अन्तर की प्रज्ञावालाहै सो) पूर्वके विश्ववत् सात अंग अरु उन्नीस मुखवालाहै। अरु "प्रविविक्तभुक्तैजसोद्वितीयः पादः" (वासनामय सूक्ष्म भोगवाला है तैजस द्वितीयपादहै) (अर्थात् प्रविविक्तभुक्, कहिये वासनामय सूक्ष्मभोग वा विरल भोगका भोक्ताहै) [ननु; विश्व अरु तैजसका "प्रविविक्तभुक्" (वासनामय सूक्ष्मभोगोंका भोक्ता) यह विशेषणतुल्यहै, क्योंकि (विश्व अरु तैजस इन) उभयकी (बाह्य अरु अन्तर) प्रज्ञाको भोज्यपनेकी तुल्यता हैं ताते, ऐसा जो वादीका कथन सो बने नहीं, क्योंकि उक्त उभयकी प्रज्ञाको भोज्यपने की तुल्यता के हुये भी तिस प्रज्ञाविषे मध्यके भेदसे विश्वकी भोज्य (भोगने योग्य) जो प्रज्ञाहै, सो विषय सहित होनेसे स्थूलकरके जानी जातीहै। अरु जो तैजसकी प्रज्ञाहै सो विषयके सम्बन्ध से रहित केवल वासनामात्र रूपवाली है, इसकरके तैजस विषे सूक्ष्मभोग सिद्धहोते हैं, इसप्रकार कहाहै] जाग्रत् विषे विश्वको विषयसहित होनेसे स्थूल प्रज्ञाका भोग्यपनाहै। अरु यहां स्वप्नविषे जिसकरके केवल वासनामात्र स्वरूपवाली प्रज्ञा भोग्यहै, एतदर्थ प्रविविक्त (सूक्ष्म) भोगहै। अरु [स्वप्नके अभिमानी को तेजके कार्यहोनेके अभाव से तैजसपना काहेसे होवेगा, यह आशंका करकेकहतेहैं] विषय रहित केवल प्रकाशस्वरूप प्रज्ञाविषे प्रकाशकपने करके होवे है। (अर्थात् स्वप्नका अभिमानी तेजकाकार्य नहीं परन्तु स्वप्न का प्रकाशक है एतदर्थ उसको तैजसपना होता है) इसकरके जो तैजसहै सो द्वितीयपाद है ४ ॥

यत्र सुप्तोनकञ्चनकामंकामयतेनकञ्चनस्वप्नंपश्यतितत्सुषुप्तम् । सुषुप्तस्थानएकीभूतः प्रज्ञानघनएवानन्दमयोह्यानन्दभुक्चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयःपादः ५ ॥

५ हे सौम्य ! [उक्तप्रकार (विश्व अरु तैजस) दोनों पादों की व्याख्याकरके अब तृतीयपादके व्याख्यान करतसन्ते व्याख्यान करने के योग्य श्रुतिविषे "नकंचन" (किसीकोभी नहीं) इत्यादि विशेषणों के तात्पर्य को कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि स्थूल विषयवाले ज्ञानकी जहां प्रवृत्ति है ऐसा जो जाग्रदादिथा सो दर्शन वृत्तिकहतेहैं अरु स्थूलविषयके दर्शनसे (ज्ञान) से इतर जे दर्शन (ज्ञान) सो केवल वासनामात्र होनेसे अदर्शन है, तिस (वासनामयकी) वृत्ति जहां है सो स्वप्न, तिस स्वप्नको अदर्शनवृत्ति कहते हैं। अरु तिन (दर्शनवृत्ति, अरु अदर्शनवृत्ति) दोनों विषे सुषुप्तिवत् तत्त्वके अग्रहणरूप निद्राको तुल्यहोने से। "यत्रसुप्तो" (जहां सोयाहुआ) इत्यादि विशेषणोंकी तिन (उक्तउभय वृत्तियों में) प्राप्तिकेहुये, तिनसे भिन्नकरके सुषुप्तिके ग्रहणार्थ "यत्र सुप्तो" (जहां सोयाहुआ) इत्यादिरूप मूलश्रुतिके वाक्यविषे "नकंचन" (किसी को भी नहीं) इत्यादिरूप विशेषण हैं, सो जाग्रत् अरु स्वप्न उभयस्थानों से पृथक् करके सुषुप्तिको ही ग्रहण करावता है] "यत्रसुप्तोनकञ्चनकामं कामयतेनकञ्चनस्वप्नं पश्यतितत्सुषुप्तम्" ; जहां सोयाहुआ किसी भी कामकी कामना करता नहीं, किसी भी स्वप्न को देखता नहीं, सो सुषुप्तिवाला है(अर्थात् दर्शन (ज्ञान) अरु अदर्शन (अज्ञान) दोनोंवृत्तियांवाली जाग्रत् अरु स्वप्न अवस्थाविषे सुषुप्तिवत् तत्त्वके अबोधरूपनिद्रा को तुल्य होनेकरके, सुषुप्तिके ग्रहणार्थ इसउपनिषद्के पंचममन्त्र (श्रुतिवाक्य) विषे "यत्रसुप्तो" (जहां सोयाहुआ) इत्यादि रूप विशेषणहैं। ["नकञ्चनस्वप्नंपश्यति" (किसी भी स्वप्नको देखता नहीं) इसही विशेषण करके दोनोंस्थानों (जाग्रत्स्वप्न)

से सुषुप्तिकेभेदका सम्भवहोनेसे. अन्य विशेषण जोहैं सो "अकिंचित्कर" निष्प्रयोजनहैं, यह आशंकाकरके कहतेहैं । यहां यह अर्थहै कि तत्त्वका अप्रबोधरूप जो निद्राहै तिसको जाग्रदादि तीनों अवस्थारूप स्थानोंविषे तुल्यहोनेसे [तीनों स्थानों को समता है, अतएव [जाग्रत् अरु स्वप्नसे विभाग करके सुषुप्तिके लखावनेके अर्थ अन्य " यत्रसुप्तो" इत्यादि विशेषण हैं] अथवा जाग्रदादि तीनों अवस्थारूप स्थानों विषे भी तत्त्वकी अबोधतारूप जो निद्राहै सो समानहै, एतदर्थ पूर्वके जाग्रत् स्वप्नरूप स्थानों से सुषुप्तिरूप स्थानका विभाग करते हैं, जिसस्थानका वा कालविषे सोया हुआ पुरुष किसीभी भोगकी इच्छा करतानहीं,अरु किसी भी स्वप्नको देखता नहीं । [एकही विशेषणको व्यावर्त्तकपनेका संभव होनेसे, दो विशेषणोंका क्या प्रयोजनहै, यहआशंका करके दोनों विशेषणों को विकल्पकरके व्यावर्त्तपनेका संभवहै, ताते व्यर्थ न होयके दोनोंही सप्रयोजनहैं, ऐसा मानके कहतेहैं,]जिस करके सुषुप्तिविषे पूर्वके जाग्रत् अरु स्वप्नरूपस्थानोंवत् विपरीत ग्रहणरूप स्वप्नका दर्शन वा कोईभी कामना विद्यमान नहीं है, एतदर्थ सो सुषुप्तकहिये सुषुप्तिहै।सो सुषुप्तिहै स्थान जिसप्रज्ञाका ऐसा सुषुप्तिस्थानवालाहै । अरु " सुषुप्तिस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक् चेतोमुखःप्राज्ञस्तृतीयःपादः" "सुषुप्तिस्थानवालाहै, एकीभूत है, प्रज्ञानघनही होताहै, आनन्दमयहै, आनन्दका भोक्ताहै, चेतोमुखहै, प्रज्ञा,तृतीयपादहै"अर्थात् उक्तप्रकार सुषुप्तिरूप स्थानवालाहै, अरु एकीभूतहै, [उक्तदोनों (किसी विषय वा भोगको इच्छता नहीं, अरु किसीभी स्वप्न को देखता नहीं, इन)विशेषणोंकरके विपरीत ग्रहणसे रहितपना अरु भोगके सम्बन्धसे रहितपना कहने को इच्छित है] अरु जाग्रत् [इस द्वैतसहित प्राज्ञ जीवका एकीभूतपनेरूप विशेषण कैसे संभवे, यह आशंका करके कहतेहैं] अरु स्वप्न दोनों अवस्थारूप स्थानों विषे विभागकोपाया जो मनका स्फुरणरूप द्वैत

कासमूह, सो जैसे अपुनरूप आत्मासे भिन्न है, तैसेही तिसरूप के अपरित्यागसे, रात्रिके अन्धकारकरके ग्रस्त दिशा वा दिवसवत् अविवेककरके युक्तहुआ अपने विस्तारसहित कारण (अव्याकृत) रूप होता है । तिस अवस्थाविषे तिस (अव्याकृत, कारण रूप) उपाधिवाला हुआ आत्माको एकीभूत कहते हैं । [यद्यपि सुषुप्ति अवस्थाविषे सर्व कार्योंका समूह कारणरूप होता है, तब तिसकारणरूप उपाधिवाला हुआ आत्मा 'एकीभूत, विशेषण वाला होताहै, तथापि कारणरूप उपाधिवाले आत्माका "प्रज्ञानघन" ‹प्रज्ञानघनहै› यह विशेषण अयुक्तहै क्योंकि (सर्व उपाधि सेरहित) निरुपाधिरूप आत्माकोही "प्रज्ञानघ न इत्यादि विशेषणका होना संभवेहै, यहआशंकाकरके कहते हैं] एतदर्थ, स्वप्न अरु जाग्रत्विषे मनकास्फुरणरूप जो प्रज्ञानहै सो सुषुप्तिविषे घनीभूतहुयेवत् होता है । सो इस (सुषुप्ति) अवस्थाको अविवेकरूप होनेसे घनप्रज्ञा "प्रज्ञानघन" इस विशेषणसे कहतेहैं । जैसेरात्रि विषे रात्रिके घन अन्धकारसे अविभागको पाया सर्व पदार्थ घनवत् होताहै (अर्थात् जाग्रत्, स्वप्न अवस्थामें मनका स्फुरणरूप जो घट पटादिकोंका नाना विभागयुक्त प्रज्ञानहै सो सुषुप्ति अवस्थामें जबकि बुद्धि तमोगुण अविवेककरके आवृतघन अंधकार रूप होतीहै तब जाग्रत्-स्वप्न अवस्थाका मनका स्फुरणरूप घट पटादि सर्व पदार्थ (जैसे रात्रिके घन अंधकारकरके अविभागको पायासता घट पटादि सर्व पदार्थ घनवत् होता है) तैसे आत्मा प्रज्ञान घनही होताहै) [यहां "एव" शब्दकेपर्याय "ही,, शब्दकरके अज्ञानसे इतर जाति सूचित नहीं है, यह अर्थ होताहै] अरु मनको विषय अरु विषयीके आकारसे स्फुरण होनेसे हुआ जो श्रम तज्जनित दुःखके अभावसे (उस अवस्थामें) आनन्दकी बाहुल्यतासे आनन्दमय है, आनन्दरूपही नहीं, क्योंकि (वो सुखानन्द) अविनाशी आनन्दसे रहित है ताते (अर्थात् सुषुप्ति का जो आनन्दहै सो मनकी स्फुरणाजन्य श्रमजनित दुःख के

अभावसेहैं, ताते वो अविनाशी आनन्द न होके नाशवान् होनेककरके स्वरूपानन्द नहीं किन्तु आनन्दप्रायः है । जैसे लोकविषे । गमनादि । श्रमसे रहितहोयके स्थितहुये पुरुषको सुखी आनन्दका भोक्ता कहते हैं । तैसेही सुषुप्तिविषे यह । प्रज्ञाविशिष्ट चैतन्य। पुरुष जिसकरके अत्यन्तश्रमरहित स्थितको । अपनेविषे । अनुभव करताहै, तिसकरके इसको आनन्दभुक् (आनन्दका भोक्ता)कहतेहैं "एषोऽस्य परमआनन्द इतिश्रुतेः" ‹यह इस पुरुषका परम आनन्दहै› इस श्रुतिके प्रमाणसे, अरु [प्राज्ञकाही "चेतोमुखः" यहजो अन्य विशेषण है अब तिसका व्याख्यान करते हैं] स्वप्न अरु जाग्रत्मय प्रतिबोधरूप चित्तके प्रतिद्वारभूत होनेसे चेतोमुख है, वा बोधरूप चित्तहै ' स्वप्नादिकोंके आगमनप्रति मुख कहिये द्वार जिसको, ऐसाहै एतदर्थ सो चेतोमुख है । अरु [इस सुषुप्तिके अभिमानीको भूत अरु भविष्यत् विषयों विषे ज्ञातापना है, तैसे सर्व वर्त्तमान विषयोंविषे भी ज्ञातापना है । एतदर्थ प्रकर्ष करके जो जानताहै सो प्रज्ञहै, अरु जो प्रज्ञहै सोई प्राज्ञनामसे कहाजाताहै] भूत अरु भविष्यत्का ज्ञातापना अरु सर्व विषयों का ज्ञातापना इसकोहीहै, एतदर्थ यह प्राज्ञ है । [सुषुप्तिविषे सर्व विशेषोंके ज्ञानके विलयहुये प्राज्ञको ज्ञातापना कैसे होवेगा, यह आशंकाकरके कहते हैं, यहां यह अर्थ है कि यद्यपि सुषुप्तिवाला पुरुष तिस अवस्थाविषे सर्व विशेषके ज्ञानसे रहित होवेहै,तथापि जाग्रत् अरु स्वप्न विषे उत्पन्नहुई जे सर्व विषयोंके ज्ञातापने रूपगति, ताते प्रकर्षकरके (सम्यक्प्रकार) सर्वको सर्वओरसे जानताहै, एतदर्थ सो प्राज्ञशब्दका वाच्य (प्राज्ञनामवाला नामी) होताहै,] सुषुप्तिको प्राप्तहुआ पुरुषभी स्वप्न अरु जाग्रत्विषे व्यतीतहुई सर्वविषयोंके ज्ञातापनेरूप पूर्वकीगति इसकरके । सुषुप्तिस्थ पुरुषको। प्राज्ञ कहते हैं । अथवा । तिस अवस्थाविषे। जिसकरके प्रज्ञप्तिमात्र । अर्थात् ज्ञेयके अभावसे ज्ञाता विशेषणरूप विशेषतासे रहित निर्विशेषको प्रज्ञप्तिमात्र, कहतेहैं । इसहीका रूप

एषसर्व्वेश्वरएषसर्व्वज्ञएषोऽन्तर्य्याम्येषयोनिः । स र्व्वस्यप्रभवाप्ययौहिभूतानाम् ६ ॥

है, तिसकरके यह प्राज्ञहै । ऐसा कहतेहैं । अरु अन्य दोनों अवस्थाविषे विशिष्टज्ञानभीहै,अरु सुषुप्तिविषे अन्यज्ञानरूप उपाधि से रहितज्ञानहै,सो ज्ञानइसप्रज्ञाका स्वरूपभूतहोनेसे'प्रज्ञप्ति'नाम से कहतेहैं, सो यह । प्रज्ञप्तिनामवाला । प्राज्ञ तृतीयपाद है ५॥

६ हे सौम्य!"एषसर्व्वेश्वर,, "यहसर्वेश्वरहै" अर्थात् यह प्राज्ञही स्वरूप अवस्थावाला हुआ सर्वका ईश्वरहै, अर्थात् अधिदैव सहित सर्व भेदोंके समूहका नियन्ताहै, इस हेतुसे अन्य नैयायिकादिकोंवत् अन्य जातिरूप नहीं "प्राणबन्धनꣳहि सौम्य मन" "हे सौम्य! प्राणरूप बन्धनवालाही मनहै" इस श्रुतिवाक्यसे । [अब प्राज्ञकेही अन्य विशेषणोंको साधतेहैं] यहहीसर्व अवस्था के भेदवालाहुआ सर्वका ज्ञाताहै ।अर्थात् जागृदवस्थाविषे स्थूल जगत्को अरु स्वप्नावस्थाविषे सूक्ष्म जगत्को अरु सुषुप्ति अवस्था विषे उभयके कारणमूला विद्याको,इसप्रकार सर्वको सम्यक्प्रकार जानताहै। एतदर्थ यह सर्वज्ञहै । [अरु अन्तर्यामीपने रूप अन्य विशेषणको स्पष्ट करतेहैं] तैसेही सर्वके अन्तर प्रवेशकरके सर्व भूतोंका नियामक होनेसे, यहही सर्वका अन्तर्यामीभी है । अरु जिसकरके यह उक्तप्रकारका भेदसहित सर्व जगत् इससेही उपजता है तिसहीकरके यह सर्वकी योनि (कारण वा उत्पत्ति स्थान)है। [जिसकरके जगत्विषे निमित्त अरु उपादान कारण का भेदनहीं । अर्थात् यहजगत् अभिन्ननिमित्त उपादान कारण है ।

अथ गौडपादाचार्य्यकृततदुपनिषदर्थाविष्करणरूपश्लोकावतरणम् ॥

अत्रैतेश्लोकाः ॥

बहिःप्रज्ञोविभुर्विश्वोह्यन्तःप्रज्ञस्तुतैजसः । घनप्रज्ञस्तथाप्राज्ञएकएवत्रिधास्मृतः १ ॥

अथ गौडपादाचार्य्यकृतकारिकायां प्रथम आगमाख्यप्रकरणभाषाभाष्यप्रारम्भः ॥

१ ॥ हे सौम्य! [श्रीगौडपादाचार्य्यने मांडूक्योपनिषद्को अध्ययन करके "अत्रैते श्लोकाः" ‹यहां ये श्लोकहैं› इसप्रकार तिस उपनिषद्के व्याख्यानरूप नव ९ श्लोकोंका अवतरण किया, तिसका अनुवादकरके भाष्यकार श्रीशङ्कराचार्य्य व्याख्यान करते हैं] यहां इस कथनकिये उपनिषद्के 'षट् ६, मन्त्रोंके अर्थविषे यह गौडपादाचार्यकृत 'नव ९, श्लोकहैं "बहिःप्रज्ञो विभुर्विश्वो ह्यन्त प्रज्ञस्तुतैजसः" ‹बहिः प्रज्ञविभुविश्वहै, अन्तःप्रज्ञतो तैजसहै› अर्थात् बाहिरकी । स्थूल । प्रज्ञावाला विभुरूप विश्वहै । अरु अन्तरकी । सूक्ष्म । प्रज्ञावाला तौ तैजसही है "घनप्रज्ञस्तथाप्राज्ञएकएव त्रिधा स्मृतः" ‹तैसे घनप्रज्ञ प्राज्ञहै, एकही तीनप्रकार से कहा हैं› अर्थात् । बाह्यकी प्रज्ञावाले अरु अन्तरकी प्रज्ञावाले वत् । घनीभूतहुई प्रज्ञावाला प्राज्ञहै, इसप्रकार एकही पुरुष को तीन प्रकारसे कहाहै । इसका यह अभिप्राय है कि [जब आत्मा के चेतनपनेवत् जाग्रदादि तीनोंस्थान स्वाभाविक होवें, तब चेतन पनेवत् सो तीनोंस्थान आत्मासे व्यभिचार पावनेयोग्य न होवेंगे, अरु तीनों स्थान क्रमकरके अरु अक्रमकरके आत्मासे व्यभिचारको पावते हैं । क्योंकि आत्माको तीनस्थानवालापना है तातें, एतदर्थ उनतीनों स्थानों से आत्माका अभिन्नपना

दक्षिणाक्षिमुखेविश्वोमनस्यन्तश्चतैजसः । आकाशे चहृदिप्राज्ञस्त्रिधादेहेव्यवस्थितः २ ॥

अरु चक्षुके उभय गोलकके अनुग्रहका कर्त्ता विराट् आत्मा भी तिससे अन्य नहीं, अरु व्यष्टिदेहका अभिमानी दक्षिण नेत्र विषे स्थित द्रष्टा, दोनोंचक्षु अरु करणोंका नियामक, अरु कार्य, कारण का स्वामी क्षेत्रज्ञहै, सो तो उन दोनों समष्टि देहके अभिमानी हिरण्यगर्भ अरु विराट् से इतर अंगीकार करते हैं। इस प्रकार होने से समष्टि अरु व्यष्टिपनेकरके स्थित जीवके भेदसे कथन करि जो एकता सो अयुक्त है, इसप्रकारका जो वादीका कथन सो बनेनहीं, क्योंकि कल्पितभेदके होतेभी वास्तवकरके अभेदके अंगीकार होने से। अरु " एको देवः सर्वभूतेषुगूढ इतिश्रुतेः " (एकदेव सर्व भूतों विषे गूढ़ है) इस श्रुति के प्रमाण से। अरु " क्षेत्रज्ञंचापिमां विद्धि सर्वक्षेत्रेषुभारत " " अविभक्तञ्च भूतेषु विभक्तमिवचस्थितमिति " (हे भारत! सर्वक्षेत्रों (शरीरों) विषे क्षेत्रज्ञ (क्षेत्र का जाननेवाला) भी मुझही को जान। अरु सर्व भूतोंविषे विभाग से रहित हुआ भी विभाग को प्राप्तहुयेवत् स्थितहै, इस गीतास्मृति के प्रमाण से। अरु सर्व करणोंविषे समानहुये भी दक्षिणनेत्र विषे ज्ञानकी स्पष्टता के देखने से तहां विश्वजीवका विशेषकरके कथनहै। अरु दक्षिण नेत्र विषे, [यद्यपि देहके देशके भेदविषे विश्वको अनुभव करते हैं, तथापि जाग्रत्‌विषे तैजसको कैसे अनुभव करते हैं, यह आशंकाकरके द्वितीयपादका व्याख्यानकरते हैं। यहां यह अर्थ है कि 'जैसे स्वप्नविषे जाग्रत्‌की वासनारूपसे प्रकटहुये पदार्थोंके समूह को द्रष्टा अनुभव करताहै, तैसेही जाग्रत्‌विषे दक्षिण नेत्रमें द्रष्टा होकर स्थितहुआ अश्रेष्ठ रूपको देखके पुनः नेत्रमूंदके, पूर्वदेखा जो रूप सो रूपके ज्ञानसे जन्य (उद्भूत) वासनारूपसे मनविषे प्रकटहोताहै, तिनको स्मरणकरताहुआ विश्वही तैजस होताहै।

अरु उक्तप्रकार होनेसे उन विश्व अरु तैजसके भेदकी शंका बने नहीं,] स्थित जो विश्वहै, सो कुरूपको देखके मूँदेहुये नेत्रवाला हुआ तिसही देखेहुये कुरूपको मनके भीतर स्मरणकरताहुआ स्वप्नवत् वासनारूपसे प्रकटहुये तिसही रूपको देखताहै । जैसे यहां जाग्रत्‌विषे देखताहै । तैसेही वहां स्वप्नविषेभी देखताहै । एतदर्थ "मनस्यन्तश्च तैजसः" (मनके अन्तर तो तैजसहै) अर्थात् मन के अन्तर तैजसभी विश्वहीहै । अरु "आकाशेचहृदिप्राज्ञः" (हृदयाकाशविषे प्राज्ञहै) अर्थात् [अब तृतीयपादका व्याख्यान करते हुये जाग्रत्‌विषेही सुषुप्तिको देखावतेहैं । यहां यह अर्थहै कि, जो विश्व तैजस भावको प्राप्तहुआहै सो पुनः स्मरणरूप व्यापारकी निवृत्तिके होनेसे हृदयाभ्यन्तर आकाशविषे स्थितहुआ प्राज्ञ होयके तिस प्राज्ञके लक्षणकरके युक्तहोता है । अरु रूप विषयके दर्शन अरु स्मरणको छोड़के श्रेष्ठ आकाश (अव्याकृत) विषे स्थितहुये तिस जीवको प्राज्ञसे अन्य अर्थपना नहीं, एतदर्थ सो 'एकीभूत, (विषय अरु विषयीके आकारसे रहित)है । अरु जिसकरके एकीभूत है इसहीकरके घनप्रज्ञ' अर्थात् विशेषज्ञान अरु अन्यरूपसे रहित, हुआ स्थित होताहै । इत्यर्थः] जो विश्व तैजसभावको प्राप्तहुआहै सो पुनः स्मरणरूप व्यापार की निवृत्तिकेहुये हृदयगत आकाश विषे स्थित हुआ प्राज्ञ एकीभूत अरु घनप्रज्ञही होता है, क्योंकि मनके व्यापार का अभाव है ताते । अरु दर्शन अरु स्मरणरूपही मनके स्फुरण (व्यापार) है, तिनका अभावहोने से हृदयान्तरही अव्याकृतमय प्राणरूपसे अवस्थानही जाग्रत्‌विषे सुषुप्तिहै "प्राणो ह्येवैतान् सर्व्वान् संवृङ्क्ते इति श्रुतेः" (प्राणही इनसबको अपने विषे संहार करता है, इस श्रुतिके प्रमाणसे । याते अव्याकृतमय प्राणरूपसे जाग्रत्‌गत सुषुप्तिविषे प्राज्ञका अवस्थान जो कहा सो युक्तहीहै । अरु [पूर्वही विश्व अरु विराट्‌की एकताको अनन्तर प्राज्ञ अरु अव्याकृत की एकताको लखाई हुई होनेसे, अरु तैजस औ हिरण्यगर्भके न कथन किये, अरु कहने योग्य अभेदको अबकहतेहैं।

तैजस जोहै सो हिरण्यगर्भरूपहै, क्योंकि लिंगशरीररूप मनविषे स्थितहै ताते, अर्थ यहहै जो, हिरण्यगर्भको समष्टि मनविषे स्थित होनेसे, अरु तैजसको व्यष्टि मनविषे स्थितहोनेसे, अरु उससमष्टि अरु व्यष्टिरूप मनको एकरूपहोने से, तिन व्यष्टि समष्टि विषे स्थित तैजस अरु हिरण्यगर्भकीभी एकता कथितहै] तैजस जोहै सो हिरण्यगर्भहै, क्योंकि "मनोमयोऽयं पुरुष, इत्यादि श्रुतिभ्यः" (यहपुरुष मनोमयहै, इत्यादि श्रुतिके प्रमाणकरके । मनजोहै सो लिंगरूपहै, अरु इस मनविषे स्थितहोनेसे तैजस अरु हिरण्यगर्भ की एकतायुक्तहै। ननु, [अब प्राणके पूर्वोक्त अव्याकृतपनेके अर्थ वादी आक्षेपकरताहै। यहां यहअर्थ है कि सुषुप्तिविषे प्राण जोहै सो नाम अरु रूपकरके व्याकृत (स्पष्ट) युक्तहै, क्योंकि तिसप्राण के व्यापारको सोयेहुये पुरुषकेपास बैठेहुये मनुष्योंकरके अतिशय स्पष्ट देखतेहैं ताते] सोयेहुये पुरुषकेपास बैठे हुये जनोंकरके प्राण केव्यापारको स्पष्टदेखनेसे सुषुप्तिविषे जो प्राणहै सो नामअरुरूप करकेव्याकृत कहिये स्पष्टहै। अरु श्रुतिविषे,करणजोहैं सो उसके प्राणरूपहोतेहैं, इसप्रकारकहाहै,एतदर्थभी तिसप्राणकी व्याकृतताही सिद्ध होतीहै। ताते (प्राणकेअर्थ तुमने कहीजो (अव्याकृतता सो कैसे संभवेगी, (इसप्रकार वादीकी शंकाहै (तहां कहतेहैं, यह (जो तूनेकहा सो (दोषनहीं, क्योंकि अव्याकृतको देश अरु कालकृत परिच्छेदका अभावहै ताते। अरु जैसे देशकालकृत परिच्छेदसे रहित अव्याकृत कहिये मायाहै, तैसेही सुषुप्तिवान् पुरुषकी दृष्टिसेप्राणभी देशकालकेकिये परिच्छेदसे रहितहै। एतदर्थ सुषुप्तिवान्के प्राणकी अरु अव्याकृतकी एकतायुक्त है। अरु जो कदापि परिच्छिन्न अभिमानवाले पुरुषोंके मध्य'यह मेराप्राण है, इसप्रकार प्राणके अभिमानकेहुये प्राणकी व्याकृतताही सिद्ध होतीहै। तथापि सुषुप्ति अवस्थाविषे पिंड (देह) करके परिच्छिन्न जो विशेषहै तिसको विषयकरनेवाला जो 'यह मेरा प्राणहै,इस प्रकारका अभिमानहै तिसका निरोध प्राणविषे होताहै, एतदर्थ

ण।दि शब्दका वाच्य कहने को इच्छित होय तब "नेतिनेति" ८कार्यरूप नहीं, अरु कारणरूप भी नहीं ७ अरु "यतोवाचो निवर्त्तन्ते" ८जिससे वाणियां निवृत्त होती हैं७ अरु "अन्यदेवविदितादथोऽविदितादधि" ८सो विदित (कार्य) से अन्यही है, अरु अविदित (कारण) से भी अन्यही है, इस श्रुतिके प्रमाण से ७ अरु तैसेही " नसत्तन्नासदुच्यत, इतिस्मृतेः " ८सो सत् नहीं अरु असत्भी नहीं ऐसा कहतेहैं, इस स्मृतिकेभी प्रमाणसे, ब्रह्मको शब्दकी विषयताका निषेध कियाहै, एतदर्थ भी विरोध होवेगा। किम्वा जब निर्बीजरूप होनेसेही ब्रह्म इस प्रकरणविषे कहने को इच्छितहोय तो सुषुप्ति अरु प्रलयमें सद्ब्रह्मविषे लीन अरु एकरूपहुये जीवोंके पुनः उत्थान का असंभव होवेगा। अथवा मोक्षदशा विषे सत्ब्रह्मको प्राप्तहुये मुक्त पुरुषों की पुनरावृत्तिका प्रसग होवेगा। अरु सर्वको अज्ञानरूप बीजके अभावकी तुल्यता, अरु ज्ञानाग्निसे दाह करने के योग्य बीजके अभावहुये ज्ञानकी व्यर्थताका प्रसंग होवेगा। एतदर्थ सर्व श्रुतियोंविषे बीज सहित ताके अंगीकार सेही सत्ब्रह्मको प्राणभावका कथन अरु कारणभावका कथन है। अरु इसही करके "अक्षरात्परतः परः" "सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः" "यतोवाचोनिवर्त्तन्ते" "नेतिनेतीत्यादिना" ८पररूप अक्षरसे परहै, बाह्य अन्तर सहित है, जिससे वाणियां निवृत्तहोती हैं, अरु नेतिनेति, इत्यादि अनेक श्रुतियों करके बीज सहित ताके निषेधसे ब्रह्मका कथनहै। अरु तिसही प्राज्ञशब्द के वाच्य (नामी) की तुरीयरूपतासे देहादिक संघात के सम्बन्धसे रहित तिस परमार्थ रूपा अबीज अवस्थाको यह श्रुति आगे भिन्न करेगी। अरु "नाकिञ्चिदवेदिषमिति" ८में कुछ भी नहीं जानताहुआ७ इसप्रकार सुषुप्तिसे उत्थानपाये पुरुष के स्मरणको देखते हैं ताते, जीवकी अवस्था भी अनुभव करतेही हैं "त्रिधादेहेव्यवस्थितः" ८तीनिप्रकारसे देहविषे स्थितहुआ है७ अर्थात् उक्तरीतिसे यहजीव उक्त तीनप्रकारकरके देह विषे स्थित

विश्वोहिस्थूलभुङ्नित्यंतैजसः प्रविविक्तभुक् । आनन्दभुक्तथा प्राज्ञस्त्रिधाभोगंनिबोधत ३ ॥

स्थूलंतर्पयतेविश्वंप्रविविक्तन्तुतैजसम् । आनन्दश्चतथाप्राज्ञंत्रिधातृप्तिंनिबोधत ४ ॥

हुआ । अर्थात् अभिमानको प्राप्त भया वा अभिमानी हुआ । है ऐसा कहते हैं २ ॥

३ ॥ हे सौम्य! [इसप्रकार विश्वादि तीनोंकी देहविषे तीनप्रकारसे स्थितिको प्रतिपादन करके, अब तिनकेही तीनप्रकारके भोगोंको सूचित करते हैं,] "विश्वोहिस्थूलभुङ्नित्यंतैजसःप्रविविक्तभुक्" (विश्व नित्यही स्थूलभुक् है, तैजस प्रविविक्तभुक् है) अर्थात् । जाग्रदवस्थाका अभिमानी । विश्व नित्यही स्थूल भोगोंका भोक्ताहै । अरु स्वप्नावस्थाका अभिमानी । तैजस । नित्यही । वासनामय सूक्ष्म भोगों का भोक्ताहै । अरु "आनन्दभुक्तथा प्राज्ञस्त्रिधाभोगं निबोधत" (तैसे प्राज्ञ आनन्दभुक् है, तीनप्रकारके भोगों को जानो) अर्थात् । जैसे जाग्रदवस्थाका अभिमानी विश्व स्थूल विषयोंका, अरु स्वप्नाभिमानी तैजस वासनामयसूक्ष्म भोगोंका, भोक्ताहै । तैसेही सुषुप्ति अवस्थाका अभिमानी प्राज्ञ आनन्दका भोक्ता है, इसरीति से तीनप्रकारके भोगोंकोजानो ३ ॥

४ ॥ हे सौम्य! [अब भोगोंसेहुई जो तृप्ति तिसको तीनप्रकार से विभाग करके देखावेहैं] "स्थूलं तर्पयते विश्वं प्रविविक्तन्तु तैजसम्" (स्थूलभोग विश्वको तृप्त करेहै, सूक्ष्मतो तैजस को तृप्तकरे है) अर्थात् शब्दादि स्थूल विषयभोग ... विश्वको तृप्तकरता है । अरु जाग्रत्की वासनामय सूक्ष्म ... स्वप्नाभिमानी तैजसको तृप्तकरता है । तैसेही "आनन्दश्चतथाप्राज्ञंत्रिधातृप्तिंनिबोधत" (तैसेआनन्द प्राज्ञको तृप्तकरै है, तीनप्रकारकी तृप्तिको जानो) अर्थात् । जैसे विश्वको स्थूलभोग

त्रिषुधामसुयद्भोज्यंभोक्तायश्चप्रकीर्त्तितः । तदैतदु भयंयस्तुसभुञ्जानोनलिप्यते ५ ॥

प्रभवः सर्व्वभावानांसतामितिविनिश्चयः । सर्व्वं जनयतिप्राणश्चेतोंऽशून् पुरुषःपृथक् ६ ॥

अरु तैजसको सूक्ष्म भोग तृप्तकरेहैं। तैसेही। सुषुप्तिके अभिमानी प्राज्ञको आनन्दरूप भोग तृप्तकरे है, ऐसे तीनप्रकारकी तृप्तिको जानो ४ ॥

५ हे सौम्य! अब [प्रसंग विषे प्राप्त भोक्ता अरु भोग्य, इन उभय पदार्थोंके ज्ञानके मध्यके फलको कहते हैं] "। त्रिषुधामसु यद्भोज्यं भोक्तायश्चप्रकीर्त्तितः "। (तीन धामविषे जो भोज्यहैं, अरु जो भोक्ताकहे हैं) अर्थात् जाग्रदादि तीनों स्थानों विषे जो स्थूल, सूक्ष्म, अरु आनन्द, नामवाला एकही तीनप्रकारकाहुआ भोज्यहै, अरु विश्व तैजस अरु प्राज्ञ, इन नामवाला " सोहमिति " (सोमैंहौं) इस एकताके अनुसंधानसे, अरु द्रष्टापन के अविशेषसे एकही भोक्ताकहा है। अरु "। तदैतदुभयंयस्तुसंभुञ्जानोनलिप्यते "। (जो इन दोनोंको जानता है सो भोक्ताहुआ भी लिप्त होतानहीं) अर्थात् जो भोज्य अरु भोक्तापनेकरके अनेक प्रकारके भेदवालेहुये इन । भोज्य अरु भोक्ता । दोनोंको जानता है सो भोक्ताहुआ भी लिप्त होता नहीं, क्योंकि सर्व भोग्य एकही भोक्ताका भोग्य (भोगने योग्य) है ताते। अरु जिसका जो विषय है सो तिस विषयकरके घटता नहीं, अरु वढ़ता भी नहीं जैसे अग्नि काष्ठादिरूप अपने विषयको दग्ध वा भस्म करके घटता नहीं, वा वढ़ता नहीं, तैसे ५ ॥

६ हे सौम्य! [पूर्व " एष योनिः" ८ यहयोनि (कारण) है,इस पष्ठमन्त्रविषे प्राज्ञको प्रपंचकाकारणपना प्रतिज्ञाकियाहै। तहांसत् कार्यके प्रतिप्राज्ञको कारणपना है, वा असत्कार्यके प्रति कारणपनाहै, । इस संशयकेहुये तिसका निर्द्धार करनेको अब आरम्भ

करते हैं,] " प्रभवःसर्वभावनांसतामितिविनिश्चयः । सर्वजनयतिप्राणश्चेतोंऽशून पुरुषःपृथक् " ६ विद्यमान सर्वपदार्थों की उत्पत्ति होती है, यह निश्चय है। प्राणरूप पुरुष सर्व चैतन्य के अंशोंको पृथक् २ उपजावताहै ; अर्थात् विद्यमान पदार्थों की उत्पत्तिका निश्चय है, याते प्राणरूप पुरुष सर्व जगत् को अरु चिदाभासरूप चैतन्यकेअंश (जीवों) को पृथक् २ उपजावताहै ॥ [ननु सत्रूप पदार्थों को सत्रूप होनेसेही तिनकी उत्पत्ति असम्भव है, क्योंकि सत्रूप ब्रह्मविषे अति प्रसङ्ग होताहै ताते, । यह आशङ्काकरके श्लोकके पूर्वार्द्धका व्याख्यान करते हैं। यहां यह अर्थहै कि अपने अधिष्ठानरूपसेही विद्यमान (सत्रूप) पदार्थोंकाही अविद्याकृत मिथ्या आरोपित स्वरूप है, तिसकरके उत्पत्तिरूप संसार होवे है] अपने अधिष्ठान रूपसे विद्यमान 'विश्व' तैजस, अरु प्राज्ञरूप भेद वाले सर्व पदार्थोंकी अविद्या रचित नामरूपमय मिथ्यास्वरूप से उत्पत्ति रूप संसारहोताहै। अरु जिसको वंध्यापुत्रकहतेहैं सो यथार्थ (सत्य) रूपसे वा मिथ्या रूपसेभी जन्मतानहीं, इसप्रकार आगेकथनकरेंगे। अरु जो असत्पदार्थकाही जन्महोय, तो व्यवहारकरने (जानने) जो ब्रह्म तिसके ग्रहणविषे द्वाररूप लिंगके अभावसे असत्पनेका प्रसंग होवेगा। अरु अविद्यारचित मिथ्या बीजसे उत्पन्नहुये रज्जुसर्पादिकोंका रज्जुआदिक [अधिष्ठान] रूप से सद्भाव देखाहै। अरु किसीभी पुरुषने अधिष्ठान (आश्रय) रहित रज्जुसर्प अरु मरुस्थल जलआदिक कहींभी देखेनहीं। [अर्थात् 'रज्जु' मरुस्थल, शुक्त्यादिरूप, आश्रयबिना 'सर्प' जल, रजतादिरूप भ्रान्ति होवे नहीं। 'अरुजैसे रज्जुविषे सर्पोत्पत्तिसे पूर्व रज्जुरूपसे सर्प सत्यही होता है। [अर्थात् जिस अधिष्ठानविषे जो अध्यस्त होता है सो अपने अधिष्ठानकी सत्यतासे सत्यरूप होताहै, क्योंकि अधिष्ठान कल्पित होतानहीं। तैसेही सर्व पदार्थोंका अपनी उत्पत्तिसे पूर्व प्राणमय बीजरूपसेही सद्भाव है। एतदर्थ "ब्रह्मेवेदं" " आत्मैवेदमग्र

विभूतिंप्रसवंन्त्वन्येमन्यन्तेसृष्टिचिन्तकाः, । स्वप्न मायास्वरूपेतिसृष्टिरन्यैर्विकल्पिता ७॥

आसीदित्यादि" ‹ ब्रह्महीयहहै, आत्माही यह आगेथा› इसप्रकार श्रुतियांभी कहतीहैं। इसप्रकार प्राण बीजरूप व्यवहारकी योग्यतासे सर्व अचेतन (जड़) रूप जगत्को उपजावताहै। अरु सूर्यके किरणोंवत् चैतन्यरूप पुरुषके चैतन्यरूप, अरु जलगत सूर्यके प्रतिबिम्बके समान 'प्राज्ञ, तैजस, अरु विश्व, भेदसे देव, मनुष्य, तिर्य्यकादिक, देहके भेदोंविषे भासमान जो चैतन्यके किरणोंवत् चेतनके अंशरूपजीवहैं, तिन विषयभावसे विलक्षण, अरुअग्निके विस्फुलिंगवत्, अरु जलगत सूर्यवत् चैतन्यके लक्षणसहित जीव रूप अन्यसर्व पदार्थोंको प्राण बीजरूप पुरुष उपजावताहै "यथोर्णनाभिःसृजते" "यथाग्नेर्विस्फुलिंगाः सहस्रशः" ‹जैसे ऊर्णनाभी (मकड़ीआदिक जन्तुविशेष) से तन्तु (जाला), अरु अग्निसे चिनगारे, होतेहैं, तैसे। इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे ६ ॥

हे सौम्य! [अब जड़ चेतनरूप जगत्की उत्पत्तिको प्रसंगविषे प्राप्तहुये अपने मतके विवेचनार्थ अन्यमतके कहनेका प्रारम्भकरते हैं] "विभूतिंप्रसवन्त्वन्ये मन्यन्तेसृष्टिचिन्तकाः" ‹अन्य सृष्टिके चिन्तनकरनेवाले विभूतिकी उत्पत्तिको मानतेहैं› अर्थात् सिद्धमतावलम्बियोंसे। अन्य जे सृष्टिकेचिन्तक (कहनेवाले) हैं, सो ईश्वरकी अपने ऐश्वर्यमय विस्ताररूप विभूतिकी उत्पत्तिको "सृष्टिरिति" ‹सृष्टि है, ऐसा› मानते हैं ॥ परमार्थके चिन्तनकरने वाले तत्त्ववेत्ताका तो सृष्टिविषे आदर है नहीं, क्योंकि "इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयत इत्यादि" ‹इन्द्र (परमात्मा) मायाकरके बहुरूप प्रतीतहोताहै› इत्यादि श्रुतिके प्रमाणसे। अरुजैसे माया का रचनेवाला मायावी पुरुषहै सो सूत्रके आकाश विषे फेकके पुनः सो मायावी पुरुष तिस सूत्रके आश्रय खड्गादि आयुधसहित युद्धार्थ चढ़के अदृश्यहुआ युद्धमें खंड खंडहोय पतनहुआ पुनः

भोगार्थंसृष्टिरित्यन्येक्रीडार्थमितिचापरे । देवस्यैष स्वभावोऽयमाप्तकामस्यकास्पृहा ९ ॥

क्योंकि ईश्वर सत्यसंकल्पहै ताते,। जैसे घटादिरूप जो सृष्टिहै सो [कुलालका] संकल्पमात्रही है, संकल्पसे इतर घटादि कुछ भी नहीं ॥ अरु "[कालात्प्रसूतिंभूतानांमन्यन्तेकालचिन्तकाः" (कालके चिन्तन करनेवाले कालकरकेही भूतोंकी उत्पत्ति मानते हैं) अर्थात् कोई एकजे कालके चिन्तन करनेवाले ज्योतिपशास्त्रके वेत्ता हैं सो कालसेही जगदुत्पत्तिको मानते हैं।[अरु कहते हैं कि जब सृष्टिकी उत्पत्तिका काल आवताहै तब उत्पत्ति, अरु प्रलयका काल आवता है तब प्रलय होताहै] ८ ॥

९ हे सौम्य! "भोगार्थसृष्टिरित्यन्येक्रीडार्थमितिचापरे" (अन्य भोगार्थ सृष्टिहै ऐसे, अरु अन्य क्रीड़ार्थ है ऐसे, मानते हैं) अर्थात् उक्त वादियोंसे अन्यवादी कहते हैं कि यह सृष्टि भोगके अर्थहै। अरु उनसे अन्यवादी कहते हैं कि यह सृष्टि क्रीड़ाके अर्थ है [अन्यार्थनहीं] अब सिद्धान्त को कहतेहैं । "देवस्यैपस्वभावोऽयमाप्तकामस्यकास्पृहा" (यहदेवका स्वभावहे, पूर्णकामको कौनइच्छा है) अर्थात् यहसृष्टि [स्वयंप्रकाश] परमेश्वरका स्वभावहे, उस पूर्णकामदेवको कौन इच्छाहै किन्तु कोईभी नहीं [अर्थात् यावत् कार्यकारणात्मक स्थूल सूक्ष्मनामरूप सृष्टिहै सो सर्व उसपरिपूर्ण देवके आश्रय उसहीविपे उससे अनन्यहै तब इच्छा किसकी होय, किन्तु किसीकीभी नहीं। अरु इच्छा जो होतीहै सो अपनेसे अन्यअप्राप्तवस्तुविपे होतीहै, सो उस एक परमात्मदेवसे अन्य अरु अप्राप्त वस्तु कुछभी नहीं।] यहां स्वभाव जो कहा, सो क्याहै । इसप्रकार पूछेहुये स्वाभाविक अपरोक्ष जो मायाशब्दका अर्थ, तिसकानाम स्वभावहे, इसप्रकार कहतेहैं] 'यहां स्वभाव पक्षका आश्रयकरके उक्त दोनों पक्षोंविपे अथवा सर्व पक्षोंविपे दूपणकहा, जैसे [पूर्व आठवें श्लोकविपे जो "कालात्प्रसूतिंभूतानिमन्यन्ते" (काल से

भूतोंकी उत्पत्ति मानते हैं? इसप्रकार कहाहै, तहां कहतेहैं । यहां यह अर्थहै कि जैसे अधिष्ठानभूत रज्जुआदिकोंके स्वभावरूप अपने अज्ञानसेही सर्पादिकोंका आभासपनाहै, तैसेही परमात्माको अपनीमायाशक्तिके वशते आकाशादिकोंका आभासपनाहै "एतस्मात् आत्मनःआकाशःसंभूतः" ‹आत्मासे आकाश होताहुआ› इसश्रुतिकेप्रमाणसे। परन्तु कालको भूतोंका कारणपना नहीं,क्योंकि तिस विषे श्रुतिके प्रमाणकाअभावहै] रज्जुआदिकोंको अविद्यारूप स्वभावविना सर्पादिक आकारके भासने विषे कारणपना कहनेको अशक्यहै । तैसेहीपरमात्माको मायारूप स्वभावविना आकाशादि रूपाकारसे भासनेविषे कारणपना कहनेको शक्य नहीं ९ ॥

उपनिषदर्थ ।

हे सौम्य! [ॐकारके तीनपादोंकी व्याख्याकरनेसे, व्याख्या करनेके योग्यहोनेसे क्रमके वशते प्राप्तहुये चतुर्थपादकी व्याख्या करनेको आग्रिम ग्रन्थकी प्रवृत्तिहै] अब क्रमसे प्राप्तहुआ जो चतुर्थपाद सो कहने (व्याख्याकरने) को योग्यहै । एतदर्थ यह उपनिषद् कहतेहैं "[नान्तःप्रज्ञं, नबहिःप्रज्ञं, नोभयतःप्रज्ञं, न प्रज्ञानघनं, नप्रज्ञं, नाप्रज्ञम्]" ‹अन्तःप्रज्ञ नहीं, बहिःप्रज्ञ नहीं, उभयतः प्रज्ञ नहीं, प्रज्ञानघन नहीं, प्रज्ञ नहीं, अप्रज्ञ नहीं › अर्थात् [जो निर्विशेष निरुपाधि सर्वकासाक्षी प्रत्यगात्मा है सो] अन्तःप्रज्ञ कहिये भीतरकी प्रज्ञावाला [तैजस] सोभी नहीं । अरु बहिःप्रज्ञ कहियेबाहरकीप्रज्ञावाला [विश्व]सोभीनहीं । अरु उभयतःप्रज्ञ कहिये उभयओरके प्रज्ञावाला, सोभीनहीं। अरुप्रज्ञानघन [कहिये, अन्तर बाह्यके भेद रहित घनप्रज्ञावाला प्राज्ञ] सोभी नहीं। अरु प्रज्ञभी नहीं ॥ अरु "[अदृष्टमव्यवहार्य्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्म्यप्रत्ययसारं प्रपंचोपशमंशान्तंशिवमद्वैतंचतुर्थं मन्यन्ते सआत्मा सविज्ञेयः]" ‹अदृष्टहै, अव्यवहार है, अग्राह्य है, अलक्षणहै, अचिन्त्य है, अव्यपदेश्यहै, एकताके ज्ञानकासार है प्रपंचके उपशमवालाहै, शान्तहै, शिवहै, अद्वैतहै, चतुर्थ है

उपनिषद् ॥

नान्तः प्रज्ञंनबहिःप्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञंनप्रज्ञानघनं न प्रज्ञंनाप्रज्ञम् । अदृष्टमव्यवहार्य्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्म्यप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमंशान्तं शिवमद्वैतंचतुर्थंमन्यन्तेसआत्मासविज्ञेयः ७ ॥

'ऐसा, मानतेहैं, सो आत्माहै, सो जाननेके योग्यहै;अर्थात् निरुपाधि निर्विशेष सर्वाधिष्ठान सर्वका साक्षीशुद्ध आत्मा 'नेत्रका वा ज्ञानका विषय न होनेसे 'अदृष्टहै । अरु ज्ञानेन्द्रियोंका विषय न होनेसे 'अव्यवहार्य है, । अरु कर्मेन्द्रियोंका अविषय होनेसे वा उसको कर्मोंका फलरूप न होनेसे वो 'अग्राह्यहै,। अरु प्रतियोगिता वा सापेक्षताके अभावसे वो 'अलक्षणहै, । अरु अन्तःकरणका अविषयहोनेसे वो 'अचिन्त्यहै, । अरु वाणीवा शब्दादि प्रमाणोंका अविषयहोनेसे वो उपदेशकरनेके योग्य नहीं,ताते सो 'अव्यपदेश्यहै, । तथाच " नविद्मोनविजानीमोयथैतदनुशिष्यात् ,, इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे ॥ इसप्रकार निषेधमुखकहके अब विधिमुख कहते हैं । वो आत्मा एकताके प्रत्यय ज्ञानका सारहै " प्रतिबोध विदितं" अरु उसके सम्यक् ज्ञानसे समूल द्वैतरूप प्रपंच (जगत्) का अत्यन्ताभाव होताहै ताते वो प्रपंचके उपशम वालाहै । अरु अन्तःकरणके मनआदिकोंकेसंकल्पादिकोंकृत क्षोभसे रहित परमशान्त है । अरु परमानन्दमय होनेसे शिव है । अरु सर्वत्रपूर्ण अखंड अनन्त निराश्रय होनेसे अद्वैत है । अर्थात् 'अदृष्ट, अव्यवहार, अग्राह्य, अलक्षण, अचिन्त्य, उपदेशके अयोग्य, । एकताके ज्ञानकासार,प्रपंचके उपशमवाला, शान्त, शिव, अद्वैत, । इसप्रकारका जो पदार्थ है तिसको चतुर्थपाद करके मानते हैं । अर्थात् जिसको उक्तप्रकार निषेधमुखसे कहा सो किसीभी संख्यामे बद्धनहीं, परन्तु उसको जो चतुर्थपाद करके

कहाहै सो पूर्वोक्त तीनपादोंकी अपेक्षासे है, नतु वास्तव करके उस निर्विशेष तत्त्व विषे संख्या अरु पादपना कोई भी नहीं। अरु सोई एक निर्विशेष चिन्मात्रतत्त्व जाग्रदादि स्थानरूप उपाधि रहित निरुपाधि परमशुद्ध सर्वका प्रत्यगात्मा है, अरु सोई मुमुक्षु जिज्ञासुजनों करके जानने योग्यहै ॥ हे प्रियदर्शन! यहां "नान्तः प्रज्ञं" (अन्तःप्रज्ञनहीं) इत्यादि पदोंसे यह श्रुति 'सर्व शब्दोंकी प्रवृत्तिके निमित्तसे शून्य (रहित) होनेसे उस आत्माको शब्दकी विषयताहोगी (अर्थात् तत्त्वमें शब्दकीप्रवृत्ति का निमित्त विशेषताहै, निर्विशेष तत्त्वमें निमित्तके अभाव से शब्दकी प्रवृत्तिबने नहीं, अरु उस निर्विशेषको विधिमुख कहनेसे शब्दकी विषयता होतीहै ताते (,इस (अन्तः प्रज्ञतादि रूप (विशेषके निषेधसेही (निर्विशेष (तुरीयपादको कहनेकी इच्छा करती है ॥ ननु, तब सो तुरीय शून्यही होवेगा, (इसप्रकारके जो वादीका (कथन सो बने नहीं, क्योंकि मिथ्या विकल्पको शब्दप्रवृत्तिके निमित्तसे रहितपनेका असंभवहै ताते, अरु जिस करके जो 'रजत, सर्प, पुरुष, अरु मृगतृष्णाकाजल, इत्यादि विकल्प हैं, सो 'सीपि, रज्जु, स्थाणु अरु ऊपरभूमि, इत्यादिकोंसे इतर होनेसे अवस्तुपनेके आश्रयहुये कल्पना करने को शक्य नहीं (अर्थात् रज्जु शुक्तिकादिकों विषे जो सर्प रजतादि विकल्पकल्पनाहै सो रज्जुशुक्ति आदिकोंकेही आश्रय है क्योंकि निराश्रय कल्पना होती नहीं, अरु जो रज्जु शुक्ति आदिकों से भिन्न सर्प रजतादिकोंका विकल्प करना इच्छिये तो उन कल्पित होनहार सर्प रजतादिकों को अवस्तुपनेके आश्रयहोनेसे सो कल्पनाकरनेको शक्य होतेनहीं। अरु निराश्रय विकल्पकल्पना होवे नहीं, यह अनिवार्य सिद्धान्तहै (एतदर्थ तिन विश्वतैजसादिक,वा विधिमुख निषेधमुख, वा अस्तिनास्ति, वा शून्यअशून्य, आदिक विकल्पों (का अधिष्ठानरूप तुरीय शून्यसे विलक्षण सत्रूपकरके माननाचाहिये (क्योंकि 'शून्यहै, इसविकल्पकल्पना

का आश्रय अधिष्ठान शून्य से विलक्षण किसी भी तत्त्व को सत् है, ऐसा न मानने से अवस्तुपने के आश्रयतेरा शून्य है, यह विकल्प होनेको अशक्य है। ननु, जब इसप्रकार है, तब प्राणादिक सर्व विकल्पों का आश्रय होने से तुरीया को 'जलादिकों का आश्रय घटादिकोंवत्, शब्दकी वाच्यता। नामका नामीपना वा शब्दकी विषयता। होगी, निषेधों से प्रतीत करावने की योग्यता न होगी। अर्थात् निर्विशेष तुरीया को प्राणादि विकल्पों का आश्रय अधिष्ठान होने से शब्द की वाच्यता प्राप्त होगी, अरु तैसे हुये "नान्तःप्रज्ञं" इत्यादि निषेध मुख वाक्यों से जो उसकी निर्विशेषता से प्रतीति है तिस की योग्यता न होगी। इस प्रकारका जो वादीका कथन। सो कथन बने नहीं, क्योंकि 'शुक्ति आदिकों विषे रजतादिवत्, प्राणादि विकल्पको। कल्पित होनेसे। असत्यपना है ताते। अरु असत्यको शब्द की प्रवृत्ति के निमित्तवाला अवस्तुरूप होने से। वो केवल वाचारंभण (कहने) मात्रही हैं, एतदर्थ उन का किया निर्विशेष तुरीयाविषे वाचकपना भी वाचारंभण मात्रही है। सत् अरु असत्वस्तुका सम्बन्ध है नहीं। अरु आत्माको स्वरूपसे गो आदिकोंवत् अन्य प्रत्यक्षादि प्रमाणों की विषयताभी नहीं। अरु पाचकादिकोंवत् क्रियावान्पना भी नहीं। अरु नील पीत घटादिकोंवत् गुणवान्पना भी नहीं। क्योंकि निराकार है ताते। [। विकल्प। क्या कल्पित अधिष्ठानपना हेतु किया है, वा वास्तविक अधिष्ठानपना हेतुकिया है, तहां जो प्रथमपक्ष। कहो कि 'कल्पित अधिष्ठानपना हेतु किया है, तो सो कहना। बने नहीं। क्योंकि तिस कल्पित अधिष्ठानपने को वास्तविक वाच्यताका असाधकपना है ताते, अरु वास्तविक वाच्यतापने विषे क्रमका विरोध है नहीं। अरु जो, द्वितीयपक्ष। कहो कि 'वास्तविक अधिष्ठानपना हेतु किया है, तो सो भी। बने नहीं। क्योंकि, शुक्ति आदिकोंविषे कल्पित रजतादिकों को अवस्तु होने पनेवत्, तुरी-

याविषे भी कल्पित प्राणादिकोंको अवस्तुरूप होने से, तिसप्रतियोगीवाले अधिष्ठानपने को वास्तविकता की अयोग्यता है ताते [अर्थात् वास्तविक अधिष्ठान तुरीया विषे अध्यस्त (कल्पित) प्राणादिकों को अवस्तुपना होने से उस तुरीयाका अधिष्ठानपना अवस्तुपने का प्रतियोगी होनेसे वास्तविकपने के योग्यनहीं । इसप्रकार सिद्धांति दूषण कहता है,] एतदर्थ आत्मा [शब्दि आदिक प्रमाणों का अविषय होने से] शब्द से कहने के योग्य नहीं शंका । ननु, तब आत्मा को शशश्रृंगादिकों के तुल्यहोनेसे असत्पना प्राप्तहोवेगा, । समाधान । यह कहना बनेनहीं, क्योंकि शुक्तिके ज्ञानहुये रजतकी तृष्णाकी निवृत्ति होनेवत् तुरीया के सर्वात्मभाव से ज्ञानहुये, तिसज्ञान को अनात्मवस्तुकी तृष्णा की निवृत्ति का हेतुहोने से, अरु तुरीयाके स्वात्मभावसे ज्ञानहुये [कारण [अविद्या अरु [तिसकाकार्य] तृष्णादिकदोष तिनका संभव होना हैनहीं । अरु तुरीया के आत्मभावके ज्ञानविषे हेतुका अभाव भी नहीं, क्योंकि " तत्त्वमसि " ८ सो तूहै ? " तत्सत्यम् " " अयमात्माब्रह्म " " सआत्मायत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म ॥ "साबाह्याभ्यन्तरोह्यजः" "आत्मैवेदंसर्वं" ८ सो सत्यहै । यह आत्मा ब्रह्महै । सो आत्मा है जो साक्षात् परोक्षब्रह्म है । बाहर अन्तर सहित अजन्माहै । आत्माही यह सर्व है ? इत्यादि श्रुतिवाक्यों से सर्व उपनिषदों को तिसही प्रयोजनार्थ होनेकरके परिसमाप्त होनेसे । सो [इसप्रकार निषेध मुखसेही तुरीयाका प्रतिपादन है, विधि मुखसे नहीं, इसप्रकार प्रतिपादन करके, अब कहे हुये अर्थ के अनुवाद पूर्वक अग्रिम कहने के अर्थ को प्रकटकरते हैं] यह आत्मा परमार्थ रूपसे चारपदों वाला है इसप्रकार पूर्व द्वितीयमंत्र करके कहाथा, तिसके अपरमार्थरूप अविद्यारचित रज्जुसर्पादिकों के तुल्य बीज अरु अंकुरस्थानी तीनपादोंका लक्षण पूर्वकहा। अब इस मन्त्र विषे अविजात्मक परमार्थ स्वरूप रज्जुस्थानीय चतुर्थपादको "नान्तःप्रज्ञं" ८ अन्तःप्रज्ञनहीं ? इत्यादिरूप वाक्यसे

सर्पस्थानीय [जाग्रदादि] तीनोंस्थानोंके निराकरणसे कहतेहैं। शंका [ननु, आत्मा के चारपाद करके युक्तपनेकी प्रतिज्ञा करके; पादत्रयके कथनसेंही चतुर्थ पादकी अन्तःप्रज्ञ आदिक तीनपादोंसे पृथक् सिद्धिसे " नान्तःप्रज्ञं " < अन्त प्रज्ञनहीं > इत्यादि निषेध अनर्थक (व्यर्थ) होवेगा, इसप्रकार जो वादीका कथन] सो कथन बनेनहीं; क्योंकि सर्पादिरूप विकल्पके निषेधसेंही रज्जुके स्वरूप के निश्चयवत्; तीन अवस्थावाले आत्माकोही तुरीयरूप होनेसे "तत्त्वमसि" < सो तूहै > इसवाक्यवत्। अरु [ननु, जाग्रदादि तीन अवस्था करके विशिष्ट आत्माको तुरीयत्व नहीं, क्योंकि तुरीयको विशिष्ट से विलक्षण होने करके [उस विशिष्टसे अत्यन्त पृथक्ताहै एतदर्थ उस विशिष्ट आत्माका तुरीयपना अग्रिम कहनेकेअर्थकरके कैसे प्रतिपादन करतेहो, इसप्रकारकी जहां वादीकी शंकाहै तहां कहते हैं। यहां यह अर्थहै कि, तुरीयाकी प्रातिभासिकसे विलक्षणताके हुये भी विशिष्ट अरु उपलक्षित [अर्थात् विशेषण अरु उपलक्षणवाले] आत्माकी अत्यन्त विलक्षणता न होनेसे, तुरीया का विशिष्टसे वास्तवकरके भिन्नपनाहै नहीं, अरु अन्यथा अत्यन्त भिन्न अरु परस्परके सम्बन्ध रहित, होनेसे; इन [विशिष्ट अरु अविशिष्ट] दोनोंके उपाय (साधन) अरु उपेय (साध्य) भावकी अयोग्यतासे, तुरीयके ज्ञानविषे विशिष्ट आत्मा को द्वार (कारण) होनेके अभावहोने से, अरु तिस (तुरीया) के ज्ञानके द्वाररूप अन्यवस्तु के अदर्शनहोने से, तुरीयाका अनिश्चयही होवेगा,] जब तीन अवस्थावाले आत्मासे विलक्षण अन्य तुरीया होय, तब तिसके [अस्तित्वके] निश्चय होने के द्वारके अभावसे शास्त्रका उपदेश अनर्थक (व्यर्थ) होवेगा, अथवा शून्यता प्राप्तहोवेगी। जैसे [यहां यह अर्थहै कि विशिष्टकेही निश्चय से तुरीयाका अनिश्चय होनेसे, निश्चित हुये जे विश्वादिक विशिष्ट आत्मा तिनका उलटा उदय होवेगा, अरु वास्तवसे अन्य (तुरीया) को अनिश्चितहोनेसे निरात्मकताकीही बुद्धि प्राप्तहोवेगी,] अभिप्राय

रज्जु [अध्यस्त] सर्पादिकों से भेदको पावनी है, तैसेही जब तीनोंस्थानों विषेभी एकही आत्मा अन्तःप्रज्ञत्वादिकोंसे भेदको प्राप्तहोताहै, तब अन्तःप्रज्ञत्वादिपने के निषेधके ज्ञानरूप प्रमाण के सम कालही आत्माविषे अनर्थरूप प्रपंचकी निवृत्तिरूप फल परिसमाप्तहोवे है । जैसे [सम्बन्धीके परोक्षज्ञानके हेतु शब्दको असम्बन्धीके अपरोक्षज्ञानकी हेतुताका असंभव होनेसे, तुरीयाके ज्ञानविषे अन्य प्रमाण मानना चाहिये, इस पक्षके] कहने वाले के] प्रति कहते हैं। यहां यह अर्थहै कि तुरीयाके साक्षात्कारविषे शब्दसे इतर प्रमाण खोजने के योग्य नहीं, क्योंकि शब्दको विषय के अनुसार होनेसे प्रमाणका हेतुपना है ताते, अरु तुरीय रूप विषय को सम्बन्धरहित अपरोक्ष रूपताहै ताते,] रज्जु अरु सर्प के विवेकहोनेके समकालमें (साथही) रज्जु विषे सर्पकी निवृत्ति रूप फलके हुये, रज्जुके ज्ञानका अन्य फल वा अन्य प्रमाण वा अन्य साधन, अन्वेषण करनेको योग्य नहीं । तैसेही तुरीया के ज्ञानहुये [तिसज्ञानसे] अन्य प्रमाण वा साधन अन्वेषणकरना योग्य नहीं । पुनः [विषयगत प्रकटपना प्रमाणका फलहै, अध्यस्त (कल्पित) की निवृत्ति प्रमाणका फलनहीं, यह आशंका करके कहते हैं, यहां यह भावहै कि अपने विषयके अज्ञान निवारणार्थ प्रवृत्ति हुई जो प्रमाणकी क्रिया सो अपने विषयविषे स्वभावरूप अतिशयताको जब धारण करे है, तब निवारणरूप अर्थ की तुल्यतासे] छेदनरूप क्रिया भी छेदनकरने योग्य काष्ठ के संयोगके निवारणसे पृथक् अतिशयको धारण करेगी] अरु संयोग के विनाशसे इतर विभागविषे अनुभव है नहीं । अरु प्रकटता के प्रकाशपनेके हुये ज्ञानवत् [जैसे शब्दके अर्थविषे ज्ञानस्थित होवे है तैसे] अर्थ विषे स्थितपना न होगा । अरु अप्रकाशपनेके हुये अर्थविषे स्थितपनाहोवेगा, तिस हेतुसे अर्थकेबिना अर्थ नहीं है,] जिनके मतविषे अन्धकारके अभावकरने विना घटादिकों के ज्ञान विषे प्रमाण प्रवर्त्त होताहै, तिनके मतमें छेदनकरने योग्य वृक्षके

अवयवके सम्बन्धके वियोग किया विनाहीं दोनों अवयवों में से एक अवयव बिषेभी छेदनरूपकिया प्रवर्त्तहोतीहै,इसप्रकारकहना होवेगा । [अज्ञानका निवर्त्तक ही प्रमाणहै, इसपक्ष में विषय के स्फुरणविषे कारणके अभावसे विषयका स्फुरण न होगा, यह आशङ्काकरके कहतेहैं। यहांयह अर्थहै कि अन्धकारसे आवृतहुआ घट व्यवहारके योग्य स्थित होताहै, तिसको अन्धकार से बाह्य करके तिसकी व्यवहारकी योग्यताके सम्पादनविषे प्रत्यक्षादिक प्रमाण प्रवृत्त होतेहैं, सो प्रमाण जवग्रहण करनेको अनिच्छित, अरु प्रमाणज्ञान(प्रमाणजन्यज्ञान) के अविषय अन्धकारकीनिवृत्ति रूप फलविषे स्थितहोवे, तब घटका स्फुरणरूप प्रयोजनवाला प्रमाणका फल होताहै । जैसे छेदनरूप जो क्रिया है सो छेदन करनेयोग्य वृक्षके दोनों अवयवोंके परस्परके संयोगके निवारण विषे प्रवृत्तहुई उस छेदनकरने योग्य वृक्षके दोनों (शाखारूप) अवयवोंके द्विधाभाव (होने) रूप फलविषे स्थित होतीहै, परन्तु वृक्षके दोनों अवयवोंमें से एक भी अवयवविषे भी छेदनरूप क्रिया प्रवृत्ति होती नहीं। तैसेहीयहांभी अन्धकारकी निवृत्तिविषे प्रमाण निवृत्ति होवे है, परन्तु घटका स्फुरणतो तिसका फलहै। अरु तिस प्रमाणको स्थिरपना नहीं, क्योंकि प्रकाशक प्रमाताके व्यापार को अस्थिरताहै ताते,] अरुजब पुनःछेदनकरने योग्य वृक्षके अवयवके दोभाग करने (वा होने) रूप फलविषे अन्तविषे छेदनरूप किया (कि जिससे दोभाग होताहै।तिस अन्तवाली क्रियावत् घट अरु अन्धकारके विवेक के करने विषे प्रवृत्तहुआ जो प्रमाणसो तो ग्रहण करने को अनिच्छित, अरु अविषयरूप अन्धकारकी निवृत्तिरूप फलविषे अन्तवाला होताहै, तब अन्तरायवाले (तमच्छिन्न) घटका ज्ञानहै नहीं, इससे सो प्रमाणका फलनहीं। तैसे [किंवा घटादिक जड़ोंको संवित् (चैतन्य) की अपेक्षावाला होनेसे, तिसविषे संवित् को प्रमाणकी फलरूपता होनेसे भी एक संवित्रूप अजड़ आत्मा विषे मनमें आरोपित धर्मकी निवर्त्तकताके विना संवित्की जनकता

रूपव्यापार संभवे नहीं,इसप्रकार कहतेहैं,यहांयह अर्थहैकि तुरीय रूप आत्माविषे प्रमाणको संवेदनका जननरूप व्यापार कल्पते नहीं, क्योंकि, यह तुरीय संवित् (चैतन्य) रूपहै ताते, अरु आरोपितकी निवृत्तिके विना प्रमाणजन्य फलरूप संवित्की अपेक्षा का अभावहै ताते,] आत्माविषे आरोपित अन्तःप्रज्ञपने आदिकों के विवेकके करनेविषे प्रवृत्तहुये निषेधके ज्ञानरूप प्रमाणकाग्रहण करनेको अनिच्छित्त जे अन्तःप्रज्ञपनादिक तिसकी निवृत्ति के विना तुरीयविषे व्यापारका सम्भव नहीं, क्योंकि अन्तःप्रज्ञपने आदिकोंकी निवृत्तिके समकालही प्रमातापने आदिक भेदकी निवृत्तिहै ताते, इसप्रकार अग्रिम कहेंगे । तथाच "ज्ञाते द्वैतं न विद्यतइति " < जानेहुये द्वैतविद्यमान है नहीं > इसवाक्यप्रमाण से ॥ [किंवा ज्ञानके आधीन द्वैतकी निवृत्ति करके युक्त क्षणविना अन्यक्षणविषे ज्ञान स्थितहोनेको समर्थ नहीं । अरु अस्थिरहुआ ज्ञान व्यापारार्थ परिपूर्ण नहीं, अरु तेसे हुये ज्ञानका द्वैतकी निवृत्तिसे भिन्न आत्माविषे व्यापारनहीं, इसप्रकार कहतेहैं,] ॥ ज्ञानको भेदकी निवृत्तिरूप फलविना अन्यक्षणविषे अस्थिरताके हुये, अरु [ननु, ज्ञान जोहै सो द्वैतका निवर्त्तकहुआ हुआभी अपने स्वरूपको निवर्त्तकरता नहीं, क्योंकि निवर्त्त होनेकी योग्यताका अरु निवर्त्तकतारूप धर्मका एकही धर्मीविषे होनेकाविरोध है ताते । याते यावत्पर्यन्त ज्ञानका निवर्त्तक अन्य न आवेगा तावत् ज्ञान स्थिर होवेगा, यह आशङ्का के हुये समाधान कहते हैं । यहां यहभावहै कि, द्वैतके निवर्त्तक ज्ञानको द्वैतकी निवृत्तिके अनन्तर भी अपने अन्य निवर्त्तक की अपेक्षा करके स्थितहुये उन उन ज्ञानको अन्य अन्य निवर्त्तक की अपेक्षावाला होनेसे प्रथमज्ञानकोभी निवर्त्तकपनेकी असिद्धी होवेगी] ज्ञानके स्थिर हुये अनवस्था प्रसंग होनेसे द्वैतकी अनिवृत्ति होवेगी । [यहां यह अर्थ है कि ज्ञानको अपने निवर्त्तकपनेका असम्भव नहीं, क्योंकि (ज्ञानको) अपने अरु दूसरेके विरोधी बहुत पदार्थों की प्रतीति

है ताते] एतदर्थ निषेधके ज्ञानरूप प्रमाणके व्यापारके समकाल में ही आत्माविषे आरोपित जे अन्तःप्रज्ञतापनादिक अनर्थ तिनकी निवृत्ति होती है, इसप्रकार सिद्धहुआ ॥ अब तात्पर्य सहित मूलै श्रुतिका अर्थ कहते हैं ॥ यहां " नान्तःप्रज्ञमिति " ‹अन्तःप्रज्ञ नहीं› इसपद से तैजसका निषेध किया, " नबहिःप्रज्ञमिति " ‹बहिः प्रज्ञनहीं› इसपदसे विश्वका निषेध किया, अरु "नोभयतः प्रज्ञमिति " उभयतः ‹ प्रज्ञनहीं › इसपद करके जाग्रत् अरु स्वप्नकी सन्धीरूप मध्य अवस्था का निषेध किया, अरु "नप्रज्ञान घनमिति" ‹प्रज्ञानघन नहीं› इस पदसे सुषुप्ति अवस्था का निषेध किया, क्योंकि सुषुप्तिको बीजभावकी अविवेक रूपताहै ताते, अरु " नप्रज्ञमिति " ‹प्रज्ञनहीं› इस पद करके एककाल विषे सर्व विषयों के ज्ञातापने का निषेध किया, अरु " नाप्रज्ञमिति " ‹अप्रज्ञनहीं› इसपद से अचेतनपने का निषेध किया ॥ शङ्का ॥ ननु; पुनःआत्माविषे प्रतीयमान जे अन्तःप्रज्ञ आदिक तिनकारज्जुआदिकों विषे सर्पादिकोंवत् निषेध होनेसे असत्पना कैसे जानिये, समाधान ॥ तहां कहते हैं । अन्तःप्रज्ञआदिकों के ज्ञानस्वरूप होने विषे अविशेषताके हुये २ भीरज्जुआदिकों विषे सर्प जलधारादिकों के कल्पित भेदवत् परस्पर असत्पना है । अर्थात् जैसे एकही रज्जुरूप अधिष्ठान विषे अध्यस्त जे 'सर्प', दण्ड, जलधारा, सो कल्पित अरु परस्पर में व्यभिचारी 'अर्थात् जिसकालमें रज्जुविषे सर्पकी प्रतीति है तिसही कालमें दंड अरु जलधारा की नहीं', अरु जिसकाल विषे दण्डकी प्रतीतिहै तिसकाल विषे सर्प अरु जलधाराकी प्रतीति नहीं, अरु जिसकाल में जलधारा की प्रतीति है तिसकाल में सर्प अरु दंडकी प्रतीति नहीं, ताते अधिष्ठान रज्जु से वास्तव करके अपृथक् भी जे कल्पित 'सर्प, दण्ड, जलधारा, सो उक्तप्रकार परस्पर में व्यभिचारी अरु कल्पित होनेसे असत् है । तैसेही विश्वादिक भी अपने अधिष्ठान से पृथक् सत्तावाले नहीं परन्तु परस्पर व्यभिचारी अरु कल्पित होनेसे असत् हैं ।

अरु रज्जुआदिकोंवत् अव्यभिचारतासे तिनके ज्ञान स्वरूप का सत्यपनाहै ॥ अरु जो ऐसाकहे कि तिनका ज्ञानस्वरूप भी सुषुप्ति विषे व्यभिचारको पावताहै, सो बने नहीं क्योंकि सुप्तिवान् पुरुष अनुभव का विषय है ताते। अरु "नहिविज्ञातुविज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यतइतिश्रुतेः" < विज्ञाताकी विज्ञप्तिका लोप विद्यमान नहीं, इस श्रुतिके प्रमाण से >, अरु जब ऐसा है एतदर्थही "अदृष्टम्" <अदृष्ट है > अरु जिसकरके अदृष्ट है, तिसही करके "अव्यवहार्य्यम्" अव्यवहार (व्यवहार करने के अयोग्य) है, अरु अव्यवहार होनेसे "अग्राह्य" अग्राह्य (कर्मेन्द्रियोंसे ग्रहण करने के अयोग्य) है, ताहीते "अलक्षणम्" अलक्षण कहिये लिंग रहित [अर्थात् अनुमान प्रमाणका अविषय] है। अरु जब ऐसाहै तबहीं "अचिन्त्यम्" अचिन्त्य (अन्तःकरण की वृत्तियों का अविषय) है। अरु जिसकरके ऐसाहै तिसही करके "अव्यपदेश्यम्" अव्यपदेश्य (शब्दप्रमाणका अविषय होने से उपदेश करने वा कहनेके अयोग्य) है। अरु जब ऐसाहै तब "एकात्म्य प्रत्ययसारम्" एकात्म्य प्रत्ययसारहै, अर्थात् जाग्रदादि [अवस्था रूप] स्थानोंविषे यह आत्मा एकहै, इसप्रकार अव्यभिचारी जो प्रत्यय (ज्ञान) तिसकरके अनुसरने (विचार वा अनुभवकरने) योग्यहै। अथवा जिस तुरीया की प्राप्ति विषे एक आत्मज्ञानरूप ही सार (मुख्यप्रमाण) है, इसप्रकार का सो तुरीया है "आत्मेत्येवोपासीतइतिश्रुतेः" <आत्माहै इसप्रकारहीउपासना करना> [अर्थात् आत्माको अस्तिभावसेही निश्चय करना, "अस्तीत्येवोपलब्धव्य" इत्यादि अन्यश्रुतिके प्रमाणसे] इस प्रकार अन्तःप्रज्ञत्वादि [भावप्रापक जाग्रदादि] स्थानोंके अभिमानी के धर्म का निषेध किया। अरु "प्रपञ्चोपशमामिति" < प्रपंच से रहित है > इसप्रकार [आत्माविषे] जाग्रदादि स्थानों के धर्मका अ[illegible] कहा। अरु उक्तप्रकारका होने सेही "शान्तम्" शान्त [illegible] [illegible]विकार अरु विक्रिया रहित) है। इसही से

"शिवम्" शिव (शुद्धबुद्ध मुक्तस्वभाव परमानन्द बोधस्वरूप) है। अरु "अद्वैतम्" अद्वैत । अर्थात् जिसकरके सर्वभेद विकल्पसे रहित । है, तिसही से "चतुर्थम्" चतुर्थ है ८। अर्थात् तीन पादों की अपेक्षासे, चतुर्थ । तुरीयपाद, "मन्यन्ते" मानते हैं ? क्योंकि प्रतीयमान जे विश्वादिक तीन पाद तिनसे विलक्षण है ताते "सआत्मा सविज्ञेय" ८ सो आत्माहै सो जानने योग्यहै ? अरु जैसे प्रतीयमानजे 'सर्प, भूमिकी दरार, दंड, जलधारादिक, तिस सर्वसे पृथक् । अरु तिनसबका आश्रय अधिष्ठान । रज्जु है । तैसे "तत्त्वमसि" ८ सो तूहै ? इत्यादि महावाक्योंका लक्ष्यरूप जो आत्मा । अर्थात् जाग्रदादि अवस्थारूप स्थानोंका, अरु तदभिमानी विश्वादिकों का आश्रय अधिष्ठान अरु सर्वके धर्म कर्मादिकों से पृथक् सर्वकाप्रकाशक साक्षी निरुपाधिशुद्ध विज्ञानघन निर्विशेष निरुपाधि जो आत्मा सो । अदृष्ट (चक्षुरादिकों का अविषय) हुआ, । चक्षुरादि सर्वका । द्रष्टाहै, अरु "नहिद्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपोविद्यत, इत्यादि" ८ द्रष्टाकी दृष्टिका विपरिलोप-विद्यमान नहीं ? इत्यादि श्रुतियों ने कहा है, । ताते सोई सर्वका अनुभवी अपना आप सत्य प्रत्यगात्मा है । सो जानने योग्यहै ॥ यहां । "सविज्ञेय" ८ सो जानने योग्यहै ? इसप्रकार कहाहै सो । पूर्व । अपने आप आत्माकी । अज्ञात अवस्थाविषे । अर्थात् अपने आप वास्तविक स्वरुपको यथार्थ न जानने रूप अवस्थाविषे । आत्मा विषयक ज्ञेयपनेकेहुये, आत्मा को 'जाननेयोग्य है, इसप्रकारकहा । अरु । महावाक्योंके लक्ष्यार्थको सम्यक्प्रकार अपने आप । आत्माकरके जानेहुये 'ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, इस त्रिपुटि के विभाग रूप द्वैतका अभाव होताहै ७ ॥

८ ॥ हे सौम्य! "अत्रैतश्लोकाभवन्ति" ८यहांयह श्लोक होतेहैं ? अर्थात् यहां [अब "नान्तःप्रज्ञत्वादि" ८अन्तःप्रज्ञत्वनहीं ? इससम संख्यावाले श्रुति मन्त्रकरके उक्तार्थ विषे तिसके वर्णनरूप गौडपादाचार्य कृत नव ९ श्लोकोंको प्रकटकरतेहैं] "निवृत्तेः सर्व

गौडपादीयोपनिषदर्थाविष्करणम् ॥

निवृत्तेःसर्व्वदुःखानामीशानःप्रभुरव्ययः ॥ अद्वैतः सर्वभावानांदेवस्तुर्य्योविभुःस्मृतः १० ॥

अथ गौडपादाचार्यकृत कारिका ॥

दुःखानामीशानः प्रभुरव्ययः" सर्वदुखोंकी निवृत्तिका ईशान प्रभु है, अव्यय है, अर्थात् 'प्राज्ञ, तैजस, विश्वरूप लक्षणवाले जीवोंके सर्वदुःखोंकी निवृत्तिका ईशान कहिये नियामक तुरीयरूप आत्मा है। सो प्रभु है। अर्थात् यहां 'ईशान, पदका व्याख्यान रूपे 'प्रभु, पद है, एतदर्थ ईशान कहिये सर्व दुःखोंकी निवृत्ति के अर्थ प्रभु समर्थ होताहै। अर्थात् जो सर्वदुःखोंकी निवृत्तिकरने में समर्थ होवे तिसको 'प्रभु, इसनामसे कहते हैं, सो एक आत्माही अपने सम्यक् ज्ञानद्वारा अध्यात्मिकादि त्रिविधतापोंको समूल अशेष निवृत्तकरताहै ताते तुरीय आत्माके 'ईशान, इस विशेषणकाअर्थ प्रभुहै। क्योंकि सर्व दुःखोंकी जो निवृत्तिहै सो तिस (आत्मा) केज्ञानरूप निमित्तसे होतीहै ताते। अरु यह प्रत्यगात्मा जिससे वास्तवकरके स्वरूपसे व्यभिचारको पावता नहीं तिस हीसे अव्यय है। अरु " अद्वैतः सर्वभावानां देवतुर्य्यो विभुः स्मृतः " सर्वभावोंके मिथ्याहोनेसे अद्वैतहै, देव तुरीय विभु (व्यापक) कहाहै; अर्थात् 'जाग्रदादि अवस्थारूप तीनोंस्थान अरु तिनके विश्वादिक तीनों अभिमानी सो सर्व रज्जुमें सर्पवत् असत् होनेसे उन सर्वका आश्रय अधिष्ठानरूप तुरीय आत्मा अद्वैत है। अरु एतदर्थही अर्थात् सर्वभावोंको मिथ्याहोनेसेही व्यय (व्यभिचार) के हेतु जे द्वैतवस्तु तिनके अभावसे आत्मा अव्यय है। अरु सो यह सर्वका प्रकाशक होनेसे देव अर्थात् जाग्रदादि स्थानों सहित विश्वादिकोंके 'रज्जु में सर्पवत् अध्यस्तरूप भाव को, अरु स्वरूपसे उनके अभावको, उनका अधिष्ठान साक्षीहोके

कार्य्यकारणबद्धौताविष्येतेविश्वतैजसौ ॥ प्राज्ञःकारणबद्धस्तुद्वौतौतुर्य्येनसिध्यतः ११ ॥

प्रकाशताहै ताते आत्मा सर्व प्रकाशकों का प्रकाशक देव है । अरु विश्वादिकों की अपेक्षा चतुर्थ होने से तुरीय, अरु सर्व में व्यापक होने से विभुहै, ऐसा कहते हैं १० ॥

११ ॥ हे सौम्य! अब तुर्य्याकेयथार्थ आत्मपनेके निश्चयार्थ [इस श्लोकके तात्पर्यको कहतेहैं] "कार्य्य कारणबद्धौताविष्येतेविश्व तैजसौ" (सो विश्व तैजसदोनों कार्यकारण से बद्ध अंगीकार करते हैं ? अर्थात् विश्वादिकों का सामान्य अरु विशेषभाव निरूपण करते हैं [विश्वादिकों विषे सध्यकी विशेषता वा विलक्षणताके निरूपण करनेद्वारा तुरीयाकोही निरधार करते हैं] यहां 'करते हैं, ऐसा जो फलभाव, सो कार्यहै । अरु 'करता है, ऐसा जो बीजभाव, सो कारण है । तिन तत्त्वके अग्रहण अरु अन्यथा ग्रहणरूप बीजभाव अरु फलभाव । अर्थात् तत्त्वका अग्रहण (अज्ञान) सोई बीजभाव अरु तिसीबीज हेतुसे हुआ जो तत्त्व विषयक कर्तृत्वभोक्तृत्वादि अन्यथाग्रहणभाव सोई उक्त बीजका फलभाव है । तिनसे वे पूर्वोक्त विश्व अरु तैजस ये बद्ध अंगीकार करते हैं अरु "प्राज्ञः कारणबद्धस्तु द्वौतौ तुर्य्येन सिध्यतः" (प्राज्ञ तो कारण भावसेही बद्धहै, विश्व अरु तैजस येदोनों तुरीयाविषे सिद्ध होते नहीं ? अर्थात् प्राज्ञतो बीजभावरूप कारण सेही बद्धहै अर्थात् तत्त्वका अबोधमात्रही जो बीजभाव सोई प्राज्ञपने विषे निमित्तहै । एतदर्थ बीजभाव अरु फल भावमय तत्त्व के अग्रहण अरु अन्यथाग्रहणरूप विश्व अरु तैजस यह दोनों तुरीया विषे सिद्ध होते नहीं ११ ॥

१२ ॥ हे सौम्य ! प्रश्न । पुनःप्राज्ञको कारणसे बद्धपना कैसेहै । वा तुरीयाविषे तत्त्व के अग्रहण अरु अन्यथाग्रहणरूप बद्ध जो विश्व औ तैजस सो तिसप्रकारके सिद्ध होते नहीं, । उत्तर । तहां

नात्मानंनापरांश्चैवनसत्यंनापिचाऽनृतम् ॥ प्राज्ञः किञ्चनसंवेत्तितुर्य्यंतत्सर्वदृक्सदा १२ ॥

कहते हैं, "नात्मानं नापरांश्चैव न सत्यं नापि चाऽनृतम्, प्राज्ञः किञ्चन संवेत्ति" ﴾ प्राज्ञहै सो न आपको न परको न सत्यको न अनृत (झूठ) को, कुछभी जानता नहीं ﴿ अर्थात् जिसकरके प्राज्ञ जोहै सो विश्व अरु तैजसवत् कुछ भी आप को जानता नहीं, अरु अविद्यारूप वीजसे उत्पन्न बाह्यके द्वैतरूप, अन्यों को भी जानता नहीं, अरु सत्यको । 'दृष्टयादिकोंके विषय कार्यको। जानता नहीं । अरु तैसेही अविद्यात्मक वीजरूप अनृत (अविषयकारण) को भी जानता नहीं । एतदर्थ यह प्राज्ञ अन्यथाग्रहण कहिये ' विपरीत ज्ञान, के वीजमय अग्रहणरूप अज्ञान से बद्ध होताहै । अरु " तुर्य्यंतत्सर्वदृक् सदा " ﴾ तुरीया सर्वदा सर्वदृक् है ﴿ अर्थात् जिसकरके तुरीया अपनेसे इतर (अविद्या) केअभाव से सर्वदा सर्वदृक् (सर्वरूपअरुसर्वकाद्रष्टा) है । एतदर्थ तिसविषे तत्त्वका अग्रहणरूप (अविद्यात्मक) वीजनहीं, 'क्योंकि वो तिस का भी प्रकाशक द्रष्टा है ताते, अरु जब उसविषे उक्त वीजनहीं तिसहीकरके तिसवीजसे उत्पन्नहुआ जो अन्यथाग्रहरूप (अर्थात् विपरीतज्ञान, जीवभावरूप) फलकाभी तिसविषे अभावहै। जैसे सर्वदा प्रकाशरूप सूर्य्यविषे अप्रकाशता वा अन्यथाप्रकाशना संभवे नहीं । अथवा जैसे सर्वदा स्वयंप्रकाशरूप सूर्य्य विषे अंधकार नहीं अरु तिसके अभावहुये तिसकाकार्य जो पदार्थका अन्यथा भासना सोभीनहीं। तैसे सर्वदा स्वयंज्योतिःद्रष्टारूप तुरीयाविषे वीजरूप मूलाज्ञान अरु तिसकाकार्य अन्यथाग्रहण (विपरीतज्ञान, जीवभाव) रूपफल दोनों नहीं । क्योंकि "नहिद्रष्टेर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यत इतिश्रुतेः" ﴾द्रष्टाकी दृष्टिका विपरिलोप (अभाव) विद्यमान नहीं﴿ इसश्रुतिके प्रमाणसे । अरु वो सर्वका द्रष्टा तुरीया पदार्थका अग्रहणरूपवीजसुषुप्तिका अरु तिसकेकार्यविषे

द्वैतस्याग्रहणंतुल्यमुभयोःप्राज्ञतुर्य्ययोः । बीजनिद्रा युतः प्राज्ञःसा च तुर्य्येनविद्यते १३ ॥

रीतज्ञानरूप फलका प्रकाशक द्रष्टाहै, अरु । घटद्रष्टाघटाद्भिन्नः । इस न्यायप्रमाण दृश्यसे द्रष्टापृथक् होनेसे उसविषे उक्त बीज अरु फलका अभावसिद्धहै । अथवा जाग्रत् अरु स्वप्नादि । सर्व अवस्थामें । सर्व भूतों विषे स्थितिवाला सर्ववस्तुओं का द्रष्टा आभास (प्रतिविम्बरूप प्रकाश) है सो तुरीयाही है । क्योंकि विम्बसे प्रतिविम्बकी पृथक्सत्ताका अभावहै ताते । एतदर्थ सो तुरीया सर्वदा सर्वदृक् (सर्वकाद्रष्टा) है । क्योंकि अविद्यासे रहित सर्वदा जाग्रत् स्वभाव है । तथाच " नान्यदतोऽस्तिद्रष्ट, इत्यादि श्रुतेः" (इससे अन्य द्रष्टा है नहीं) १२ ॥

१३ ॥ हे सौम्य! ,अब निमित्तान्तरसेप्राप्तहुई शङ्काकी निवृत्ति केअर्थ यह श्लोकहै ।अर्थात् तुरीयाविषे अन्यनिमित्ततासे प्राप्तहुई कारणता । तिससेहुई जो वद्धपनेकीशङ्का तिस । वद्धपनेकीशङ्का की निवृत्तिके अर्थ यह श्लोकहै । कैसे कि [विवादका विषय जो तुरीय सो कारणसे वद्ध कहिये सम्बन्धवाला है, द्वैतका अग्रहणहै ताते, प्राज्ञवत् । यहां अनुमानकोही देखावते हुये, प्राज्ञ को कारणकरके वद्धपने विषे अन्यनिमित्तकोही प्रकटकरते हैं] दोनोंविषे द्वैतके अग्रहणरूप निमित्तकी तुल्यताहै ताते । इस प्रकारकी जो शङ्काप्राप्तहुई 'सो शङ्का, प्राज्ञकोही कारण से वद्ध पनाहै तुरीयाकोनहीं, इसप्रकारनिवारण करतेहैं " द्वैतस्याग्रहणं तुल्यमुभयोः प्राज्ञतुर्य्ययोः " (प्राज्ञ अरु तुरीया दोनोंको द्वैतका अग्रहणतुल्यहै) अर्थात् यद्यपि प्राज्ञ अरु तुरीया इन दोनों को द्वैतका अग्रहण तुल्यही है । तथापि " बीज निद्रायुतः प्राज्ञ सा च तुर्य्येन विद्यते " (प्राज्ञ बीज निद्रायुक्त है, सो तुरीया विषे विद्यमान नहीं) अर्थात् प्राज्ञ जोहै सो विशेषके । विश्व,तैजसादिरूप द्वैतके । बोधके उत्पत्तिका कारण जो तत्त्वका अबोधरूप

स्वप्ननिद्रायुतावाद्यौप्राज्ञस्त्वस्वप्ननिद्रया ॥ न निद्रांनैवचस्वप्नं तुर्य्येपश्यन्तिनिश्चिताः १४ ॥

बीजनिद्रा (मूलाविद्या) तिसकरकेयुक्तहै। अरु तुरीयाको सर्वदा सर्वका द्रष्टा स्वभाववालाहोनेसे सो 'तत्त्वका अबोधरूप' निद्रा (मूलाविद्या), तुरीयाविषे है नहीं एतदर्थतिस तुरीया विषे कारण का सम्बन्ध नहीं, यह अभिप्राय सिद्ध है १३ ॥

१४ ॥ हे सौम्य!, [अब, "कार्य्यकारणबद्धौ ताविष्येतेविश्वतैजसौ" ॥ विश्वअरु तैजसकार्य्य अरुकारणकरकेबद्धहैं। इसअष्टादश १८ में श्लोकविषे उक्त अर्थको, अनुभवके आश्रयसे वर्णन करते हैं] "स्वप्ननिद्रायुतावाद्यौ प्राज्ञस्त्वस्वप्ननिद्रया" ॥ आद्य दोनों स्वप्न अरु निद्राकरके युक्त है, अरु प्राज्ञ तो स्वप्नसे रहित निद्राकरकेही युक्त है; अर्थात् आद्य (प्रथम कहे) जे विश्व अरु तैजस सो दोनों 'रज्जुविषे सर्पवत्, । अध्यस्त । जे अन्यथाग्रहणरूप स्वप्न, अरुतत्त्वके अबोधमय अज्ञानरूप निद्रा, तिन स्वप्न अरु निद्रा दोनोंकरकेयुक्तहै । एतदर्थ वे ।विश्व अरु तैजस। कार्य अरु कारण ।दोनोंसे। बद्धहैं, इसप्रकारपूर्वकहा। अरु प्राज्ञते स्वप्न से रहित केवल निद्रा (अज्ञान) सेहीयुक्तहै। एतदर्थ कारणसे बद्ध है, इसप्रकार पूर्व कहा अरु "ननिद्रांनैवचस्वप्नंतुर्य्ये पश्यन्ति निश्चिताः" ॥ निश्चयको प्राप्तहुये, तुरीयाविषे स्वप्नकोनहीं देखते अरु निद्राको भी नहीं देखते; अर्थात् जो ' महावाक्यार्थ के सम्यक् ज्ञानकरके। निश्चयको प्राप्तहुये ब्रह्मवेत्ता, सो 'सूर्यविषे अन्धकारवत् विरुद्ध धर्माहोनेसे, तुरीयाविषे स्वप्नको देखते नहीं, अरु निद्राको भी देखते नहीं। एतदर्थही जो । सर्वका प्रकाशक द्रष्टा । तुरीया है, सो कार्य्य अरु कारण दोनों से बद्ध नहीं; इसप्रकार पूर्व कहा है १४ ॥

१५ ॥ हे सौम्य!, ।शंका। ननु पुरुष स्वप्नविषेस्थित कबहोताहै, अरु निद्राविषे कब होता है; अरु तुरीयाविषे निश्चयको प्राप्त

अन्यथाग्रह्णतः स्वप्नोनिद्रातत्त्वमजानतः॥ विपर्य्यासेतयोक्षीणेतुरीयंपदमश्नुते १५॥

हुआ कब होताहै, । समाधान । तहां कहते हैं "अन्यथा ग्रह्णतः स्वप्नो निद्रातत्त्वमजानतः" (तत्त्वके अन्यथा ग्रहणवाले को स्वप्नहोताहै, अरु न जाननेवाले को निद्रा है) अर्थात् स्वप्न अरु जाग्रत्विषे 'रज्जुमें सर्पवत्, तत्त्वको अन्यथा (औरप्रकारसे) ग्रहण करनेवाले पुरुषको स्वप्नहोताहै, अरु तत्त्वके न जाननेवाले को तीनों अवस्थाविषे तुल्य निद्रा है। यहां स्वप्न अरु निद्राविषे तुल्यताके होने से 'विश्व अरु तैजस, इनदोनों को एकराशी (कोटि) पनाहै। अरु तिनविषे अन्यथाग्रहणसे अरुप्रधान (मुख्य) होनेसे गुणरूप निद्राहै अरुविपरियास स्वप्नहै। अरु तृतीयस्थान (द्वितीयकोटि) प्राज्ञविषेतो तत्त्वकाअज्ञानलक्षणरूप निद्राही केवल विपरियासहै। एतदर्थ "विपरियासे तयोक्षीणेतुरीयं पदमश्नुते" (विपरियासके क्षीणहुये तुरीय पदको पावताहै) अर्थात् उन कार्य अरु कारण रूप उभय स्थानों के अन्यथा ग्रहण अरु अग्रहण लक्षणमय कार्य-कारण से बद्धरूप विपरियास के "परमार्थ तत्त्वके प्रतिबोधकरके, क्षीण(विनाश)हुये तुरीयपदको पावताहै। अर्थात् । जब उक्तप्रकार का विपरियास नाश होताहै तब तिस तुरीयाविषे उभय प्रकार के बन्धके रूपको न देखता (अनुभवकरता) हुआ पुरुष तुरीयाविषे निश्चयको प्राप्तहुआ होताहै १५॥

१६॥ हे सौम्य! [विपर्ययके नाशकाहेतु तत्त्वज्ञान कबहोता है। इसप्रकार प्रश्नकरनेकी इच्छाके होनेसे कहते हैं] "अनादि माययासुप्तो यदा जीवः प्रबुद्ध्यते" (यह जीव अनादि माया करके सोयाहै, सो जब प्रबोधवान् होताहै) अर्थात् जो यह संसारी जीवहै सो तत्त्वके अबोधमय बीजरूप अरु अन्यथा ग्रहण फल रूप, जो अनादि काल से प्रवर्त्तहुये उभय लक्षणवाले मायारूप

अनादिमायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुध्यते । अजम निद्रमस्वप्नमद्वैतं बुध्यते तदा ,१६ ॥

स्वप्न, तिनकरके " यह मेरा पिता है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरा पौत्र है, यह मेरा क्षेत्र है, यह मेरा पशु है, मैं इनका पोषक, स्वामी हौं, दुःखी हौं, इनसे क्षयको पायाहौं, अरु इनसे वृद्धि को भी पायाहौं,, । इत्यादि प्रकारके स्वप्नोंको जाग्रत् अरु स्वप्न, उभय स्थानोंविषे देखताहुआ । अनादि कालसे । सोवताहै । अरु " अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुध्यते तदा " । जब बोधको प्राप्त होता है तब ' अजहै, अनिद्रहै, अस्वप्नहै, अद्वैतहै, ऐसे जानता है, ' अर्थात् सो । अनादि कालका सोयाहुआ जीव । जब वेदान्त के अर्थरूप तत्त्वके जाननेवाले परमदयालु आचार्य से " तू इन पुत्रादिकों का हेतु अरु फलरूप नहीं" किन्तु " तत्त्वमसीति "। सो (ब्रह्म) तूहै । इसप्रकार श्रवण करके प्रबोधको प्राप्त होताहै, । अर्थात् सहस्रावधि माता पिताओं से अधिक जीवोंपर परम कृपाकरके, इस उक्त स्वप्न के जन्म मरणादि महान्दुःखों से ग्रसित देख आप आचार्य द्वाराहोके " उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य व रान्निबोधत " । इत्यादि अपने परम उदारवाक्योंसे अज्ञान निद्रा से जगाय पुनः कहतीहै कि हे सौम्य ! ' जैसे सर्व जातिके वृक्षोंकारस मक्षिकाके उदरमें भेदसेरहित, समान मधुभावको प्राप्तहोताहै, तैसेही यह सर्व चिदाभास जीव सुषुप्ति अवस्था में समान एक बिम्बरूप चैतन्य भावको प्राप्तहोतेहैं अरु जहां पुत्र पितादि वा ब्राह्मण क्षत्रियादि वा मनुष्य पशुवादि वा जड़ चैतन्यादि कोई भी भेदभाव विशेष रहता नहीं, अरु जहां को प्राप्तहुये विद्वान् पुनः जीव भावविषे आवते नहीं " स आत्मातत्त्वमसि " सोई सर्वका अपना आप प्रत्यगात्माहै, सोई आत्मा तूहै । इसप्रकार जब परमहितकारणी श्रुति महावाक्योंके लक्ष्यार्थको जाननेवाले ब्रह्मनिष्ठ आचार्यद्वारा अपने वाक्योंसे इनजीवोंको ' जो अनादि

कालसे मायाकरके सोयेहुये नानाप्रकार के जगत्रूप स्वप्नों को देखते जन्म मरणादिकों के महान् क्लेशोंको पावते हैं, जगायके सावधान करती है। तब ऐसे जानता है। प्रश्न। कैसेजानता है, उत्तर। इस आत्माविषे बाह्य (कार्य) अरु अन्तर (कारण) वा जन्मादि षट् भावविकार हैं नहीं। अतएव अजन्मा है, अर्थात् (आत्मा) बाह्य अन्तर सहित अरु (बाह्य अन्तरके धर्मादि) सर्व भावविकार करके वर्जित (रहित) है। अरु जिस करके इस आत्माविषे जन्मादिकों की कारणरूपा अविद्या अरु अज्ञान स्वरूप बीजमय निद्रा नहीं, एतदर्थ यह अनिद्र है (अर्थात् सर्वदा बोधस्वरूप है) अरु जिसकरके सो तुरीया अनिद्र (अबोध रहित) है, तिसही करके अस्वप्न है, क्योंकि अन्यथा ग्रहणरूप जो स्वप्नहै सो अबोधरूप निद्राके निमित्तवाला है (अरु सो निद्रा तुरीय आत्मा विषे है नहीं, अतएव तन्निमित्तक उक्त स्वप्न भी तिस विषेनहीं। अरु जिसकरके अनिद्र अरु अस्वप्न है, तिसही करके अजन्मा अरु अद्वैत है, इसप्रकार तुरीयरूप आत्माको तब जानता है (जब स्वस्वरूप विषे जागता है १६ ॥

॥१७॥ हे सौम्य!! शंका। जबप्रपंचकी निवृत्तिसे अद्वैतको जानताहै, तब प्रपंचके अनिवृत्तहुये अद्वैत कैसे सिद्ध होताहै, जहां ऐसी शंकाहै तहां कहतेहैं, जो कि परमार्थ सेही प्रपंच विद्यमान होय तब उक्तप्रकार अद्वैतकी असिद्धि होती है, यह तेराकथन सत्यहै, परन्तु 'रज्जुविषे सर्पवत्, कल्पित होनेसे सो (प्रपंच) विद्यमान नहीं, एतदर्थ अद्वैतही सिद्ध होताहै अरु " प्रपंचोयदिविद्येत निवर्तेतनसंशयः " (जो कदापि प्रपंच विद्यमान होय तो निवृत्त होय इसमें संशय नहीं ? अर्थात् जो यह प्रपंच (स्वरूपसेही) विद्यमान होवे तो निवृत्तहोवे अर्थात् जो कदापि यह प्रपंच स्वरूपसेही विद्यमान होय तो इसकी निवृत्ति हुये अद्वैत सिद्धहोवे परन्तु जैसे रज्जुविषे भ्रान्तिबुद्धि करके कल्पित जो सर्प सो विद्यमान हुआ हुआ भी विवेकसे निवृत्त होताहै, एतदर्थ वस्तुसे

प्रपञ्चोयदिविद्येतनिवर्त्तेतनसंशयः । मायामात्र मिदंद्वैतमद्वैतंपरमार्थतः १७ ॥

है नहीं (अर्थात् जैसे रज्जुविषे सर्प,तैसे आत्माविषे प्रपंच क-ल्पित होनेसे रज्जुके यथार्थ विवेकहुये उस प्रपंचके हुये हुये भी सत्यरूप रज्जुवत् एक आत्मतत्त्वही सत्य अद्वैत होवेहै, क्योंकि प्रपंच भ्रान्ति करके कल्पित है ताते, वा जिनको रज्जुका यथार्थ विवेक नहीं तिनको द्वैतरूप सर्प सत्यवत् है, परन्तु उस भ्रान्ति कालविषे भी सर्प कल्पित होनेसे रज्जु अद्वैतही है, इसप्रकार अविवेक करके प्रपंचकी सत्य प्रतीतिकाल में भी प्रपंचको भ्रांतिमात्र होनेसे, आत्मा अद्वैतही है। इसप्रकार द्वैतरूप प्रपंच के होतेसंते भी अद्वैतही सिद्धहै । अरु जैसे मायावी पुरुष ने देखाई जो माया सो विद्यमान हुई हुई भी तिसके देखनेवाले पुरुष के नेत्रनन्धके दूरहुये निवृत्त होताहै, क्योंकि वास्तवसे है नहीं । तैसेही " मायामात्रमिदंद्वैतमद्वैतंपरमार्थतः " (यहद्वैत मायामात्र है अरु परमार्थ से अद्वैत है) अर्थात् (जैसे रज्जुविषे सर्प अरु मायावी विषे माया) तैसे यह प्रपंच नामवाला द्वैत मायामात्र (भ्रान्ति करके कल्पित) है । अरुरज्जु अरु मायावीवत् परमार्थ करके अद्वैतही है । एतदर्थ कोईभी (अविवेकीको) प्रवृत्त हुआ वा (विवेकीको) निवृत्त हुआ (उभयप्रकार) प्रपंच हैही नहीं । इति सिद्धम् १७ ॥

१८ ॥ हे सोम्य॥ शंका । शास्ता (उपदेष्टा) शास्त्र, अरु शिष्य, इसप्रकारका विकल्प (अद्वैतविषे) कैसे प्रवृत्त होताहै, जहां ऐसी शंकाहै, तहां कहते हैं । समाधान । " विकल्पोविनिवर्तेतकल्पितो यदिकेनचित् " (यदिविकल्प किसी करके कल्पित होय तो निवर्त्त होताहै) अर्थात् विकल्प निवर्त्त होताहै जो किसीकरके कल्पित होय तो । जैसे यह प्रपंच मायावी की माया अरु रज्जुविषे सर्पवत् प्रबोध (यथार्थ ज्ञान) से पूर्वहै । तैसे यह शिष्यादि भेद

विकल्पोविनिवर्त्तेतकल्पितोयदिकेनचित्। उपदेशादयंवादोज्ञातेद्वैतंनविद्यते॥१८॥ इतिउपनिषदं॥

सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रम् । पादामात्रामात्राश्चपादाअकारउकारोमकारइति॥८॥

रूप विकल्पभी तत्त्वके प्रबोध (यथार्थज्ञान) के पूर्वही उपदेशके निमित्तहै। याते "उपदेशादयंवादो ज्ञातेद्वैतं न विद्यते" यह वाद उपदेशके जानेहुये द्वैत है नहीं; अर्थात् यह शिष्य शास्ता अरु शास्त्ररूप जो व्यावहारिक कथनहै सो तत्त्वोपदेशसे पूर्वहै, अरु उपदेशके कार्यरूप ज्ञानके पूर्णहुये परमार्थ तत्त्वके जाननेसे। पुनः उपदेष्टादिरूप द्वैतहै नहीं १८॥

अथ उपनिषदर्थ॥

॥८॥हे सौम्य! [उक्तप्रकार तत्त्वज्ञानविषे समर्थ उत्तम अरु मध्यम अधिकारियोंको अध्यारोप अरु अपवादसे पारमार्थिक तत्त्व उपदेश किया। अब तत्त्वके ग्रहणमें असमर्थ कनिष्ठ अधिकारि को आत्माके ध्यानविषे विधानार्थ आरोपदृष्टिकोही आश्रयकरके मूल श्रुतिके चारमन्त्रोंका व्याख्यान करते हैं] जो वाच्यकी प्रधानतावाला ॐकार चारपादवाला आत्मा है इसप्रकार व्याख्यान किया "सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रम्" ८ सो यह आत्माअध्यक्षर है, ॐकार है, अधिमात्रहै; अर्थात् जो पूर्व ॐकार चारपादवाला आत्माकहा, सो यह आत्मा अध्यक्षर है, अर्थात् वाचककी प्रधानता से अक्षरको आश्रय करके वर्णन कियाहै एतदर्थ अध्यक्षर कहते हैं। प्र०। पुनः सो अक्षर क्याहै। उ०। तहां कहते हैं सो अक्षर ॐकारहै। अरु सो यह ॐकार पादोंसे विभाग पायाहुआ अधिमात्र है। अरु मात्राको आश्रय करके वर्त्तता है ताते अधिमात्र है। शंका। ननु, आत्माही पादोंसे विभागको पावनाहै, अरु मात्राको आश्रय करके ॐकार स्थित होताहै, ताते पादोंसे विभागको प्राप्तहुये ॐकारका अधिमात्रपन।

जागरितस्थानोवैश्वानरोऽकारः प्रथमामात्राऽऽप्तेरादिमत्वाद्वाऽऽप्नोति हवैसर्व्वान् कामानादिश्च भवतिय एवंवेद ९ ॥

कैसेहै, जहां ऐसा शंकाहै, तहां कहते हैं, "पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति,, ६ पादहैं सो मात्राहैं, मात्राहैं सो पादहैं, अकार उकार मकार यह । तीन ॐकारकी मात्राहैं? अर्थात् आत्माके जे पादहैं सो ॐकारकी मात्रा हैं, अरु जे ॐकारकी मात्रा हैं सो आत्माके पादहैं । अतएव पाद अरु मात्राकी एकतासे यह कथन विरुद्ध है, तातें कौनसी वो ॐकारकी मात्रा है, जहां ऐसा प्रश्न है, तहां कहते हैं, अकार उकार अरु मकार, यह तीन ॐकार की मात्रा हैं ८ ॥

९॥ हे सौम्य! तहां [पादों के मध्य अरु मात्राओंके मध्य विश्व नामक भेदकी अकार रूपताको सूचन करते हैं] विशेषको नियम करतेहैं "। जागरितस्थानोवैश्वानरोऽकारःप्रथमामात्राऽऽप्तेरादिमत्वाद्वाऽऽप्नोति "। ६ जाग्रत् स्थानवाला वैश्वानरहै सो अकाररूप प्रथमा मात्राहै, व्याप्तिसेवा आदिवाले होनेसे ,आप्नोति,? अर्थात् जो जाग्रत् स्थानवाला वैश्वानर है सो ॐकारकी अकाररूप प्रथम मात्राहै । प्र०,। किस तुल्यता करके दोनोंकी एकता है, । उत्तर । व्याप्तिसे वा आदिवाले होने से । जैसे अकारसे सर्व वाणी व्याप्तहै "अकारोवैसर्वावागितिश्रुतेः" ८ अकारही सर्व वाणीहै ? इस श्रुतिके प्रमाणसे । अरु तैसेही वैश्वानरसे जाग्रत् व्याप्त है । तथाच " तस्यहवैतस्यात्मनोवैश्वानरस्यमूर्द्धैवसुतेज, इत्यादिश्रुतिः" ८ तिस प्रसिद्ध इस वैश्वानररूप आत्माका मस्तकही स्वर्ग है, इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे, वाच्य (नामी) वाचक (नाम) की एकताको हम कहते हैं "। आदिश्चभवति"। ६ आदिवाला होताहै? अर्थात् जिसकी आदिहै, तिसकी आदिवाला कहते हैं । अरु जैसे आदि । प्रथमता । वाला अकार नामवाला अक्षर है, तै-

सेही आदिवाला वैश्वानर है । एतदर्थ तुल्य होनेसे वैश्वानरको अकारपना है ॥ अब तिन । अकार अरु वैश्वानर । की एकताके ज्ञाताके अर्थ फल कहते हैं॥ "हवैसर्वान्कामान् आप्नोति, यएवंवेद" ॥ (जो ऐसे जानता है सो निश्चय करके सर्व कामोंको पावताहै ; अर्थात् जो वैश्वानर अरु अकारकी उक्तप्रकार एकताको जानता है सो निश्चय करके सर्व भोगोंको पावताहै, अरु सो "आदिश्च भवति" ॥ (प्रथम होता है ; अर्थात् ; ज्येष्ठ श्रेष्ठों के मध्य प्रथम (मुख्य) होताहै ९॥

॥ १० ॥ हे सौम्य ! [अब द्वितीयपाद अरु द्वितीयमात्राकी एकताको कहते हैं] "स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षा दुभयत्वात्" ॥ (स्वप्नस्थानवाला तैजस उकाररूप द्वितीया मात्रा है, उत्कर्षसे वा उभयरूप होनेसे ; अर्थात् जो । द्वितीय । स्वप्न स्थानवाला तैजसहै सो ॐकारकी उकार रूप द्वितीया मात्रा है। प्रश्न। किस तुल्यतासे दोनोंकी एकताहै । उत्तर, उत्कर्षता से वा द्वितीयरूपहै ताते । जैसे पाठके क्रमसे अकार से उकार उत्कृष्टहै । अर्थात् प्रणवके उच्चार करने में अकार ह्रस्वहै उकार दीर्घहै, ताते अकारसे उकार उत्कृष्टहै । तैसेही स्थूल उपाधि वाले विश्वसे सूक्ष्म उपाधिवाला तैजस उत्कृष्ट (श्रेष्ठ) है । । अर्थात् स्थूल भूतरूप उपाधिवाले स्थूल देहकी अपेक्षा सूक्ष्म अपंचिकृत भूतोंरूप उपाधिवाला सूक्ष्मदेह अविनाशिहै, एतदर्थ विश्वसे तैजस उत्कृष्टहै । तिस उत्कर्षसे उन । उकार अरु तैजस। की एकताहै । अथवा जैसे अकार अरु मकारके मध्यविषे स्थित उकारहै, तैसेही विश्व अरु प्राज्ञके मध्यविषे स्थित तैजसहै, एतदर्थ उनकी उभयरूपताकी तुल्यतासे एकताहैं । अब उनकी एकताके जाननेवाले विद्वान्को जो फल प्राप्तहोता है सो कहते हैं । "उत्कर्षति हवै ज्ञानसन्ततिंसमानश्चभवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद" ॥ (जो ऐसे जानताहै सो ज्ञान सन्ततिको बढ़ावताहै अरु समान होता है अरु इसके कुलविषे अब्रह्मवित्

स्वप्नस्थानस्तैजसउकारो द्वितीयामात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति ह वैज्ञानसन्ततिं समानश्चभवतिनास्याब्रह्मवित्कुलेभवतियएवंवेद १० ॥

होता नहीं ? अर्थात्, जो उक्तप्रकार उकार अरु तैजसकी एकता को जानताहै । सो विद्वान् अपने पुत्र वा शिष्यवर्गोंमें ज्ञानसंततिको वद्धमान करताहै, अतएव उसके कुल (पुत्रों वा शिष्यों) में अब्रह्मवेत्ता (ब्रह्मका न जाननेवाला) कोई होता नहीं, अरु पुनः वो समान होताहै, अर्थात् मित्रके पक्षवत् शत्रुके पक्ष में भी द्वेषकरता नहीं । उभयमें समभावही रखताहै १० ॥

११ ॥ हे सौम्य ! [अब तृतीय पाद अरु तृतीय मात्राकी एकताको कहते हैं] "सुषुप्तस्थानः प्राज्ञोमकारस्तृतीया मात्रा, मितेरपीतेर्वा." ? सुषुप्तिस्थानवाला प्राज्ञ मकाररूप तृतीयामात्राहै, परिमाणसे वा एकतासे ? अर्थात् जो सुषुप्तिस्थानवाला प्राज्ञहै सो ॐकारकी मकाररूपा तृतीयामात्राहै । प्रश्न । किस तुल्यताकरके दोनोंकी एकताहै । उत्तर । परिमाणसे वा एकता से । यहां इस प्रकार इन । प्राज्ञ अरु मकारमात्रा । दोनोंकी एकताहै, प्रस्थ (धान्यके परिमाण ,मापने, के पात्र) से यव धान्यादिक अन्न के परिमाण (माप) वत्, जैसे लय अरु उत्पत्तिविषे प्रवेश अरु निकसनेसे । अर्थात् लयविषे प्रवेश अरु उत्पत्तिविषे निकसने से । प्राज्ञकरके विश्व अरु तैजस परिमाणकिये (मापे) वत् होतेहैं । तैसेही अकार अरु उकार, यह दोनों अक्षर, ॐकारके उच्चारकी समाप्तिविषे अरु पुनः उच्चारके प्रारंभविषे मकार में प्रवेश करके निकसेहुयेवत् होतेहैं । अर्थात् ॐकारके उच्चारण करते प्रथम अकार निकलताहै सो उकारके उच्चारणहुये उकारमें लयहुयेवत् होताहै अरु अन्त के मकारके उच्चारणहुये वो उकार मकारमें लयहुयेवत् होताहै, इसप्रकार अकार उकार दोनों अक्षर ॐकारके उच्चारकी समाप्तिविषे मकारमें प्रवेशहुयेवत् हो

सुषुप्तस्थानःप्राज्ञोमकारस्तृतीयामात्रा । मितेर पीतेर्वा । मिनोतिहवाइदंसर्व्वमपीतिश्चभवतियएवं वेद ११ ॥

तेहैं। अरु पुनः ॐकारके उच्चारके प्रारंभमें वे दोनों अक्षर :अ, उ, मकारसे निकसेहुयेवत् होते हैं। ताते सो। अकार अरु उकार। मकारकरके परिमाणकिये (मापे) वत् होतेहैं । एतदर्थ तिन। प्राज्ञ अरुमकारदोनोंकी तुल्यतासे एकताहै। अथवा जैसे ॐकारके उच्चारकिये मकार रूप अन्तिम अक्षरविषे अकार अरु उकार यहदोनों एकरूप हुयेवत् होतेहैं, तैसे सुषुप्तिकालविषे विश्व अरु तैजस प्राज्ञविषे एकहुयेवत् होतेहैं। एतदर्थ तुल्यहोनेसे प्राज्ञ अरु मकारकी एकताहै। अब तिन। प्राज्ञ अरु मकार।की एकताके जाननेवाले विद्वान्को जोफल प्राप्तहोताहै सोकहतेहैं। "मिनोतिहवाइदंसर्वमपीतिश्चभवति यएवं वेद"। (जो ऐसे जानताहै सोसर्वको जानता जगत्का कारण होताहै, अर्थात् जो उक्तप्रकार प्राज्ञअरु मकारमात्राको एककरकेजानताहै सो।कारण का ज्ञाताहोनेसे, सर्वको जानताहै। अर्थात् प्राज्ञ अरु मकारकी एकताका जाननेवाला निश्चयकरकेइसकार्य्यकारणात्मक समस्तजगत्को यथार्थ जानताहै, अरुआप 'प्राज्ञरूप मकारमात्राका ज्ञाता (अभेदोपासक) होनेसे। जगत्के कारण भावको प्राप्त होताहै ॥ यहां[एकताके ज्ञानविषे फलके भेदके कथनसे उपासनाका भेद होगा, यह आशंकाकरके साधनोंविषे फल के भेदकी श्रुतिके अर्थ वादपनेको अंगीकारकरके कहे हैं] अवान्तर फलका जो कथनहै सो मुख्य साधनकी स्तुत्यर्थ है ११ ॥ हे सौम्य। यहांजो विश्व, तैजस, प्राज्ञ, इनपादोंकी क्रमशः 'अकार, उकार, मकार, इनमात्राओं के साथ एकता कही है तहां तिनके साथमें जाग्रदादि स्थानोंकी भी एकता चिन्तनीय है, इसका विचार इसग्रंथके अन्तमें प्रकाशित करेंगे ॥

गौडपादीय श्लोकाः ॥

विश्वस्यात्वविवक्षायामादिसामान्यमुत्कटम् । मात्रा सम्प्रतिपत्तौस्यादाप्तिसामान्यमेवच १९ ॥

तैजसस्योत्वविज्ञाने उत्कर्षोदृश्यतेस्फुटम् । मात्रा सम्प्रतिपत्तौस्यादुभयत्वंतथाविधम् २० ॥

गौडपादीय कारिका ॥

१६ ॥ हेसौम्य! [पादोंका अरु मात्राओंका जो सनिमित्तके एकत्व चार मन्त्रों करके श्रुतिने कहा, तिसविषयक पूर्ववत् श्रुत्यर्थके वर्णनरूप गौडपादाचार्यकृतपद् श्लोकनको प्रकट करते हैं] "गौडपादीय श्लोकाः" (अत्रैते श्लोका भवन्ति) (यहां यह गौडपादाचार्यकृत श्लोक, (मन्त्र) होतेहैं) "विश्वस्यात्वविवक्षायामादिसामान्यमुत्कटम्" (विश्वके कहनेकी इच्छाकेहुयेआदिपनेकी तुल्यता श्रेष्ठ देखतेहैं) अर्थात् विश्वके अकारमात्रा रूपपनेके कहनेकी इच्छाकेहुये, अर्थात् विश्वका अकारमात्रारूपपना जब कथनकरनेको इच्छितहोय, तब उक्त न्यायसे आदिपनेकी तुल्यता श्रेष्ठ देखते हैं । अरु "मात्रासम्पतिपत्तौ स्यादाप्तिसामान्यमेवच" (मात्राके निश्चयविषे व्याप्तिकी तुल्यताही श्रेष्ठहै) अर्थात् मात्राकी एकताविषे कहिये विश्वका अकारमात्रापना, वा मात्राकी विश्वरूपता, जब निश्चयकरतेहैं तब (उस एकताके निश्चयविषे) व्याप्तिकी तुल्यताही श्रेष्ठहै १६ ॥

२० ॥ हे सौम्य! "तैजसस्योत्वविज्ञाने उत्कर्षो दृश्यते स्फुटम्" (तैजसके ज्ञानविषे उत्कर्षरूपता स्पष्ट दीखतीहै) अर्थात् तैजसके उकारमात्रापनेके ज्ञानविषे, अर्थात् तैजसके उकाररूपमात्रापनेके कहनेकी इच्छाके होनेसे (तिसकथनार्थ) उत्कर्षरूप तुल्यता स्पष्ट देखतेहैं । अरु "मात्रासम्प्रतिपत्तौ स्यादुभयत्वंतथाविधम्" (मात्राके निश्चयविषे तिसही प्रकारका उभयपना

मकारभावे प्राज्ञस्य मानसामान्यमुत्कटम् । मात्रासम्प्रतिपत्तौतु लयसामान्यमेवच ॥ २१ ॥

त्रिषुधामसुयत्तुल्यं सामान्यंवेत्तिनिश्चितः । सम्पूज्यःसर्व्वभूतानां वन्द्यश्चैषमहामुनिः ॥ २२ ॥

कहिये द्वितीयपना, स्पष्टही है। और सर्व पूर्व श्रुतिके दशवेंमंत्र के भाष्य में कहे प्रमाण जानलेना २० ॥

॥ २१ ॥ हे सौम्य ! "मकारभावेप्राज्ञस्यमानसामान्यमुत्कटम्" (प्राज्ञके मकार भावविषे मानकी समता श्रेष्ठहै; अर्थात् प्राज्ञके मकार मात्रारूप भाव (होने) विषे मान (परिमाण वा माप) की तुल्यताही श्रेष्ठहै। अरु "मात्रासम्प्रतिपत्तौतुलयसामान्यमेवच" (मात्राके निश्चयविषे तो लयकी तुल्यताही श्रेष्ठहै २१ ॥ इसका विशेषार्थ मूल श्रुतिके एकादशवें मन्त्रके भाष्यमें कहे प्रमाण जानना ॥

॥ २२ ॥ हे सौम्य ! "त्रिषुधामसुयत्तुल्यंसामान्यंवेत्तिनिश्चितः" (तीनधामोंविषे जो तुल्यसमताकोनिश्चयको पायासता जो जानताहै; अर्थात्, उक्तप्रकारके जाग्रत्, स्वप्न, अरु सुषुप्तिरूप तीनों स्थानोंविषे जो तुल्य समता कही है, तिसको 'यह समता इसप्रकारही है, इसमें संशय नहीं। इसप्रकार निश्चयको प्राप्तहुआ जो जानताहै सो "सम्पूज्यःसर्वभूतानांवन्द्यश्चैषमहामुनिः" (सर्व भूतोंकरके सम्यक्प्रकार पूजनेयोग्य, वन्दनाकरनेयोग्य महामुनि होताहै; अर्थात् जो उक्तप्रकार अकारादि तीनमात्रा अरु विश्वादि तीनपाद, इनकी अभेदताको निश्चय पूर्वक यथार्थ जानता है, सो विद्वान् इस लोकमें सर्व प्राणियों करके पूजने (मान्यदेने) अरु वन्दना (नमस्कारादि) करनेयोग्य महामुनि (आत्मवेत्ता) होवैहै २२ ॥

॥ २३ ॥ हे सौम्य ! अब [पूर्वोक्तपाद अरु मात्राओंकी समताके ज्ञानवालेध्याननिष्ठके फलकोकहते हैं] "अकारोनयतेविश्वमुका-

अकारोनयतेविश्वमुकारश्चापितैजसम्।मकारश्चपुनःप्राज्ञंनामात्रेविद्यतेगतिः २३॥

रश्चापितैजसम् " (अकार विश्वको प्राप्त करताहै, अरु उकार तैजसको प्राप्त करताहै, अर्थात्, उक्तप्रकारकी तुल्यतासे आत्मा के (विश्वादि) पादोंकी, (अकारादि) पादोंके साथ एकताको करके (अर्थात् ॐकार के वाचकपने अरु लक्ष्य वाच्यकी एकता को निश्चय करके) पुनः उक्तप्रकारके ॐकार को सम्यक्प्रकार जानके जो ध्यावता (ध्यानकरता) है तिसको, अकार जो है सो, विश्वके अर्थ प्राप्तकरताहै । अर्थात् अकाररूप आलम्बन (प्रधानता) वाले ॐकार को जाननेवाला पुरुष वैश्वानरके भावको प्राप्त होताहै । अरु तैसेही उकार भी तैजसके अर्थ प्राप्त करता है । अर्थात् उकाररूप आलम्बन(प्रधानता) वाले ॐकारका जाननेवाला विद्वान् हिरण्यगर्भके पदको प्राप्त होताहै । अरु " मकारश्चपुनःप्राज्ञंनामात्रेविद्यतेगतिः " (पुनः मकार प्राज्ञके अर्थ प्राप्त करता है, अमात्रविषे गति विद्यमान नहीं) अर्थात् उकार की गतिके पश्चात् मकाररूप मात्राके आलम्बन (प्रधानता) वाले ॐकार का जाननेवाला विद्वान् अव्याकृत भावको प्राप्त होताहै । अरु [अब यहां तो पादोंका अरु मात्राओं का विभाग है नहीं । अरु तिस ॐकाररूप तुरीय आत्मा विषे स्थितहुये पुरुषको, प्राप्त होनेवाला, अरु प्राप्त होने योग्य, अरु प्राप्ति इस तीनोंरूप त्रिपुटीका विभाग है नहीं । इसप्रकार कहते हैं । यहां यह अर्थ है कि 'स्थूलप्रपंचजाग्रदवस्था, अरु विश्व अभिमानी यह तीन अकारमात्रा रूप हैं । अरु सूक्ष्मप्रपंच, स्वप्नावस्था, तैजस अभिमानी, यह तीन उकार मात्रारूपहैं । अरु स्थूल सूक्ष्म उभय प्रपंचों का कारण, सुषुप्ति अवस्था, प्राज्ञ अभिमानी, यह तीन मकार मात्रारूप हैं । अरु तिनमात्राओं में पूर्व पूर्व मात्रा उत्तर उत्तर मात्राके भावको प्राप्त होती हैं (अर्थात् स्थूल अकार

उपनिषद् ॥

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्य्यःप्रपंचोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोंकार आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं वेदयएवंवेद १२ ॥

इतिमांडूक्योपनिषन्मूलमन्त्राःसमाप्तिङ्गताः ॥

ॐ तत्सत्॥

मात्रा सूक्ष्म मकार मात्राके भावको, क्योंकि स्थूलका कारण सूक्ष्म है। अरु सूक्ष्म उकारमात्रा सर्वके कारण मकार मात्राके भावको, क्योंकि स्थूल सूक्ष्म सर्वकार्योंको अपने कारण भावकी प्राप्ति होती है, इसप्रकार पूर्व पूर्वमात्रा उत्तरोत्तर मात्राके भावको प्राप्त होतीहैं। सो इसप्रकार सर्व ॐकार मात्रहै, इस रीतिसे ॐकारका ध्यान करके स्थितहुये, अरु जो एतावन्त काल पर्यन्त ॐकार रूपसे ज्ञातकरी वस्तु, शुद्ध ब्रह्महीं है। इसप्रकार आचार्य्यके उपदेश से उत्पन्न हुये ज्ञान करके मकारपनेसे ग्रहण किये, जोपूर्वोक्त सर्व विभागोंका निमित्त अज्ञान तिसके क्षय होनेसे शुद्धब्रह्म विषे स्थितहुये पुरुषकी कहीं भी गति कहिये गमन सम्भवे नहीं, क्योंकि देशकालादिकों के परिच्छेद के अभाव से व्यापकता प्राप्त होनेसे] मकारके क्षयहुये बीजभावके अभाव से अमात्ररूप ॐकार विषे। प्राप्तहुये को। कहीं भी गति। लोकान्तर को गमन। नहीं ॥ क्योंकि "ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति" ब्रह्मका जाननेवाला 'व्यापक' ब्रह्मही होताहै २३ ॥

अथ उपनिषदर्थ ॥

~१२ ॥ हेसौम्य ![ॐ कारका स्फुरणरूप जो प्रत्यक् चैतन्य है। अर्थात् ॐकारके स्फुरणसेलक्षित लक्ष्यरूप प्रत्यक् चैतन्य है। सो तिनमात्रावाले अध्यस्त (कल्पित) ॐकारके साथ तादात्म्यतासे ॐकार। नामसे कहाजाताहै। तिसकी " अमात्रः " ८अमात्रहै.? इत्यादिरूप यह बारहवीं संख्यावाली श्रुतिके मन्त्र

करके परब्रह्मके साथ एकता, कहनेको इच्छितहै, तिसको प्रकट करके व्याख्यान करते हैं] " अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्य्यःप्रपंचोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोंकार आत्मैव " (अमात्र है, चतुर्थ है, अव्यवहारहै, प्रपंचके उपशमवाला है, शिवहै, अद्वैतहै, ऐसे, ॐकार आत्माही है,) अर्थात् नहीं है मात्रा जिसकी ऐसा जो (लक्ष्य रूप) ॐकार सो अमात्र है, अरु चतुर्थ कहिये तुरीय रूपहुआ केवल आत्माही है, अरु वाचक अरु वाच्यरूप जो वाणी अरु मन तिनको मूलाज्ञानके क्षयहुये, क्षीणहोनेसे व्यवहार करने को अयोग्यहुआ (आत्मा अव्यवहार्य है) अरु प्रपंचके उपशम वाला होनेसे (अर्थात् सकारण प्रपंचके उपशमहुये आत्माप्रकट भानहोता है ताते प्रपंचके उपशमवाला है, वा अद्वैत आत्माके सम्यक् ज्ञानहोने से प्रपंच उपशम भावको प्राप्त होताहै ताते प्रपंचके उपशमवालाहै) उसको प्रपंचोपशम, इस विशेषणसे कहते हैं। अरु शिव (कल्याणस्वरूपहै) अरु अद्वैतहै (अर्थात् जिस एक संख्याकी प्रतियोगी दो संख्याहैं अरु जो दो संख्याकी प्रतियोगी एक संख्याहै तिनसे रहित, अर्थात् एक अरु दो, यह जो संख्याहै सो सापेक्षिक अरु सम विषम भाववालीहै, अरु आत्मा है सो सापेक्षता अरु समविषम भावसे रहित होनेसे सर्व संख्यातीत अद्वैत है, वा संख्यावद्ध परिच्छिन्नतासे रहित होने करके सर्व संख्यातीत अद्वैत है। ऐसे उक्तप्रकारके (ॐकारके लक्ष्य आत्माके) ज्ञातापुरुषकरके उच्चारण कियाहुआ ॐकार (वाचक वाच्यकी अभेदता से) तीनमात्रावाला अरु तीनपादवाला (एक) आत्माही है (हे सोम्य! यहां एक यहभी विचार है कि जैसे रज्जु विषे अध्यस्त जे सर्पवत् सर्परूप अरु तिसका नामसर्प, यह दोनों नाम नामीकी रज्जुकेअज्ञानमें एकताहै, अर्थात् उसअध्यस्त सर्पका नामरूप दोनों रज्जुके अज्ञानमे कल्पित होने करके उस अज्ञानमें दोनोंकी एकताहै। अरु रज्जुके ज्ञानहुये उनदोनों को कल्पित होनेसे उनकी असत्यतामें एकता है। अरु रज्जुके

ज्ञानहुये उस कल्पितसर्पके नामरूपका परिणाम सत्य रज्जुरूप है, क्योंकि उसकी रज्जुसे पृथक् सत्ता का अभावहै ताते। अरु जो जिसकी अन्तः स्थितिहै सोई उसकी आद्यस्थिति है, अरु जो आद्यन्तः स्थितिहै सोई उसकीवर्त्तमान स्थिति है। तथाच "आदा-वन्तेचअन्नास्ति वर्त्तमानेपि तंतथा।" "अव्यक्तादीनि भूतानि" इत्यादि प्रमाणंसे। अर्थात् रज्जु विषे भासमान जो सर्प सो भ्रान्तिकालसे पूर्व द्वैतके अभावसे रज्जुरूप है अरु भ्रान्ति के निवृत्तकाल में भी वो अपनी पृथक् सत्ताके अभावसे रज्जु रूपहै अरु भ्रान्तिकाल में जो अपने नामरूपसहित जो इतरवत् भासताहै सोई भ्रान्तिहै नतु'सर्प, दंड,जलधारा, भूदरार,इत्यादि नामरूप से एक रज्जुही सुशोभितहै, अरु तिस विषेजो सर्पादि कों की कथन व्यापार है सो "वाचारम्भणं विकारो नामधेयं" इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे वाचारंभणमात्रहीहै। हेसौम्य! इस दृष्टांत के विचारप्रमाणही दृष्टान्त भूत अमात्रिक निर्विशेष तुरीय रूप आत्माविषेभी विश्वादि तीनोंपाद अरु अकारादि तीनोंमात्राका विचारजानना। अरु "संविशत्यात्मनाऽऽत्मानंयएवंवेद यएवंवेद" ॥ ९ जोऐसे जानताहैसो अपने आत्मरूपसे अपनेपरमार्थरूप आत्मा विषेसम्यक्प्रकार प्रवेशकरताहै, यहां जो 'यएवंवेद, दोवार कहाहै सो उपनिषद्की परिसमाप्तिके अर्थहै; अर्थात् जोउक्तप्रकार [अमात्रिक चतुर्थ तुरीय आत्माको] जानता है सो अपनेही आत्मा [चिदाभासरूप] से अपनेपरमार्थरूप [प्रत्यक् चैतन्यसाक्षी] आत्माविषे सम्यक्प्रकार प्रवेशको पावताहै। अर्थात् सुषुप्ति नामवाले तृतीयस्थानरूप बीजभावको जोक्रमशः वाविनाही क्रमशःजाग्रत् स्वप्नस्थानद्वयरूप अंकुरोत्पत्तिकाकारण स्थानरूपबीजको, चतुर्थ अमात्रिक तुरीय आत्माके सम्यक् ज्ञानरूप अग्निसे दग्ध कर-के परमार्थदर्शी आत्मवेत्ताओं के आत्माविषे प्रवेशको पाय पुनः जन्मको पावता नहीं। अर्थात् जैसे अंकुरद्वयके उत्पत्तिके स्थान रूप कारण बीजके दग्धहुये बीजान्तर जो एक महासूक्ष्म सत्ताहै

सो अंकुर भावपूर्वक वृक्षभावको प्राप्त होती नहीं, तैसेही स्थूल सूक्ष्म शरीर द्वयरूप अंकुर के उत्पत्तिका कारण स्थान अविद्यात्मक सुषुप्तिरूप बीजके, सम्यक् ज्ञानाग्नि करके दग्धहुये 'बीजान्तर सूक्ष्म सत्तावत्, सुषुप्तिरूप बीजान्तरतद्विशिष्ट जो चिदाभास जीवसत्ता है सो उक्त अग्निद्वारा उक्तबीजके सम्यक्प्रकार दग्धहुये पुनः स्थूल सूक्ष्म शरीरद्वयात्मक अंकुरभाव पूर्वक संसाररूप वृक्षभावको प्राप्त होता नहीं। क्योंकि तुरीयाको। मूलाज्ञानके दग्धहुये। अबीजरूपता होती है ताते। जैसे रज्जु अरु सर्पके विवेकके हुये रज्जुविषे प्रवेशको पाया जो सर्प, सो पुनः तिन। रज्जुसर्प। के विवेकी पुरुषको भ्रान्ति ज्ञानके संस्कार से पूर्ववत्। उदय। होता नहीं। क्योंकि उसविवेकी पुरुषको 'भ्रान्तिज्ञानका कारण अज्ञानरूपबीज। जोकि सर्परूप अंकुर अरु तज्जनित भयादिरूप वृक्षोत्पत्तिका निमित्त है, सम्यक् विवेक रूप अग्निसे दग्धहोता है ताते। तैसे यहां भी जानना। अरु साधक भावको प्राप्तहुये, सत्मार्ग में वर्तनेवाले, अरु मात्रा अरु पादोंकी सम्यक्प्रकार निश्चित एकताके जाननेवाले, ऐसे जे मन्दमध्यम बुद्धिवाले संन्यासी हैं, तिनको तो। उक्तप्रकार मात्रा अरु पादों की अभेदतासे। यथार्थ उपासना किया ॐकार "एतदालम्बनंश्रेष्ठमेतदालम्बनम्परम् , एतदालम्बनंज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते" इत्यादि श्रुतियों के प्रमाणसे। ब्रह्मकी प्राप्ति (क्रममुक्ति) के अर्थ। अर्थात् केवल प्रणवोपासना का मध्यमाधिकारी संन्यासीको उक्तप्रकार यथार्थ त्रिमात्रिक प्रणव की उपासना से ब्रह्मलोककी प्राप्तिरूप आवान्तर फलहोय वहां ब्रह्माद्वारा अमात्रिक तुरीय आत्माका सम्यग्ज्ञान होनेसे कैवल्य मोक्षकी प्राप्ति है। परम आलम्बन है। तैसे अग्रिम कहेंगे "आश्रमास्त्रिविधा हीना इत्यादि" १२ ॥

इतिश्रीमांडूक्योपनिषन्मूलमन्त्रभाषाभाष्यंसमाप्तम् ॥

ॐतत्सद्धरिःॐ ॥

गौडपादीयश्लोकाः ॥

ॐकारंपादशोविद्यात्पादामात्रानसंशयः । ॐकारंपादशोज्ञात्वानकिंञ्चिदपिचिन्तयेत् २४॥

युञ्जीतप्रणवेचेतःप्रणवोब्रह्मनिर्भयम् । प्रणवेनित्ययुक्तस्यनभयंविद्यतेक्वचित् २५ ॥

२४॥हेसौम्य! "पूर्ववदत्रैतेश्लोकाभवन्ति" ‹पूर्ववत्यहांये (गौडपादाचार्यकृत) श्लोक होतेहैं › [जैसे पूर्व गौडपादाचार्यने श्रुत्यर्थके प्रकाशक श्लोक रचेहैं, तैसे पश्चात् भी उक्त आचार्यकृत श्लोक श्रुत्यर्थ विषे संभवे हैं, यह कहते हैं] "ओंकारंपादशोविद्यात्पादामात्रानसंशयः" ‹पादही मात्रा हैं, अरु मात्राही पाद हैं, यामें संशय नहीं, ॐकारको पादोंसे जानना › अर्थात् उक्त प्रकारकी तुल्यतासे (विश्वादि) पादही मात्राहैं, अरु (अकारादि मात्राही पादहैं, इस विषय में कुछ भी संशय नहीं, अरु ॐकार (आत्मा) पादों करकेही जानना । अरु "ॐकारं पादशो ज्ञात्वानकिञ्चिदपिचिन्तयेत्" ‹ॐकारको जानके कुछ भी चिन्तन करना नहीं › अर्थात् ॐकार (तुरीय) को पादोंसे (विश्वादि पादोंकी विशेषतासे) जानके (निर्विशेष आत्माको अनुभव करके) दृष्ट अर्थरूप (इसलोकके विषय) अरु अदृष्ट अर्थरूप (परलोकके विषय) प्रयोजन को चिन्तन करना नहीं क्योंकि (सर्वरूपसे एक ॐकार आत्माही है इसप्रकार का जाननेवाला) कृतार्थ, (ज्ञातज्ञेय) होताहै ताते २४ ॥

गौडपादीय कारिका ॥

२५॥ हे सौम्य! [ॐकारकेध्यानविषेकुशलपुरुषको सर्वद्वैतके अपवाद करनेवाले ॐकारके सम्यक् ज्ञानसेही कृतार्थता होती है, इसप्रकार कहा। अब तिस ॐकारके ज्ञानसे रहित अरु परके उपदेशमात्रको आश्रय करनेवाले पुरुषके अर्थ ध्यानकी कर्तव्यता कहते हैं] "युञ्जीतप्रणवेचेतःप्रणवोब्रह्मनिर्भयम्" ‹ॐ-

नंतर है। अरु इससे बाह्य अन्य वस्तु नहीं अतएव अबाह्य है। अरु इसको कार्यता नहीं ताते अनपर है। अरु इसका नाश नहीं ताते अव्यय है "सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः" "सैन्धवघनवदितिश्रुतेः" इत्यर्थः २६ ॥

२७॥ हे सौम्य! । सर्व्वस्यप्रणवोह्यादिर्मध्यमान्तस्तथैवच"। (सर्वका आदिमध्य पुनः तैसेही अन्तॐकारहै) अर्थात् जैसे माया का। किसी शिल्पी आदि मायावी रचित। हस्ति, रज्जुकासर्प, मृग तृष्णाका जल, अरु स्वप्नके पदार्थादिकों का। जो केवल भ्रांतिमात्र अध्यस्तहैं। आदि मध्य अरु अन्त, मायावी रज्जु ऊपर आदिक अधिष्ठान है। अर्थात् जो वस्तु अध्यस्त (कल्पित) भ्रांतिमात्र होतीहै, तिसका आदि, अन्त, मध्य, अधिष्ठानरूपही होताहै। तैसेहीमिथ्या (भ्रांतिमात्र) उत्पन्न हुये आकाशादिक सर्व प्रपंचका आदि, मध्य, अरु तैसेही अंत, एक ॐकार। तुरीय आत्मा। ही है, (अर्थात् जैसे आकाश में जो नीलिमा की भ्रांति। कि आकाश से इतर नीलिमा कुछ वस्तु है, तिस भ्रांति काल के पूर्व वो नीलिमा आकाशरूप है, ताते उस कल्पित नीलिमा की आदि आकाश है, अरु आकाश अरु तिस विषे अध्यस्त नीलिमा तिनका जब यथार्थ विवेक होता है तब उस अध्यस्त नीलिमा का परिणाम आकाशरूप होनेसे उसनीलिमाका अन्त भी आकाशरूपहै, अरु जब वो नीलिमा अपने आदि अन्तमें आकाशरूप है तब अपनी पृथक् सत्ता के अभावसे अपने भ्रांतिरूप से वर्त्तमान कालमें भी आकाशरूप है ताते उसका मध्य भी आकाशरूप है, इसप्रकार आकाश में अध्यस्त नीलिमा तीनोंकाल अध्यस्तरूप है, तैसेही आकाशादि सर्व प्रपंच एक चैतन्य आत्मा विषे अध्यस्त होनेसे तीनोंकाल सोईरूप है। अरु "। एवंहिप्रणवंज्ञात्वाव्यश्नुतेतदनन्तरम्"। (ऐसेही ॐकारको जानके तिसके अनन्तर प्राप्तहोताहै) अर्थात् ऐसेही मायावी रज्जु आदिक स्थानी ॐकार (तुरीयआत्मा) को जानके तिसके अनन्तर (तिसही

प्रणवोहीश्वरंविद्यात्सर्वस्यहृदिसंस्थितम् । सर्व्वव्यापिनमोंकारंमत्वाधीरोनशोचति २८ ॥

क्षणसे) तिस परमार्थ वस्तु के आत्मभावको प्राप्त होताहै "ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति" २७ ॥

२८. हे सौम्य ! "प्रणवंहीश्वरंविद्यात्सर्वस्यहृदिसंस्थितम्, सर्वव्यापिनं" (सर्वकेहृदयविषे स्थितईश्वररूप ॐकारको सर्वव्यापी जानना) अर्थात् सर्व प्राणियों के समूह के स्मरणरूप वृत्ति के आश्रय हृदय विषे स्थित ईश्वररूप ॐकारको 'आकाशवत् सर्वव्यापी जानना । अरु "ॐकारंमत्वाधीरोनशोचति" (धीर पुरुष ॐकारको मानके शोचता नहीं) अर्थात् (सर्व प्राणियों के हृदय विषे आकाशवत् महासूक्ष्म चैतन्य सर्वव्यापी जो आत्मा तिसको) बुद्धिमान् पुरुष असंसारी (जाग्रदादि स्थान अरु तिनके धर्म्मादिकोंसे असंग अलिप्त, सदाशुद्ध बुद्धि मुक्त स्वभाव) मानके शोच करता नहीं । क्योंकि उक्तप्रकारके आत्मा विषयक जो अज्ञान सोई अपने विषे जन्ममरणादि क्लेशसे जन्यशोक का निमित्त तिसका आत्माके सम्यक् ज्ञान से अभाव होताहै ताते "तरतिशोकमात्मविदिति" (आत्मवेत्ता शोककोतरता है) २८ ॥

२९. हे सौम्य ! [अबतुरीयभाव को प्राप्तहुये ॐकार को जो सम्यक्प्रकार जानताहै तिसकी प्रशंसाकरते हैं] "अमात्रोऽनन्तमात्रश्चद्वैतस्योपशमःशिवः" (अमात्रहै, अनन्तमात्रहै, उपशमरूप है, शिवरूपहै,) अर्थात् (ॐकारकालक्ष्य) अमात्र(तुरीयपद,है,अरु जिसकरके ॐकारका परिमाण कियाजाय ऐसा जो परिच्छेद, सो कहिये मात्रा । सो उक्त लक्षणवाली मात्रा हैं अनन्त जिसकी ऐसा जो ॐकार सो अनन्तमात्र है । अर्थात् इस आत्माका एतनापना (यह आत्मा एतना है, इसप्रकारका एतनापना) परिच्छेद करनेको शक्य नहीं, अरु द्वैतका उपशमरूप है (अर्थात् सर्व द्वैतका उपशमआत्मरूप है) अरु ऐसा होनेसेही शिवरूपहै।

अमात्रोऽनन्तमात्रश्चद्वैतस्योपशमः शिवः । ॐ का
रोविदितोयेनसमुनिर्नैतरोजनः २९ ॥

इति मांडूक्योपनिषदर्थाविष्करणपरायांगौडपादीयकारिकायां
प्रथममागमप्रकरणंपूर्णम्ॐतत्सद्धरिः ॐ ॥

इसप्रकार व्याख्यान किया "। ॐकारोविदितोयेनसमुनिर्नैतरोज नः " (ॐकार जिसकरके विदित हुआहै सो मुनिहै इतर नहीं? अर्थात् ॐकार जिसको सम्यक्प्रकार ज्ञातहुआ है सोई परमार्थ तत्त्वका मनन करता मुनि है, इससे इतरजन मुनि नहीं २९ ॥

इति श्रीमांडूक्योपनिषद्मूलसहितगौडपादीयकारिकाप्रथमा
ऽऽगमप्रकरणभाषाभाष्यपूर्णम् ॐ तत्सद्धरिः ॐ ॥

अथ गौडपादाचार्य्यकृतकारिकायांवैतथ्याख्यद्वितीय
प्रकरणंभाषाभाष्यं प्रारभ्यते ॥ २ ॥

१ हे सौम्य ! [प्रथम प्रकरणविषे आगमकहिये श्रुति तिसकी मुख्यता करके अद्वैतको प्रतिपादन करनेवाले आचार्य ने तिस (अद्वैत) के विरोधी द्वैतका मिथ्यापना (श्रुतिके) अर्थ से कहा अव तिस (अद्वैतके विरोधी) द्वैतका मिथ्यापना 'यद्यपि सर्व में प्रधानजे श्रुति तिसके प्रमाणसे कहाहै, तथापि युक्तिकी मुख्यता से भी (द्वैतका मिथ्यापना) जानने को शक्य है । इसप्रकार देखावने के अर्थ (अर्थात् विचारवानों के मध्य प्रकट करणार्थ) द्वितीय प्रकरणको प्रकट करतेहुये, आदि विषे प्रपंचके मिथ्यापने में स्वप्नके दृष्टान्तकी सिद्ध्यर्थ तिस स्वप्नके मिथ्यापनेविषे (अर्थात् जिसवस्तुको दृष्टान्तप्रमाणसे, सत्यवा असत्य, सिद्ध करनी है, तहां प्रथम उस वस्तुके दृष्टान्तकी, सत्यता वा असत्यताका सिद्ध करना अवश्य है एतदर्थ सर्व प्रपंचके मिथ्यापने के सिद्ध करने में दृष्टान्तप्रमाण जो स्वप्न तिसकी असत्यता की सिद्ध्-

ॐअथवैतथ्याख्यंद्वितीयंप्रकरणम् ॥

ॐवैतथ्यंसर्व्वभावानांस्वप्नआहुर्म्मनीषिणः । अन्तःस्थानात्तुभावानांसंवृतत्वेनहेतुना १ ॥

र्थ । युक्ति सहित वृद्धपुरुषोंकी संमतिको कहते हैं] " ज्ञाते द्वैतं न विद्यत " इस । वाक्यवाले । पच्चीसवें श्लोक विषे " एकमेवाद्वितीयम् " । इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे, जो पूर्वद्वैतका मिथ्यापनाकहा, सो आगममात्र । अर्थात् श्रुतिकी प्रधान प्रामाण्यता से व्याप्त । है, युक्तिसे सिद्ध नहीं, परन्तु तिस शास्त्रकरके ज्ञात हुये अर्थ । द्वैतके मिथ्यापने । विषे युक्तिकी प्राधान्यतासेभी द्वैत का मिथ्यापना जानने को योग्य है । क्योंकि प्रमाणों की आधिक्यतासेनिश्चयहुई वस्तुविषे संशयरहेनहीं ताते । द्वितीयप्रकरण का आरंभकरते हैं " । वैतथ्यंसर्व्वभावानांस्वप्नआहुर्म्मनीषिणः" । (बुद्धिमान् स्वप्नवत् सर्व भावपदार्थों के असत्यपने को कहते हैं ? अर्थात् । प्रत्यक्षादि । प्रमाणोंके ज्ञातकरके कुशल जे । श्रोत्रिय अरुब्रह्मनिष्ठत्व उन उभयलक्षणों करके युक्त । बुद्धिमान् पुरुषहैं सो । स्वप्न विषे उपलभ्यमान (अनुभव किये जे वाह्य के घटादि सर्व पदार्थ, अरु अन्तर । अन्तःकरण के सुखादिक । सर्व पदार्थोंके असत्यपने को कहते हैं । अरु तिनके असत्यपने विषे हेतुको कहते हैं " । अन्तःस्थानात्तु भावानां संवृतत्वेन हेतुना " (सर्व पदार्थोंको 'शरीरके, मध्यरूपस्थान वाले होने से ? अर्थात् जिसकरके स्वप्न विषे हस्ति पर्वतादि सर्व पदार्थ । कि जिनका शरीरके भीतर समाना किसीप्रकार भी संभवे नहीं सो । शरीरके भीतरही प्रतीत होते हैं, । 'उस अवस्थामें, शरीरसेवाहर नहीं, एतदर्थ सो सर्व (स्वप्नकेपदार्थ) मिथ्या होनेकोही योग्य हैं । शंका । ननु, अन्तर्गृहादिकों के भीतर प्रतीयमान घटादिकों के हुये, यह उक्त हेतु व्यभिचारी होवेगा, । यह आशंकाकरके । समाधान । कहते हैं । शरीरान्तर संकुचित स्थानवाले होनेरूप

अदीर्घत्वाच्चकालस्यगत्वादेशान्नपश्यति । प्रति
वुद्धश्चवैसर्व्वस्तस्मिन्देशेनविद्यते २ ॥

हेतुसे। अरु जो देहान्तर आवृत नाड़ियाँहैं तिनविषे पर्वतहस्ति आदिकों का सद्भाव नहीं अरु जव देह विषेही पर्वतादिक नहीं तव देहान्तर्गत जो "ता वाअस्यैताहितानाम नाड्यो यथाक्लेशः सहस्रधा भिन्नस्तावताऽणिम्नातिष्ठन्ति, इत्यादि" इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे ' खड़ेकेशके सहस्रवें भागप्रमाण अतिसूक्ष्म नाड़ियां। जोकि स्वप्नरूप भ्रान्ति दर्शनका स्थानहै। हैं तिनविषे पर्वत हस्ति आदि कहांसे होवेंगे ' किन्तुकहींसेभी कदापिनहीं। अतएव स्वप्नके पदार्थ। अपने होनेयोग्य। देश (स्थान) से रहित होनेसे। अर्थात् जिनमहा सूक्ष्मनाड़ियों में स्वप्न होताहै तिनमें वाह्यके परमाणुका भी प्रवेशवनेनहीं तव वाह्यके पर्वत सागर वहां कैसे समायँगे किन्तु कदापि नहीं, ताते वहां स्वप्नके पदार्थोंके होनेयोग्य स्थानके अभावसे। रज्जु सर्पादिकोंवत् असत्यहीं होनेको योग्यहैं १ ॥

२ हे सौम्य!। शंका। ननु,स्वप्नविषे देखनेयोग्यपदार्थोंकाशरीरके भीतर आवृत कहिये संकुचित 'तंग, स्थानहै यह कथन असिद्धहै, क्योंकि पूर्वके देशोंमें सोयाहुआ पुरुष उत्तरके देशोंविषे स्पप्नोंको देखहुयेवत् देखता है। यह आशंका करके :समाधान; कहतेहैं,। पूर्वादिकके देशमें सोयाहुआपुरुष। शरीरसेवाह्य। उत्तरादिकोंके। अन्यदेशोंमेंजायके स्वप्नोंको देखता नहीं, किन्तु शरीरके भीतरही। अर्थात् पूर्वदिशाके किसी एक देशविषे सोया पुरुष जो उत्तरदिशाके किसी एकदेश विशेष सहित वहांके पदार्थोंको स्वप्नविषे देखताहै सो शरीरसे वाह्यके उपदेशमेंजायके स्वप्नको नहीं देखता, किन्तु 'जैसे स्वप्नमें शरीरान्तर जिनवस्तुओं के स्थानके अभावसे भी 'समुद्र, पर्वत, हस्ति, आदिक पदार्थों को भ्रांतिकरके वा जाग्रत्के अध्यास संस्कार करके देखताहै तैसेही उसदेशको अरु पदार्थोंको देहान्तरही देखताहै। अरु जिसकरके

सोयाहुआ पुरुष, तत्कालही देहके (जहां सोयाहै) देशसे सौ योजनके अन्तरायवाले अरु मासमात्रके कालकरके प्राप्तहोने योग्य देशोंविषे स्वप्नोंको देखहुयेवत् देखताहै । अरु उस देशकी प्राप्ति अरु वहांसे पुनः आगमनके योग्य दीर्घकालहै नहीं ।अर्थात् जिसकरके सोयाहुआ पुरुष जाग्रत्की निवृत्तिके तत्कालही स्वप्न को देखता है तहां जिसदेशमें सोयाहै तहांसे शतावधि योजनोंके अन्तराय (दूर) वाले,अरु एकमासदिवसकी अवधिसेभी अधिक दिवसोंके कालसे प्राप्तहोनेवाले, देशोंको अरु वहां के पदार्थोंको जाग्रत्मेंदेखहुयेवत् देखता है । परन्तु उस स्वप्नमें जिस दूरस्थ देशको देखताहै सो जहां सोयाहै तहांसे अतिदूरहै,अरु तिसदेशकी प्राप्त अरु वहांसे आगमन । अर्थात् स्वप्नमें जिसदूरदेशको देखता है तहां जाने के अरु वहांसे स्वदेशमें आवने । योग्य जो आपेक्षव दीर्घकाल सोहै नहीं,क्योंकि जाग्रत्की निवृत्तिके क्षणही स्वप्नक देखताहै अरुस्वप्नकी निवृत्तिकेक्षणही जिसदेशमें सोयाहै तिसही स्थानमें जाग्रत् होताहै, । एतदर्थ, "। अदीर्घत्वाच्चकालस्य गत्वा देशान्न पश्यति "। (कालकी अदीर्घतासे देशोंविषे जायके देखता नहीं) अर्थात् । वाह्यकेदूर देशको जाय अरु वहांसे पुनः स्वदेश में आवे एतना । दीर्घकाल न होनेसे स्वप्नको देखनेवाला पुरुष अपने सोवने से अन्य देशमें जायके स्वप्नको देखता नहीं। किम्वा "। प्रतिबुद्धश्चवैसर्वस्तास्मिन्देशेनविद्यते "। (जाग्रत् को प्राप्तहुये को निश्चय करके तिस देश में कुछ भी विद्यमान नहीं) अर्थात् स्वप्नका द्रष्टापुरुष । जिस देशको स्वप्नमें देखता है । तिस स्वप्न दर्शनके देश विषे निश्चय करके प्रबोध (जाग्रत) को पायाहुआ है नहीं । अर्थात् जो कदापि स्वप्नका द्रष्टापुरुष अन्यदेश विषे जायके स्वप्नको देखता होय तो जिस देशविषे जायके स्वप्न देखे तिसही देश विषे प्रबोध (जागरण) को प्राप्त हुआ चाहिये, परन्तु सो होता नहीं, । किन्तु जिस देश विषे सोवता है तहां ही जागता है । किम्वा रात्रि विषे [शरीर

के अन्तरही स्वप्नका देखना होता है, इस प्रकार सिद्धहुये [दूरदेश के गमनागमन] योग्य काल के अभाव से स्वप्न का मिथ्यापना है, इस प्रकार कथन किये अर्थका वर्णन करते हैं, यहां यह अर्थहै कि, यद्यपि [वो स्वप्नका द्रष्टापुरुष] रात्रिविषे सोवता है, तथापि दिवस में [सूर्यादि पदार्थ कि जिनका रात्रि में सर्वथा असंभव है] देखे हुयेवत् देखता है । अरु सोयाहुआ चक्षुरादि इन्द्रियों के संकोच हुये भी रूपादि विषयों को देखता है, अरु सोयाहुआ भी विचरता है [अर्थात् जाग्रत्की ज्ञानेन्द्रिय अरु कर्मेंद्रियों के उपराम हुये भी स्वप्न में उभय इन्द्रियों के व्यापारको करता है] अरु यद्यपि वो पुरुष सहकारियोंसे रहित 'अकेला', सोवता है, तथापि वहुत से [सहचारियों के साथ मिलाहुआ स्वप्न में स्वप्नके पदार्थों को देखता है । एतदर्थ [देशान्तरके गमनागमन] योग्य [दीर्घ] कालके, अरु [उभय] इंद्रियोंके, अरु सहकारियोंके [जो दर्शनादिकोंकी मुख्य सामग्रीहैं] अभाव हुये भी [जो दूर देशादिरूप पदार्थों को देखता सुनता लेता देता आवताजाता आदिक व्यापार होता भासता है, ताते इस अनुमान लक्षणसे भी [स्वप्नका मिथ्यापना सिद्ध है] सोयाहुआ पुरुष दिवसवत् [सूर्यादि] पदार्थों को देखता है, अरु वहुतों के साथ मिलता है । अरु [जो कदापि शरीर से वाह्य निकलके स्वप्न में किसी से मिलताहोय तो [जिनसे मिलता है तिन्होंकरके जाग्रत् कालविषे पहिचाना चाहिये, परन्तु उसकरके पहिचाना जातानहीं [क्योंकि जो सोयाहुआ पुरुष शरीरके वाह्यदेशमें स्वप्नविषे मिलाहोय तो ['आज मैंने तुझको अमुक स्थानविषे देखाथा, इस प्रकार तिसपुरुष ने [कि जिसके साथ स्वप्नका द्रष्टा स्वप्नमें मिला है] कहना चाहिये, परन्तु इस प्रकार कोई किसीसे कहता नहीं । अतएव स्वप्नविषे अन्यदेशको जातानहीं ॥ हे सौम्य ! यहपुरुष स्वप्नविषे जिनपदार्थोंको देखता है सो चिरकाल तैसाही न रहके अति शीघ्र अन्यभावको प्राप्त

अभावश्चरथादीनांश्रूयतेन्यायपूर्वकम् । वैतथ्यंतेनवैप्राप्तंस्वप्नआहुःप्रकाशितम् ३ ॥

हुआ देखताहै । अर्थात् प्रथम मनुष्यको देखताहै, देखतेही देखते तिसही क्षणमें उसही को वृक्षादिरूपसे देखने लगता है, अरु मथुरादि देशोंको देखता २ उसही क्षणमें उसको काशी आदिक देशोंको देखताहै वा मिश्रित वा विपरीत देशकाल ग्रामादिकों को देखताहै, तैसा बाह्यका देशादिक अति अल्पकालमें अन्यथा भावको पावते नहीं, मनुष्य वृक्षाकार होते नहीं । इत्यादिक स्वप्नके अरु बाह्यके देशकाल वस्तु आदिकों में व्यभिचार तारतम्यताके देखने से भी, अरु चिरकालके मृतकहुओं कों भी स्वप्नमें देखनेसे कि जिनका उस स्वप्नकालमें बाह्यहोना सर्वथा असंभव है, यह स्पष्ट सिद्धहै कि स्वप्नकाद्रष्टा शरीर के बाह्यके देशोंमें जायके स्वप्न देखता नहीं २ ॥

३ ॥ हे सौम्य ! इस अग्रिम कहनेके हेतुसेभी स्वप्नविषे देखने योग्य पदार्थ सर्व मिथ्या है । क्योंकि " अभावश्चरथादीनांश्रूयते न्यायपूर्वकम् " (रथादिकों का अभावन्यायपूर्वक सुनते हैं) अर्थात् जिसकरके स्वप्नविषे देखने योग्य (देखेहुये) जे रथादिक तिनका अभाव " नतत्ररथानरथयोगानपंथानोभवति, इत्यादि श्रुतिः " (तहां रथनहीं, रथमें योजना करने योग्य अश्वचक्रादि नहीं, अरु रथके मार्गभी नहीं होते) इत्यादिक श्रुति करके न्याय (युक्ति) पूर्वक श्रवण करते हैं । अतएव " वैतथ्यंतेनवैप्राप्तंस्वप्नआहुः प्रकाशितम् " (तिससे स्वप्न विषे प्राप्तहुआही मिथ्यापना प्रकाशित किया कहते हैं) अर्थात् तिस । स्वप्नद्रष्टा के । शरीर के मध्य । महासूक्ष्म । नाड़ीरूप स्थान विषे संकोचको प्राप्तहोने (स्थानके अभाव) आदिक हेतु से स्वप्न विषे प्राप्त हुआही जो मिथ्यापना, तिसको अनुवाद करने वाली अरु स्वप्नविषे आत्माके स्वयंज्योतिपनेके प्रतिपादनविषे तत्पर जो

अन्तस्थानात्तुभेदानांतस्माज्जागरितेस्मृतम्। यथा तत्रतथास्वप्नेसंवृतत्वेनभिद्यते ४॥

यह बृहदारण्यक उपनिषद् सम्बन्धी श्रुतिहै, तिसने प्रकाशित कियाहै, इसप्रकार ब्रह्मवेत्ता कहते हैं ३॥

४ हे सौम्य! [उक्त रीतिसे स्वप्नरूप दृष्टान्तके (असत्पनेके) सिद्धहुये, फलित अर्थरूप अनुवादको कहतेहैं] "अन्तस्थानात्तु भेदानां तस्माज्जागरितेस्मृतम्। यथातत्रतथास्वप्ने संवृतत्वेन भिद्यते" (जैसे तहां स्वप्नमें है, तैसे (जाग्रत् विषे भीहै) ताते जाग्रत्विषे जान्या है, भेदको प्राप्तहुये को संकोच को प्राप्तहोने करके भेदको पावताहै ; अर्थात् जैसे तिस स्वप्नविषेहै, तैसेही तिस जाग्रत्विषे भीहै, तस्मात् जाग्रत्विषे भी तैसेही जान्याहै। परन्तु स्वप्न विषे जाग्रत्के पदार्थोंसे भेदको प्राप्तहुये पदार्थोंको शरीरके मध्य (सूक्ष्मनाड़ी) रूप स्थानवाले होनेसे जाग्रत्से स्वप्न भेदको पावताहै॥ इसका यह अभिप्राय है कि जाग्रत्विषे दृश्य पदार्थोंको (यावत् इन्द्रियादिकोंका विषयहै तिनसर्वको) मिथ्यापनाहै, यह तो प्रतिज्ञाहै, क्योंकि दृश्य (इन्द्रियादिकों का विषय) हैं ताते। यहहेतुहै। अरु, स्वप्नविषे सर्व दृश्य पदार्थोंवत्, यह दृष्टान्तहै अरु जैसे तिस (स्वयोग्य स्थानके अभाव वाले) स्वप्नविषे (देखेहुये वा देखने योग्य) दृश्य पदार्थोंका मिथ्यापनाहै, तैसे जाग्रत्विषे दृश्यपना (दृश्यपदार्थोंको मिथ्यापना) समानहीहै, यह हेतुका उपनयहै। एतदर्थ जाग्रत्विषे भी मिथ्यापना जान्याहै यह निगमन है। अरु शरीरके मध्य (सूक्ष्मनाड़ी) रूप स्थानवाले होनेसेअरु संकोचको प्राप्तहोनेकरके स्वप्नविषे दृश्य पदार्थोंका जाग्रत्के दृश्य पदार्थोंसे भेद भासता है। अरु (वास्तवकरके) दृश्यपना अरु मिथ्यापना जाग्रत् अरु स्वप्नविषे तुल्यही॥ (अर्थात् जैसे स्वप्नका दृश्य अपने योग्य स्थान के अभावसे सत्य न होयके केवल भ्रान्तिमात्रही है, तैसेही

स्वप्नजागरितेस्थानेह्येकमाहुर्मनीषिणः । भेदानांहि समत्वेनप्रसिद्धेनैवहेतुना ५ ॥

जाग्रत्का सर्व दृश्य अपने योग्य स्थानके अत्यन्त अभावसे केवल भ्रान्तिमात्रहीहै । क्योंकि एक अद्वैत निराकार परिपूर्ण विज्ञानघन चैतन्यके शिलवत् सर्वत्र सघन अस्तित्वमें तिससे पृथक् रीति स्थानका अभाव है, अतएव जाग्रत् अरु स्वप्न, इन उभय स्थानकास्थूल सूक्ष्म यावत् इन्द्रियादिकोंका विषय दृश्य प्रपंच है सो स्वयोग्य स्थानके अत्यन्तअभावरूप हेतुसे केवल भ्रान्तिमात्रही है । ऐसा ब्रह्मवेत्तोंका निश्चितार्थ है इति सिद्धम् ४ ॥

५ हे सौम्य! "स्वप्नजागरितेस्थाने ह्येकमाहुर्मनीषिणः । भेदानांहिसमत्वेनप्रसिद्धेनैवहेतुना " (भेदोंको प्राप्तहुये को प्रसिद्ध हेतुसे समानता करकेही मननशील स्वप्न अरु जाग्रत् इन उभय स्थानोंको एकसेही कहतेहैं) अर्थात् (परस्पर उक्तप्रकार) भेद को प्राप्तहुये जे जाग्रत् अरु स्वप्नके पदार्थ तिनको ग्राह्य अरु ग्राहक होनेसे दृश्यतारूप प्रसिद्ध हेतुकरके समानता होनेसे, मनीषी (मननशील विवेकी) जनहैं सो, स्वप्न अरु जाग्रत् इन दोनों स्थानों के एक (तुल्य) ही कहतेहैं । यहां [जाग्रत् अरु स्वप्नविषे वर्त्तमान परस्पर भेदवाले पदार्थोंका ग्राह्यपना और ग्राहकपना समानहै । अरु तिस (दृश्यरूप) हेतुसे तिनका मिथ्यात्वकरके समभाव प्रसिद्धहीहै । अरु तिसप्रसिद्धसमभावरूप हेतुकरके विवेकी पुरुषोंको जाग्रत् अरु स्वप्नरूप दोनों स्थानोंकी एकता वांछितहै । इसप्रकार जो पूर्व अनुमान नाम प्रमाण सिद्ध किया, तिसही का "उभयस्थानोंकी एकतारूप, फल इसश्लोक करके कहाहै । इसप्रकार श्लोककी योजनासे देखावते हैं] यह पूर्व सिद्ध प्रमाणका ही फल कहा ५ ॥

६ हे सौम्य! भेदको प्राप्त परस्परमें विलक्षण हुये जाग्रत्विषे जे दृश्यपदार्थ तिनका आदि अरु अन्तविषे अभाव होनेसे अर्थात् या-

आदावन्तेचयन्नास्तिवर्त्तमानेपितत्तथा । वितथैः सदृशाःसन्तोऽवितथाइवलक्षिताः ६ ॥

वत् उत्पत्तिमान् पदार्थहैं सोसर्व अपनी उत्पत्तिसे पूर्व अभावरूपहैं, अरु उत्पत्तिमान् पदार्थको अन्तवालाहोनेके निश्चयसे, सो उत्पत्तिमान् वस्तु अपने अन्तके पश्चात् भी अभावरूपहै। इस कहनेके हेतु सेभी तिनका मिथ्यापनाहै "। आदावन्तेचयन्नास्ति वर्त्तमानेपितत्तथा "। (जो आदिविषे अरु अन्तविषे नहीं है सो वर्त्तमानमें भी तैसाहीहै; अर्थात् जो मृगतृष्णादि वस्तु आदि विषे अरु अन्त विषे नहींहै, सो अपने वर्त्तमान कालविषेभी है नहीं, यह लोकविषे निश्चितहै । अरु "। वितथैःसदृशाःसन्तोऽवितथा इवलक्षिताः "। (मिथ्यासे सदृशहुयेसन्तेभी अमिथ्या (सत्य) वत् जानतेहैं; अर्थात् तैसेही यह भेदको प्राप्तहुये जाग्रत् के दृश्यपदार्थ अपने आदि अन्तविषे अभाव रूपहोनेसे मृगतृष्णा आदिक मिथ्या पदार्थोंसे तुल्यहुये (तुल्य होनेसे) सन्ते मिथ्याहीहैं । तथापि वो अनात्मज्ञानी मूढ़ पुरुषोंकरके सत्यवत् जाने जातेहैं ६ ॥

७ हे सौम्य ! (उक्तार्थपर वादी शंका करताहै)। ननु, स्वप्नके दृश्य पदार्थोंवत् जाग्रत्के दृश्य पदार्थोंकोभी असत्पना कहा सो अयुक्तहै । अरु जाग्रत्के दृश्य जे अन्न पान अरु वाहनादिकहैं, सोक्षुधा तृषा आदिकोंकी निवृत्तिको अरु गमनागमन आदिरूप कार्य (व्यवहार) को करतेहुये प्रयोजन सहित उनको देखते हैं, अरु स्वप्नके दृश्य पदार्थोंको वो प्रयोजन सहितपनाहै नहीं । ताते स्वप्नके दृश्यपदार्थोंवत् जाग्रत्के दृश्यपदार्थोंका असत्पना मनोरथ (कल्पना) मात्रहै । इसप्रकारका जो वादीका कथन सो बने नहीं, क्योंकि "। सप्रयोजनतातेषां स्वप्नेविप्रतिपद्यते "। (तिनकी सप्रयोजनता स्वप्नविषे विरोधको प्राप्तहोतीहै); अर्थात् जिसकरके जाग्रत्विषे उन अन्नपानादिकोंकी जो प्रयोजनसहितताको देखतेहैं सो स्वप्नविषे विरोधको प्राप्तहोतीहै । जैसे स्वप्नविषे

सप्रयोजनतातेषांस्वप्नेविप्रतिपद्यते । तस्मादाद्यंत तत्त्वेनमिथ्यैवखलुतेस्मृताः ७ ॥

अन्नादिक भोजन अरु जलादिक पानकरके आतृप्त हुआ पुरुष भी जब उत्थान (जाग्रत्) को पावताहै तब अपने को क्षुधा तृषाकरके युक्त अतृप्तही मानताहै । तैसेही जाग्रत्‌विषेभी भोजन पानादि करके तृप्त,क्षुधा तृषारहित होयके सोयाहुआपुरुष,तत्काल ही स्वप्नमें क्षुधा तृषादिकरके अति पीड़ित दिनरात्रिविषे जल पान अरु भोजनसे रहित अपने को मानता है । अतएव जाग्रत्‌के दृश्यों का स्वप्नविषेभी विरोध देखाहै (अर्थात् जैसे स्वप्नमें भोजन पानादिकरके तृप्तहुआ पुरुष जब जागताहै तब अपनेको क्षुधातृषा करके युक्तहीदेखताहै ताते यहनिश्चय होताहै कि स्वप्नविषे किया खानपानादि सर्वदृश्य जाग्रतहुये असत्‌ही होताहै, तैसेही जाग्रत् में सम्यक् प्रकार खान पानादिकरके आतृप्तहुआ पुरुष सोवता है तब तत्कालही स्वप्नमें अपने को क्षुधातृषा करके पीड़ित देखता है, तिसकरके यह निश्चयहुआ कि जाग्रत्‌के खानपान तृप्ति स्वप्नवान्‌को असत्यही है । अरु जाग्रत् में जाग्रत् सत्य अरु स्वप्न असत्यहै अरु स्वप्नमें स्वप्नसत्य अरु जाग्रत् असत्य है, ताते इन दोनों की सत्यता असत्यता सापेक्षिक अरु व्यभिचारी है ताते दोनोंही असत्य भ्रान्तिमात्र हैं ताते तिन जाग्रत् के दृश्यों का भी असत्यपना स्वप्नके दृश्योंवत् शंकाकरने के योग्यनहीं।अर्थात् जैसे स्वप्नके दृश्यों के असत्पने में शंका नहीं,तैसेही जाग्रत्‌के दृश्योंके भी असत्‌पने में शंका नहीं, अरु जिनको है तिनको भ्रान्ति है । ऐसा हम मानते हैं. " तस्मादाद्यन्ततत्त्वेन मिथ्यैवखलुतेस्मृताः " (ताते आदि अन्तवाले होने से वे निश्चय करके मिथ्या ही जानने) अर्थात् तिसकरके आदि अरु अन्त करके युक्तपना जाग्रत् अरु स्वप्न इन दोनों विषे समानही है, । ताते तिस आदि अन्तवाले होने करके वे मननशील जाग्रत् के दृश्यों को

अपूर्व्वंस्थानिधर्मोहियथास्वर्गनिवासिनाम् । तानयं प्रेक्षतेगत्वायदैवेहसुशिक्षितः ८ ॥

निश्चय करके मिथ्याही जानते, मानते, कहते हैं ७ ॥

८ हे सौम्य! (पुनः वादी शंकाकरेहै) ननु स्वप्न अरु जाग्रत्के पदार्थोंको तुल्यहोनेसे जाग्रत्के पदार्थोंका जो असत्पना कहा, सो असंगतहै, क्योंकि दृष्टान्तको असिद्धताहै ताते। कैसे कि जाग्रत्विषे देखेहुये ये पदार्थही स्वप्नविषे देखतेहोवें ऐसा नहीं किन्तु स्वप्नविषे अपूर्व पदार्थोंको देखताहै। क्योंकि जिसकरके स्वप्नविषे चारदांतवाले हस्तिपर आरूढ़ अष्ट भुजावाला आपको (देखता) मानताहै, अरु अन्य तीननेत्रवानूपनादिक भी अपने विषे देखता मानताहै। इत्यादि प्रकार अपूर्व (पूर्वनदेखे) को स्वप्नविषे देखताहै, एतदर्थ स्वप्न अन्य असत्यके तुल्य नहीं, किन्तु उक्तरीत्या सत्यही है। याते जागृत् के मिथ्यापने के साधनेविषे जो स्वप्नका दृष्टान्तहै सो असिद्धहै, एतदर्थ स्वप्नवत् जो जागृत् को असत्पना कहा सो अयुक्तहै, । इसप्रकारका जो वादीका कथन सो बने नहीं। क्योंकि, हे वादिन्! स्वप्नविषे देखेहुये पदार्थोंको जो तू अपूर्व मानताहै, सोतो जड़होनेकरके स्वतः सिद्ध नहीं है, किन्तु " अपूर्व्वंस्थानिधर्म्मोहियथास्वर्गनिवासिनाम् " (अपूर्व स्थानीका ही धर्म्म है, जैसे स्वर्गके निवासियोंकाहै) अर्थात् सो अपूर्व स्वप्नके द्रष्टारूप स्वप्नस्थानवाले (तैजसरूप) स्थानीकाहीधर्महै। जैसे स्वर्गकेनिवासी इन्द्रादिकोंका सहस्राक्षपना आदिक धर्महै,तैसे यह अपूर्व स्वप्नस्थानी स्वप्नके द्रष्टाका धर्म है, द्रष्टाके स्वरूपवत् स्वतः सिद्ध नहीं (अर्थात् स्वर्गरूप स्थानको प्राप्तहुयेको वहांका स्थानीपना अरुस्थानके सम्बन्धसे सहस्राक्षपनादि धर्म उसके होतेहैं, अरु जब वो इसलोकरूप स्थानको प्राप्त होताहै तब यहांका स्थानीपना अरु द्विभुजादिक धर्म उसके होते हैं, ताते स्थानके सम्बन्धसे प्राप्तहुये धर्म उस स्थानीके स्वरूपवत्

स्वप्नवृत्तावपित्वन्तश्चेतसाकल्पितन्त्वसत् । बहि
श्चेतोगृहीतंसद्दृतंवैतथ्यमेतयोः ९ ॥

स्वतः सिद्ध न होने से असत् हैं, क्योंकि जब वो स्वर्गकास्थानीय होताहै तब वहां उसके द्विभुजादि धर्म न होयके सहस्रनेत्र चतुर्भुजादि धर्महोतेहैं, अरु जब वो इसलोककास्थानी होता है तब यहां उसके सहस्रनेत्रादि धर्म न होयके द्विभुजादि धर्महोताहै, तातें स्थानमें अरु स्थान सम्बन्धी धर्मोंमें व्यभिचारके होनेसे वे असत्हैं अरु उस स्थानीके वास्तविक स्वरूपमें व्यभिचार न होने से वो सत्यहै । तैसे ही आत्माको स्वप्नकास्थानी होनेसे वहांका अपूर्वदृश्य उसका धर्महोताहै सपूर्व नहीं, अरु जब वो जाग्रत्का स्थानी होताहै तब यहांका सपूर्व उसका धर्महोताहै अपूर्व नहीं, अरु जैसे जाग्रत् स्वप्नरूप स्थानोंका परस्परमें व्यभिचारहै तैसे तिनसम्बन्धी सपूर्व अपूर्व दृश्यरूपधर्मोंमेंभी व्यभिचारहै परन्तु उभय स्थानके स्थानीरूप आत्माके अव्यभिचारी स्वरूपवत् स्वतः सिद्ध न होने से दोनों स्थान अरु तत्सम्बन्धी धर्म दोनों तुल्यही असत्हैं । अरु " तानयं प्रेक्षतेगत्वा यत्रैवेहसुशिक्षितः " (तिनको यह जायके देखताहै जैसेही यहां सम्यक् शिक्षापाया । देखताहै) अर्थात् तिन इसप्रकारके अपने चित्तके विकल्परूप अपूर्व पदार्थों को यह स्थानी स्वप्नका द्रष्टा स्वप्नरूप स्थानविषे जायके देखता है, जैसे यहां लोकविषे शिक्षाको पाया (पुरुष) जो देशान्तरका मार्गहै तिसमार्गसे देशान्तरको जायके तिन (देशान्तरके) पदार्थोंको देखता है, तद्वत् । एतदर्थ रज्जु सर्प अरु मृगतृष्णादिक स्थानीके धर्मका असत्पना है, तैसे स्वप्नविषे देखेहुये अपूर्वदृश्य पदार्थोंको स्थानीका धर्मपनाही है एतदर्थ असत्पना भीहै । तातें स्वप्नके दृष्टान्तका (अर्थात् जाग्रत्के दृश्य पदार्थोंके असत् होने में जो स्वप्नरूप दृष्टान्त तिसके असत्पनेका) असिद्धपना नहीं (किन्तु उसका असत्पना सिद्धही है) ८ ॥

स्वप्नवृत्तावपित्वन्तश्चेतसाकल्पितन्त्वसत् । वहिश्चेतोगृहीतंसद्दृतंवैतथ्यमेतयोः ६ ॥

स्वतः सिद्ध न होने से असत् हैं; क्योंकि जब वो स्वर्गकास्थानीय होताहै तब वहां उसके द्विभुजादि धर्म न होयके सहस्रनेत्र चतुर्भुजादि धर्महोतेहैं, अरु जब वो इसलोककास्थानी होता है तब यहां उसके सहस्रनेत्रादि धर्म न होयके द्विभुजादि धर्महोताहै, ताते स्थानमें अरु स्थान सम्बन्धी धर्मोंमें व्यभिचारके होनेसे वे असत्हैं अरु उस स्थानीके वास्तविक स्वरूपमें व्यभिचार न होने से वो सत्यहै । तैसे ही आत्माको स्वप्नकास्थानी होनेसे वहांका अपूर्वदृश्य उसका धर्महोताहै सपूर्व नहीं, अरु जब वो जाग्रत्का स्थानी होताहै तब यहांका सपूर्व उसका धर्महोताहै अपूर्व नहीं, अरु जैसे जाग्रत् स्वप्नरूप स्थानोंका परस्परमें व्यभिचारहै तैसे तिनसम्बन्धी सपूर्व अपूर्व दृश्यरूपधर्मोंमेंभी व्यभिचारहै, परन्तु उभय स्थानके स्थानीरूप आत्माके अव्यभिचारी स्वरूपवत् स्वतः सिद्ध न होने से दोनों स्थान अरु तत्सम्बन्धी धर्म दोनों तुल्यही असत्हैं । अरु "। तानयं प्रेक्षतेगत्वा यथैवेहसुशिक्षितः ।" (तिनको यह जायके देखताहै जैसेही यहां सम्यक् शिक्षापाया। देखताहै) अर्थात् तिन इसप्रकारके अपने चित्तके विकल्परूप अपूर्व पदार्थोंको यह स्थानी स्वप्नका द्रष्टा स्वप्नरूप स्थानविषे जायके देखता है, जैसे यहां लोकविषे शिक्षाको पाया । पुरुष । जो देशान्तरका मार्गहै तिसमार्गसे देशान्तरको जायके तिन । देशान्तरके । पदार्थोंको देखता है, तद्वत् । एतदर्थ रज्जु सर्प अरु मृगतृष्णादिक स्थानीके धर्मका असत्पना है, तैसे स्वप्नविषे देखेहुये अपूर्वदृश्य पदार्थोंको स्थानीका धर्मपनाही है एतदर्थ असत्पना भीहै । ताते स्वप्नके दृष्टान्तका । अर्थात् जाग्रत्के दृश्य पदार्थोंके असत् होने में जो स्वप्नरूप दृष्टान्त तिसके असत्पनेका । असिद्धपना नहीं । किन्तु उसका असत्पना सिद्धही है। ८ ॥

जाग्रद्वृत्तावपित्वन्तश्चेतसाकल्पितन्त्वसत्।
बहिश्चेतोगृहीतंसद्युक्तंवैतथ्यमेतयोः १०॥

६ हे सौम्य![जाग्रत्विषे देखनेयोग्य पदार्थोंका जो मिथ्यापना है सो तिसविषे सत् अरु असत्के विभागकी प्रतीति से विरुद्ध है यह शंकाकरके तिसका दृष्टान्त से समाधान करते हैं] स्वप्नरूप दृष्टान्तके अपूर्वपने की शंकाका निषेध करके, पुनःजाग्रत् के पदार्थोंकीस्वप्नके (पदार्थोंसे) तुल्यताकोवर्णन करतेहुयेकहतेहैं "स्वप्न वृत्तावपित्वन्तश्चेतसाकल्पितन्त्वसत्" (स्वप्नवृत्ति विषे भी अन्तर तो चित्त से कल्पित असत् है; अर्थात्स्वप्नवृत्ति(स्वप्नावस्था) रूपस्थानविषेभी (शरीरको) अन्तर तो चित्तसे मनोरथ करके कल्पना किया वस्तु तो असत्है, क्योंकि अन्य कल्पना व सङ्कल्पके (उत्थानके) समकालही तिसका अदर्शनहै ताते। अरु "बहिश्चेतोगृहीतं सद्दृतंवैतथ्यमेतयोः" (बाह्य चित्तसे ग्रहण किया असत् है इनका मिथ्यापना देखाहै; अर्थात् तिसही स्वप्न विषे बाह्यचित्तकरके चक्षुरादि इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किया जो घटादि वस्तु सो सत्यहै। असत्य है, इसप्रकार निश्चय किये हुये भी सत् अरु असत्य का विभाग देखाहै। अरु इन अन्तर अरु बाह्य चित्तसे कल्पनाकिये दोनों वस्तुओंका (कल्पित होनेसे) मिथ्यापनाही देखाहै ९॥

१० हे सौम्य! "जाग्रद्वृत्तावपित्वन्तश्चेतसाकल्पितन्त्वसत्" (जाग्रत्की वृत्तिविषे भी अन्तर तो चित्तसे कल्पना तो असत् है; अर्थात् जाग्रत् की वृत्तिरूपस्थानविषे भी अन्तर चित्तकरके कल्पना किया वस्तु तो असत् है। अरु "बहिश्चेतोगृहीतंसद्युक्तंवैतथ्यमेतयोः" (बाहिर चित्तसे ग्रहणकिया सत्है इनका मिथ्यापना ही युक्तहै; अर्थात् तिसही जाग्रत्विषे बाह्यचित्तसेचक्षुरादिइंद्रियों द्वारा ग्रहणकिया घटादि वस्तु सत्है। असत्है इसप्रकार निश्चय कियेहुये भी सत् असत्का विभागदेखाहै। अरु इनसत् अरु असत्

उभयोरपिवैतथ्यंभेदानांस्थानयोर्यदि । एकतान्बु-
द्ध्यतेभेदान्कोवैतेषांविकल्पकः ११ ॥

का मिथ्यापना युक्तहीहै,क्योंकि अन्तर अरुबाह्य चित्तसे कल्पित पनेकी तुल्यताहै ताते १० ॥

११ हे सौम्य![अब सर्वको मिथ्यापनाहोनेसे प्रमाता प्रमाणादिक व्यवहारका असम्भवहोनेसे, पूर्ववादीविशेष शंकाकोकरता हुआ कहे है "। उभयोरपिवैतथ्यं भेदानांस्थानयोर्यदि " (यदि उभयस्थानोविषे भेदोंको मिथ्यापनाही है ? अर्थात् जब जागृत् अरु स्वप्नइन उभय स्थानोंविषे पदार्थोंके भेदोंका मिथ्यापनाही है, तब "। एकतान्बुद्ध्यतेभेदान् कोवैतेषांविकल्पकः " (भेदों को कौनजानेगा अरु तिनका निश्चयकरके विकल्पक कौन होवेगा; अर्थात्, इन अन्तर अरु बाह्य चित्तसे कल्पना किये जे पदार्थोंके भेद तिनको कौनप्रमाताजानेगा अरु तिनका निश्चयकरके वि· कल्प (कल्पना) करनेवाला कौन होवेगा । यहां अभिप्राय यह है कि तिनकी स्मृति [यहां यह अर्थहै कि कार्यकाकर्त्ता जोहै सो पूर्व अनुभवकिये कार्यको स्मरणकरके तिनके सदृश जातिवाले अन्य कार्योंको,इसप्रकार स्मृति अरु अनुभवके आश्रयके आक्षेपसे कर्त्ता का आक्षेपकहनेको इच्छितहै । तैसा होनेसे सर्वके मिथ्यापनेके सिद्धहुये कर्त्ता आदिकोंके व्यवहारका असंभव निवारण करनेको अशक्य होवेगा] अरु अनुभवविषे आश्रय कौन होवेगा, [जो अध्यात्मरूप प्रमाता (बुद्धिविशिष्ट चैतन्य जीव) है अरु जे अधिदैवरूप जगत्का कर्त्ता ईश्वरहै, यह दोनोभी मिथ्याहैं, इसप्रकार अंगीकार करनेसे प्रमाता आदिकोको असत्पना होवेगा, । यह शंकाकरके पूर्ववादी कहताहै । यहां यह अर्थहै कि 'जब प्रमाता या कर्त्ता तुम्होंकरके अंगीकार नहीं कियाहै, तब, तुमको निरात्मभाव (शून्यपना) अभीष्टही होवेगा, परन्तु सो देखनेको शक्य नहीं । उसका देखना अशक्यहै । क्योंकि आत्माविषे । चक्षुरादि।

कल्पयत्यात्मनात्मानमात्मदेहःस्वमायया । सएव बुद्ध्यतेभेदानितिवेदान्तनिश्चयः १२ ॥

करणों [इन्द्रियों] की प्रवृत्तिका असंभवहै, अरु निषेधकरनेवाला ही आत्माहै ताते,] जब उनका कोई भी प्रमाता (प्रमाणकर्त्ता) वा कर्त्ता न मानेगे तब तुमको निरात्म (शून्य) वाद अभीष्ट होवेगा ११ ॥

१२ हे सौम्य ! " कल्पयत्यात्मनात्मानमात्मदेहःस्वमायया " (आत्मारूपी देव अपनेविषे अपनी मायासे आपकरके अपनेको कल्पताहै) अर्थात् [अबसिद्धान्ती कर्त्ता अरु कार्यादिकोंकी व्यवस्थाके असंभवको दूर करताहै] जो आत्मारूपी देव अपनेविषे स्वमायासे आपकरके आपको रज्जु आदिकोंविषे सर्पादिकोंवत् अग्रिम कहनेके भेदके आकारवाला [देह] कल्पताहै । अरु " सएवबुध्यतेभेदानितिवेदान्तनिश्चयः " (सोई ही भेदों को जानताहै ऐसा वेदान्तका निश्चयहै) अर्थात् तैसे सोई [आत्मदेव] तिन भेदोंको जानताहै, इसप्रकारका वेदान्त (उपनिषद् वा ब्रह्मसूत्र) शास्त्रका निश्चयहै । एतदर्थ अनुभवज्ञान अरु स्मृति ज्ञानका आश्रय [आत्मदेवसे] अन्य नहीं । अरु क्षणिकवादियोंवत् अनुभवज्ञान अरुस्मृतिज्ञान निराश्रयनहीं । इत्यभिप्रायः १२॥

१३हे सौम्य! प्रश्न । कौनसंकल्पकरताहुआकिसप्रकारसेकल्पताहै, । तहां । उत्तर । कहते हैं, " विकरोत्यपरान्भावानन्तश्चित्ते व्यवस्थितान्, नियतांश्चवहिश्चित्त एवंकल्पयतेप्रभुः " (प्रभु पदार्थोंको चित्तके अन्तर स्थित नियमित पुनः अनियमितपदार्थोंको नाना करताहै) अर्थात् प्रभु (समर्थ) जो ईश्वर आत्मा है सो बाह्य चित्तवालाहुआ बाह्य अपर ' लोकप्रसिद्ध, शब्दादि रूपपदार्थोंको, अरु अन्य [शास्त्रप्रसिद्ध] वासनारूपसे अन्तर चित्तविषे [मायारूप चित्तके अन्तर] स्थित अस्पष्ट पृथिव्यादि नियमित (स्थिर) अरु विद्युतादिक अनियमित (अस्थिर) पदार्थों

विकरोत्यपरान्भावानन्तश्चित्तेव्यवस्थितान् । नियतांश्चबहिश्चित्तएवंकल्पयतेप्रभुः १३ ॥

को नानाप्रकारसे करताहै । तैसे अन्तर चित्तवालाहुआ मनोरथादिरूप आपविषे स्थित पदार्थोंको [यहां यह अर्थ है, कि बाह्य चित्तवालाहुआ आत्मा बहिर्मुख (बाह्यके व्यवहारयोग्य) पदार्थोंको कल्पताहै । अरु अन्तरचित्तवाला हुआ तिन (बाह्यव्यवहारयोग्य पदार्थों) से इतर आपविषे स्थित मनोरथादि लक्षण रूप व्यवहारके योग्य पदार्थोंको कल्पके पुनः व्यवहारकी योग्यताके अर्थ कल्पताहै । यहां यह कथनकियाहै कि जैसे लोक विषे कुलाल वा तन्तुवाय (वस्त्ररचनेवाला) घट वा पटरूप कार्यके करनेकी इच्छावालाहुआ आदिविषे व्यवहारके योग्य व्यक्तिको (कार्यके आकारको) जानके वा प्रकटकरके, पश्चात् तिसही व्यक्तिको बाहिरके नामरूपकरके सम्पादनकरताहै। तैसेही यह (आत्माख्य) आदिकर्त्ता भी मायालक्षणरूप अपनेचित्त विषे नामरूपकरके अप्रकटरूपसे स्थितहुये सृजनेयोग्य पदार्थों कोप्रथमसृजनेकी इच्छा आकारसे प्रकट करके पश्चात् बाहिर सर्व ज्ञानके साधारण रूपसे सम्पादन करताहै । इसप्रकार प्रपञ्च की कल्पना विषे क्रमका ज्ञान है] बाह्यके योग्य कल्पना करके पुनः व्यवहार की योग्यताके अर्थ कल्पता है १३ ॥

१४ हे सौम्य ! । शंका । ननु, स्वप्नवत् चित्तकरके कल्पित सर्व जाग्रत् का जगत् (है यहअद्यावधि निर्द्धारहुआ नहीं । अरु चित्तसे कल्पित चित्त करके जाननेयोग्य मनोरथादि रूप पदार्थों से, बाह्यके पदार्थोंकी परस्पर जाननेकी योग्यता रूप विलक्षणताहै, एतदर्थ जाग्रत् का स्वप्नवत् मिथ्यापना अयुक्त है, [जैसे स्वप्न विषे देखने योग्य सर्व कल्पित दृश्य वस्तु मिथ्याही अंगीकार करतेहैं, तैसेही जाग्रत् विषे भी देखनेयोग्य सर्व वस्तु चित्तकरके भासमान हैं, इसहेतुसे कल्पित मिथ्या है, ऐसा अद्यावधिनि-

चित्तकालाहियेऽन्तस्तुद्वयकालाश्चयेबहिः । कल्पिताएवतेसर्व्वेविशेषोनान्यहेतुकः १४ ॥

द्वारकिया नहीं, इस विषय में पूर्व्ववादी हेतु कहताहै, । यहां यह अर्थहै कि, आत्माकी अविद्याकरके कल्पित जो चित्त, तिस चित्तकरके प्रथम चित्तकेही अन्तररचित, अरु तत्रही वर्त्तमान मनोरथ (संकल्प) रूप पदार्थ, अरु बाह्यके रज्जुसर्पादिक पदार्थ सो चित्तकरकेही परिच्छेद। भेद।को पावनेयोग्य है। अरु जिस करके वो कल्पनाकालविषेही होनेवाले पदार्थ प्रमाणज्ञान (प्रमाणजन्यज्ञान) के विषयहोते नही, जिसकरके तिनके साथ मन से बाह्य जाग्रत् विषे देखनेयोग्य भावों (पदार्थों) का विलक्षणपना, अरु परस्पर में परिच्छेद्यताके पावने की योग्यता, अरु दोनों कालोंकरके परिच्छिन्न होने करके प्रत्यभिज्ञारूप ज्ञानकी विषयता देखते हैं, तिसकरके जाग्रत् का स्वप्नवत् मिथ्यापना अयुक्त है,] उत्तर। यह शंका युक्तनहीं, इसप्रकार मूल के श्लोक के अक्षरों से उत्तर कहते हैं, चित्तके। कल्पना। काल से इतर अन्य परिच्छेद करनेवाला काल नहीं है। जिनका। ऐसे जे चित्त से परिच्छेद करनेयोग्य। अर्थात् चित्तकी कल्पना काल विषेही जानने के योग्य। पदार्थ सो [जो मनके अन्तर मनोरथरूप पदार्थ हैं, सो चित्तकाल वाले होते हैं, तिनके चित्त कालको स्पष्टकरते हैं] चित्तकालवाले कहते हैं, अरु जो परस्पर परिच्छेद करने (पृथक् २ जानने) योग्य पदार्थ हैं तिनको दोनों कालवाले कहते हैं [यहां यह अर्थ है कि, जो पदार्थ मन से बाह्य दीखते हैं सो भेदकालवाले हैं। क्योंकि काल का जो भेद सो कहिये भेदकाल, सो भेदकाल जिनकाहै ऐसे जे पदार्थ तिनको भेदकालवाले कहते हैं। इस व्युत्पत्ति से। ताते सो पूर्वके अन्यकालकरके अरु पीछेके अन्यकाल करके परिच्छेद को प्राप्त होने योग्य हैं। अरु भिन्नकाल से परिच्छिन्न होने करके

"सो यह है" इस आकारवाले प्रत्यक्ष ज्ञानकी सामग्री सहित संस्कारसे जन्य प्रत्यभिज्ञा ज्ञानके विषय होते हैं] जैसे [जाग्रत्के पदार्थोंकी प्रत्यभिज्ञा ज्ञानकी विषयताको उदाहरण करके स्पष्ट करते हैं] देवदत्त गौके दोहन पर्यन्त स्थित होताहै, सो यावत् स्थितहोताहै तावत् गौको दोहन करताहै, अरु यावत् गौको दोहनकरताहै तावत् स्थितहोताहै, अरु तितने कालपर्यन्त यहहै, अरु एतने कालपर्यन्त सो है। इसप्रकार बाह्य के पदार्थोंको परस्पर में परिच्छेदकपनाहै, एतदर्थ उनको उभयकाल वाले कहते हैं। एतदर्थ "। चित्तकालाहियेऽन्तस्तु द्वयकालाश्च येबहिः, कल्पिताएवतेसर्वे विशेषोनान्यहेतुकः "। [जो अन्तर विषे तो चित्तकालवाले पदार्थ हैं अरु बाह्य उभयकालवाले पदार्थ हैं, सो सर्व कल्पितही हैं, विशेष अन्यहेतुवाला नहीं; अर्थात् जो अन्तर (स्वप्न) विषे तो चित्तकालवाले पदार्थ हैं, अरु बाह्य (जाग्रत्विषे) दोनों कालवाले पदार्थ हैं, सो सर्व [जाग्रत्स्वप्न के] कल्पितही हैं। बाह्यका दोनोंकाल करके युक्ततारूप जो विशेषहै सो कल्पितपने से अन्य हेतुवाला नहीं, क्योंकि कल्पित विषे भी तिसप्रकारके विशेषका सम्भवहै ताते, अतएव यहां जाग्रत् विषे भी स्वप्नका दृष्टान्त स्पष्ट होताही है [इसका यह रहस्यहै कि जो कल्पनाकालविषे होनहार पदार्थ मनके अनन्तर वर्त्तते हैं, अरु जो प्रत्यभिज्ञा ज्ञानके विषयहोने करके पूर्वोत्तर कालविषे होनेवाले अरु बाहरही व्यवहारके योग्य देखियेहैं, सो सर्वकल्पितहुये मिथ्याही होनेके योग्यहैं। अरु प्रत्यभिज्ञा ज्ञान की विषयतारूप जो विशेषहै सो वस्तुके कल्पितपने का क्रियाहै, क्योंकि स्वप्नादिकोंकी कल्पित वस्तुविषे भी "सो यहहै" इस प्रकार प्रत्यभिज्ञा ज्ञानकी विषयता देखतेहैं ताते १४ ॥

१५हेसौम्य! "। अव्यक्ताएवयेऽन्तस्तु स्फुटाएवचयेबहिः। कल्पिताएवतेसर्वे "। [जो अन्तर अस्पष्टहीहै, अरु जो बाह्यही है, सो सर्व कल्पितही है; अर्थात् जो मनके अन्तरभावनारूप हो-

अव्यक्ताएवयेऽन्तस्तुस्फुटाएवचयेबहिः । कल्पिता एवतेसर्वेविशेषस्त्विन्द्रियान्तरे १५ ॥

ने से अस्पष्ट पदार्थही हैं, अरु जो मनके बाह्य जो प्रतीयमान पदार्थ स्पष्टहोतेहैं सो सर्व मनके स्फुरणमात्र रूपहोनेसे कल्पितहीहैं। अरु "। विशेषस्त्विन्द्रियान्तरे "। ; विशेष इन्द्रियोंके भेदके कियेहैं ; अर्थात् स्पष्टतारूप विशेष तो अन्तर अरु बाह्य इन्द्रिय भेदकेहुये। इन्द्रियोंके भेदरूप निमित्तवाला। है, तिसविषे मिथ्यापना वा अमिथ्यापना उपयोगको प्राप्तहोता नहीं ॥ इसका यह भावार्थहै कि, यद्यपि मनके अन्तर मनकी वासनामात्रसे प्रकटहुये पदार्थोंका अस्पष्ट (अप्रकट) पनाहै, वा मनसे बाह्य अरु चक्षुरादि इन्द्रियोंके अन्तर पदार्थोंका स्पष्टपना है यह विशेषहै। तथापि यह विशेष पदार्थोंकी सत्यता कियानहीं क्योंकि स्वप्नविषेभी तैसेही देखते हैं। किन्तु यह विशेष इंद्रियोंके भेदोंका कियाहै, एतदर्थ जाग्रत्‌के पदार्थ भी स्वप्नके पदार्थवित् कल्पितहीहैं। इति सिद्धम्, यह सिद्धहुआ १५ ॥

१६ हे सौम्य!। प्रश्न। ननु, बाह्य अरु अन्तरके पदार्थों की 'परस्परके निमित्त अरु नैमित्तिक होनेकरके' कल्पनाविषे कारण क्याहै। उत्तर। तहां कहतेहैं, आत्मा जो है सो अपनीमायाकेवश से सर्वको कल्पताहुआ आदिविषे 'मैंकरताहौं' मेरेकोसुखदुःखहै, इसलक्षणवाले "। जीवंकल्पयतेपूर्व्वं ततोभावान्पृथग्विधान् "। ; जीवको पूर्व कल्पता है तिसके अनन्तर 'पृथक् २ भावों को 'कल्पताहै ; अर्थात्,उक्तलक्षणवाले, जीवोंको 'रज्जुविषेसर्पवत्। " सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म " इत्यादि। श्रुतिउक्त लक्षणवालेही शुद्ध आत्माविषे विशिष्टरूपसे पूर्व कल्पता है, अतएव तिसके अर्थहोने करके 'क्रिया, कारक, फलके भेदसे प्राणादिक नानाविध बाह्यके अरुअन्तरकेपदार्थोंको कल्पताहै॥ प्रश्न॥ तिस कल्पनाविषे क्याहेतु है ॥ उत्तर ॥ तहां कहते हैं, "।बाह्यानाध्यात्मिकांश्चैवयथाविद्यस्त-

जीवंकल्पयतेपूर्वंततोभावान्पृथग्विधान्। बाह्यानाध्यात्मिकांश्चैवयथाविद्यस्तथास्मृतिः १६॥

थास्मृतिः १६ जैसी विद्या वाला है तैसी स्मृतिवाला होता है, तिसकरके, बाह्य अन्तरके पदार्थोंको (सृजता है) अर्थात् जो यह आप कल्पितहुआ जीव सर्व कल्पनाके करनेविषे अधिकारी है सो जैसी विद्या (विज्ञान) वालाहै तैसीही स्मृति वाला होताहै। [यहांयह अर्थ है कि, अन्नपानादि उपभोगके होते तृप्ति आदिक होतीहै, अरु तिन (उपभोग) के न होनेसे होतेनहीं। इस अन्वय व्यतिरेक रूप युक्तिसे भोजनादिक हेतहै। ऐसी कल्पना का विज्ञान उपजता है, ताते पुष्ट्यादिक फलहै, ऐसीकल्पना का विज्ञान उपजताहै, तिस करके अन्य किसी दिवस में कथन किये दोनों भी हेतु अरु फलकी स्मृति होती है, तिस करके फलके साधनसे असमान (भिन्न) जातिवाले अन्य साधनविषे कर्त्तव्यता का विज्ञान होताहै, तिससे वांछित तृप्ति आदिक फलकी प्रयोजनता विषे पाकादिक क्रिया अरु तिसके कारक (सामग्री) तंडुलादिक अरु तिनके फल अन्नकी सिद्धि आदिक के सम्बन्धी विशेष विज्ञानादिक होते हैं, तिसकरके हेतु आदिकों की स्मृति होती है, ताते तिस साधनका अनुष्ठान होताहै. ताते पुनः फल होताहै। इस क्रम करके परस्पर हेतुमद्भावसे कल्पना होतीहै,] इस करके हेतुकी कल्पना के ज्ञानसे फलका ज्ञानहोता है, ताते हेतुके फलकी स्मृति होतीहै, तिसकरके तिसकाज्ञान अरु तिसके अर्थ क्रिया कारक, अरु तिसकेफलके भेदकेज्ञान होतेहैं, तिनकरके तिनकी स्मृति होतीहै, अरु तिस स्मृति से पुनः तिसके ज्ञानहोतेहैं तिन ज्ञानसे तिनकी स्मृति होती है अरु तिस स्मृति से पुनः तिनके ज्ञान होतेहैं। इसप्रकार बाह्य अरु अन्तरके पदार्थोंकोपरस्पर निमित्त अरु नैमित्तिकभावसे अनेक प्रकारकल्पता है १६॥

१७ हे सोम्य! तिसपूर्वोक्त श्लोकविषे जीवकी कल्पना सर्वक

अनिश्चितायथारज्जुरन्धकारेविकल्पिता । सर्पधारादिभिर्भावैस्तद्वदात्माविकल्पितः ॥ १७ ॥

ल्पनाका मूलहै, इसप्रकारकहा। सोई जीवकी कल्पना किसनिमित्तवाली है इसको अब दृष्टान्तकरके प्रतिपादन करतेहैं "। अनिश्चितायथारज्जुरन्धकारेविकल्पिता, सर्पधारादिभिर्भावैः "। ६ जैसे अन्धकार विषे अनिश्चित हुई रज्जु सर्प अरु जलधारा आदिक भावकरके विकल्प को प्राप्तहोता है ; अर्थात् जैसे लोक विषे मन्द अन्धकार विषे रही वस्तु अहं अमुक वस्तुही है, इस प्रकार अपने स्वरूपसे अनिश्चय को प्राप्तहुई सो , क्या सर्प है वा जलधाराहै, वा वक्र दंड है, वा भूमिकी दरार है, इत्यादि प्रकारसे सर्पधारा आदिक भावकरके अनेक प्रकार से विकल्पको प्राप्तहोवेहैं । अर्थात् रज्जु विषे सर्प अरु,थाणू (ठूंठ) विषे जो पुरुषकी भ्रांति होती है सो मन्द अन्धकारके समय होती है. घन अन्धकारमें अरु स्पष्ट प्रकाश में नहीं क्योंकि जिसकालमें रज्जुके सामान्यअंश, सर्पवत् वक्राकार, की प्रतीति, अरु विशेष अंश त्रिवली (ऐंठन) की अप्रतीति होती है तिसकालमें सर्पादि भ्रान्ति होती है, अरु वादीने भ्रांती होनेकी सादृश्यतादि अनेक सामग्री कहीहैं परन्तु, मुख्यसामग्री उक्तप्रकारका अन्धकारहीहै, क्योंकि अन्धकारके अभावकी सामग्री दीपकादिकों के प्रकाश करकेही भ्रान्ति में उपयोगी अन्धकार सहित सर्व सामग्री अभाव होती है अन्धकारमें स्थित रज्जुको सम्यक् प्रकारसे रज्जु ही है ऐसे जानने के अर्थ एक प्रकाशही सामग्री का उपयोग है, भ्रान्ति कालवत् अनेक सामग्री का नहीं । अरु रज्जुविषे भ्रान्ति कालमें जो प्रायः सर्पकी स्मृति अरु भ्रान्ति अधिक, अरु दंडधारादिकों की क्वचित् होती है, तहां सर्पकी भ्रान्ति अधिक होने में विशेष करके मरणका भय हेतुहै, क्योंकि सर्पके डंशसे मरण का भय है दंड धारादिकों से नहीं ताते ॥ अरु ऊपर भूमि में

निश्चितायांयथारज्ज्वां विकल्पोविनिवर्त्तते । रज्जुरेवेतिचाद्वैतंतद्वदात्मविनिश्चयः १८ ॥

जलकी अरु शुक्तिका में रजतकी भ्रान्ति है सो अन्धकार में न होयके प्रकाश में होतीहै, परन्तु द्रष्टाके देशसे दूरदेशमें अरु दृष्टिगोचरतासे होतीहै । अरु शुक्तिकी सादृश रजतलोह कागज़ आदि होतेहैं, परन्तु विशेषकरके तहां रजतकी भ्रान्तिहोती है तहां प्रायः लोभहेतु है, क्योंकि अन अशनादि निमित्तक क्लेशादिकों की निवृत्ति रजतरूप द्रव्यसे होती है ताते (जैसे स्वरूप से यथार्थ निश्चय कियेहुये अपने हस्तकी अंगुली आदिकों विषे सर्प वा जलइत्यादि विकल्प देखतेनहीं, तैसेही रज्जुको स्वरूप से सम्यक्प्रकार निश्चय कियेहुये सम्मुखवर्ती रज्जुरूप वस्तुविषे सर्पादि विकल्प होतानहीं । अरु जिसकरके (सर्पादिविकल्प (होताहै ' एतदर्थं (तिस विकल्पसे (पूर्व रज्जु के स्वरूपका अनिश्चयही (निश्चयका न होनाही (तिसका निमित्तहै ॥ जैसे यह दृष्टांतहै " (तद्वदात्माविकल्पितः " (तैसे आत्मा विकल्पकोप्राप्त हुआहै ? अर्थात् जैसे उक्त दृष्टांतहै तैसेहेतु अरु फलादिक संसारके धर्मरूप अनर्थों से विलक्षण होनेकरके अपने शुद्ध ज्ञानमात्र सत्तासमान अद्वैतरूप करके अनिश्चय होनेसे । अर्थात् अपनेआप आत्माके शुद्धबुद्ध मुक्त ज्ञानमात्रसत्तासमान एक अद्वैत स्वरूपका सम्यक्प्रकार यथार्थ निश्चय न होनेसे (जीव अरु प्राणादिक अनेक भावोंके भेदों से आत्मा विकल्पको प्राप्त हुआहै । इसप्रकार यह सर्व उपनिषदोंका सिद्धान्त है १७ ॥

१८ हेसौम्य! [अविद्यासे रचितजीवकी कल्पनाहै, इसप्रकार अन्वयरूप द्वारसे कहा, अब तिसहीको व्यतिरेक रूपद्वारसे देखावे हैं] " (निश्चितायांयथारज्ज्वां विकल्पोविनिवर्त्तते " ' रज्जुरेवेति, " (जैसे यह रज्जुहीहै, ऐसे रज्जुके निश्चयहुये विकल्प सर्वथा निवृत्त होताहै ? अर्थात् जैसे 'यह रज्जुहीहै ' इसप्रकार

प्राणादिभिरनन्तैश्च भावैरेतैर्विकल्पितः।
मायैषातस्यदेवस्य यथासम्मोहितःस्वयम् १९॥

रज्जुके निश्चय होने से तिसके अज्ञानकी निवृत्ति से तिससे उत्पन्नहुआ जो सर्पादिरूप विकल्प सो सर्वथा निवृत्त होता है, अरु रज्जुमात्र अवशेषरहे हैं "तद्वदात्मविनिश्चयः" ८ तैसे आत्माविषे निश्चय प्राप्त होताहै ? अर्थात् जैसेही जब आत्माविषे श्रुतिवाक्यानुसार निश्चय प्राप्त होताहै, तब आत्माकी अविद्या करके कल्पित जे जीवादिक विकल्प तिनकी अशेष निवृत्तिसे एक अद्वैत आत्मतत्त्वही परिअवशेष रहताहै। यह तो श्लोक का अक्षरार्थ है॥ अब इसका भावार्थ कहते हैं। जैसे "रज्जुरेवेति" ८रज्जुही है ? इसप्रकार निश्चयके होनेसे सर्व विकल्पोंकी निवृत्ति के होनेसे रज्जुही अद्वैतहै, इसप्रकार "नेति नेति" ८नइति नइति ? (सूक्ष्मभी नहीं, स्थूलभी नहीं, कार्यभी नहीं, कारणभी नहीं, मूर्त्तभी नहीं अमूर्त्तभी नहीं। इत्यादि इस सर्व संसार के धर्म से रहित वस्तुके प्रतिपादक शास्त्र से जनित ज्ञानरूप प्रकाश का किया जो यह आत्माका निश्चय है सोई "आत्मैवेदं सर्वं" "अपूर्वमनन्तरमवाह्य" "सवाह्याभ्यन्तरोह्यजः" "अजरोऽमरोऽमृतोऽभय एवाद्वयइति" ८आत्माही यह सर्व है ? अपूर्व है, अनपरहै, अनन्तरहै, अवाह्यहै, बाह्यान्तरके सहितहै, अरु जन्मरहित अजहै, अजरहै, अमरहै, अमृत (रोगरहित) है। अर्थात् जन्मादि षड्भावविकार रहितहै। अभयही है। इसप्रकारकाजो (अपने आप) आत्माका दृढ़ निश्चय है, सोई अद्वितीय परिशेप रहता है, पुनः द्वैत सर्वही निवृत्त होताहै १८॥

१९॥ हे सौम्य! "यद्यात्मैक एवेति" ८जब आत्मा एकही है ? अर्थात् जब उक्तप्रकार से आत्मा एकही है, इसप्रकार का निश्चय है तब "प्राणादिभिरनन्तैश्च भावैरेतैर्विकल्पितः, मायैषा तस्य देवस्य" ८प्राणादि अनन्तभावों करके विकल्पको प्राप्तहुआ है,

यह उस देवकी मायाही है ? अर्थात् जब निश्चय करके सर्व संसार धर्मरहित आत्माएकही है, तब इन संसाररूप प्राणादि अनन्तभावसे कैसे विकल्प को प्राप्त होताहै, जहां इसप्रकारका संशय है । तहां कहते हैं, श्रवणकरो, यह उस आत्मरूप देवकी माया है । जैसे मायावी पुरुष करके प्रेरणा को प्राप्तहुई जो उसकी माया, सो अतिशय निर्मल जो आकाश, तिसको पुष्पपत्र सहित वृक्षोंकरके पूर्णहुयेवत् पूर्णकरेहैं, तैसे यह आत्मदेव की माया भी है । अरु जैसे इन्द्रजाली की माया से लौकिक द्रष्टा जन उस मायाकृत मोहसे उस मायाकेही वशहुये देखते हैं । तैसे अपनी मायासेही यह आत्मा । अपने चिदाभासरूपसे । आप भी मोह को प्राप्तहोताहै । एतदर्थ मोहरूपकार्य द्वारा आत्माविषेही मायाका ज्ञानहोताहै । अर्थात् मूलाज्ञानकी शक्ति जो शुद्ध माया तद्विशिष्ट आत्माको माया के कार्य मोह करके अपने विषे माया का ज्ञान होताहै, अरु सर्व शब्दके अर्थ की साम्यता जो माया तिसका ज्ञाता होनेसे उसको सर्वज्ञकहते हैं अरु वो मायासे रहित अरु माया का आश्रय शुद्ध अविशिष्ट अपना सत्य स्वरूप तिसको स्वरूपसेही जानता है ताते ईश्वर है । अरु अज्ञानकी द्वितीय शक्ति मलिन अविद्या तद्विशिष्टजीव अविद्याके कार्य मोहरूप निमित्तसे उसको अविद्याका ज्ञान होता है कि मुझविषे अविद्या वा मायाहै, अरु तिससे पृथक् अपनेआप शुद्ध स्वरूप को, विना आचार्य के उपदेशके, जानता नहीं ताते जीवहै, अरु एतदर्थही श्रुति कहतीहै कि "आचार्यवान् पुरुषोवेद" अरुमाया अरु अविद्यारूप उपाधिके अभावसे उभयविशिष्ट चैतन्य आत्माकी अविशिष्ट ज्ञप्तिमात्र तत्त्वविषे एकताहै । परन्तु आचार्य के उपदेशद्वारा सम्यक् प्रकारके आत्मज्ञान विना माया अरु अविद्याकी निवृत्ति होवे नहीं । तथाच "मममायादुरत्यया" मेरी माया दुःखसे तरने योग्यहै ? इस गीतोक्ति से भगवान्ने भी माया को मोहकी हेतुता कही है १६ ॥

प्राणइतिप्राणविदोभूतानीति च तद्विदः । गुणाइति गुणविदस्तत्त्वानीति च तद्विदः २० ॥

२० ॥ हे सौम्य ! [कौनसे वे प्राणादिक अनन्तभाव हैं कि जिन करके माया से आत्मा भेदको पावता है, इसप्रकार के प्रश्नकी इच्छा के हुये प्राणादिकों की कल्पना को उदाहरण करके कहते हैं] "प्राणइतिप्राणविदोभूतानीति च तद्विदः" (प्राण ऐसे प्राणके वेत्ता, अरु भूत ऐसे भूतकेवेत्ता। कहते हैं) अर्थात् प्राण। कहिये सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ जगत्का ईश्वर वा जगत्का हेतु है। इस प्रकार प्राणकेवेत्ता हिरण्यगर्भ के उपासक अरु वैशेषिकमतावलम्बी कल्पनाकरते हैं, सो केवल कल्पनामात्रही है, क्योंकि उस हिरण्यगर्भको जगत्का हेतुहोने के विषय में प्रमाणका अभाव है अरु हिरण्यगर्भ उत्पत्तिवाला है ताते। अरु पृथिवी जल अग्नि वायु, यह चार भूतही जगत्का कारण हैं। इनसे इतर ईश्वरादि कोई नहीं, इसप्रकार चार्वाक कल्पना करते हैं, सो भी कल्पनामात्रही है, क्योंकि इनभूतों को जड़ होनेसे स्वतः सिद्धता। जगत् की रचना में स्वतन्त्रता। नहीं ताते। अरु "गुणा इतिगुणविदस्तत्त्वानीतिच तद्विदः" (गुण ऐसे गुणके वेत्ता, अरु तत्त्व ऐसे तत्त्वके वेत्ता। कहते हैं।) अर्थात् सत्त्वरज तम इन तीनोंगुणोंकी साम्यावस्था जगत्का कारण है, इसप्रकार सांख्यमतवादी मानते हैं, सो भी कल्पनामात्रही है, क्योंकि साम्यावस्थाको प्राप्तहुये गुणोंको जड़त्व होने से उनविषे ईक्षण बनैनहीं अरु श्रुतिप्रमाण से ईक्षणपूर्वक सृष्टिहै, ताते श्रुतिबाह्य होनेसे गुणोंको जगत्का कारणत्व कल्पनामात्रही है। अरु "आत्मा, विद्या, अरु शिव, यह तीनतत्त्व जगत्के प्रवर्त्तक हैं, इसप्रकार शैवमतवादी मानते हैं, परन्तु श्रुतिबाह्यहोने से सोभी केवल कल्पनामात्रही है २० ॥

२१ ॥ हे सौम्य! "पादाइतिपादविदोविषयाइति च तद्विदः" (पाद है ऐसेपादवेत्ता अरु विषय ऐसे विषयके वेत्ता, कहते हैं,)

पादाइतिपादविदोविषयाइति च तद्विदः । लोकाइति लोकविदोदेवाइति च तद्विदः २१ ॥

अर्थात् एक आत्मा के जे विश्वादिक पाद हैं सोई सर्व व्यवहार के हेतु हैं, इसप्रकार पादों के वेत्ता कहते हैं, तथापि सोभी कल्पना मात्रही है, क्योंकि एक निरंशआत्मा के विषे विश्वादि अंशों का भेद अनुपन्न है । अर्थात् एक निरंश आत्मा विषे पादरूप अंशभेद वास्तव से नहोयके केवल अविद्याकरके कल्पित है । ॥ अरु शब्दादिविषय वारंवार भोगेहुये परमार्थ तत्त्व है, इसप्रकार उन विषयों के वेत्ता वात्स्यायनादिक काव्यके कर्त्ता कहते हैं, सो कहना विभ्रममात्रहै, क्योंकि विषयोंका विष से भी अति निकृष्टपना है, विषभक्षण करने से ,अर्थात् भक्षणकिया विष एकवार हनन करता है, अरु विषय स्मरणमात्रसेही जन्मजन्मान्तर में भी मारताही रहता है । अरु विषयोंका अनुसंधान सर्वथा निंदितहै तातें निन्दितों का पारमार्थिक तत्त्वभाव मानना सर्वथा अयोग्य है " लोकाइति लोकविदो देवाइति च तद्विदः " । (लोक ऐसे लोक के वेत्ता अरु देवता ऐसे देवता के वेत्ता । मानते हैं ।) अर्थात् ,भूर्,भुवर्,स्वर्, इन तीन व्याहृतिरूप पृथिवी (मनुष्यलोक) अन्तरिक्ष (पितृलोक) स्वर्ग (देवलोक) यह तीनों लोकही परमार्थ वस्तुरूप हैं, इसप्रकार लोकों के वेत्ता पौराणिक कल्पना करते है, सो उनका विभ्रममात्रही है, क्योंकि इनकी तीन संख्यावाले अरु स्थानभेद वाले व्यभिचारी अरु कर्म्मोंका फल अरु "कर्मजितोलोकःक्षीयत " इत्यादि प्रमाण से विनाशीहोनेसे अरु अग्नि वायु अरु इन्द्र, इत्यादि देवता । अपने अनुग्रह से । तिन तिन । यज्ञादि कर्म्मों के । फलकेदाता हैं, इनसे इतर ईश्वर कोई नही, इसप्रकार देवताओंकेवेत्ता कल्पना करते हैं, सोभी कल्पनामात्रही है, क्योंकि देवताओं को उत्पत्ति विनाशवान् अरु आत्माके जानने मे संशययुक्त विषयासक्त अहंकारीहोनेसे उनको

वेदाइति च वेदविदो यज्ञाइति च तद्विदः।
भोक्तेति च भोक्तृविदो भोज्यमिति च तद्विदः २२॥

परमार्थरूपता अयोग्यहै ताते २१॥

२२॥ हे सौम्य! "वेदाइति च वेदविदो यज्ञाइति च तद्विदः" (वेद ऐसे वेदकेवेत्ता अरु यज्ञ ऐसे यज्ञकेवेत्ता (कल्पना करतेहैं) अर्थात्, ऋग्वेदादि चारवेदही परमार्थरूपहैं (क्योंकि ब्रह्माद्वारा वेदही सर्वजगत् के प्रवर्त्तक हैं ताते) इसप्रकार वेदकेवेत्ता पाठक कल्पना करतेहैं, सोभी कल्पनामात्रही है, क्योंकि वेद जोहै सो लौकिक अकारादि स्वर अरु ककारादि व्यंजन, इनवर्णोंसे इतर दीखते नहीं, अरु (वेदवाणीका विवर्त्तहोनेसे वाणी के अभावहुये अभावरूपहै, अरु आदिपुरुष जो ब्रह्मा तिसद्वारा स्फुरणहुये हैं, अरु निर्विशेष आत्माविषे अवेदरूप है, ताते वेदको लोकान्तर लौकिकहोनेसे) वेदको परमार्थरूपता सम्भवे नही। अरु ज्योतिष्टोमादिक यज्ञ परमार्थ वस्तुरूपहैं इसप्रकार यज्ञोंकेवेत्ता बौधायनादिक यज्ञकेकर्त्ता कल्पना करतेहैं, सोभी भ्रान्तिमात्रहीहै, क्योंकि " यज्ञं व्याख्यास्यामो द्रव्यं देवता त्याग इति " यज्ञको कहताहैं तहां तिसकी समिध हवि कुण्डादिक सामग्री, अरु यज्ञाभिमानी देवता अरु यज्ञमें त्याज्य वस्तुको (अरु यज्ञकी सर्व कारक सामग्री प्रत्येकजड़हैं ताते काष्ठभारवत् यज्ञकी समुच्चयता को जड़त्वहोनेसे उसको यज्ञका विज्ञाननहीं, अरु यज्ञकर्त्ताके आधीन जड़हैं, अरु यज्ञकर्म के कर्त्ता कर्मकेफलमें अति रागवान् (आसक्त) होनेसे परमार्थतत्त्वको न जानके यज्ञकोही परमार्थ तत्त्व मानतेहै ताते। अरु "भोक्तेति च भोक्तृविदो भोज्यमिति च तद्विदः" (भोक्ता ऐसे भोक्ताकेवेत्ता, अरु भोज्य ऐसे भोज्यके वेत्ता (कल्पना करतेहैं)) अर्थात् भोक्ताही आत्माहै, कर्त्ता नहीं, इसप्रकार आत्माको केवल भोक्ताही माननेवाले जे सांख्यशास्त्र के वेत्ता कल्पना करतेहैं, सोभी भ्रांतिमात्रही, है क्योंकि जो क-

पादाइतिपादविदोविषयाइति च तद्विदः । लोकाइति लोकविदोदेवाइति च तद्विदः २१ ॥

अर्थात् एक आत्मा के जे विश्वादिक पाद हैं सोई सर्व व्यवहार के हेतु हैं, इसप्रकार पादों के वेत्ता कहते हैं, तथापि सोभी कल्पना मात्रही है, क्योंकि एक निरंशआत्मा के विषे विश्वादि अंशों का भेद अनुपपन्न है । अर्थात् एक निरंश आत्मा विषे पादरूप अंशभेद वास्तव से नहोयके केवल अविद्याकरके कल्पित है । ॥ अरु शब्दादिविषय वारंवार भोगेहुये परमार्थ तत्त्व है, इसप्रकार उन विषयों के वेत्ता वात्स्यायनादिक काव्यके कर्त्ता कहते हैं, सो कहना विभ्रममात्रहै, क्योंकि विषयोंका विष से भी अति निकृष्टपना है, विषभक्षण करने से ,अर्थात् भक्षणकिया विष एकवार हनन करता है, अरु विषय स्मरणमात्रसेही जन्मजन्मान्तर में भी मारताही रहता है । अरु विषयोंका अनुसंधान सर्वथा निंदितहै ताते निन्दितों को पारमार्थिक तत्त्वभाव मानना सर्वथा अयोग्य है " लोकाइति लोकविदो देवाइति च तद्विदः " । (लोक ऐसे लोक के वेत्ता अरु देवता ऐसे देवता के वेत्ता । मानते हैं ।) अर्थात भूर्,भुवर्,स्वर्, इन तीन व्याहृतिरूप पृथिवी (मनुष्यलोक) अन्तरिक्ष (पितृलोक) स्वर्ग (देवलोक) यह तीनों लोकही परमार्थ वस्तुरूप हैं, इसप्रकार लोकों के वेत्ता पौराणिक कल्पना करते हैं, सो उनका विभ्रममात्रही है, क्योंकि इनकी तीन संख्यावाले अरु स्थानभेद वाले व्यभिचारी अरु कर्म्मोंका फल अरु "कर्मजितोलोकःक्षीयते " इत्यादि प्रमाण से विनाशीहोनेसे अरु अग्नि वायु अरु इन्द्र, इत्यादि देवता । अपने अनुग्रह से । तिन तिन । यज्ञादि कर्म्मों के । फलकेदाता हैं, इनसे इतर ईश्वर कोई नहीं, इसप्रकार देवताओंकेवेत्ता कल्पना करते हैं, सोभी कल्पनामात्रही है, क्योंकि देवताओं को उत्पत्ति विनाशवान अरु आत्माके जानने में संशययुक्त विषयासक्त अहंकारीहोनेसे उनकी

वेदाइति च वेदविदो यज्ञाइति च तद्विदः ।
भोक्तेति च भोक्तृविदो भोज्यमिति च तद्विदः २२ ॥

परमार्थरूपता अयोग्यहै ताते २१ ॥

२२ ॥ हे सौम्य! "वेदाइति च वेदविदो यज्ञाइति च तद्विदः" (वेद ऐसे वेदकेवेत्ता अरु यज्ञ ऐसे यज्ञकेवेत्ता (कल्पना करतेहैं) अर्थात्, ऋग्वेदादि चारवेदही परमार्थरूपहैं (क्योंकि ब्रह्माद्वारा वेदही सर्वजगत् के प्रवर्त्तक हैं ताते (इसप्रकार वेदकेवेत्ता पाठक कल्पना करतेहैं, सोभी कल्पनामात्रही है, क्योंकि वेद जोहै सो लौकिक अकारादि स्वर अरु ककारादि व्यंजन, इनवर्णोंसे इतर दीखते नहीं, अरु (वेदवाणीका विवर्त्तहोनेसे वाणी के अभावहुये अभावरूपहै, अरु आदिपुरुष जो ब्रह्मा तिसद्वारा स्फुरणहुये हैं, अरु निर्विशेष आत्माविषे अवेदरूप है, ताते वेदको लोकान्तर लौकिकहोनेसे (वेदको परमार्थरूपता सम्भवे नहीं । अरु ज्योतिष्टोमादिक यज्ञ परमार्थ वस्तुरूपहैं इसप्रकार यज्ञोंकेवेत्ता बौधायनादिक यज्ञकेकर्त्ता कल्पना करतेहैं, सोभी भ्रान्तिमात्रहीहै, क्योंकि " यज्ञं व्याख्यास्यामो द्रव्यं देवता त्याग इति " यज्ञको कहताहैं तहां तिसकी समिध हवि कुण्डादिक सामग्री, अरु यज्ञाभिमानी देवता अरु यज्ञमें त्याज्य वस्तुको (अरु यज्ञकी सर्व कारक सामग्री प्रत्येकजड़हैं ताते काष्ठभारवत् यज्ञकी समुच्चयता को जड़रूपहोनेसे उसको यज्ञका विज्ञाननहीं, अरु यज्ञकर्त्ताके आधीन जड़हैं, अरु यज्ञकर्म के कर्त्ता कर्मकेफलमें अति रागवान् (आसक्त) होनेसे परमार्थतत्त्वको न जानके यज्ञकोही परमार्थ तत्त्व मानतेहैं ताते । अरु " भोक्तेति च भोक्तृविदो भोज्यमिति च तद्विदः " (भोक्ता ऐसे भोक्ताकेवेत्ता, अरु भोज्य ऐसे भोज्यके वेत्ता (कल्पना करतेहैं) अर्थात् भोक्ताही आत्माहै, कर्त्ता नहीं, इसप्रकार आत्माको केवल भोक्ताही माननेवाले जे सांख्यशास्त्र के वेत्ता कल्पना करतेहैं, सोभी भ्रांतिमात्रही, है क्योंकि जो क-

पादाइतिपादविदोविषयाइति च तद्विदः । लोकाइति लोकविदोदेवाइति च तद्विदः २१ ॥

अर्थात् एक आत्मा के जे विश्वादिक पाद हैं सोई सर्व व्यवहार के हेतु हैं, इसप्रकार पादों के वेत्ता कहते हैं, तथापि सोभी कल्पना मात्रही है, क्योंकि एक निरंशआत्मा के विषे विश्वादि अंशों का भेद अनुपन्न है । अर्थात् एक निरंश आत्मा विषे पादरूप अंशभेद वास्तव से नहोयके केवल अविद्याकरके कल्पित है । ॥ अरु शब्दादिविषय वारंवार भोगेहुये परमार्थ तत्त्व है, इसप्रकार उन विषयों के वेत्ता वात्स्यायनादिक काव्यके कर्त्ता कहते हैं, सो कहना विभ्रममात्रहै, क्योकि विषयोंका विष से भी अति निकृष्टपना है, विषभक्षण करने से ,अर्थात् भक्षणकिया विष एकवार हनन करता है, अरु विषय स्मरणमात्रसेही जन्मजन्मान्तर में भी मारताही रहता है । अरु विषयोका अनुसंधान सर्वथा निंदितहै तातें निन्दितों को पारमार्थिक तत्त्वभाव मानना सर्वथा अयोग्य है "। लोकाइति लोकविदो देवाइति च तद्विदः "। (लोक ऐसे लोक के वेत्ता अरु देवता ऐसे देवता के वेत्ता । मानते हैं ।) अर्थात् ,भूर्,भुवर्,स्वर् , इन तीन व्याहृतिरूप पृथिवी (मनुष्यलोक) अन्तरिक्ष (पितृलोक) स्वर्ग (देवलोक) यह तीनों लोकही परमार्थ वस्तुरूप हैं, इसप्रकार लोकों के वेत्ता पौराणिक कल्पना करते हैं, सो उनका विभ्रममात्रही है, क्योंकि इनकी तीन संख्यावाले अरु स्थानभेद वाले व्यभिचारी अरु कर्म्मोंका फल अरु "कर्मजितोलोकःक्षीयते " इत्यादि प्रमाण से विनाशीहोनेसे अरु अग्नि वायु अरु इन्द्र, इत्यादि देवता । अपने अनुग्रह से । तिन तिन । यज्ञादि कर्म्मों के । फलकेदाता है, इनसे इतर ईश्वर कोई नहीं, इसप्रकार देवताओंकेवेत्ता कल्पना करते हैं, सोभी कल्पनामात्रही है, क्योंकि देवताओं को उत्पत्ति विनाशवान अरु आत्माके जानने मे संशययुक्त विषयासक्त अहंकारीहोनेसे उनको

वेदाइति च वेदविदो यज्ञाइति च तद्विदः ।
भोक्तेति च भोक्तृविदो भोज्यमिति च तद्विदः २२ ॥

परमार्थरूपता अयोग्यहै ताते २१ ॥

२२ ॥ हे सौम्य! "वेदाइति च वेदविदो यज्ञाइति च तद्विदः" (वेद ऐसे वेदकेवेत्ता अरु यज्ञ ऐसे यज्ञकेवेत्ता (कल्पना करतेहैं ? अर्थात्, ऋग्वेदादि चारवेदही परमार्थरूपहैं (क्योंकि ब्रह्माद्वारा वेदही सर्वजगत् के प्रवर्त्तक हैं ताते (इसप्रकार वेदकेवेत्ता पाठक कल्पना करतेहैं, सोभी कल्पनामात्रही है, क्योंकि वेद जोहै सो लौकिक अकारादि स्वर अरु ककारादि व्यंजन, इनवर्णोंसे इतर दीखते नहीं, अरु (वेदवाणीका विवर्त्तहोनेसे वाणी के अभावहुये अभावरूपहै, अरु आदिपुरुष जो ब्रह्मा तिसद्वारा स्फुरणहुये हैं, अरु निर्विशेष आत्माविषे अवेदरूप है, ताते वेदको लोकान्तर लौकिकहोनेसे (वेदको परमार्थरूपता सम्भवे नहीं। अरु ज्योतिष्टोमादिक यज्ञ परमार्थ वस्तुरूपहैं इसप्रकार यज्ञोंकेवेत्ता बौधायनादिक यज्ञकेकर्त्ता कल्पना करतेहैं, सोभी भ्रान्तिमात्रहीहै, क्योंकि "यज्ञं व्याख्यास्यामो द्रव्यं देवता त्याग इति" यज्ञको कहताहै तहां तिसकी समिध हवि कुण्डादिक सामग्री, अरु यज्ञाभिमानी देवता अरु यज्ञमे त्याज्य वस्तुको (अरु यज्ञकी सर्व *कारक सामग्री प्रत्येकजड़हैं ताते काष्टभारवत् यज्ञकी समुच्चयता* को जड़रूपहोनेसे उसको यज्ञका विज्ञाननहीं, अरु यज्ञकर्त्ताके आधीन जड़हैं, अरु यज्ञकर्म के कर्त्ता कर्मकेफलमें अति रागवान् (आसक्त) होनेसे परमार्थतत्त्वको न जानके यज्ञकोही परमार्थ तत्त्व मानतेहैं ताते। अरु "भोक्तेति च भोक्तृविदो भोज्यमिति च तद्विदः" (भोक्ता ऐसे भोक्ताकेवेत्ता, अरु भोज्य ऐसे भोज्यके वेत्ता (कल्पना करतेहैं ? अर्थात् भोक्ताही आत्माहै, कर्त्ता नहीं, इसप्रकार आत्माको केवल भोक्ताही माननेवाले जे सांख्यशास्त्र के वेत्ता कल्पना करतेहैं, सोभी भ्रांतिमात्रही, है क्योंकि जो क-

सूक्ष्मइतिसूक्ष्मविदः स्थूलइति च तद्विदः । मूर्त्तइति मूर्त्तविदो अमूर्त्तइतितद्विदः २३ ॥

दापि सांख्यमतवादी तिस आत्माविषे जो भोक्तृस्वरूप विक्रिया स्वरूपसेही स्वीकारकरते हैं तब अनित्यत्वादि क्योंनहीं अंगीकार करते, किन्तु करना चाहिये, अरु आत्माविषे जो भोक्तापने की प्रतीति है सो विषयकी सांनिध्यतासे स्फटिक में रक्तादिवत् है तिसको वास्तवसे मानना भ्रान्तिहै । अरु जे भोज्यवस्तु के वेत्ता सूपकार (रसोई करनेवाले स्वादके वशहुये भोज्यकोही परमार्थपनेकी प्रतिज्ञा करते हैं २२ ॥

२३ ॥ हे सौम्य ! "सूक्ष्मइति सूक्ष्मविदः स्थूल इति च तद्विदः" (सूक्ष्म ऐसे सूक्ष्मकेवेत्ता, अरु स्थूल ऐसे तिसकेवेत्ता । कल्पते हैं ।) अर्थात् आत्मा परमाणुके परिमाण सूक्ष्म है । अरु सोई परमार्थ वस्तुहै । इसप्रकार कोई एक सूक्ष्मतत्त्वकेवेत्ता कल्पना करतेहैं, सोभी यथार्थ नहीं, क्योंकि जो आत्मा अणुपरिमाण होवे तो शरीरान्तर अणुपरिमाण देशमेंही होवेगा अरु जो अणुपरिमाणदेश व्यापि आत्माहुआ तो तिसको चैतन्यहोनेसे तिसही देशके सुख दुःखका अनुभवहोना चाहिये अन्यदेशका नहीं, परन्तु आत्मा पादाग्रसे लेकरके मस्तकाग्रपर्यन्त आकाशवत् नखशिखमें व्याप्तहै क्योंकि पादाग्रमें मेरे को व्यथाहै अरु मस्तक में सुखहै इसप्रकार शरीरमें हुये सुख दुःखका समकाल मेंही अनुभव होताहै ताते, अरु श्रुतिने भी आत्माको सर्वव्यापी विभुकहाहै, ताते आत्माको जो अणुपरिमाण कहते हैं सो भ्रांतिसे श्रुतिबाह्य कहते हैं । अरु स्थूलदेह आत्माहै । अरु सोई परमार्थतत्त्वहै । इसप्रकार तिस स्थूलकेवेत्ता कोई एक चार्वाक कहतेहैं । सोभी कल्पनामात्रहीहै, क्योंकि । मृतक अरु सुषुप्ति विषे भी भूतोंके संघातरूप शरीरसे चैतन्य पृथक्ही है शरीर आत्मानहीं क्योंकि जिनभूतों का संघात शरीर है सो प्रत्येकभूत

कालइतिकालविदोदिशइति च तद्विदः। वादाइति वादविदोभुवनानीतितद्विदः २४॥

को चैतन्यत्वके अभाव से जड़त्व है ताते जड़भूतोंका संघातरूप शरीर काष्ठभारवत् जड़होने से इसको आत्मत्व सम्भवेनहीं। अरु " मूर्त्तइतिमूर्त्तविदो अमूर्त्तइतितद्विदः " (मूर्त्तऐसे मूर्त्त के वेत्ता अरु अमूर्त्त ऐसे तिनकेवेत्ता। कल्पना करते हैं) अर्थात् त्रिशूलादिकोंके धारणकरता महेश्वर अरु चक्रादिकोंके धारणकरता विष्णु। यह मूर्त्तपदार्थ परमार्थरूप है, ऐसे मूर्त्तकेवेत्ता आगमाभिमानी कल्पना करते हैं; परन्तु सोभी भ्रान्तिमात्रही है क्योंकि मूर्त्तपदार्थ एकदेशी परिच्छिन्न कल्पहोने से नाशवान् होवैहै ताते। अरु सर्वआकार से रहित निःस्वभाव जो अमूर्त्त सो परमार्थरूप है, इसप्रकार तिस अमूर्त्त के वेत्ता शून्यवादी कल्पना करतेहैं, सो भी केवल भ्रान्तिमात्रही है २३॥

॥ २४॥ हे सौम्य! " कालइतिकालविदोदिशइति च तद्विदः " (काल ऐसे कालकेवेत्ता, अरु दिशा ऐसे दिशाके वेत्ता। कल्पना करते हैं) अर्थात् कालकेवेत्ता जे ज्योतिषी सो कालकोही परमार्थरूपसे कल्पना करतेहैं, परन्तु सो कालभी परमार्थतत्त्वनही, क्योंकि कालका एकरूपहोवै तो मुहूर्त्तादि व्यवहार, कि यह मुहूर्त्त श्रेष्ठ है, अरु यह मुहूर्त्त नेष्ट है, तिसकी अयोग्यता है ताते, अरु तिन मुहूर्त्तादि व्यापारकरके कालको श्रेष्ठता अश्रेष्ठता आदिकनानात्व है ताते, अरु कालअन्य विषयोंकरके प्रतीयमानहोताहै। अर्थात् वृक्षके पत्र पातहोने से वसंतऋतु ज्ञातहोताहैताते कालको स्वतन्त्रता अरु स्वप्रकाशता नहीं। अरु जो परमार्थतत्त्व है सोनानात्वसे रहित एक एकरस सदा स्वतन्त्र स्वयंसिद्ध चैतन्यहै ताते कालके वेत्ताओंका कथन जो 'कालही परमार्थतत्त्वहै, सो भ्रान्तिमात्रही है। अरु स्वरोदयशास्त्र के वेत्ता पूर्वादि दिशाही परमार्थ वस्तुहै इसप्रकार कहतेहैं सोभी भ्रान्तिमात्रही है; अरु " वादा

मनइतिमनोविदोबुद्धिरिति च तद्विदः । चित्तमिति चित्तविदोधर्माधर्मौ च तद्विदः २५ ॥

इतिवादविदो भुवनानीतितद्विदः" (वाद ऐसे वादकेवेत्ता, अरु भुवन ऐसे तिनकेवेत्ता । कल्पना करते हैं ।) अर्थात् धातुवाद । रसायनशास्त्र । अरु मन्त्रवाद । मन्त्रशास्त्र । इत्यादिवाद परमार्थवस्तुरूप होते हैं, इसप्रकार वादके वेत्ता कल्पनाकरते हैं, सो केवल कल्पनामात्रहीहै, क्योंकि ताम्रादिधातु सुवर्णादि अरु सुवर्णादि धातु ताम्रादि भावको प्राप्तहोते एकरसताको त्यागके व्यभिचारी हैं अरु ओषधीके योगसे अपने स्वरूप स्वभावको त्यागते हैं, अरु आकारवान् परिच्छिन्न जड़ अनेकरूप परतन्त्र है, ताते इत्यादि दूषणयुक्त लोभका विषय धातु परमार्थतत्त्व होने के योग्य नहीं । अरु मन्त्रवादभी साधककाल आदिक अपनी कारक सामग्री के आधीनहोने से परतन्त्रतादि दोषयुक्तहुये परमार्थतत्त्वरूप होनेके योग्य नहीं । "वेदवादरतापार्थ नान्यदस्तीतिवादिनः", "अन्या वाचोविमुच्यथ, वाचोविग्लायनंहि तत्" अरु चतुर्दश भुवन वस्तुरूप है, इसप्रकार उन भुवनकोशके वेत्ता कल्पना करतेहैं,सो भी कल्पनामात्रही है क्योंकि सो अदृष्ट अरु विवादका विषय हैं ताते २४ ॥

२५॥हेसौम्य!"मनइतिमनोविदोबुद्धिरिति च तद्विदः" (मनइस प्रकार मनकेवेत्ता, अरु बुद्धि ऐसे तिस बुद्धिकेवेत्ता । कल्पना करते हैं।) अर्थात् कोई एकमनकेवेत्ता चार्वाकमतकेभेद विशेषकेमतवादीपुरुष, मनही आत्मा । परमार्थतत्त्व । है इसप्रकार कल्पना करतेहैं, सो उनकाकहना भी भ्रांतिमात्रही है, क्योंकि मनस्वतन्त्र नहीं, चंचलहै अरु विषयासक्तहुआ विवेकशून्य है, अरु अनात्मा होनेसे घटवत् करणविशेषहै अरु । जैसे दीपक पदार्थोंको प्रकाशता है परन्तु दीपकका प्रकाशक तिससे अन्य चक्षुहै, तैसे मन विषयोंको प्रकाशता है परन्तु उसको जड़होने से उसका सिद्धकर्त्ता

पञ्चविंशकइत्येके षड्विंशइतिचापरे। एकत्रिंशकइत्याहुरनन्तइतिचापरे २६ ॥

प्रकाशक साक्षीआत्मा उससे भिन्नहीं है। ताते उक्त दोष स्वभाव वाला मन आत्मा । परमार्थतत्त्व होनेके योग्यनहीं । अरु कोई एकजे बुद्धि के वेत्ता बौद्धमत वादी है सो, बुद्धिही आत्मा । परमार्थ तत्त्व । है, इसप्रकार कल्पना करते है, सोभी भ्रान्ति सेही करते हैं क्योंकि सुषुप्तिविषे ज्ञातसे रहित हुई बुद्धि अपने कारण अविद्या में लय होती है तब बुद्धिकी अभावरूप जड़ अवस्था का प्रकाशक आत्मा पृथक्ही सिद्ध है ताते बुद्धिस्वरूपसेही ज्ञान शून्य जड़ परतन्त्र होने से आत्मा (परमार्थतत्त्व) होने के योग्य नहीं। अरु "। चित्तमिति चित्तविदो धर्माधर्मौ च तद्विद ।" (चित्त ऐसे चित्तके वेत्ता अरु धर्माधर्म ऐसे तिनके वेत्ता कल्पना करतेहैं; अर्थात् (चित्तही आत्मा । परमार्थतत्त्व । है इसप्रकार चित्तके वेत्ता कल्पना करते हैं, सोभी भ्रान्तिमात्रही है, क्योंकि चित्तको अन्तःकरणकी वृत्ति विशेष होने से सोभी उक्तदोष करके अरु क्वचित् स्वस्थ अरु क्वचित् भ्रमी होनेसे परमार्थरूप होनेके योग्य नहीं। अरु जो धर्माधर्मके वेत्तामीमांसक धर्माधर्मकोही परमार्थरूप कहते हैं, सोभी श्रुतिबाह्य होनेसे भ्रान्तिमात्रही है। तथाच "अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मात्" इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे परमार्थरूप आत्मा धर्माधर्म से पृथक्ही है २५ ॥

२६ ॥ हे सौम्य! "। पञ्चविंशक इत्येके षड्विंशइतिचापरे।" (पञ्चविंशत्यात्मक ऐसे कोई एक अरु षड्विंशत्यात्मक ऐसे कोई एक कल्पना करते हैं; अर्थात् [प्रधान जो है सो मूलप्रकृति (मूलकारण है) है, अरु महत्तत्त्व अहंकार अरु पंचतन्मात्रा (सूक्ष्मभूत) यह सात प्रकृति विकृति हैं। अर्थात् उक्त जो महदादि सप्त हैं सो अग्रिम कहने के षोडश पदार्थ जो केवल विकृति (कार्य) ही हैं तिनकी अपेक्षा से प्रकृति (कारण) है, अरु पूर्वकहा जो प्रधान मूल

लोकाँल्लोकविदः प्राहुराश्रमाइतितद्विदः । स्त्रीपुन्नपुंसकंलैंङ्गाःपरापरमथापरे २७ ॥

प्रकृति तिसकी अपेक्षा से विकृति (कार्य) ही है । अरु पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांचकर्मेन्द्रियां, पांच विषय, अरु एकमन, यह षोडश पदार्थ केवल विकृति (कार्य) मात्रहीहैं । इन षोडश विकृति पदार्थ कहे हैं तिन में जो पंच विषय हैं तिनके स्थान में कोई पंच महाभूतों को भी स्वीकार करते हैं, क्योंकि विषयकोही तन्मात्रा कहते हैं सो पूर्व प्रकृति विकृति में कहा है ताते । अरु पुरुष तो सर्व का द्रष्टा रूपही है, सो किसीका भी कार्य्य कारण नहीं। इसप्रकार पंचविंशति संख्यावाला प्रपंच वास्तव है, इसप्रकार सांख्यवादी कहतेहैं, सोभी कल्पनामात्रही है । अरु उक्त पंचवीस तत्त्वसे एक ईश्वर अधिकहोनेसे छब्बीस संख्यावाला प्रपंच परमतत्त्व है इसप्रकार छब्बीसतत्त्वकेवेत्ता पातंजलि कल्पना करते हैं, सो कल्पनाभी अयुक्तहीहै, क्योंकि ईश्वरका पुरुषविषे अंतरभावहै ताते, अरु जो ईश्वरका पुरुषविषे अन्तरभाव नहीं पृथक् है तो ईश्वरको घटवत् अनीश्वरभावकी प्राप्तिका प्रसंगहोता है ताते । अरु "एकत्रिंशक इत्याहुरनन्त इति चापरे" (एकतीस ऐसे कहतेहैं, अनन्त ऐसे अन्यकहतेहैं) अर्थात् उक्त पंचवीसतत्त्व से 'राग, अविद्या, नियति, काल, कला, माया, यह छःअधिकहोने से' हुये जो इकतीस संख्यावाला प्रपंच सो वस्तुरूपहै, इसप्रकार पाशुपत मतवादी कहतेहैं, सोभी कल्पनामात्रही है ।अरु पदार्थों के भेद अनन्तहैं नियमित । कि यह इतनाही है ऐसा । नहीं, ताते अनन्तपदार्थ वस्तुरूप हैं, इसप्रकार अन्य मतावलम्बीवादी कहते हैं, सोभी कल्पनामात्रही है २६ ॥

२७॥हे सौम्य! "लोकान् लोकविदः प्राहुराश्रमाइतितद्विदः" (लोकोंको लोकके वेत्ताकहतेहैं, अरु आश्रम ऐसे तिनकेवेत्ता । कल्पनाकरतेहैं) अर्थात् लोकोंको रंजन (प्रसन्न) करनाही परमतत्त्वहै,

सृष्टिरितिसृष्टिविदोलयइति च तद्विदः। स्थितिरिति स्थितिविदःसर्वेचेहतुसर्व्वदा २८॥

ऐसे लोकके वेत्ता कहते हैं, अर्थात् लोकोंको प्रसन्नकरनाही परमार्थ तत्त्वहै इसप्रकार लोकके वेत्ता लौकिकजन कल्पना करतेहैं, सोभी विभ्रममात्रही है, क्योंकि लोकोंकी भिन्न भिन्न रुची होनेसे उनके चित्तको अनुरंजन करना ईश्वर करके भी अशक्यहै ताते। अरु दक्षादि आश्रमही परमार्थरूपहैं, इसप्रकार तिन आश्रमों के वेत्ता कल्पनाकरते हैं, सोभी असत्‌ही हैं, क्योंकि आश्रम शब्दका अर्थ वेशहै तिस वेशकी शूद्रादिपर्यन्त भी व्याप्तिका प्रसंगादिदोषों की प्रवृत्तिहै ताते। अरु "स्त्रीपुन्नपुंसकंलिंगाः परापरमथापरे" "स्त्री, पुरुष, नपुंसक, लिंगवाले, अरु इतरपर अपरको कल्पना करतेहै" अर्थात् 'स्त्री, पुरुष, अरु नपुंसक, इनतीन लिंगात्मक शब्दों का समूहही परमार्थरूप है, इसप्रकार वैयाकरणी कल्पना करते हैं, सो भी अयुक्तही है। अरु कोई एक जे अपर अरु पर उभय ब्रह्मके माननेवाले हैं सो कहते हैं कि पर अरु अपर दोनों ब्रह्म परमवस्तु रूपहैं। सो उनका कथन भी यथार्थ नही, क्योंकि दो ब्रह्म होनेसे परस्पर में परिच्छिन्नतादि दोषकी प्राप्ति होती है ताते २७॥

२८॥हे सौम्य! "सृष्टिरिति सृष्टिविदो लय इतिच तद्विदः" "सृष्टि ऐसे सृष्टिके वेत्ता, अरुलय ऐसे तिसके वेत्ता कहतेहैं" अर्थात् सृष्टि (जगदुत्पत्ति) ही तत्त्व है इसप्रकार सृष्टिके वेत्ता कहते हैं, वा कोई एकलयके माननेवाले कहते हैं कि लयही तत्त्व है, अरु "स्थितिरिति स्थितिविदःसर्वेचेहतुसर्व्वदा" "स्थिति ऐसे स्थितिके वेत्ता अरु यह सर्वतो सर्वदाहै" ऐसे कहते हैं" अर्थात् स्थितिही परमार्थतत्त्व है ऐसी कल्पना करते हैं, अरु उत्पत्ति स्थिति लय यहही तत्त्वहै, इसप्रकार पौराणिक कल्पना करते हैं, सोभी अयुक्तही है, क्योंकि सत्‌से असत् की उत्पत्त्यादिकों का अभाव वक्ष्यमाण है ताते, ॥ हे सौम्य! अब [उक्त कल्पनाके अधिष्ठानको सूचित करते हैं]

यं भावं दर्शयेद्यस्य तं भावं सतु पश्यति । तञ्चावतिस भूत्वासौ तद्ग्रहः समुपैति तम् २९ ॥

उक्त अनुक्त । अर्थात् जो कहे सो, अरु नहीं कहे सो । यावत् कल्पना के भेद हैं, सो सर्व यहां इस आत्माविषे तो सर्वदा कल्पनावस्थाविषे कल्पना करते हैं, परन्तु । जिस कल्पक से यह कल्पितहैं तिस । आत्मा को कल्पितपना नहीं, क्योंकि जो आत्मा भी कल्पित होय तो सर्व कोही कल्पित होनेसे सर्व कोही अधिष्ठानपनेकी अयोग्यता प्राप्तहोती है ताते अरु । जो सर्वज्ञ कल्पक आत्मा है सो कल्पित नहीं क्योंकि जिसको आत्मा का कल्पक मानेंगे सो आत्मा करके कल्पितही होगा, अरु जो कल्पित होगा तिसको असत् होनेसे उसविषे कल्पकपने का असंभव है । अरु अनवस्था दोष भी आवता है ताते । प्राणरूप प्राज्ञ सर्वका बीज रूप है, तिसके कार्य के भेदही अन्यास्थिति पर्यन्त । अपने कारण के लक्षण से भिन्न कार्यपने के लक्षण की स्थिति पर्यन्त । पदार्थ हैं, अरु अन्य सर्व लौकिक प्राणियों की सर्व कल्पना के कल्पित भेद हैं, सो जैसे रज्जुविषे सर्प, तैसे तिनसे रहित आत्मा विषे, आत्मस्वरूप के अनिश्चय की हेतु जो अविद्या तिस अविद्या करके कल्पित है । यह ,२१, वें श्लोक से ,२८, वें श्लोक पर्यन्त नव श्लोकोंका समुदायरूप अर्थ है । प्राणादि श्लोकनके एक एक पदार्थोंके व्याख्यान का अल्पप्रयोजनके हुये प्रयत्न किया नहीं । यह भास्कराचार्य स्वामी की उक्ति है २८ ॥

२९ ॥ हे सौम्य ! "यं भावं दर्शयेद्यस्य तं भावं सतु पश्यति" । जिस पदार्थ के ताईं जिसको देखावे है सो तो तिसको देखताहै, अर्थात् बहुत कहने से क्या है, किन्तु प्राणादिकों के मध्य उक्त वा अनुक्त जिस एक पदार्थ के ताईं जिसको आचार्य वा अन्य अमुत । जाग्रत्हुआ । पुरुष " इदमेव तत्त्वमिति " (यहही तत्त्व है) इसप्रकार देखावता (लखावता) है सो पुरुष तो तिसपदार्थ

एतैरेषोऽपृथग्भावैः पृथगेवेति लक्षितः।
एवंयोवेदतत्त्वेन कल्पयेत्सोऽविशङ्कितः३० ॥

को "अयमहमिति वा ममेति" ‹यह मैं हूं वा मेरा है› इस प्रकार आत्मरूप देखताहै। अरु तिस देखनेवाले को यह पदार्थ जैसा गुरु आदिकों ने देखायाहै सो तैसा होके उसकी रक्षा करता है, अर्थात् अपने स्वरूपकरके उसको सर्व ओर से रोकताहै। अर्थात् मनुष्योंको आचार्य जिसपदार्थविषे निश्चय करावताहै सो पदार्थ पुनः अपने से अन्य पदार्थोंमें उस पुरुषका निश्चय होने देता नहीं किन्तु अपनी ओरही खींचता है। "तञ्चावति स भूत्वाऽसौतद्ग्रहः समुपैतितम्" ‹तिसविषे आग्रह है सो तिसको प्राप्तहोता है› अर्थात् तिस पदार्थविषे यहही तत्त्वहै ऐसा जो आग्रहरूप अभिनिवेश है सो तिस ग्रहण करनेवाले को प्राप्त होताहै, अर्थात् सो तिसके आत्मभाव को प्राप्त होताहै २६ ॥

३० ॥ हे सौम्य! ‹उक्तज्ञानकी स्तुत्यर्थ यह श्लोक कहते हैं› "एतैरेषोऽपृथग्भावैः पृथगेवेति लक्षितः" ‹इन अपृथक्भावों से यह पृथक्ही है ऐसे लक्ष्यकरायाहै› अर्थात् इन प्राणादि आत्मा से अपृथक् भूतकरके अपृथक्भावों से यह आत्मा सर्पादिक कल्पनारूप भावोंसे रज्जुवत् पृथक्ही है, इसप्रकार लक्ष्यकराया है अर्थात् रज्जुके आश्रय कल्पितसर्प रज्जुसे अपृथक्हुआ भावरूप है, परन्तु उस कल्पित सर्पादिकों से अकल्पित सत्यरूप रज्जु पृथक्ही है 'अर्थात् कल्पितसर्पका आश्रय होने से उस अधिष्ठानरूप रज्जुका उस सर्पविषे अन्वयहै, अरु उस अकल्पित अधिष्ठानरूप रज्जुविषे अध्यस्त सर्प का व्यतिरेकहै, तैसे आत्मरूप अधिष्ठानके आश्रय कल्पित अरु अधिष्ठान से अभिन्न भावरूप प्राणादिक तिसविषे आत्मा का आश्रयरूप से अन्वय है, अरु उन कल्पित प्राणादिकों का अकल्पित आत्मरूप अधिष्ठानविषे व्यतिरेकहै, तातें जो सत्यरूप आत्मा कल्पितभावरूप प्राणादिकों से

पृथक्ही है, इसप्रकार आचार्य ने लक्ष्यकरायाहै । तथापि मूढ़ पुरुषों करके अलक्षितही है " विमूढानानुपश्यन्ति " । अर्थात् कल्पित प्राणादिकों की स्वाधिष्ठान आत्मा से पृथक् सत्ताके अभावसे सो आत्मरूपही है, परन्तु सो अविवेकी को तैसा भासता नहीं । अरु विवेकी पुरुषों को , रज्जुविषे कल्पित सर्पादिकोंवत् प्राणादिक आत्मा से पृथक् नहीं । अर्थात् जो जिसके आश्रयभासताहै तिसकी स्वसत्ताके अभावसे वो अपने आश्रयसे अपृथक्हुआ सोई रूपहै, इसप्रकार "पश्यन्तिज्ञानचक्षुष." विवेकी पुरुष देखते हैं । यह अभिप्राय है ॥ "इदंसर्वं यदयमात्मेति" ‹यह सर्वपदआत्मा है› इस श्रुतिप्रमाण से । 'एवं यो वेदतत्त्वेन कल्पयेत्सोऽविशंकितः ' ‹इसप्रकार तत्त्वसे जानताहै सो शंकारहित हुआ कल्पताहै› अर्थात् जो उक्तप्रकार [उक्त प्रकारके ज्ञान वाला जो पुरुषहै सो वेदका किंकर होतानहीं, किन्तु सो वेदके जिस अर्थको कहताहै सोई वेदार्थहोता है यह अर्थहै] रज्जुसर्पवत् आत्माविषे कल्पित अनात्म पदार्थोंके स्वाधिष्ठानसे पृथक् हुये असत्भावको, अरु।कल्पना कल्पितसेरहित।निर्विकल्प।सर्वाधिष्ठान। आत्माके । सद्भाव । को जोपुरुष । आत्मज्ञान (महावाक्यार्थज्ञान) रुप तत्त्वकरके श्रुतिके वाक्य प्रमाणसे अरु अनुभव युक्तिप्रमाणसे जानताहै, सोशंकारहित हुआ यह वाक्य इसके अर्थ के परहै, अरु यह अन्य अर्थ के परहै, इसप्रकार विभागसे वेदार्थ को कल्पताहै । अरु यहां । इसअर्थविषे। मनुमहाराजका वचन प्रमाणहै " नह्यनध्यात्मविद्वेदान् ज्ञातुं शक्नोति तत्त्वतः । नह्यनात्मवित्कश्चित्क्रियाफलमुपाश्नुत, इति मनुवचनम् ,, ' अध्यात्मतत्त्व का न जाननेवाला वेदों को तत्त्वकरके जानने को समर्थहोता नहीं, अरु कोई भी अनात्मवेत्ता क्रिया (प्रमाण) के फल (तत्त्वज्ञानको पावतानहीं) यह मनुमहाराज का वचनहै ३० ॥

२१ ॥ हे सौम्य![जिनयुक्तियों करके इस वैतथ्याख्यप्रकरणविषे

स्वप्नमायेयथादृष्टे गन्धर्वनगरंयथा । तथाविश्वमिदंदृष्टं वेदान्तेषुविचक्षणैः ३१ ॥

द्वैतका मिथ्यापना कहाहै तिनयुक्तियोंको प्रमाणके अनुग्रहकरके युक्त होनेसे तिनकीयथार्थता निश्चयकरनेकेयोग्यहै, ऐसे कहतेहैं] जो यह द्वैतका असद्भाव युक्तिसे कहा सो वेदान्त (उपनिषद्)के प्रमाणसे निश्चितहै, इसप्रकारकहते हैं। "स्वप्नमायेयथादृष्टेगन्धर्वनगरंयथा" (जैसे स्वप्न माया देखे हैं,जैसे गन्धर्वनगर। देखेहैं।) अर्थात् स्वप्न अरु माया (इन्द्रजालीकृतकौतुक) असत् वस्तु रूप असत्य हैं, तथापि सो अविवेकी जनोंकरके सत्वस्तुरूप हुयेवत् लखने में आवताहै, अरु सो (स्वप्न, माया) विवेकी जनोंकरके असत्रूप लखनेमें आवता है।अर्थात जो पुरुष स्वप्न अरु मायाके वर्त्तमानकालमेंही यह स्वप्न अरु माया ही है, इसप्रकार यथार्थ अनुभवसे सम्यक् प्रकार जानता है सो उनको असत्यही मानता है। अरु जैसे जहां तहां स्वपाणि प्रसारितवत् प्रकटताको प्राप्तहुये क्रयविक्रय करने योग्यादि रूप पदार्थों करके सम्पन्न हट्टों (बजारों) करकेयुक्त गृहगोपुर अट्टालियां प्रासादादि अरु स्त्री पुरुष पशु आदिरूप व्यवहारों करके पूर्णहुयेवत् सत्रूप करके देखाहुआ ही गंधर्वनगर अकस्मात् ही अभावको प्राप्तहोता देखाहै "। तथा विश्वमिदंदृष्टंवेदान्तेषु विचक्षणैः" (तैसेयह विश्व देखा है वेदान्त विषे विचक्षण । पुरुषों । करके) अर्थात् जैसे स्वप्न जगत्, मायावी की माया, अरु गन्धर्व नगर, यह प्रत्यक्ष भासते संते भी असत्यही हैं, तैसे ही यह विश्वभी देखा है 'प्रश्न' कहां किन्होंने देखा है 'उत्तर' कहते हैं, " नेहनानास्ति किञ्चन" "इन्द्रोमायाभिः" " आत्मै वेदमग्र आसीत्" "ब्रह्मै वेदमग्र आसीत् " " सत्वेव सोम्येदमग्र आसीत्" " द्वितीयाद्वैभयंभवति " " नतुतद्द्वितीयमस्ति " " यत्रत्वस्य सर्व्वमात्मैवाभूदित्यादिषु " (यहां नाना कुछभी नहीं । परमात्मा

न निरोधो नचोत्पत्तिर्नबद्धोनचसाधकः । नमुमुक्षुर्नवैमुक्तइत्येषापरमार्थता ३२ ॥

माया करके नानारूप को प्राप्तहोता है। यह आगे आत्माही था। यहआगेब्रह्महीथा। हे सौम्य! यहआगे एकसतही था। दूसरेसे निश्चयकरके भयहोताहै ; सो द्वितीय तोहै नहीं। जहां तो इसको सर्वआत्माही होताहुआ। इत्यादि उपनिषद्रूप वेदान्तविषे लक्षित जे एक परमार्थ वस्तु के देखनेवाले अत्यन्त निपुणतर साक्षात् आत्मानुभवी आत्मवेत्ता पंडितरूप विलक्षण पुरुषकरके देखाहै॥ तथाच "तमः श्वभ्रनिभंदृष्टं वर्षबुद्बुदसन्निभं, नाशप्रायं सुखाद्धीननाशोत्तरमभावगमितिहि" सन्द अन्धकारविषे स्थितरज्जु विषे सूच्छिदादिकों के तुल्य अरु वर्षा बुद्बुदके तुल्य नाशकरके ग्रस्त सुखसेहीन नाशोत्तर अभावरूपताको प्राप्त होनेवाला विश्व विवेकियों करके दृश्य है, इस व्यास स्मृति के प्रमाणसेभी द्वैत वस्तु का असद्भावही निश्चित है ३१ ॥

३२ ॥ हे सौम्य! (प्रमाणअरु युक्तिसे द्वैतके मिथ्यापनेके साधने करके, अद्वैत ही पारमार्थिक है, इसप्रकार सिद्धहुये, तिसन्निर्द्धार किये अर्थको इस श्लोक विषे संक्षेप से कहते हैं) अब । इसद्वितीय प्रकरणकी समाप्तिके अर्थ यह श्लोक कहतेहैं। जबद्वैतमिथ्या है अरु एक अद्वैत आत्माही परमार्थसे सत्रूपहै तब यह सिद्ध हुआ कि "न निरोधो नचोत्पत्तिर्न बद्धोनच साधकः, न मुमुक्षुर्नवैमुक्त इत्येषा परमार्थता" (निरोध नहींपुनः उत्पत्तिभी नहीं, बद्धनहीं, साधकनहीं मुमुक्षु नहीं, मुक्त नहीं, यह परमार्थता नहीं अर्थात् यह सर्वलौकिक अरु वैदिक व्यवहार अविद्या का विषय। अज्ञान पर्यन्त । है तब निरोध कहिये प्रलय सो नहीं, उत्पत्ति कहिये जगत् का जन्म सो भी नहीं, अरु जब जगदुत्पत्ति नहीं तब बद्ध कहिये संसारीजीव सो भी नहीं; अरु जब बद्धनहीं तब साधक कहिये मोक्षार्थ साधन करनेवाला सो भी नहीं, अरु

न निरोधो नचोत्पत्तिर्नबद्धोनचसाधकः । नमुमुक्षुर्नवैमुक्तइत्येषापरमार्थता ३२ ॥

माया करके नानारूप को प्राप्तहोता है। यह आगे आत्माही था। यहआगेब्रह्मही था। हे सौम्य! यहआगे एकसत्हीथा। दूसरेसे निश्चयकरके भयहोताहै; सो द्वितीय सोहै नहीं। जहां तो इसको सर्वआत्माही होताहुआ। इत्यादि उपनिषद्रूप वेदान्तविषे लक्षित जे एक परमार्थ वस्तुके देखनेवाले अत्यन्त निपुणतर साक्षात् आत्मानुभवी आत्मवेत्ता पंडितरूप विलक्षण पुरुषकरके देखाहै॥ तथाच "तमः श्वभ्रन्निभंदृष्टं वर्षबुद्बुदसन्निभं, नाशप्रायं सुखाद्धीनंनाशोत्तरमभावगमितिहि" मन्द अन्धकारविषे स्थितरज्जुविषे सूच्छिद्रादिकों के तुल्य अरु वर्षा बुद्बुदके तुल्य नाशकरके ग्रस्त सुखसेहीन नाशोत्तर अभावरूपताको प्राप्त होनेवाला निश्च विवेकियों करके दृश्य है, इस व्यास स्मृति के प्रमाणसेभी द्वैत वस्तु का असद्भावही निश्चित है ३१ ॥

३२ ॥ हे सौम्य! (प्रमाणअरु युक्तिसे द्वैतके मिथ्यापनेके साधने करके, अद्वैत ही पारमार्थिक है, इसप्रकार सिद्धहुये, तिसनिर्द्धार किये अर्थको इस श्लोक विषे संक्षेप से कहते हैं) अब (इसद्वितीय प्रकरणकी समाप्तिके अर्थ यह श्लोक कहतेहैं। जबद्वैतमिथ्या है अरु एक अद्वैत आत्माही परमार्थसे सत्रूपहै तब यह सिद्ध हुआ कि "न निरोधो, नचोत्पत्तिर्न बद्धोनच साधकः, न मुमुक्षुर्नवैमुक्त इत्येषा परमार्थता" (निरोध नहींपुनः उत्पत्तिभी नहीं, बद्धनहीं, साधकनहीं मुमुक्षु नहीं, मुक्त नहीं, यह परमार्थता नहीं अर्थात् यह, सर्वलौकिक अरु वैदिक व्यवहार अविद्या का विषय (अज्ञान पर्यन्त) है तब निरोध कहिये प्रलय सो नहीं, उत्पत्ति कहिये जगत् का जन्म सो भी नहीं, अरु जब जगदुत्पत्ति नहीं तब बद्ध कहिये संसारीजीव सो भी नहीं, अरु जब बद्धनहीं तब साधक कहिये मोक्षार्थ साधन करनेवाला सो भी नहीं, अरु

मुमुक्षु कहिये साधन सम्पन्न मोक्षकी इच्छावाला सो भी नहीं, अरु जब बद्धसे मुमुक्षु पर्यन्त नहीं तब मुक्त कहिये सर्व बन्धनों से छूटा पुरुष सो भी नहीं। इस प्रकार उत्पत्ति प्रलयके अभाव से बद्धादिक कुछभी हैं नहीं, यह परमार्थता है ॥ [उक्तार्थकोहीं प्रश्नोत्तर से विस्तार करते हैं] प्रश्न। उत्पत्ति अरु प्रलय का अभाव कैसे है, उत्तर। इस द्वैतके असद्भावसे उत्पत्ति अरु प्रलय का अभाव है, क्योंकि "यत्रहि द्वैतमिव भवति, तदितर इतरं पश्यति," "य इहनानेव पश्यति" "आत्मैवेदं सर्वम्" "ब्रह्मै वेदंसर्वम्" "एकमेवाद्वितीयमिदं सर्व्वम्" "सर्व्वं खल्विदंब्रह्म" "यदयमात्मा" "नेहनानास्ति किञ्चन" जहांही द्वैतवत् होता है तहां और का और देखता है, जो यहां। एक अद्वैत आत्म तत्वविषे। नानात्ववत् देखता है, आत्माही यह सर्व है, ब्रह्मही यह सर्व है, एकही अद्वितीय यह सर्व है, निश्चय करके सर्व ब्रह्मही है, जो यह आत्मा है, इत्यादि अनेक श्रुतियों करके द्वैत का असद्भावही सिद्ध है। अरु सत्वस्तुकीही उत्पत्ति वा प्रलय होती है, शशशृंग। खरहाके सींग। आदिक असत्पदार्थों की उत्पत्ति प्रलयहोवै नहीं अरु अद्वैतवस्तु भी उत्पत्ति वा लय होती नहीं। अर्थात् जो वस्तु उत्पत्ति अरु लय होती है सो दूसरेकी हेतुवाली है, क्योंकि जो उपजती है सो अपने से इतर कारण से उपजती है अरु दूसरे में ही लीन होती है ताते। अरु अद्वैत है सो उत्पत्तिवालाभी है यह कहना विरुद्ध है। एतदर्थ ही जो पुनः प्राणादिरूप अद्वैतका व्यवहारहै सो रज्जु विषे सर्पवत् आत्मा विषे कल्पितहै, इस प्रकार कहाहै अरु रज्जु सर्पादिरूप जो मनकी कल्पना है तिसके रज्जु विषे उत्पत्ति वा प्रलयनहीं है, अरु तैसेही मनविषे रज्जु सर्पकी उत्पत्ति वा प्रलय नहीं है। अरु रज्जु अरु मन दोनों से भी नहीं है तैसेही द्वैत को मनकी कार्यताके अविशेषसे। अर्थात् द्वैत प्रपंचको मनकी कार्यतारूप विशेषके अभाव से। तिस द्वैतकी उत्पत्ति वा प्रलयबने

नहीं । अरु जिस करके निरोध किये । अफुरहुये । मनविषे वा सुषुप्तिविषे द्वैत देखतेनहीं । एतदर्थ मनकी कल्पनामात्रही द्वैत है यह सिद्धहुआ । तातेही कहाहै कि द्वैतके सुसद्भावसे निरोधादिकों का अभाव परमार्थता है, ॥ हे सौम्य! जब उक्तप्रकार द्वैतके अभाव विषे शास्त्रका व्यापार है, द्वैतविषे नहीं, क्योंकि अभावके बोधन विषे व्याप्तजो शास्त्र तिसका भाव के बोधनविषे व्यापार होनेका विरोधहै ताते। अरु तैसेहुये । अर्थात् अभाव बोधकशास्त्र को भावबोधनसे विरोधहुये । अद्वैतकी वस्तुरूपताविषे प्रमाण के अभावहुये अरु द्वैतके अभावहुये शून्यवादका प्रसंगप्राप्त होवेगा । जहां वादी की ऐसी शंका है । तहां सिद्धांती समाधान कहेहै, यह वादी का कथन बने नहीं, क्योंकि जैसे रज्जु सर्पादिकों की कल्पना को निराश्रयता का असंभव है । अर्थात् रज्जु सर्पादिक यावत्कल्पनाहै सो निराश्रयहोतीनहीं । तैसेही द्वैतकीकल्पनाको अधिष्ठान (आश्रय) से रहितपने का असंभव है ताते, एतदर्थ तिस द्वैत का अधिष्ठान होनेकरके अद्वैत आस्था करने के योग्यहै । इस प्रकार ॐकारके प्रकरणविषे इसशंकाकासमाधान हमने कियाहै तिसको तू पुनः कैसे उठावताहै ॥ । यह सिद्धान्तीके कहनेपर शून्यवादी । कहता है कि सर्पादि सर्व विकल्पोंकी आश्रय रूप जो रज्जु सोभी तुम्हारे मतविषे कल्पितहीहै, इस प्रकार दृष्टान्त का सम्भव है, । सो वादी का कथन बने नहीं, क्योंकि कल्पनाके लयहुये अवशेष रही अवधिरूप सत्ताको रज्जु आदिकों विषे देखतेहैं ताते । अरु द्वैतभ्रमके बोधका साक्षी होने करके जो स्फूर्त्तिमात्र चैतन्य है तिसको अकल्पित होने करकेही सद्भाव का सम्भव है ताते शून्यभावकी प्राप्ति है नहीं ॥ अरु जो कदापि ऐसा कहे कि रज्जु सर्पवत् अद्वैत का असद्भाव है, सो भी बने नहीं, क्योंकि आत्मा । भ्रमरूप न होके । भ्रमका साक्षी है ताते। सर्प के अभावके (भ्रान्ति) ज्ञानसे पूर्व अकल्पित रज्जुके अंशवत् नियमसे अकल्पितहै ताते । अरु कल्पनाके कर्त्ताको कल्पना

की उत्पत्ति से पूर्व सिद्ध होनेके अंगीकारसे ही तिसके असद्भाव का असम्भव है । अर्थात् कल्पना के कर्त्ता की कल्पनासे पूर्व अरु पश्चात् सिद्धि होने से अरु कल्पना के भावाभाव का साक्षीहोने से तिसका असद्भाव कदापि सिद्ध होवे नहीं । अरु जो ऐसाकहे कि अद्वैत स्वरूप बिषे व्यापारके अभावहुये पुनः शास्त्रको द्वैतके ज्ञानकी निवर्त्तकता कैसे होवेगी, सो दोषभी नहीं, क्योंकि रज्जु बिषे सर्पादिकों वत् आत्माबिषे द्वैतको अविद्या करके अध्यस्त-पना है ताते । अरु अध्यस्त द्वैतके निवर्त्तक शास्त्रको भी अध्यस्त पना है ताते । । प्रश्न । आत्माविषे द्वैतका अध्यस्तपना कैसेहै । उत्तर । जन्माहों, सुखीहों, दुःखीहों जीर्णहुआहों, मरताहों, मूढ़हों देहवान् हों, देखताहों, स्थूलहों, सूक्ष्महों, कर्त्ताहों, भोक्ताहों, संयोग वियोगवानहों, वृद्धहों, जर्जरहों, यह मेराहै मैं इसकाहों, इत्यादि सर्व विकल्प आत्माविषे अध्यस्तहोवे हैं । जैसेसर्प जल-धारादिक भेदों बिषे अव्यभिचारसे रज्जु अनुगत है । तैसे सर्वत्र अव्यभिचारसे इनविषे आत्मा अनुगतहै । जब इसप्रकार विशेष्य के स्वरूपकी प्रतीतिका सिद्ध होनेसे, शास्त्रसे कर्त्तव्यताहै नहीं, अरु अकृतवस्तुका कर्त्ता जो शास्त्र है सो कृतवस्तुके अनुसारीपने के हुये अप्रमाणहोवेगा । अरु जिसकरके आत्माका अविद्या से आरोपित सुखीपनादिक जे विशेष प्रतिबन्ध तिसके स्वरूपसे अ-नवस्थान, अरु स्वरूपसे अवस्थान श्रेय है, ताते सुखीदुःखीपने आदिकोंका निवर्त्तक जो शास्त्र है सो "नेति नेति" "अस्थूल-मनण्वं" इत्यादिक श्रुतिवाक्यों से आत्माविषे असुखीपने आ-दिकोंकी प्रतीतिके करने से आत्मस्वरूपवत् असुखीपनादिक भी सुखीपने आदिक भेदोंविषे अनुगतधर्म नहीं है, अरु जब अनु-गतहोय तब सो सुखीपनेआदिकरूप विशेष आरोपित न होगा । जैसे उष्णतारूप गुणविशेषवाले अग्निविषे शीतता है तैसे । एत-दर्थतिस निर्विशेषही आत्माविषे सुखीपने आदिक विशेष कल्पि-तहै । अरु जो आत्मा के असुखीपने आदिकों का जो प्रतिपादक

भावैरसद्भिरेवायमद्वयेनचकल्पितः। भावाअप्यद्वये नैव तस्मादद्वयताशिवा ३३॥

शास्त्रहै, सो तिसके सुखीपने आदिक विशेषकी निवृत्तिके अर्थही है, यह सिद्धहुआ, । यहां "सिद्धन्तु निवर्तकत्वात्" ‹सिद्ध है निवर्त्तक होनेसे› इसप्रकार वेदकेवेत्ता द्रविडाचार्य्य का सूत्र प्रमाणहै॥ [यहां इस सूत्रका यह अर्थ है कि ब्रह्म विषे पदों की प्रवृत्ति के अभाव हुयेभी शास्त्रका प्रमाणिकपना सिद्धही है; क्योंकि अभावके बोधनविषे प्रवृत्त "नञ् (नकार)" पदकरके युक्त स्थूलादिक अर्थवालेपदों से स्वाभाविक द्वैत के अभाव के बोधन करके अध्यस्त का निवर्त्तकहै ताते,] ३२॥

३३॥ हेसौम्य! [निरोधादिक सर्व विशेषके अभावकरके उपलक्षित जो वस्तुहै सो वास्तव रूप है, ऐसा उक्त श्लोक का अर्थ है। तिसको सामान्य विशेष वस्तुविषे विशेषता से आश्रय करके निरोधादिकों का सम्यक् साधनरूप होनेसे, तिसके असत्पनेकी शंकाकरतेहैं, तिसहेतुकरके तिसके साधनेकीअपेक्षा होनेसेतिसके लखावनेके परायण यहश्लोकहै]अबपूर्वकहे श्लोकका हेतुकहतेहैं "भावैरसद्भिरेवायमद्वयेनचकल्पितः" ‹असत्रूपहीभावोंसे अरु अद्वैत से यह कल्पितहै› अर्थात् जैसे रज्जुविषे असत्रूप सर्प अरु जलधारादिकों से, अरु सद्रूप अद्वैत रज्जु द्रव्यसे, यह सर्प है वा यह जलधारा है वा यह भूदरार है वा यह दण्ड है, इत्यादि प्रकार से रज्जु द्रव्यही कल्पना करते हैं। इसप्रकार ही अविद्यमान प्राणादिक अनन्त असत् वस्तुओंसेही यह आत्मा कल्पना करते हैं, परमार्थ से तिनकी सत्तानहीं। अर्थात् आत्मासे इतर प्राणादिकों की पृथक् सत्ताके अभावसे यह प्राणहै यह मन है यह इंद्रियहै, इसप्रकार आत्माकोही कल्पते हैं। अरु जिसकरके अचल संकल्पादि सर्ववृत्तिसे रहित अफुर। हुये मनविषे कोईभी पदार्थ किसीकरके भी जाननेको शक्य होतानहीं अरु आत्माका चलन

नात्मभावेननानेदं नस्वेनापि कथञ्चन ॥ नपृथङ्ना पृथक्किञ्चिदितितत्त्वविदोविदुः ३४ ॥

कल्पना करने को अशक्यहै, अरु चंचलतासे रहित आत्माकेही प्रतीयमान जो भावहैं सो परमार्थ से सत्रूप कल्पना करने को शक्य हैं नहीं, एतदर्थ असद्रूपही प्राणादि भावोंसे, अरु रज्जुवत् सर्व विकल्पके आश्रयभूत परमार्थसत्रूप आपअद्वैतसे एकसत् स्वभाव वालाहुआ भी यहआत्मा आपही कल्पितहै। अरु "भावा अप्यद्वयेनैव तस्मादद्वयता शिवा" (भावभी अद्वयसेही कल्पित हैं तस्मात् अद्वयता शिवहै) अर्थात् पुनः वे प्राणादि भाव भी सद्रूप अद्वैत आत्मासेही कल्पित हैं। अरु जिस करके अधिष्ठान (आश्रय) रहित कोई भी कल्पना देखते नहीं, एतदर्थ सर्व कल्पना का अधिष्ठान होनेसे अपने स्वरूपसे अद्वैतताके अव्यभिचारसे कल्पनावस्थामें भी अद्वैतता शिव कहिये कल्याणरूपही है। अरु सो कल्पनाही तो रज्जु सर्पआदिकी वत् (जन्म मरणादि लक्षणरूप) भयकी कारणहै एतदर्थही अशिवरूपहै, अरु (भय का कारण जे कल्पना तिससे पृथक् कल्पनारहित अरु तिनका आश्रय) जो अद्वयता सो जिसकरके अभयरूपहै (क्योंकि "अभयं वै जनकप्राप्तोऽसीति" इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे एक अद्वयरूप आत्माको जाननेवाला अभयरूप अपने आपको प्राप्तहोता है। ताते सोई सर्वका परमकल्याण शिवरूपहै। "विद्वान्न बिभेति कदाचन" ३३ ॥

३४ ॥ हे सौम्य! [किंवा यह नानारूप द्वैत क्या आत्माके तादात्म्य से सिद्धहोताहै, वा स्वतन्त्र सिद्धहोताहै। यह विवेचन करने के योग्यहै। तिनमें प्रथमपक्ष (आत्माकी तादात्म्यता) बने नहीं। यहां यहअर्थहै कि यह नानारूपद्वैत आत्माके तादात्म्यसे सिद्ध होनेकेयोग्य नहीं, क्योंकि परस्परमें विरुद्धस्वभाववाले जे जड़ अरु अजड तिनके तादात्म्यका असम्भव है ताते। अरु सर्व

वीतरागभयक्रोधैर्मुनिभिर्वेदपारगैः। निर्विकल्पो ह्ययंदृष्टःप्रपञ्चोपशमोऽद्वयः ३५॥

भेदसेरहित जो आत्मा तिससे तादात्म्य के हुये द्वैतके नानापने की असिद्धिहोवेगी ताते] अद्वैतता शिवरूपकहांसे होवेगी,क्योंकि जहां अन्य से अन्यका नानारूप भिन्नपना देखाहै तहां अशिव होता है,। ऐसा जो कदापि वादी कहे सो नहीं। क्योंकि "नात्मभावेन नानेदं न स्वेनापि कथंचन" (यह आत्मभाव से नाना नहीं, अपने से भी कदाचिन्नहीं) अर्थात् जिसकरके इस परमार्थ से सतरूप आत्मा विषे प्राणादिक संसार का समूहरूप यह जगत् आत्मभाव (परमार्थरूप) से नाना कहिये आत्मा से अन्य वस्तुरूप होतानहीं। जैसे रज्जु स्वरूपसे प्रकाशकर निरूपण किया जो कल्पित सर्प सो नानारूप नहीं, तद्वत्। अरुअपने प्राणादिक स्वरूपसेभी यह जगत् कदाचित्भी विद्यमानहै नहीं,क्योंकि रज्जु में सर्पवत् कल्पित है ताते, अरु जैसे अश्व से माहिष पृथक् ही विद्यमान है, तैसे प्राणादि वस्तु परस्परमें भिन्न नहीं। एतदर्थ "नपृथङ्नापृथक्किञ्चिदितितत्त्वविदोविदुः" (पृथक् अपृथक् कुछ भी नहीं ऐसे तत्त्वके वेत्ता कहते हैं) अर्थात् । नानात्वको। असत् होने से परस्पर में वा अन्य से कुछ भी पृथक् नहीं, इस प्रकार परमार्थ तत्त्वके वेत्ता ब्राह्मण जानते हैं। एतदर्थ अशिव की हेतुता के अभाव से अद्वैतता ही शिवरूप है। यह अभिप्राय है ३४॥

३५॥ हेसौम्य! यह जो सम्यक् दर्शन कहा अब तिसकी स्तुति करते हैं। "वीतरागभयक्रोधैर्मुनिभिर्वेदपारगैः" (रागभयक्रोध से रहित मुनि अरु वेदके पारको प्राप्तहुये पुरुषों करके) अर्थात् विगतकहिये अभाव हुये हैं राग भय क्रोधादिक सर्व दोष जिनके, । अर्थात् राग भय क्रोधादिक दोष जे सम्यक् आत्मज्ञानकी प्राप्ति में प्रतिबंधकहैं तिनकाहेतु अविद्या जन्य द्वैतभाव है सो जिसका

तस्मादेवं विदित्वैनमद्वैते योजयेत् स्मृतिम्।
अद्वैतंसमनुप्राप्य जडवल्लोकमाचरेत् ३६॥

एक अद्वैत आत्मज्ञान करके निर्मूल होता है तब रागादि सर्व दोषों का अभाव होता है, इसप्रकार जे रागादि दोष रहित। अरु सर्वदा मनन करने के स्वभाववाले मननशील परम विवेकी मुनि, अरु वेदके पारको प्राप्तहुये जे वेदार्थ तत्त्वके ज्ञाता अरु वेदान्तके अर्थविषे परम बोधवान्, ऐसे पुरुषोंकरकेही "निर्विकल्पो ह्ययं दृष्टः प्रपञ्चोपशमोऽद्वयः" ॥ निर्विकल्प प्रपंचके उपशमवाला अद्वैतरूप यहदेखा (जान्या) है ॥ अर्थात् उक्तप्रकारके मुनि ज्ञानी पुरुषोंकरके सर्व विकल्प से रहित अरु द्वैतभेद के विस्ताररूप प्रपंच के अभाववाला, इसहीसे अद्वैतरूप यह आत्मा देखा जान्या, यथार्थ अनुभवकिया है। इस कहनेका अभिप्राय यहहै कि द्वेषादि दोषरहित वेदांतके अर्थविषे तत्पर पंडित संन्यासी करकेही परमात्मा देखने। अनुभव करने। को शक्य है। अरु तिनसे इतर रागादि दोषकरके मलिनहुये चित्तवाले, अरु अपने पक्षपातके देखनेवाले तार्किकादिकों करके नहीं "न कर्म्मिणो प्रवेदयन्ते रागात्" "नैषा तर्केण मतिरापनेया" इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से। ३५॥

३६॥ हेसौम्य! "तस्मादेवं विदित्वैनमद्वैते योजयेत् स्मृतिम्" ॥ तातें ऐसे जानके अद्वैतविषे स्मृतिको जोड़ना ॥ अर्थात्। जिस करके परमार्थरूप अद्वय आत्मा उक्त प्रकारका शिवरूपहै। तातें इसप्रकार। उपनिषदादि वेदान्त। शास्त्रसे सम्यक् प्रकार जानके अद्वैतविषे स्मृतिको जोड़ना। लगावना। अर्थात् अद्वैतके ज्ञानार्थ स्मृतिकरना वा रखना। अर्थात् जबशास्त्र अरु आचार्यकरकेसम्यक् अद्वैततत्त्वका यथार्थ साक्षात् अनुभवपूर्वक उसका दृढ़निश्चयात्मक भाव होताहै तब असत् नामरूप क्रियात्मक जगत् तिसकी संकारणविस्मृतिरूप निर्विकल्प अवस्थान समाधिसे जब उत्थान

निस्स्तुतिर्निर्नमस्कारो निःस्वधाकार एवच । चला
चलनिकेतश्चयतिर्यादृच्छिकोभवेत् ३७ ॥

होवे तब प्रत्यक्ष भासमान जे मृगतृष्णाके जलवत्पश्चविषयात्मक समस्त जगत् तिसविषे तिसके अधिष्ठानकी स्मृतिकरना कि यह सर्व नानात्मक द्वैत अपने अद्वैताधिष्ठान से इतर नहीं यह वोही रूपहे सो अद्वय अधिष्ठानही सर्वात्मा है, ताते "मत्तःपरतरन्नान्यत् किंचिदस्ति" मुझ सर्वाधिष्ठानसे इतर कुछभी नहीं, इस प्रकार अपनी दृढ़ भावनारूप स्मृतिको अद्वैत तत्त्व में जोड़ना । अरु "अद्वैतंसमनुप्राप्य जडवल्लोकमाचरेत्" (अद्वैत को सम्यक् प्रकार प्राप्तहोके जड़वत् लोकविषे विचरे) अर्थात् उक्तप्रकार अद्वैतमें स्मृतिको योजनाकरके । इस अद्वैतको "अहं ब्रह्मास्मि" (मैं ब्रह्महौं) ऐसे सम्यक् प्रकार जानके सर्वलौकिक व्यवहार को त्यागके । केवल शरीर यात्रामात्रके लिये । जड़ (मूर्ख) वत् हुआ लोकविषे विचरे । अभिप्राय यह है कि । मैं इसप्रकार का यहहौं, ऐसे आपको विद्या अरु कुलादिक से अप्रख्यात अरु अपने लक्ष्यको अप्रकट करताहुआ विद्वान् ज्ञानी लोक विषे विचरे । "भैक्षचर्य्यंचरन्ति" ३६ ॥

३७ ॥ हे सौम्य! प्रश्न । पूर्वकहा जो विद्वान् जड़वत्हुआ लोक विषे विचरे सो । किस आचरण से विचरे, । उत्तर "निस्स्तुतिर्निर्नमस्कारो निःस्वधाकारएवच" (स्तुति से रहित, नमस्कार से रहित, स्वधाकारसे रहितही होवे) अर्थात् । अपने आत्मा से । अन्य देवताओं की स्तुति (आराधनादिक) से रहित होवे, अरु मनुष्यों (ब्राह्मणादिकों) के अर्थ नमस्कारादिकों से रहितहोवे, अरु पितरों के अर्थ स्वधाकार से रहित होवे । अर्थात् उक्तप्रकार का एकात्मदर्शी विद्वान् , स्तुति यज्ञादि देवकार्य से, अरु नमस्कार आतिथ्यादि मनुष्यकार्यसे, अरु स्वधाश्राद्धादिक पितृकार्य से, रहित यती (संन्यासी) ही होवे । अभिप्राय यहहै कि स्तुति

नमस्कारादि सर्व कर्म्मों से रहित, अरु तिनकर्मों में प्रवृत्ति के हेतु जे, वित्तैषणा, पुत्रैषणा, लोकैषणा, अर्थात् वित्त पुत्र अरु स्वर्ग लोक, इनकी कामना तिसका अशेषत्यागी हुआ परम हंस परिव्राट् आश्रमको प्राप्तहोवे " एतंवैतमात्मानंविदित्वेत्यादिश्रुतेः " "तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायण इत्यादिस्मृतेश्च" "इस प्रसिद्ध तिसआत्माको जानके । अरु तिसविषे बुद्धिवालेतिसरूप तिस विषे निष्ठावाले तिसपरायणहुये"इत्यादि श्रुति स्मृतियों के प्रमाणसे । अरु " चलाचलनिकेतश्चयतिर्यादृच्छिकोभवेत् " "चलाचल निकेतवाला यति यादृच्छिकहोवे" अर्थात् चलकहिये क्षण क्षणविषे अन्यथाभावहोनेरूप स्वभाववाला चलशरीर है, अरु निराकार सर्वत्र पूर्णहोने से अचलआत्माहै । ताते जब कदाचित् भोजनादिक व्यापारके निमित्त आकाशवत् अचलरूप आत्मतत्त्व रूप । अपने निकेत, आश्रय, (आत्मस्थिति) को विस्मरण करके । अर्थात् लोकदृष्टिमात्र विस्मरण करके क्योंकि स्मरण अरु विस्मरण अन्यविषे होताहै ज्ञानोत्तर अपने आप आत्माविषे नहीं । मैंहौं ऐसे मानता है, । वा साधारणलोक उसको यह भोजनआदि करताहै ऐसा मानतेहैं । तिससमय विद्वान् शरीररूप चल निकेत (आश्रय) वाला होताहै, अरु तिस भोजनादि व्यापारसे अन्य कालविषे आत्मतत्त्वरूप अचल निकेतवाला होवेहै । इसप्रकार यह विद्वान् चलाचल निकेतवाला है । परन्तु बाह्य विषयों के आश्रयवाला नहीं । अरु सो विद्वान् यादृच्छिक होवे है, अर्थात् यदृच्छा जो दैवगति तिससे प्राप्तहुये । अर्थात् विनायत्नकेअनाश्रित प्राप्तहुये । कोपीन आच्छादन अरु ग्रासमात्र से देहकी स्थितिवाला होवे ३७ ॥

तत्त्वमाध्यात्मिकं दृष्ट्वा तत्त्वं दृष्ट्वातु वाह्यतः । तत्त्वी भूतस्तदारामस्तत्त्वादप्रच्युतो भवेत् ३८ ॥

इति गौडपादीयकारिकायां वैतथ्याख्यंद्वितीयं प्रकरणं समाप्तम् ॥

---

३८ ॥ हे सौम्य! ["अहमेवपरंब्रह्म नमत्तोऽन्यदस्ति किञ्चिदिति" । मैंही परब्रह्महों मुझसे अन्य रंचकमात्रभी कुछनहीं। इस प्रकार की स्मृतिका सन्तान कहिये प्रवाह करना । अर्थात् अपने वास्तविक आत्मरूपका अनुसंधानरूप स्मरण प्रवाहरूपसेकरना। सोकोई एककालविषे करना ऐसा नियमित नहीं, किन्तु निरन्तर करनेको योग्यहै । " निमेषार्द्धं न तिष्ठन्ति वृत्तिं ब्रह्ममयीं विना " । ऐसेकहाहै । इसश्लोकका यह अर्थहै कि शरीरादिक कल्पित आध्यात्मिक वस्तुको अधिष्ठानमात्र देखके, अरु शरीर से वाह्यवत् स्थितहुये पृथिव्यादिकों को कल्पितपने करके अवस्तुरूप होनेसे सो अधिष्ठानही है इतरनहीं, इसप्रकार अनुभव करके आप द्रष्टा पुरुषभी परमार्थ वस्तुके स्वभावको प्राप्त हुआ, तहांही आसक्त चित्तवाला, अरु वाह्य विषयोंसे निवृत्तिबुद्धिवाला हुआ तिसही परमार्थ तत्त्वविषे स्थितहुआ तिसके ज्ञान विषे स्थितहोवेहै] "वाचारंभणं विकारोनामधेयमित्यादि श्रुतेः" ‹वाणीसे उच्चारण किया विकार नाममात्रहीहै› इत्यादि श्रुति प्रमाणसे, "। तत्त्वमाध्यात्मिकंदृष्ट्वा तत्त्वं दृष्ट्वातु वाह्यतः" । ‹आध्यात्मिकको तत्त्वदेखके, अरु वाह्यको तो तत्त्वदेखके› अर्थात् रज्जुसर्पवत् अरु स्वप्न मायादिवत् असत् शरीर प्राण इन्द्रियादि रूप अध्यात्म , अन्तरवस्तु, को तत्त्व (अधिष्ठान) स्वरूप देखके । अरु शरीरादिकोंकी अपेक्षासेवाह्य पृथिव्यादिरूप वस्तुओं को भी तत्त्व (अधिष्ठान) स्वरूप देखके, "सवाह्याभ्यन्तरोह्यजः" " अपूर्वोऽनपरोऽनन्तरोऽवाह्यः " " कृत्स्नघन " " आकाशवत्

सर्वगतः" "सूक्ष्मोऽचलो, निर्गुणो, निष्कलो, निष्क्रियः" "तत् सत्यं स आत्मा तत्त्वमसीतिश्रुतेः" ८ बाह्यान्तर सहित अजन्माहै, अपूर्व है अनपरहै अनन्तरहै अबाह्यहै, सम्पूर्णहै, आकाशवत् सर्वगतहै, सूक्ष्महै, अचलहै, निर्गुणहै, निष्कलहै, निष्क्रिय है, सो सत्‌है सो आत्माहै सो तू है ? इत्यादि श्रुतियोंकी एक वाक्यतासे, "तत्त्वीभूतस्तदारामस्तत्त्वादप्रच्युतोभवेत्" ८ तत्त्व रूप अरु तिसविषे रमणवाला तत्त्वसे अप्रच्युत होवे ? अर्थात् उक्तप्रकार तत्त्वकी दृष्टिसे तत्त्वस्वरूप अरु तिसविषे रमणवाला, अरु बाह्यविषयों विषे अरमणवाला हुआ तत्त्वसे अचलित होवे। 'जैसे कोई एक अतत्त्वदर्शी चित्तको आत्मतत्त्वकरके जानता हुआ चित्तके चलने पीछे आत्माको चलितहुआ मानता सता 'अभी मैं आत्मतत्त्वसे चलितहुआहौं, इसप्रकार देहादिरूप आत्माको चलितहुआ मानताहै। अरु चित्तके एकाग्रहुये कदाचित् 'अभी मैं तत्त्वरूप हुआहौं, इसप्रकार प्रसन्नहुये चित्तरूप आत्माको तत्त्वरूप मानताहै। तैसे आत्मवेत्ता होवे नहीं, क्योंकि आत्मा एकरूप एकरसहै ताते उसका स्वरूपसे चलना असंभव है। किन्तु "अहंब्रह्मास्मीति" मैं ब्रह्महौं इसप्रकार। ब्रह्मानुसंधान करताहुआ। सदैव तत्त्वसे अप्रच्युत (अचलित) होवे। अभिप्राय यहहै कि सदा अचलित आत्माके दर्शन (अनुभव) वालाहोय। "समोनागे समोमशके" "शुनिचैव श्वपाकेच। समं सर्वेषु भूतेषु" ८ हाथी अरु मच्छर विषे समानहै। श्वान विषे अरु चांडालविषे पंडित समदर्शी है। अरु सर्व भूतों विषे समस्थितहोनेवाले आत्मरूप परमेश्वरको। विद्वान् आत्मनिष्ठ अनुभवकरताहै। इत्यादि श्रुति अरु गीतास्मृति के प्रमाणसे ३८

ॐ तत्सत् ॥

इति श्रीगौडपादाचार्यकृतमांडूक्योपनिषद्‌कारिकायां वैतथ्याख्य द्वितीयप्रकरण भाषाभाष्य समाप्तम् २ ॥

ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ॥ हरिः ॐ ॥

अद्वैत तत्त्वके जानने के अर्थ। अद्वैत संज्ञक तृतीय प्रकरण का आरंभकरतेहैं। पूर्वके द्वितीय प्रकरणविषे उपास्य अरु उपासना आदिक भेदोंका समूह सर्वमिथ्याहै अरु केवल अद्वैत आत्मा परमार्थ सत्यरूप है, इसप्रकार सिद्धहुआ है, एतदर्थ यहां आरंभ विषे उपासककी निन्दा करतेहैं "। उपसनाश्रितोधर्मो जातेब्रह्मणिवर्त्तते, प्रागुत्पत्तेरजं सर्व्वं तेनासौ कृपणः स्मृतः "। ६ धर्म्म उत्पन्नहुये ब्रह्मविषे वर्त्तताहै उत्पत्तिसे पूर्वसर्व अजन्माथा उपासनाको आश्रितहुआ तिससे यह कृपण चिन्तन कियाहै; अर्थात् देहके धारणसे धर्म जो जीव सो। आकाशादि। भूतोंके समुदाय के आकारसे उत्पन्न हुये ब्रह्मविषे तिसका अभिमानी होके वर्त्तता है। सो उत्पत्तिसे पूर्वसर्व अजन्माथा, इसप्रकार कालकरके परिच्छिन्न वस्तुको मानता है। सो ।जीव। पुनः उपासना को पुरुषार्थका साधन जानके तदाश्रितहुआ देहपात हुये पश्चात् तिसही ब्रह्मको प्राप्तहोवेंगा, इसप्रकार जिसकारण से मिथ्या ज्ञानवान् होयके स्थित होवेहै, तिसकारणसे यह ब्रह्मवेत्ता पुरुषों ने कृपण (अल्प) चिन्तन कियाहै। हे सौम्य! इसका यह अभिप्रायहै कि उपासनाके आश्रितहुआ। अर्थात् उपासनाको अपने मोक्षकासाधन मानके प्राप्तहुआ "उपासकोऽहं ममोपास्य ब्रह्म, तदुपासनं कृत्वाजाते ब्रह्मणि इदानीं वर्त्तमानोऽजं ब्रह्मशरीर पातादूर्ध्वंप्रतिपत्स्ये प्रागुत्पत्तेश्चाजामदं सर्वमहंच " मैं उपासकहूं मेरा उपास्य ब्रह्म है तिसकी उपासनाकरके अवभूतों के संघातके आकार से उत्पन्नहुये ब्रह्म विषे वर्त्तमानहों, अरु शरीर के पतनहुये पश्चात् अजन्मा ब्रह्मको प्राप्तहोवोंगा, अरु उत्पत्ति से पूर्व अवस्था विषे यह सर्व अजन्माथा अरु मैं भी तैसाही अजन्माथा। इसप्रकार जिसकरके उपासक मानता है एतदर्थ पूर्वावस्थावाले ब्रह्मको विषयकरनेवाली अजन्मापनेकी श्रुति यन्ने है। अब " इदानींजातोजातेब्रह्मणिचवर्त्तमानउपासनयापुनस्तदेव प्रतिपत्स्यइत्येवउपासनाश्रितोधर्म्मः " ८ उत्पत्ति अवस्था विषे

अतोवक्ष्याम्यकार्पण्यमजातिसमताङ्गतम्। यथा न जायते किञ्चिज्जायमानं समं ततः २।८१॥

मैं जन्मको पाया हों, अरु इस स्थित अवस्थाविषे उत्पन्नहुये ब्रह्मविषे। अर्थात् भूतोंके संघातरूप शरीराकारसे उत्पन्न हुये ब्रह्मविषे। वर्त्तमानहों, अरु उत्पत्ति से पूर्व जिसरूपवाला हुआ स्थित था तिसही को पुनः प्रलय अवस्थाविषे उपासनासे प्राप्त होवोंगा। इसरीति से उपासना के आश्रित हुआ साधक जीव सो जिस हेतुसे इसप्रकार करके अल्प ब्रह्मका वेत्ता है तिसही हेतुसे यह नित्य अजन्मा ब्रह्म के दर्शी (अनुभवी) महात्मा पुरुषों ने। उक्तप्रकार के उपासक को। कृपण, दीन, अल्पक, करके चिन्तन कियाहै " यद्वाचानाभ्युदितं येनवागभ्युद्यतेतदेव ब्रह्म, त्वं, विद्धि, नेदंयदिदमुपासत, इत्यादि" (जो वाणीसे अप्रकाशितहै। अर्थात् जिसकोवाणी कहनहींसक्ती। अरु जिसकरकेवाणी प्रकाशित होती। अर्थात् जिसकी सत्तासे वाणी अन्योंको कहने में समर्थ होती है। तिसही को तू ब्रह्मकरके जान, जिसको यह। भेदवादी। लोक उपासते हैं सो ब्रह्मनहीं, वा जिसकोलोक उपासते हैं सो साकार परिच्छिन्नहुये ब्रह्म होनेको योग्य नहीं। इत्यादि सामवेदीय तलवकार शाखाकी श्रुतिके प्रमाणसे १।८०॥

हे सौम्य! [अद्वैत के विरोधी द्वैतवादी भेदी उपासकों की निन्दा करके अब सम्पत्ति अद्वैत प्रतिपादन की प्रतिज्ञा करते हैं] " सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः "। इत्यादि श्रुति प्रमाण से जो बाह्य अन्तर सहित अजन्मा आत्मा है। कि जिसके जानने से और का जानना अवशेष रहना नहीं। तिसके जानने में असमर्थ हुआ, अरु अविद्या करके अपने आपको दीन जानता हुआ " जातोऽहंजातेब्रह्मणिवर्तेतदुपासनाश्रितः सन ब्रह्म प्रतिपत्स्ये " (मैं जन्माहों अरु उत्पन्न हुये ब्रह्मविषे वर्त्तताहों, अरु तिसकी उपासना के आश्रित हुआ ब्रह्मको प्राप्त होवोंगा) इस

प्रकार जाननेवाला पुरुष कृपण होताहै । अर्थात् "न जायते म्रियते वा कदाचित्" इत्यादि श्रुति आदिकों के प्रमाण अनुभव से जो जन्म मरण रहित सदा एक रस आत्मा तिसको, अरु "स बाह्याभ्यन्तरोह्यजः" इत्यादि प्रमाणसे सहित बाह्य अन्तर सर्वाधिष्ठान सर्वरूपसे सुशोभित ब्रह्म तिसको । जो कि वास्तवमें दोनों एक अरु जन्मादि विकार रहित हैं । जन्मे मानके, तिनमें परस्पर स्वामी सेवकादि वा उपास्य उपासकादि भेद मानके अरु अपने आपको अति दीन अपराधी ईश्वरके आश्रित हुआ तिसकी उपासना से ब्रह्मभावकी प्राप्ति मानके जो उपासना करने वाले पुरुषहैं सो आपभी मुये अरु ब्रह्मको भी मारा क्योंकि "जातस्यहि ध्रुवोमृत्युर्ध्रुवंजन्म मृतस्यच" इत्यादि प्रमाणसे जो जन्मता है सो मरता है, अरु उस भेदीने जीवरूपसे आत्मा को अरु भूतों के संघात रूपसे ब्रह्मको जन्मा माना है, ताते उक्त प्रकारके भेदी उपासकों को श्रुति अरु ब्रह्मवेत्तादि महात्मा कृपण कहते हैं । एतदर्थ अब अजन्मा ब्रह्मरूप अकृपण भाव को कहताहौं "यत्रान्योऽन्यत् पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पं मर्त्यंसद्वाचारंभणं विकारो नामधेयमित्यादि श्रुतिभ्यः" ८ जिसविषे अन्य अन्यको देखता है, अन्यको सुनताहै अन्य को जानता है सो अल्प मरनेके योग्यहै, वाणीसे कहा विकार नाम मात्रहै ७ इत्यादिक श्रुतियों के प्रमाणसे । अरु सो उक्त प्रकारका । अर्थात् भेदी उपासक करके माना । ब्रह्म कृपणभावका आश्रय है । अरु तिससे विपरीत । अर्थात् श्रुतियों के वाक्य प्रमाण अभेदवादी ब्रह्मवेत्ताओं करके जाना । बाह्य अन्तर सहित अज भूमाख्यब्रह्म अकृपणभावरूपहै । अरु जिसकोजानकेअविद्याकृत सर्वकृपणभावकी अशेष निवृत्तिहोवेहै तिसकोअकृपणभाव कहते हैं, तिस अकृपणभावको अब कहता हौं, इत्यर्थः "अतोवक्ष्याम्यकार्पण्यमजातिसमतांगतम्" ८ अजाति है समताको प्राप्त है अकृपणभावहै तिसको कहता हौं ? अर्थात् सो ब्रह्म कैसा है कि

आत्मा ह्याकाशवज्जीवैर्घटाकाशैरिवोदितः । घटादिवच्च संघातेर्जातावेतन्निदर्शनम् ३ । ८२ ॥

अजाति है 'अर्थात् जाति जो जन्म तिससे रहित अजहै (वा जो जन्मवान् होताहै सो मनुष्यादि वा ब्राह्मणादि जातिवाला होता है अरु ब्रह्म अजन्मा होनेसे ब्राह्मणादि वा मनुष्यादि जातिवान् नहीं ताते सो अजाति अजन्मा है (अरु सर्व समताको प्राप्तहुआ है, क्योंकि उसविषे अवयवोंकी विषमताका अभाव है । अरु जो सावयव वस्तु है सो अवयवों की विषमतावाली होती है, इस प्रकार कहते हैं । अरु यह (आत्माख्यब्रह्म (तो निरवयवहै इस हेतु से समता को प्राप्तहुआ है । अरु सो ब्रह्म किसी भी अवयवों से जन्मको पावता नहीं एतदर्थ सो सर्व ओरसे पूर्ण जन्मरहित अकृपणभाव है तिसको कहताहों । अरु " यथानजायते किंचिज्जायमानं समंततः " (जैसे कुछ भी जन्मतानहीं जायमान सर्व ओर से वर्त्तता है) अर्थात् जैसे रज्जु विषे सर्प भ्रान्ति से जन्मता (उत्पन्नहोता) है, तैसेही सर्व अविद्या कृत भ्रान्ति दृष्टिसे जन्मको प्राप्तहोनेकरके भासमान है, तथापि, जिसप्रकार से वस्तुकरके कुछ भी जन्मको पावता नहीं, किन्तु सर्व देशकाल अरु वस्तुसे पूर्ण कूटस्थ ही वस्तु होता है । (अर्थात् सर्व देश काल अरु वस्तु रूपसे एक अद्वैत ब्रह्मही सुशोभित है (तैसे तिस प्रकार को श्रवणकर । यह इसका अर्थ है ३ । ८१ ॥

३ । ८२ हे सौम्य ! जन्मरहित ब्रह्मरूप अकृपण भावकोकहता हों, इसप्रकार प्रतिज्ञा किया जो वस्तुतिसकी सिद्धिके अर्थ हेतु अरु दृष्टान्त को कहते हैं, इसप्रकार कहता हों " आत्मा ह्याकाशवज्जीवैर्घटाकाशैरिवोदितः " (आत्मा आकाशवत् है, अरु घटाकाशों से तुल्य जीवों से कहा है) अर्थात् [प्रतिज्ञा किये वाक्य विषे ब्रह्मशब्द करके प्रसंग में प्राप्तकिया जो परमात्मा सो कैसा है, इसप्रकार प्रश्न करने की इच्छा के हुये कहते हैं ।

घटादिषु प्रलीनेषु घटाकाशादयो यथा । आकाशे सम्प्रलीयन्ते तद्वज्जीव इहात्मनि ४ । ८३ ॥

४।८३॥हे सौम्य, "घटादिषु प्रलीनेषु घटाकाशादयो यथा । आकाशेसंप्रलीयन्ते तद्वज्जीवइहात्मनि" जैसे घटादिकों के लीन हुये घटाकाशादिक आकाशविषे लीनहोते हैं,तैसे इस आत्माविषे जीव होते हैं; अर्थात् जैसे घटमठादिकों के अपने कारण पृथिवी विषे लय होने से तद्गत जे घटाकाशादि संज्ञक आकाश सो अपने से अभिन्न महदाकाश विषे लीन होते हैं, तैसेही इस आकाशवत् पूर्ण आकाश का भी आश्रय महासूक्ष्म अधिष्ठान चैतन्य आत्माविषे, यह शरीरादि संघात विशिष्ट चिदाभास जीव लीन होता है । [जीवों के उत्पत्ति अरु प्रलय उपाधि के किये हैं, स्वाभाविक नहीं । अरु तिसप्रकार होने से उत्पत्तिकी प्रतिपादक श्रुतिसे होता जो अद्वैत का विरोध तिसके अभाववत् प्रलयकी श्रुतिसे भी अद्वैतका विरोधहै नहीं,इसप्रकार श्लोकके अक्षरों के व्याख्यानसे प्रकट करते हैं] अर्थ यहहै जो,जैसे घटादिकों की उत्पत्ति से घटाकाशादिकों की उत्पत्ति होवे है, अरु जैसे घट मठादिकों के लय हुये घटाकाशादिकों का भी लय होवे है । तैसेही देहादिकसंघातकी उत्पत्तिसे (घटाकाशवत्) जीवोंकी उत्पत्तिहोती है, अरु तिन देहादि संघात का स्वकारण में लय होने से इन जीवोंका (संघातविशिष्ट चैतन्यका) इस (संघातोपहित एक अद्वैत) आत्मा विषे लय होता है, परन्तु स्वरूप करके इस चैतन्य जीव का उत्पत्ति लय नहीं " न जायते म्रियते वा कदाचित् " इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से ४ । ८३ ॥

५।८४॥हे सौम्य, सर्व देहोंविषे आत्माकी एकताके होते,जन्म मरण अरु सुखादिक धर्मवाले एक आत्मा के हुये, सर्व आत्माको उन जन्मादिक धर्मोंसे सम्बन्ध होवेगा, और क्रिया अरु फलका मिश्रभाव होवेगा, इसप्रकार जो द्वैतवादी कहता है, तिसके प्रति

यथैकस्मिन् घटाकाशे रजोधूमादिभिर्युते। नसर्वे सम्प्रयुज्यन्ते तद्वज्जीवाःसुखादिभिः ५।८४॥

अब यह उत्तर कहते हैं। "यथैकस्मिन् घटाकाशे रजोधूमादिभिर्युते। न सर्वे सम्प्रयुज्यन्ते तद्वज्जीवाःसुखादिभिः" । (जैसे रज अरु धूमादिक करके युक्त एक घटाकाशके हुये, सर्व घटाकाशादिक तिन रज धूमादि करके संयोगको पावते नहीं तैसे जीव सुखादिकों से संयोग को पावते नहीं) अर्थात् । अनेक घटों में आकाश एकही है सो घटरूप उपाधि के सम्बन्ध से अनेक आकाश कहेजाते हैं, अरु उन अनेक घटाकाशों मेंसे एक घटाकाश को धूलि धूमादि करके युक्त होने से सर्व घटाकाश तिन धूलि धूमादिकों से संयोग को पावते नहीं, तैसे एक आत्मवाद विषे एक जीव को सुखादि करके युक्त हुये सर्वजीव सुखादिकन से संयोग को पावते नहीं ॥ ननु, तब क्या सर्वत्र एकही आत्मा है, जहां ऐसी शंका है। तहां कहते हैं, यह तेरा कथन सत्य है। जो सर्वत्र एकही आत्मा है। शंका। ननु, तिस आत्मा की एकता युक्तिरहित है तिसको कैसे अंगीकार करते हो। उत्तर। तहां कहते हैं। सर्व संघातों विषे एकही आत्मा है, इसप्रकार जो हम ने पूर्व युक्ति सहित आत्मा की एकता कही सो क्या तैंने श्रवण किया नहीं ॥ शंका ॥ ननु, जब एकही आत्मा है तब सो सर्वत्र सुखी अरु दुःखी होवेगा। समाधान, तहां कहते हैं, यह प्रश्न सांख्यवादी का है, किंवा वैशेषिकादिकों का है। तिनमें जब यह सांख्यवादी का प्रश्न होवे, तब असंभव है, क्योंकि जिस करके सांख्यवादी जो है सो सुख दुःखादिकों के बुद्धि के समवाय सम्बन्धके अंगीकार से आत्मा को सुख दुःखादिक धर्मवानूपना इच्छता नहीं, अरु ज्ञानस्वरूप आत्मा के भेद की कल्पना विषे प्रमाण नहीं, एतदर्थ यह सांख्यका प्रश्न संभवे नहीं ॥ अरु जो ऐसा कहे कि आत्मा के भेदके अभाव हुये प्रधानको पर के अर्थ

होनेका संभव होवेगा ऐसाकहे तो सो वनेनहीं,क्योंकि प्रधानके भोग मोक्षरूप अर्थके आत्माविषे अस्मवाय है ताते । अरु जब प्रधानका किया वंध वा मोक्षरूप अर्थ पुरुषोंविषे भेदकरके समवायको प्राप्तहोवे, तव आत्माकी एकता करके प्रधानको परार्थ (जीवोंका शेष) होनेका असंभव होवे । एतदर्थ पुरुषके भेदकी कल्पना युक्तहै,परन्तु सांख्यवादियोने वन्ध वा मोक्षरूप अर्थ पुरुषसे समवाय संवंधवाला अंगीकार कियानहीं,किन्तु निर्विशेष,चेतनमात्र आत्मा अंगीकार कियाहै, एतदर्थ पुरुषकी सत्तामात्रका कियाही प्रधानका परार्थपना सिद्धहै, नतु पुरुषके भेदकाकिया। किंवा प्रधानका जो परार्थपनाहै सो अन्य शेषी की अपेक्षा करता है, तिसविषे भेदकी अपेक्षानहीं एतदर्थ पुरुषके भेदकी कल्पना विषे प्रधानका परार्थपना हेतु नहीं। अरुसांख्यवादियोंको पुरुषके भेदकी कल्पनाविषे अन्यप्रमाणहै नहीं। अरुप्रधान जो है सो इस पर (पुरुष) की सत्तामात्रकोही निमित्तकरके आप वद्धहोवे है अरु मुक्त होवेहै । अरु सेश्वर सांख्यवादियों के मतविषे पर जो ईश्वरहै सो ज्ञानमात्र सत्ता स्वरूप से प्रधानकी प्रवृत्तिविषे हेतु नहीं, किन्तु किसीभी विशेषसे हेतुहोगा ।एतदर्थसांख्यवादीकरके केवल मूढ़तासेही पुरुषके भेदकी कल्पना अरु वेदार्थका परित्याग कियाहै, युक्ति अरु प्रमाणसे नहीं ॥ अरु जो वैशेषिकादि मतवादी कहतेहैं कि इच्छा आदिक आत्मासे समवाय सम्वन्ध वालेहैं, सो उनका कहनाभी असत्है । क्योंकि स्मृतिकेहेतु संस्कारोंके अवयवरूप प्रदेशरहित । अर्थात् स्मृतिकेहेतु जे संस्कार तिन संस्कारोंके अवयव रूप प्रदेश तिनसे रहित । आत्माविषे समवाय का अभाव है ताते तिनके सिद्धान्तकी असिद्धि होगी । अरु आत्मा अरु मनके संयोगसे स्मृतिकी उत्पत्तिका अंगीकार करनेसे स्मृतिके नियमका असंभव होवेगा (आत्मा, मनके संयोगरूप स्मृतिके कारणके होते अनुभव कालविषे भी स्मृतिहोवेगी) वा एककाल विषे सर्व स्मृतियोंकी उत्पत्तिका प्रसंग होवेगा । भिन्न [किंवा

समान जातिवाले, अरु स्पर्शादिक गुणवाले पदार्थों का परस्पर सम्बन्ध देखाहै। जैसे मल्लोंका मेषों का अरु रज्जुघटादिकनका सम्बन्धहै। तिस समानजाति अरु स्पर्शादि गुणके अभावसे आत्माकी मनआदिकोंसे सम्बन्धकी असिद्धिते,अरु उक्त असमवायि कारणसे ज्ञानादि गुणोंकी उत्पत्ति सिद्ध होवैनहीं,इसप्रकार कहते हैं,] जातिवाले,स्पर्शादि गुणरहित जीवों का मन आदिकों से सम्बन्ध युक्तहै,नहीं। अरु नैयायिकनके [गुणादिकों की समान जातिके अरु स्पर्शादिक गुणके अभावहुये भी द्रव्यसे सम्बन्धवाले आत्माका मन आदिकों से सम्बन्ध सिद्धहोता है, इसप्रकार जो कदापि वादी कहै,सो वनेनहीं ऐसा कहतेहैं। यहां यह अर्थहै कि स्वतन्त्र जो सन्मात्रवस्तु सो यहां द्रव्य शब्दकरके कहते हैं। अरु वेदान्तियोंके मतविषे तिस द्रव्यसे भेदकरके गुणादिक विद्यमान हैं नहीं। क्योंकि "शुक्लः पटः पण्ढो गौरित्यादि" ८ शुक्लपट है, नपुंसक बैलहै ७ इत्यादि स्थानमें गुण गुणी आदिकोके समानाधिकरणके देखनेसे। अरु द्रव्यही कल्पनासे तिसतिस आकार करके भासताहै, इसप्रकार अंगीकार करनेसे। एतदर्थ दृष्टान्तका असंभवहै नहीं] मतविषे द्रव्यसे रूपादिक गुणकर्म जातिविशेष अरु समवाय भिन्नहैं नहीं। अरु जब गुणादिक द्रव्यसे अत्यन्त भिन्न ही होवें, अरु जब इच्छा आदिक आत्मासे अत्यन्त भिन्नहोवें, तब भी तैसेही द्रव्यसे गुणादिकों के सम्बन्धका अरु आत्मासे इच्छा आदिकों के सम्बन्धका असंभव होवेगा। अरु जो कहे कि अयुत (अभिन्न) सिद्ध वस्तुओंका समवायरूप सम्बन्ध विरोधको पावतानहीं,सो कथन वनेनहीं [हे वादी! तैंने जो यह गुणादिकों का अयुतसिद्धपना कहा, सो क्या अभिन्न कालवान्पने रूपहै, किंवा अभिन्न देशवान्पने रूप है, किंवा अभिन्न स्वभाववान्पने रूप है, किंवा संयोग अरु विभाग की अयोग्यतारूप है, इस प्रकार यह चार पक्ष हैं। तिनमें प्रथमपक्ष वनेनहीं क्योंकि विकल्पको असहन करता है ताते। इसप्रकार कहते हैं] क्योंकि

ऐसे होने से अनित्य इच्छा आदिकों से पूर्व नित्य आत्मा सिद्ध है ताते। अरु आत्माके अयुत सिद्धपने का असंभव है [यहां क्या इच्छा आदिकों की अपेक्षासे आत्माका अभिन्न कालवान्पना है, किवा आत्माकी अपेक्षासे इच्छादिकों को अभिन्न कालवान्पना है। इसप्रकार विकल्प करके प्रथम पक्षके अर्थ दूषण दिया है] आत्मा से इच्छा आदिकन के अयुत सिद्धपने के होने से इच्छादिको को आत्मगत महत्पनेवत् नित्यता का प्रसंग होवेगा, सो अनिष्ट है, क्योंकि इच्छादिकोंकी नित्यताके हुये आत्मा के मोक्षके प्रसंगका अभाव होवेगा ताते। अरु [जब आत्मा के साथ इच्छा आदिको को अभिन्न कालवान्पना है, तब आत्मा को अनादि होने से तिस विषे स्थित जो महत्पना तद्वत् तिन इच्छा आदिकों को भी नित्यताकी प्राप्ति होवेगी, इस प्रकार कहते हैं] समवाय सम्बन्धको द्रव्यसे इतरपने के हुये, जैसे द्रव्य अरु गुणका समवाय सम्बन्ध है, तैसे तिस समवायका द्रव्य से अन्य सम्बन्ध कहना योग्यहै। अरुजो ऐसा कहे कि समवाय नित्य सम्बन्धही है, एतदर्थ तिनका अन्य सम्बन्धकहना योग्यनहीं। तो तैसे [समवायको नित्य सम्बन्ध रूप होने से समवाय सम्बन्ध वाले द्रव्य गुण आदिकों को भी इस नित्य सम्बन्धवाले होने से कदाचित्भी भेदकी अप्रतीतिसे तिनके भिन्नपने की प्रसिद्धिका असम्भव होवेगा, इस प्रकार दूषण कहते हैं] हुये समवाय संबन्ध वाले द्रव्य गुण आदिकों को भी नित्य सम्बन्ध के प्रसंगसे भिन्नता का असंभव होवेगा। अरु द्रव्यादिकों की अत्यन्त भिन्नताकेहुये, स्पर्शवान् अरु स्पर्शवान् द्रव्यके असम्बन्धवत् तिनके सम्बन्धका असंभव होवेगा। अरु आत्माको गुणवान्पने के हुये इच्छा आदिकोंकी उत्पत्ति अरु नाशवत् आत्मा को अनित्यताका प्रसंग होवेगा। अरु देह अरु फलादिकोंवत् सावयवपना, अरु देहादिकोंवत्ही विकारवान्पना यह उभय दोष निवारण करने को अयोग्य होवेंगे। जैसे [जब आत्माको इच्छादिक गुणवान्पना

रूपकार्य्यसमाख्याश्च भिद्यन्ते तत्र तत्र वै । आकाशस्य न भेदोस्ति तद्वज्जीवेषु निर्णयः ६ । ८५ ॥

नहीं, तब तिसको बन्धके अभाव से मोक्ष न होवेगा, एतदर्थ बन्ध मोक्षकी व्यवस्थाके असंभवसे देह देहके प्रति सुख दुःखादि करके विशिष्ट आत्माके भेदकी सिद्धि है, इस प्रकारकी शंका करके कहते हैं] आकाश को अविद्यासे आरोपित ' रज, धूम, अरु मलपने आदिक दोषवान्पना है, तैसेही आत्माको अविद्याकरके आरोपित बुद्धि आदिक उपाधि के किये सुख दुःखादि दोषवान्पना है ऐसे अंगीकार किये व्यावहारिक बन्ध अरु मोक्षादिक विरोध को पावते नहीं, क्योंकि सर्ववादियों करके अविद्याकृत व्यवहार का अंगीकार है ताते । अरु परमार्थ (मोक्ष) विषे व्यवहार का अनंगीकार है ताते । एतदर्थ तार्किकों करके आत्मा के भेदकी कल्पना वृथाही किया है ५ । ८४ ॥

६ । ८५ ॥ हे सौम्य, । शंका । ननु, एकहीआत्माविषेअविद्याकृत आत्माके भेद निमित्तक व्यवहार यद्यपि श्रुतिआदिकों से बनेहैं, तथापि अनुमानसे कैसे बनेहैं । समाधान । तहां कहतेहैं, "रूप कार्य्यसमाख्याश्च भिद्यन्ते तत्र तत्र वै " (रूप कार्य अरु नाम तिन तिन विषे भिन्न देखते हैं) अर्थात् जैसे इस एकही आकाश विषे घट मठ कमंडलु अन्तर्गृह आदिकों के सम्बन्धी आकाशके अल्पपने अरु महत्पने आदिक रूप । अर्थात् घटाकाशकी अपेक्षा मठाकाशको महत्पना अरु कमंडलुगत आकाश को अल्पपना' इत्यादि प्रकार एकही अरूप आकाशको घटादिकोंके सम्बन्धसे अल्पपना अरु महत्पना आदिरूप । अरु जलका लाना धारण करना अरु शयन करना, इत्यादि कार्य, अरु घटाकाश मठाकाश कमण्डल्वाकाश अरु अन्तर्गृहाकाश, इत्यादिक तिन घटादि रूप उपाधियोंके किये नाम । अर्थात् एक आकाशविषे जो घटाकाश मठाकाशादि नाम भेद हैं सो उन घटादि उपाधिके सम्बन्धसे हैं

नाकाशस्य घटाकाशो विकारावयवौ यथा । नैवा त्मनःसदा जीवो विकारावयवौ तथा ७ । ८६ ॥

स्वरूपसे ही नहीं । यह सर्व तिस तिस व्यवहारविषे तहांतहां भिन्नभिन्न देखते हैं। अरु यह सर्व आकाश के रूपादिकोंके भेदोंका किया व्यवहार अपरमार्थसेही है, अरु परमार्थसेतो " आकाशस्य न भेदोऽस्ति तद्वज्जीवेषु निर्णयः " (आकाश का भेद है नहीं, तैसे जीवोंविषे निर्णय किया है) अर्थात् जैसे आकाशविषे जो नाम रूप क्रियादि सहित भेद है सो घटादि उपाधि अरु तिनके भेद का किया है। अरु वास्तव करके तो आकाश का भेद है नहीं। अरु जैसे आकाश के भेदरूप निमित्त का किया व्यवहार सो घटादिक उपाधियों के किये द्वारविना है नहीं। तैसेही देहादिरूप उपाधि के किये घटाकाशादि स्थानीय जीवोंविषे भेदके निरूपणसे वुद्धियों करके किया भेद है,वास्तव करके आत्मा के स्वरूप से भेद है नहीं, यह सम्यक् आत्मवेत्ताओं ने सम्यक्प्रकार निर्णय किया है ६ । ८५ ॥

७।८६॥ हे सौम्य,।शंका। ननु तहां घटाकाशादिकोंविषे रूप अरु कार्य्य आदिकोंके भेदका व्यवहार परमार्थरूप आकाशका कियाही है। इसप्रकार का जो वादीका कथन सो वने नहीं। उ०। क्योंकि जैसे सुवर्ण का कुण्डल कंकणादि विकार है, वा जैसे जलका फेन बुद्बुद बरफआदि विकारहै, तैसे परमार्थ रूप आकाश का घटाकाश विकार है नहीं। अरु जैसे वृक्षकी शाखा आदिक अवयव हैं, तैसे भी आकाशका घटाकाशादि अवयव भी नहीं। ताते घटाकाशादिकों विषे जो भेद व्यवहार है सो परमार्थ रूप आकाशका किया नहीं। ताते " नाकाशस्य घटाकाशो विकारावयवौ यथा " (जैसे आकाश का घटाकाश विकार अरु अवयव नहीं) अर्थात् जैसे कुण्डलादिक सुवर्ण के अरु बुद्बुदादि जलके विकार अरु शाखादि वृक्षके अवयवहैं, तैसे घटाकाशादि महदा-

यथा भवति बालानां गगनं मलिनं मलैः।
तथाभवत्यबुद्धीनामात्माऽपिमलिनोमलैः८।८७॥

काशके विकार अवयव नहीं। अरु "नैवात्मनःसदाजीवो विकारावयवौ तथा।" (तैसे आत्मा का जीव सर्वदा विकार अरु अवयव है नहीं; अर्थात् जैसे आकाश के घटाकाशादि विकार अरु अवयव नहीं, तैसेही परमार्थ से सत्यरूप महाकाशस्थानीय एक अखण्ड अद्वैत निराकार परब्रह्म से अभिन्न आत्मा का यह घटाकाशस्थानीय जीव सर्वदा (सर्वथा) उक्त दृष्टान्तवत् विकार नहीं, अरु अवयव भी नहीं, एतदर्थ आत्माके भेदका किया व्यवहार मिथ्याही है। यह अर्थ है ७। ८६ ॥

८।८७॥ हे सौम्य! [जीव जो है सो ब्रह्मका अंश नहीं अरु विकारभी नहीं किन्तु उपाधि विषे प्रवेशको पाया ब्रह्मही जीव शब्दका वाच्यहै। इसप्रकार जो तुमने कहा सो अयुक्तहै। क्योंकि ब्रह्म तो (उपाधि से रहित) शुद्ध है ताते। अरु जीव जो है सो रागादिक मलवाला है ताते। अरु जीव अनेक हैं ताते, इत्यादि प्रकार से तिन (ब्रह्मजीव) की एकताका असंभव है यह आशंका करके परमार्थ से जीव को भी मलवान्पना आदिक है नहीं, ऐसा कहते हैं] जैसे घटाकाशादिक जो नाम रूप कार्य्यादिक भेदका व्यवहार है सो भेदबुद्धिका किया है, तैसेही उपाधि वाले जीवोंका भेद अरु जन्म मरणादि व्यवहार हैं सो (अविद्या के किये हैं) ताते तिस अविद्या रचित भेदका किया ही क्लेश कर्म्म फल अरु रागादिक मल करके युक्तपना है, परमार्थ से नहीं। इस अर्थको दृष्टान्त से प्रतिपादन करने को इच्छते हुये कहते हैं "यथा भवति बालानां गगनं मलिनं मलैः" (जैसे बालकों को आकाश मल करके मलिन होता है; अर्थात् जैसे, लोक विषे (विचारशून्य) अविवेकी बालकों को, परम शुद्ध जो आकाश है सो मेघ रज धूमादि मल करके मलिन (मैलवाला) भासता है,

परन्तु जो आकाश के स्वरूप स्वभाव के जाननेवाले जे विवेकी पुरुषहैं तिनको आकाश मलवाला प्रतीत होतानहीं । अर्थात् जिन पुरुषोंको आकाश के यथार्थ स्वरूप स्वभाव का ज्ञान है, तिनको आकाश में धूमधूलि आदिकमलके होतेसंते भी, आकाश मलिन प्रतीत होके जैसा है तैसाही प्रतीत होता है। "तथा भवत्य बुद्धीनामात्माऽपि मलिनोमलैः" । (तैसे आत्मा भी अबुद्धियों को मलकरके मलिन होता है)। अर्थात् जैसे अविवेकी बालकों को आकाश धूम धूलि करके युक्त मलिन भासता है । तैसे जो विज्ञाता प्रत्यक् चैतन्य परब्रह्म रूप आत्मा है, सो भी तिस प्रत्यगात्मा के यथार्थ विवेक से रहित अबुद्धिमान् (अज्ञानी) पुरुषों को क्लेश कर्म अरु कर्मफल इत्यादि मलों करके मलिन (विकारी) प्रतीत होता है । अर्थात् सर्व शरीरों में शुद्ध बुद्ध मुक्तरूप एकही आत्मा है, परन्तु सो तैसा होता सन्ता भी अविवेकी पुरुषों को देह इन्द्रिय मन प्राणादिकों के जन्म मरण क्लेश क्रिया फलादि धर्मवान्पने करके युक्त भासता है। परन्तु जैसे ऊपरदेश को देखके तिस विषे, जलकी कामना वाला तृषित पुरुष जल फेन तरंगादिकों का आरोप करता है, तथापि तिस असत् आरोप से वो ऊपरदेश जल फेन तरंगादि वाला होतानहीं, तैसेही सदा शुद्ध निर्विकार प्रत्यगात्मा सो अबुद्ध अविवेकी अज्ञानी पुरुषों करके आरोप किये क्लेशादिक मल तिन करके मलिन होता नहीं । अर्थात् जिन पुरुषों को अपने आप सदा शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव प्रत्यगात्मा का यथार्थ ज्ञान नहीं सो पुरुष अपने आप आत्माविषे देहेन्द्रिय मन प्राणादिकों के जन्म मरणादि धर्मोंका आरोप करते हैं, परन्तु तिनके आरोप से वो सदा शुद्ध आत्मा कदापि किसी प्रकार से विकारवान् मलिन सदोष होता नहीं । इत्यर्थः ८ । ८७ ॥

६।८८॥ हे सौम्य ! शंका [निनु, जीव जो है सो मरणके अनन्तर अपने धर्म (शुभाचरण) के अनुसार स्वर्गको जाता है, अरु अधर्म

मरणे संभवे चैव गत्यागमनयोरपि।
स्थितौ सर्व्वशरीरेषु आकाशेनाविलक्षणः ९।।८८॥

(दुराचरण) के वशहुआ नरक को पावताहै। अरु धर्म अधर्म दोनों के सुख दुःखादि फल भोग के अनन्तर उनके क्षीणहुये पुनःयहां आयके कोई एक योनि में जन्मताहै, अरु तहांभी यावत् प्रारब्ध भोग है तावत् स्थिरहोय प्रारब्ध भोग आगे को धर्माधर्म कर्मकर पुनः भी परलोक के अर्थ गमनकरताहै। इसका आवागमन मिटा नहीं। इसप्रकार इसलोक अरु परलोक में अपने कर्मानुसार विचरने रूप व्यापारवाला जीव सो। आवागमन से रहित सदाशुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव एकरस कैसे होवेगा। जहां इस प्रकारकी शङ्काहै तहां कहते हैं] पुनः भी उक्त अर्थकोही वर्णन करते हैं "मरणेसंभवे चैव गत्यागमनयोरपि। स्थितौ सर्वशरीरेषु आकाशेनाविलक्षणः" (सर्व शरीरों विषे, जन्म, मरण, गमन, आगमन और स्थिति के हुये भी आकाश से अविलक्षण है; अर्थात् घटाकाशके जन्म मरण गमन आगमन अरु स्थितिवत् सर्व शरीरों विषे आत्माको जन्म मरण गमन आगमन औ स्थिति के हुये भी आत्मा आकाशसे अविलक्षण (आकाश के तुल्य) प्रतीति करनेको योग्य है। अर्थात् घटाकाश जोहै सो घटकी उत्पत्ति होने से उत्पन्नहुयेवत् अरु घटके ध्वंसहुये ध्वंसहुयेवत् अरु घटकेगये गयेवत् अरु घटके आये आयेवत् अरु घटके स्थितहुये स्थितहुये वत्, इत्यादि प्रकार घटाकाश विषे जो उत्पत्ति आदि प्रतीत होवै है सो घटरूप उपाधि के सम्बन्ध से होवे है, परन्तु घटसे पृथक् दृष्टिकर केवल आकाशकोही अनुभव दृष्टि से देखिये तो घटके वर्त्तमान कालमें भी आकाश उत्पत्ति विनाशादिकों से रहित अपने स्वरूप करके ज्योंका त्यों एक रसही है, तैसेही आकाश से भी महा सूक्ष्म परिपूर्ण एकरस आत्माविषे जो जन्म मरण सुख दुःख अरु परलोक में गमन पुनः आगमनइत्यादि प्रतीतहोताहै सो शरीरादि संघातरूप

संघाताःस्वप्नवत्सर्वे आत्ममायाविसर्जिताः।
आधिक्येसर्वसाम्ये वा नोपपत्तिर्हि विद्यते १०।८९॥

उपाधिके सम्बन्धसे होताहै,नतु वास्तव अपने स्वरूप करके निरुपाधि आत्मा आकाशवत् गमनागमनादि संघात के धर्मों से रहित सदा एकरस परिपूर्ण विज्ञानघनही है। इसप्रकार अपने आप आत्म विषयक प्रतीतकरनेकोयोग्यहै,यहइसकाभावार्थ है ६।८८॥

१०।८६॥ हे सौम्य! "संघाताः स्वप्नवत्सर्वे आत्ममाया विसर्जिताः" (सर्व संघात स्वप्नवत् आत्माकी मायासे रचितहै) अर्थात् देह इन्द्रिय मन प्राणादिकों का सर्व संघात तो स्वप्नविषे दृश्य (देखे) देहादिकोंवत्, अरु मायावी (इन्द्रजाली) पुरुषकरके किये देहादिकोंवत् आत्माकी अविद्यारूपा मायासे रचितहै, परमार्थ से नहीं। अरु जिस करके तिर्यक् (तिरछे चलनेवाले पक्षी आदिक) के देहादिकों की अपेक्षा से देवादिकों के कार्य कारण रूप संघातोंकी "आधिक्ये सर्वसाम्ये वा नोपपत्तिर्हि विद्यते" (आधिक्यता के हुये वा सर्व की साम्यता के हुये उपपत्ति विद्यमान है नहीं) अर्थात्। तिर्यक् देहादिकों की अपेक्षा से देवादिकों के कार्य कारणात्मक संघातोंकी आधिक्यताके हुये [देवतादिकों के शरीरों को अति पूजनीय होनेकरके सर्व से अधिकता के अंगीकार से तिनके असत्यपने की सिद्धि न होवेगी, यह शङ्काकरके, देहके भेदों विषे मूढ़पुरुषों की दृष्टि से चैतन्यकी अधिकता को कल्पितहुयेभी विवेकी पुरुषों की दृष्टि से सर्व देह समान पञ्चभूतात्मकहोने से सर्वकी समताके अंगीकार किये संघातोंकी सत्यता विषे कोई भी संभव नहीं इसप्रकार कहते हैं] वा सर्वकी समताके हुये इन शरीरादि संघातों के सद्भावका प्रतिपादक हेतु नहीं। इत्यर्थः १०।८६॥

११।६०॥ हे सौम्य! अब उत्पत्ति आदिकोंसे रहित इस अद्वैतरूप आत्माको श्रुतिरूप प्रमाणकरके सिद्धताके लखावनेके अर्थ श्रुति

रसादयोहिये कोशा व्याख्यातास्तैत्तिरीयके।
तेषामात्मापरोजीवः खंयथासंप्रकाशितः ११।६०॥

वाक्यों के कहनेका आरंभकरतेहैं "रसादयोहिये कोशा व्याख्याता-स्तैत्तिरीयके" (रसादिक कोश तैत्तिरीयविषे व्याख्यान किये हैं) अर्थात् अन्नरसमय, प्राणमय मनोमयादिक, खड्गादिकों के कोश (म्यान) वत् जो पंचकोश हैं सो यजुर्वेदीय तैत्तिरीयोपनिषद् विषे उत्तरोत्तरकी अपेक्षा से [जैसे खड्गादिकों के कोश जो हैं सो खड्गादिकों की अपेक्षा बाह्य होते हैं, तैसेही इन पञ्चकोशोंको भी कहते हैं। तिस विषे हेतु कहते हैं, यहां यह अर्थ है कि पूर्व के अन्नमयादिक कोशों को पिछले पिछले प्राणमयादिकोंकी अपेक्षासे बाह्यपना होने करके, अरु सर्वान्तर आधाररूप ब्रह्मकी अपेक्षा से आनन्दमय को भी तिनके तुल्य बाह्य होने से, इन अन्नमयसे आनन्दमय पर्यन्त पांचोंका कोशपना तुल्यही है] पूर्वके बाह्य भावसे व्याख्यान किये हैं "तेषामात्मापरोजीवः खंयथासंप्रकाशितः" (तिनका पररूप आत्मा जीव है, जैसे आकाश सम्यक् प्रकाश किया है) अर्थात् तिन अन्नमयादि कोशोंका परब्रह्मरूप आत्मा जीव है॥ शंका॥ सो आत्मा तिन कोशोंका जीव कैसे है। समाधान। जिस अत्यन्त आन्तर आत्मा से यह पांच कोश भी आत्मावाले होते हैं, सो आत्मा सर्व कोशोंको जीवन का निमित्तहै, एतदर्थ तिन अन्नमयादि कोशोंका जीव है॥ सो कौन है। उ०। जो परब्रह्मरूप आत्मा पूर्व "सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म" (सत्य ज्ञान अनन्त ब्रह्म है)। इसप्रकार प्रसंगविषे प्राप्त किया है। औ जिस आत्मा से स्वप्न अरु माया आदिकोंवत् आकाशादिकों के क्रम से अन्नमयादि कोशरूप संघात आत्मा की मायासे रचित है, इसप्रकार कहा है। अरु सो आत्मा हमों करके जैसे आकाशहै, तैसे "आत्माह्याकाशवत्" इत्यादि (आत्मा आकाशवत् है) यह इस प्रकरण के तीसरे श्लोक से सम्यक् प्रकार प्रकाश किया।

द्वयोर्द्वयोर्मधुज्ञाने परंब्रह्मप्रकाशितम् ।
पृथिव्यामुदरेचैव यथाऽऽकाशःप्रकाशितः १२ । ६१ ॥

परन्तु नैयायिकों करके कल्पित आत्मावत् पुरुषकी बुद्धि करके कल्पित प्रमाणों का विषयरूप आत्मा प्रकाश किया नहीं । यह अभिप्राय है ११ । ६० ॥

१२।६१ ॥ हे सौम्य! [मैं मनुष्यहौं, प्राणीहौं, प्रमाताहौं, कर्त्ताहौं भोक्ताहौं, इन उपाधि विशिष्ट पांचों का जो एकस्वरूप अनुस्यूत प्रत्यक् चैतन्यहै सो ब्रह्मही है, इसप्रकार जीव ब्रह्मकी एकताविषे तैत्तिरीय श्रुतिके तात्पर्य को कहके, अब तिसही अर्थविषे बृहदारण्यक उपनिषद्की श्रुतिकेभी तात्पर्यको कहते हैं । बृहदारण्यक उपनिषद्गत मधु ब्राह्मण विषे बहुत से पर्यायन में अधिदैव अरु अध्यात्मरूप भिन्नस्थानों विषे "अयमेवसइति" ‹यहही सोहै› इसप्रकार परब्रह्मरूप प्रत्यगात्मा प्रकाश किया (लखाया) है एतदर्थ बृहदारण्यकश्रुतिका भी इसब्रह्म और आत्माकी अभेद एकताविषे तात्पर्यहै । यह इसश्लोक के पूर्वार्द्ध का अर्थ है] किंवा "अधिदैवमध्यात्मञ्च तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषः पृथिव्याद्यन्तर्गतो योविज्ञाता पर एवात्मा ब्रह्म सर्वमिति" ‹अधिदैव अरु अध्यात्मतेजोमय अमृतमय पृथिव्यादिकों के अन्तर्गत जो विज्ञाता पुरुष है› सो परमात्माही है, सर्वब्रह्महै ‹इसप्रकार "द्वयोर्द्वयोर्मधुज्ञाने परंब्रह्मप्रकाशितम्" ‹द्वय द्वयविषे परब्रह्म प्रकाश कियाहै मधुज्ञानविषे› अर्थात् उक्तप्रकार दोनों दोनों स्थानोंविषे द्वैतके क्षय होने पर्यन्त परब्रह्म प्रकाशित कियाहै ॥ प्र० ॥ कहां प्रकाशित कियाहै ॥ उ० । जिसविषे ब्रह्म विद्या नामक मधु (अमृत) अमृतत्वका भेद न होने से । अर्थात् ब्रह्मविद्याका अमृतत्व (मोक्ष) परमानन्दकी प्राप्तिकाहेतु होने से मधु वा अमृत कहते हैं, अरु यही मुख्य अमृत है क्योंकि इसही करके जन्म मरणादि लक्षणवान् जीव सकारण मरण से रहित अमर अभय भावको प्राप्त

जीवात्मनोरनन्यत्वमभेदेनप्रशस्यते। नानात्वंनिन्द्यतेयच्चतदेवंहिसमञ्जसम् १३। ९२॥

होता है। जानते हैं, ऐसा जो मधुज्ञान। अर्थात् बृहदारण्य उपनिषद् के द्वितीय अध्याय के अन्तक मधु ब्राह्मण। तिस विषे प्रकाशित किया है। प्र०। किसवत् प्रकाशित किया है उत्तर। "पृथिव्यामुदरे चैव यथाऽऽकाशः प्रकाशितः"। जैसे पृथिवी अरु उदर विषे आकाश प्रकाशित किया है जैसे लोक विषे पृथिवी विषे अरु उदर विषे एकही आकाश अनुमाने प्रमाण से प्रकाशित किया है, तैसे मधु ब्राह्मण में पृथिवी आदिकों विषे अधिदैवरूप अरु शरीरादिकों विषे अध्यात्म रूप से परब्रह्मही प्रकाशित किया है। इत्यर्थः १२। ९१॥

१३। ९२ हेसौम्य! "जीवात्मनोरनन्यत्वमभेदेनप्रशस्यते"। जीव अरु परमात्माका अनन्यपना अभेदकरके प्रशंसाका विषय करते हैं; अर्थात् जो कि युक्तियों से अरु श्रुतियों के प्रमाण से निर्द्धार किया जीव अरु परमात्मा का अनन्यपना अर्थात् "तत्त्वमस्यादि" महावाक्यों करके त्वंपद के लक्ष्य अरु तत्पद के लक्ष्यका अनन्य अभेदपना। व्यासादिक महर्षियों करके शास्त्र (ब्रह्मसूत्रादि वेदान्त) से अभेद करके प्रशंसा का विषय किया है। अर्थात् श्रुतियों के महावाक्यों करके निर्द्धार निश्चित किया जो जीव अरु परमात्मा का अनन्यपना अरु तिस अनन्यपने का यथार्थ ज्ञान, अरु तिस ज्ञानसम्पन्न ज्ञानी, इनको व्यासादि महर्षियों ने अपने ब्रह्मसूत्रादि शास्त्र करके प्रशंसा के विषय किये हैं "सत्यं वै अभेदो" "ज्ञानादेवतु कैवल्यं" "ज्ञानंविमोक्षाय" "ज्ञानंलब्ध्वा परांशान्तिमचिरेणाधिगच्छति" "तस्यादित्यवज्ज्ञानं" "ज्ञानिरात्मैव मेमतम्" इत्यादि प्रमाण से। अरु "नानात्वं निन्द्यते यच्च तदेवंहिसमञ्जसम्"। नानात्व निन्दा का विषय किया है, जो सो ऐसेही समीचीन है; अर्थात्, जो

जीवात्मनोःपृथक्त्वंयत्प्रागुत्पत्तेःप्रकीर्तितम् ॥ भविष्यद्वृत्त्यागौणंतन्मुख्यत्वंहिनयुज्यते १४ । ९३ ॥

सर्व प्राणियों को साधारण स्वाभाविक (अविद्यारचित) शास्त्र से बाह्यकिये कुतर्कों के कर्त्ता वादियों करके रचित नानात्व दर्शन तिनको । वेदशास्त्राचार्य्यमहर्षियोंने निन्दाका विषय किया है । तथाच "नतुतद्द्वितीयमस्ति" "द्वितीयाद्वैभयंभवति उदरमन्तरंकुरुतेअथतस्य भयंभवति" "इदं सर्वम् यदयमात्मा" "मृत्योःस मृत्युमाप्नोति, इत्यादि" «सोद्वितीयनहीं है, द्वितीय से निश्चय करके भय होता है, जो यह सर्व है, सो यह आत्मा है, अल्पभी अन्तर को करताहै पश्चात् तिसको भयहोता है, सो मृत्यु से मृत्यु को प्राप्तहोता है जो यहां (आत्मा अरु ब्रह्म विषे) नानावत् देखताहै, इत्यादि श्रुति वाक्यों करके अरु अन्य ब्रह्मवेत्ता पुरुषों करके निन्दाका विषय किया है । अरु जो यह है सो ऐसेही समीचीन है । अरु जो तर्क करनेवाले पुरुषों करके कल्पना करीहुई कुदृष्टियां हैं, सो तो समीचीन नहीं । अरु निरूपण करीहुई घटना को प्रकाशे भी नहीं ॥ यह अभिप्राय है १३ । ९२ ॥

१४ । ९३ ॥ हेसौम्य ! । शंका । ननु, सम्यक् ज्ञानसे पूर्व । अर्थात तिस सम्यक् ज्ञानरूप अर्थवाली उपनिषदों के वाक्यों से पूर्व कर्मकाण्ड विषे । "इदंकामोऽदःकामइति" «यह काम है यह कामहै, इसप्रकार अनेक कामकरके कामनाके भेदसे जीवोंकाभेद कहा है अरु "परश्च सदाधारपृथिवींद्यामित्यादि मन्त्रवर्णैः" «सो परमात्मा इस पृथिवी अरुस्वर्गको धारणकरताहुआ, इत्यादि मन्त्रोंके कथन से तिन । पृथिव्यादिकों से पृथक् परमात्मा कहाहै, इसप्रकार जो जीव अरु परमात्माका पृथक्पना कहा है । तहां कर्मकाण्ड अरु ज्ञानकाण्डके वाक्योंसे विरोधहुये ज्ञानकाण्ड के वाक्योंके एकतारूप अर्थकाही समीचीनपना कैसे निश्चय करतेहो, जहां ऐसी शंकाहै, तहां कहते हैं । समाधान "।जीवात्मनोः पृथक्त्वं यत्प्रागु-

स्यतेः प्रकीर्त्तितम्" (सम्यक् ज्ञानरूप (उत्तरकांडके पूर्व जो जीव अरु परमात्माका पृथक्पना कहा है? अर्थात् "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते" "यथाऽग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गाः" "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः" "तदैक्षत" "तत्तेजोऽसृजत, इत्यादि" (जिससे प्रसिद्ध यह भूत उपजतेहैं, जैसे अग्निसे क्षुद्रविस्फुलिंग होतेहैं, तिस वा इस आत्मासे आकाश उपजताहुआ, सो ईक्षणकरताहुआ, सो तेजको सृजताहुआ, इत्यादिक सम्यक् ज्ञानरूप अर्थवाले उपनिषदोंके वाक्योंसे पूर्वकर्मकाण्डविषे जो जीव अरु परमात्माका भिन्नपनेकिहाहै" (भविष्यद्वृत्त्या गौणं तन्मुख्यत्वेहि न युज्यते" (सो भविष्यद्वृत्तिसे गौणहै निश्चयकरके मुख्यपना घटतानहीं; अर्थात् कर्मकांडविषे जो जीव अरु परमात्माका पृथक्पना कहा है, सो परमार्थरूप नहीं, किन्तु महदाकाश अरु घटाकाशके भेदवत् "यथौदनं पचतीति" (चावलकी (रसोई) पकावताहै इस वाक्यविषे जैसे भविष्यत् प्रवृत्तिसे चावलोंविषे भोजनपना है, तद्वत् गौण है, परन्तु भेदवाक्योंका कदाचित्भी मुख्य भेदरूप अर्थवान्पना घटतानहीं, क्योंकि आत्माके भेदके वाक्योंको स्वाभाविक (अनादि) अविद्यावाले प्राणियोंकी भेद दृष्टिअनुवादी (अनुवादकरनेवाली) है तातें। अरु यहां उपनिषद्विषे उत्पत्ति अरु प्रलयादिकोंके वाक्यों से, अरु "तत्त्वमसि" "अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद" (सो तूहै, यह अन्य है मैं अन्यहों, ऐसेजो जानताहै सोनहीं जानता) इत्यादि श्रुतिवाक्यों से जीवात्मा अरु परमात्माका ऐक्यपनाही प्रतिपादनकरनेको इच्छितहै। एतदर्थ उपनिषदोंविषे एकपना श्रुतिकरके प्रतिपादन करनेको इच्छितहोवेगा, इसप्रकार भविष्यवृत्तिवाले उत्पत्त्यादिकोंके वाक्योंकी मुख्यावृत्तिको आश्रय करके, जो लोकविषे भेद दृष्टिका अनुवादहै, सो गौणहीहै। यहअभिप्रायहै॥ अथवा "तदैक्षत, तत्तेजोऽसृजत" (सो ईक्षणकरता (इच्छा वा देखता) हुआ, सो तेजको सृजताहुआ) इत्यादिक वाक्यों से "उत्पत्तेः प्राक्कर्म

मृल्लोहविस्फुलिङ्गाद्यैः सृष्टिर्या चोदिताऽन्यथा । उ-
पायः सोऽवताराय नास्ति भेदः कथञ्चन १५ । ९४ ॥

वाद्वितीयम्" "उत्पत्तिसे पूर्व एकही अद्वितीयथा" इसप्रकार एकपना कहाहै । अरु "तत्सत्यं, सआत्मा, तत्त्वमसि," "सो सत् है, सोआत्माहै, सोतूहै" इसप्रकार सोई एकपना होवेगा । इसप्रकार की जिस भविष्यद्वृत्तिकी अपेक्षाकरके जो जीव अरु आत्माका भिन्नपना जहां किसी भी वाक्यविषे जाननेमें आवताहै, सो "यथौदनं पचतीति," "चावलकी रसोई पकावताहै" इसवाक्य विषे जैसे भविष्यद्वृत्तिसे तंडुलोंविषे भोजनपनाहै, तद्वत् गौणहै ॥ हे सोम्य! यहांजो जीवअरु परमात्मा में भेदके बोधक कर्मकांडकेवेद मन्त्रको गौणपना कहाहै तिसका यह भी अभिप्राय जानना कि कर्मकांड वेद है सो यज्ञादि कर्मोंद्वारा संसारकाही प्रवर्तक अरु प्रापकहै, एतदर्थ उसको उपनिषद् ज्ञानकाण्ड जो समूल जगत् का निवर्तक अरु परमानन्द मोक्षका प्रापक है, विषे "तत्रापरा ऋग्वेदो" इत्यादि वाक्यों करके अविद्यात्मक कहा है, एतदर्थ कर्मकांडके वा अन्यके जे जीवात्मा अरु परमात्माके भेदकेबोधक वाक्यहैं तिनकी गौणीवृत्ति जाननी १४ । ९३ ॥

१५ । ९४ हेसोम्य! शंका। ननु, यद्यपि उत्पत्ति से पूर्वजन्मरहित सर्व एकही अद्वितीयथा, तथापि उत्पत्तिके अनन्तर यहसर्व उत्पन्नहुआहै अरु जीव भिन्न है, इसप्रकार मतिकहो क्योंकि उत्पत्ति कीश्रुतिका अन्यअर्थ है ताते । अरु "स्वप्नवदात्ममाया विसर्जिताः संघाताः घटाकाशोत्पत्तिभेदादिवज्जीवानामुत्पत्तिभेदादिरिति." "संघात स्वप्नवत् आत्मा की माया से रचित है, अरु घटाकाशकी उत्पत्ति अरु भेदादिकोंवत् जीवों की उत्पत्ति अरु भेदादिक हैं" इसप्रकार पूर्व भी हमने यह दोष निवारण किया है, एतदर्थ भी यह प्रश्न अवकाश रहित है । अरु इसही से उत्पत्ति अरु भेदादिक की श्रुतियों से खींचके यहां पुनः उत्पत्तिकी श्रुतियों के ब्रह्म

आत्मा की एकताविषे तात्पर्यके प्रतिपादन करने की इच्छा से यह कहने का आरंभ है । तथाच "मृल्लोहविस्फुलिङ्गाद्यैः सृष्टिर्या चोदितान्यथा"। मृत्तिका लोह अरु विस्फुलिङ्गादि से अरु अन्य प्रकार से जो सृष्टि कही है; अर्थात् ;। "यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्यात्" "यथा सौम्यैकेन नखनिकृन्तनेन सर्वं कार्ष्णायसंविज्ञातꣳस्यात्" "यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते स्वरूपाः", इत्यादि श्रुतियों करके कहे । मृत्तिका लोह अरु विस्फुलिङ्गादिकन के दृष्टान्त के कथन से जो सृष्टि कही है, अरु अन्यप्रकारसे जो सृष्टि कही है, सो सर्व सृष्टिका प्रकार हमारे (ब्रह्मवेत्ताओं के) मतविषे जीवात्मा अरु परमात्माके एकताकी बुद्धि की उत्पत्तिके अर्थ उपायहै । अरु जैसे प्राण अरु इन्द्रियों के संवाद विषे वाक् आदिकों की आख्यायिका श्रवणकरते हैं । अरु देवता अरु असुरों के संग्राम विषे देवताओंने उद्गातापने करके स्वीकारकिये वाकादिकनके पापसे असुरों करके वधादि होनेकी आख्यायिका श्रवण करते है, सो सर्व प्राण की श्रेष्ठता के बोधकी उत्पत्ति के अर्थ कल्पित है । तैसेही श्रुति उक्त सृष्टिआदिक की प्रक्रिया भी अद्वैत बोधकी उत्पत्ति के अर्थ कल्पित है ॥ अरु जो ऐसा कहे कि, संवाद श्रुति के मुख्यार्थ होनेसे सो श्रुति उक्त उदाहरणभी असिद्ध होवेगा । सो कथनबने नहीं, क्योंकि अन्य शाखाविषे अन्य प्रकारसे प्राणादिकों के संवादके श्रवणसे जब संवाद परमार्थरूपहीहोता, तब सो संवादएकरूपही सर्व शाखाओं विषे श्रवणकरनेमें आवता । अरु अनेक विरुद्ध प्रकारसे जो श्रवणकरने में आवता है सो तैसे सुनाजाता नहीं । [श्रुतियां कहीं कहीं प्राणादिक परस्परमें विवाद करतेहुये आपही अपने निर्णय करने में असमर्थ होय प्रजापति(ब्रह्मा) के पासगये । अरु अपने परस्परके विवादकेहेतुको श्रवणकराय अपने विवाद का निर्णय इच्छते हुये । तब प्रजापतिने कहा कि तुम्हारे सर्व के मध्यसे । जिसके निकस जाने से यह शरीर अमंगलरूप

स्परमें विरोध देखनेसे यहां कहते हैं] तैसेही उत्पत्ति के वाक्य भी शाखाओं के भेदसे विरुद्ध अनेक प्रकार के होने के कारण। वो अपने। मुख्यार्थ विषे तात्पर्य वाले नहीं, किन्तु अन्य अर्थ विषे तात्पर्य वाले हैं। अर्थात् सृष्टिकी प्रतिपादक श्रुतियों का परस्पर में भिन्न भिन्न विरुद्ध कथनसे प्रतीत होताहै कि वास्तव करकेसृष्टिकुछ हुईनहीं, क्योंकि जो वास्तवकरके सृष्टि हुई होती तो सर्व श्रुतियोंकी एक वाक्यता अरु एकही क्रमहोता, अरु तिसही करके उन श्रुतियों के। सृष्टि प्रतिपादक वाक्य। अपने। मुख्यार्थविषे तात्पर्यवाले नहीं, किन्तु अन्य मुख्यार्थ विषे तात्पर्य वाले हैं। अर्थात् सृष्टिप्रतिपादिक श्रुतियों विषे परस्पर में विरुद्ध क्रमहोने से प्रतीत होताहै कि उन श्रुतियों का तात्पर्यार्थ सृष्टि के प्रतिपादन विषे न होयके एक अद्वैत आत्मतत्त्वके लखावने विषे तात्पर्य है, क्योंकि उन श्रुतियों विषे क्रमका विरुद्ध भेदहै परन्तु सर्व श्रुतियों ने सृष्टि का कारण अधिष्ठान एक सत् चैतन्य आत्मा ब्रह्मही कहाहै, ताते उन सर्व श्रुतियोंका मुख्य तात्पर्य एक अद्वैत आत्मतत्त्वके प्रकाशने विषे है अन्यविषे नहीं। अरु जो ऐसा कहै कि कल्पकल्पकी सृष्टिके भेदसे संवादकी श्रुतियोंकाभी सृष्टि सृष्टि के प्रति अन्यथापनाहोवेगा, सो कथनबने नहीं, क्योंकि उक्तबुद्धिकी उत्पत्तिरूप प्रयोजनके विना संवादकी श्रुतियोंकी निष्फलताहोतीहै ताते। अरु संवाद अरु उत्पत्तिकी श्रुतियोंका, उक्त बुद्धिकी उत्पत्ति के विना अन्य प्रयोजनवान्पनाकल्पना करनेको शक्य नहीं। अर्थात् प्राणादिकों के संवाद की श्रुतियों का अरु सृष्टिप्रतिपादक श्रुतियोंका, शरीरादिसंघातमें सर्वका ज्येष्ठ श्रेष्ठत्वपना, अरु आत्माका एक अद्वैतपना जानने की बुद्धि की उत्पत्तिकेविना अन्यप्रयोजन कल्पना करने को शक्य नहीं। अरु जो ऐसा कहै कि प्राणादि भावकी प्राप्तिके लिये ध्यानार्थ प्राणादिकों का कीर्तन है, सो कहना बनेनहीं, क्योंकि कलहकी उत्पत्ति अरु प्रलयकी प्राप्ति यह सर्वकोही अनिष्टहोने है

आश्रमास्त्रिविधाहीनमध्यमोत्कृष्टदृष्टयः । उपासनो पदिष्टेयंतदर्थमनुकम्पया १६ । ६५ ॥

तातें उक्त आख्यायिका प्राणका कीर्त्तननहीं। एतदर्थ उत्पत्त्यादिकोंकी जो श्रुतियां हैं सो आत्माके एकताकी बुद्धिकी उत्पत्त्यर्थ हैं, अन्य अर्थवाली कल्पना करनेको योग्यनहीं। एतदर्थ, उत्पत्ति आदिकों का किया भेद किसीप्रकार से भी है नहीं १५। ६४॥

१६। ६५ हेसौम्य!। शंका। ननु, "एकमेवाद्वितीयम्" एकही अद्वितीयहै,इत्यादि श्रुतियोंके वाक्य प्रमाणसे यदि परब्रह्मरूपही आत्मा,नित्यशुद्ध, नित्यबुद्ध,नित्यमुक्त, स्वभाववाला एकपरमार्थ रूपसत्है अरु अन्यअसत्यहै, तब "आत्मा वा अरेद्रष्टव्यः" "यआत्माऽपहतपाप्मा, सक्रतुंकुर्वीत" "आत्मेत्येवोपासीतेत्यादि" अरेमैत्रेयी आत्मा निश्चय करके देखनेयोग्यहै, जो आत्मा पापरहितहै सो ध्यानकरने के योग्यहै, सो अधिकारी क्रतु (उपास्य के संकल्प) को करे, आत्मा है इसप्रकारही उपासना करना। इत्यादि श्रुतिवाक्योंसे यह उपासना किस अर्थ उपदेशकियाहै। अरु अग्निहोत्रादि कर्म्म किसवास्ते उपदेशकिये हैं॥ जहां ऐसी शंकाहै तहां सिद्धान्ती कहे हैं, कि हे वादी! तहां कारण श्रवणकर "आश्रमास्त्रिविधाहीनमध्यमोत्कृष्टदृष्टयः" (आश्रम तीन प्रकार के हैं, मन्द,मध्यम, अरु उत्कृष्ट, दृष्टिकरके युक्तहैं) अर्थात् आश्रम (अर्थात् आश्रमवाले अधिकारी) अरु आश्रमशब्दके देखावनेके अर्थ शूद्रसे पृथक् सन्मार्गगामी वर्ण (वर्णवाले अधिकारी) तीन प्रकारकेहैं। प्रश्न। कैसे वे तीन प्रकारकेहैं। उत्तर। वे,मन्द, कार्य ब्रह्मको विषय करनेवाली, अरु, मध्यम, कारण ब्रह्मको विषय करनेवाली, अरु, उत्कृष्ट, शुद्ध अद्वैतको विषय करनेवाली, दृष्टि (बुद्धिकीसामर्थ्य)करके युक्तहैं। मन्द वैश्यवर्ण, मध्यम क्षत्रिय वर्ण, उत्कृष्टब्राह्मणवर्ण, यहतीन क्रमसे उक्तप्रकारकी दृष्टिकरके युक्तहैं। "उपासनोपदिष्टेयंतदर्थमनुकम्पया" (तिनकेअर्थ दयाकरके

स्वसिद्धान्तव्यवस्थासुद्वैतिनोनिश्चितादृढम् । पर स्परंविरुध्यन्तेतैरियंनविरुध्यते १७ । ९६ ॥

यहउपासना उपदेश कियाहै, अर्थात् तिनमन्द अरु मध्यम कार्यब्रह्मकी अरु कारण ब्रह्मकी दृष्टिवाले वर्णाश्रमियोंके अर्थ; कि मन्द अरु मध्यम दृष्टिवाले सन्मार्गगामीहुये इससर्वोत्तम । ब्रह्म आत्माकी एकताकी सम्यक् दृष्टिको कैसे प्राप्तहोवेंगे, । इनकोभी अभेद दृष्टि जोपरम कल्याणकारीहै, प्राप्तहोनीचाहिये। इसप्रकार विचार के परमदयालु वेद ने उनपर दयाकर के यह उपासना उपदेश कहीहै; अरु कर्म उपदेश कियेहैं । अर्थात् जो मन्द मध्यम अधिकारीहै, जिनको अभेद सर्वात्मदृष्टि प्राप्तहोनेकी इच्छाहै तिन पुरुषों के हितार्थ दयाकरके वेद भगवान्ने उनके अन्तःकरणकी शुद्धिकेअर्थ विहित नित्य निष्कामकर्म अरु अन्तःकरणकी स्थिरताके अर्थ प्रणवकी वा श्रवण मननरूपसे आत्माकी ज्ञानांग उपासना कही है; क्योंकि अन्तःकरणके मलविक्षेपरूप दोष अभावे हुये विना आवरण भंगपूर्वक सर्वात्म अभेददृष्टि प्राप्तहोवे नहीं । "आत्मैकएवाद्वितीय" आत्मा एकही अद्वितीय है, इसप्रकारकी निश्चयात्मक उत्तमदृष्टि जिनको प्राप्तहुईहै तिन उत्तमाधिकारी के अर्थ कर्मउपासना कहीनहीं । क्योंकि "यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनोमतं तदेवब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते" । "तत्त्वमसि" "आत्मैवेदं सर्वमिति" । [उपास्य जोहैसो ब्रह्महीनहीं; इसप्रकार के निषेधसे उपासनाको मन्दमध्यम दृष्टिवाले पुरुषोंकी विषयता भासतीहै, ऐसा कहते हैं] जिसको मनसे मननकरता नहीं, अरु जिसने मनको जान्यो है तिसहीको तू ब्रह्मजान, जिस इसकोलोक उपासतेहैं यहब्रह्मनहीं । सो तूहै, आत्माही यहसर्व है ॥ इत्यादि श्रुतियोंसे १६ । ९५ ॥

१७।९६ हेसौम्य ! शास्त्रअरु युक्तिकरके निश्चितहोनेसे अद्वैत आत्माका दर्शन (यथार्थ अनुभव) सम्यक् दर्शनहै, ताते अन्यदर्शन

शास्त्र अरु युक्तिसे बाह्य होनेकरके मिथ्यादर्शन हैं, यह निर्धार किया । अब इसकथनके हेतुसे भी द्वैतवादियोंका मिथ्यादर्शनहै, क्योंकि उनद्वैतवादियोंको रागद्वेषादि दोषोंकरके युक्तपनाहै ताते अरु उनकेयहां अद्वैतबोधक श्रुतियोंका अग्रहणहै अरुजो कदापि ग्रहणभीहैं तो विपरीत अर्थसे है ताते । प्रश्न । उन द्वैतवादियोंको उक्त दोषकरके युक्तपना कैसेहै, । उत्तर । तहां कहतेहैं "स्वसिद्धान्त व्यवस्थासु द्वैतनो निश्चितादृढम्" । द्वैतवादी अपने सिद्धान्तकी रचनाके नियमोंविषे दृढ निश्चितहुये, अर्थात् कपिल कणाद अरु बुद्ध इनआदिकोंकी दृष्टिके अनुसारी जो द्वैतवादी हैं सो अपने सिद्धान्तकी रचनाके नियमोंमें "एवमेवैपपरमार्थोनान्यथेति" यह ऐसेही परमार्थ रूप है अन्यथा नहीं, इसप्रकार तहां तहां अपने अपने सिद्धान्तोंविषे । दृढ आसक्तहुये । अरु अपने प्रतिपक्षीको देख तिसकेअर्थ द्वेषकरतेहुये । अर्थात् द्वैतवादी अपने२ कल्पितसिद्धान्तोंमें आसक्तहुयों अरु "परस्परं विरुध्यन्ते तैरियंन विरुध्यते" । परस्पर विरोधकरतेहैं तिसकरके यह विरोधकोपावतानहीं, अर्थात् कपिलादि द्वैतवादी स्वकल्पित सिद्धान्तमें राग पूर्वक आसक्तहुये अपने प्रतिपक्षियों से द्वेषमान उनकी निन्दा पूर्वक उनके सिद्धान्तोंका खंडनकरते हैं । इसप्रकार राग द्वेषकरके युक्तहुये अपने सिद्धान्तके दर्शन के निमित्तही परस्पर विरोधकोपावते हैं । तिन परस्पर विरोधवादियोंकरके यह हमारा वेदोक्त आत्माकी एकताके दर्शनका पक्ष सर्वसे अपृथक् (अनन्य) होनेसे जैसे पुरुष अपने हस्त पादादिकोंसे विरोधको प्राप्तहोना नहीं, तैसेही, विरोधको पावना नहीं । अरु सर्वत्र एक आत्माकी दृष्टि वाला सम्यक् आत्मवेत्ता "नानिवादी" अनिवादी किसीकीभी निन्दा स्तुतिकरनेवाला होतानहीं । इसप्रकार रागद्वेषकी अनाश्रयता (त्यागी) होनेसे आत्माकी एकताकी बुद्धिही सम्यक्दर्शनहै इतर नहीं । इत्यभिप्रायः १७ । ६६ ॥

२ = ६७ हेसौम्य!। प्रश्न । किसहेतुकरके यह अद्वैत सर्वात्मा,

अद्वैतंपरमार्थोहिद्वैतंतद्भेदउच्यते । तेषामुभयथाद्वैतंतेनायंनविरुद्ध्यते १८। ९७॥

पक्षतिन द्वैतवादियोंसे विरोधको पावतानहीं। उत्तर। "अद्वैतंपरमार्थोहिद्वैतंतद्भेदउच्यते" (अद्वैतही परमार्थरूपहै, द्वैततिसका भेद कहतेहैं) अर्थात् जिसकरके अद्वैतही परमार्थरूपहै, अरु द्वैत जो नानात्व सो तिस अद्वैतका भेद कहिये कार्य्य कहतेहैं। अर्थात् जितनाकुछ द्वैत नानात्वहै सो सर्व अद्वैतकाही भेदरूपकार्य है, क्योंकि "। एकमेवाद्वितीयम्, तत्तेजोऽसृजत"(एकही अद्वितीयहै, सो तेजको सृजताहुआ) इसप्रकार श्रुतिका प्रमाणहै ताते। अरु निर्विकल्प समाधि विषे, अरुघन सुषुप्ति विषे, अरु गाढ़मूर्च्छाविषे, द्वैतके अभावहुये अपने चित्तके स्फुरणके अभावसे द्वैतके अदर्शनरूप युक्तिकरके अद्वैतही सिद्धहै। अर्थात् उक्तप्रकार समाधिसुषुप्ति अरुमूर्च्छा इनतीनोंअवस्थाविषे चित्तवृत्तिके अफुर हुये द्वैत के अभावसे केवल उनका साक्षी अद्वैत आत्माही अवशेष रहता है, इस युक्तिके सारानानात्व चित्तकी स्फुरणाकरके कल्पित है, अरु विना आश्रय कल्पना होवे नहीं, अतएव एक अद्वैत आत्मसत्ताके आश्रय चित्तकी स्फुरण नानात्वकी कल्पना करेहै। ताते नानात्वको अद्वैतका कार्य कहते हैं, कारण नहीं। अरु "तेषामुभयथाद्वैतं तेनायंनविरुद्ध्यते" (तिनको उभयप्रकार सेभी द्वैतही है, तिनसे यह विरोधको पावता नहीं) अर्थात् तिन द्वैतवादियोंकोतो व्यवहार अरु परमार्थ इन उभयप्रकारसेभी द्वैत हीहै। अरु जब उन भ्रान्तभेदी पुरुषोंको द्वैतकी दृष्टिहै, अरुअस्मदादि अभ्रान्त अभेदी पुरुषोंको अद्वैतकी दृष्टिहै, तब तिसहेतुकरके यह हमारा अद्वैतपक्ष तिन्होंसे विरोधको पावता नहीं। "इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते"। "नतुतद्द्वितीयमस्ति" (इन्द्र माया करके बहुतरूप पावता है सोतो द्वितीय हैनहीं, इन श्रुतियों के प्रमाणसे। [भ्रान्तिरूप मूलहै जिसका ऐसे द्वैतके सिद्धान्तसे,

मायया भिद्यतेह्येतन्नान्यथाऽजंकथञ्चन । तत्त्वतो भिद्यमानेहि मर्त्यताममृतंव्रजेत् १९ । ९८ ॥

प्रमाणरूप मूलहै जिसका ऐसा अद्वैत सिद्धान्त अविरुद्धहै, इस अर्थको यहां दृष्टान्तसे प्रतिपादन करतेहैं] जैसे उन्मत्त गजारूढ़ हुआ जो पुरुष सो पृथ्वी पर आरूढ़ हुए पुरुष के प्रति " गजारूढोऽहं वाहयमां प्रतीति " (मैं गजारूढ़ हो मेरे प्रति वहन कर (लेजा) इसप्रकारके कहनेवाले भी उन्मत्त पुरुषों को देखिके तिनके ताईं विरोध बुद्धिसे वहन करता नहीं, तद्वत् । ताते परमार्थ से ब्रह्म चैतन्य द्वैतवादियों का भी आत्माही है । इसहेतु से यह हमारा पक्ष तिन द्वैतवादियों से विरोध को पावता नहीं । क्योंकि अपने आप आत्मा से किसी का भी विरोध सम्भव नहीं १८ । ९७ ॥

१९।९८ हेसौम्य ! द्वैत जो है अद्वैतका भेदकहिये कार्यहै,इस प्रकारका जो कथन किया ताते द्वैत भी अद्वैतवत् परमार्थसे सत् होवेगा, जहां इसप्रकार की किसीको भी शंकाहोय तहां कहतेहैं । परमार्थ से सत्रूप जो अद्वैत है, यह तिमिर दोष करके शुक्त दृष्टि वाले पुरुषो करके कल्पित अनेक चन्द्रमावत्, अरु सर्प अरु जल धारा आदिक भेदोंसे रज्जुवत् " मायया भिद्यते ह्येतन्नान्यथाऽजं कथञ्चन " (मायासे भेदको पावताहै, यह अजन्मा किसी भी प्रकारसे अन्यथा होता नहीं) अर्थात् मायाकरके भेदको पावताहै, परमार्थ से नहीं [विवाद का विषय जो भेद, सो मिथ्या है, भेद होनेसे चन्द्रादिकोंके भेदवत् ॥ विवादका विषय जो आत्मतत्त्व, सो स्वरूप से भेद रहित है, क्योंकि निरवयवहै ताते, अरु नित्य है ताते, अरु अजन्मा है ताते, व्यतिरेक से मृत्तिकादिकों वत् । इसप्रकार कहते हैं] क्योंकि आत्मा निराकार निरवयव है ताते । अरु जिसकरके सावयव वस्तु अवयवन के अन्यथा भाव से भेदको प्राप्त होता है । जैसे घटसरावादिकन के भेदों से मृत्ति·

अजातस्यैवभावस्य जातिमिच्छन्तिवादिनः । अजातोह्यमृतोभावोमर्त्यतांकथमेष्यति २० । ९९ ॥

का भेद को पावनी है, (यह व्यतिरेकी दृष्टान्त है, ताते निरवयव अरु अजन्मा जो अद्वैत सो किसी भी प्रकार से अन्यथा (भेदको प्राप्त) होता नहीं, यह अभिप्राय है ॥ अरु " तत्त्व तो भिद्यमानेहि मर्त्यतामृतं व्रजेत् " (ताते तत्त्वसे भेदको प्राप्त हुये अमृत मरनेकी योग्यताको प्राप्तहोवेगा) अर्थात् जिसकरके परमार्थ से भेदको प्राप्त होनेके स्वभावसे अमृत (अमरणधर्मा) अरु अजन्माहुआ अद्वैत मरणकी योग्यताको प्राप्तहोवेगा । जैसे अग्नि शीतलताको प्राप्तहोवे तैसे सो स्वभाव के विपरीतपने की प्राप्ति, सर्व प्रमाणोंके विरोधसे अनिष्टहै । (अर्थात् अग्निका अपनी स्वभावभूत उष्णता को त्याग शीतलस्वभाव होना सर्व प्रमाणों से विरुद्ध है, तैसे निरवयव निराकार अजन्मा एक अद्वैत स्वभाववाले आत्मतत्त्वका, सावयव साकार सजन्मा नानाद्वैत स्वभाववाला विनाशीधर्माहोना सर्व प्रमाणों से अरु युक्तिअनुभव से विरुद्धहै, तातेसो किसीकोभी इष्टनहीं ।। एतदर्थ अजन्मा अविनाशी जो आत्मतत्त्व सो अपनी मायाकरकेही भेदको पावता है परमार्थ से नहीं । एतदर्थ द्वैत किसीप्रकार भी परमार्थ से सत्य है नहीं १६ । ६८ ॥

२० । ६६-हे सौम्य ! जो [इस प्रकार अपने पक्षको कहके, अब अपने वेदान्ती के यूथविषे परिगणित वादियोंके पक्षको अनुवादकरके दूषण देतेहैं] पुनः कोई एक उपनिषदों की व्याख्या करनेवाले वाचाल ब्रह्मवादी (-उपासक) " अजातस्यैव भावस्य जाति मिच्छन्तिवादिनः " (वादीलोक अजन्मा भावकी उत्पत्तिको इच्छते हैं) अर्थात् जे अन्तरसे उपासना के आग्रहवाले अरु बाह्य अद्वैत ज्ञानके वक्ता ऐसे जे वाचाल ब्रह्मवादी सो स्वभावसे अजन्मा अरु अमररूपही आत्मतत्त्वरूप भावकी पर-

नभवत्यमृतंमर्त्यंनमर्त्यममृतन्तथा । प्रकृतेरन्यथाभावोनकथञ्चिद्भविष्यति २१ । १०० ॥

मार्थसेही उत्पत्तिको इच्छतेहैं "जातंचेत्तदेवमर्त्यतामेष्यत्यवश्यम्" (जन्म को पाया है सो अवश्यही मरणकी योग्यताको प्राप्तहोवेगा, इस न्यायसे तिनका सो आत्मा, स्वभाव से अजन्मा अरु अमृतभावरूपहुआ मरणकी योग्यताको कैसे प्राप्तहोवेगा, किन्तु किसी प्रकारसेभी मरणकी योग्यतारूप स्वभाव की विपरीतता को पावनेकानहीं। (अर्थात् जो तत्ववास्तवकरके अपने स्वरूपसेही अजन्मा अविनाशी शुद्धबुद्ध मुक्तस्वभावहै सो कभी किसीप्रकार सेभी अपने स्वरूप स्वभावसे अन्यथाभावको प्राप्तहोता नहीं । इत्यर्थः २० । ९९ ॥

२१ । १०० हे सौम्य ! [पदार्थोंको स्वभावके विपरीतपने की प्राप्तिअघटितहै, ऐसा जो कहा तिसहीको वर्णन करतेहैं] "नभवत्यमृतंमर्त्यंनमर्त्यममृतन्तथा " (अमृत मरनेकेयोग्य होता नहीं तैसे मरनेके योग्य अमृत होता नहीं) अर्थात् जिस करके लोक विषे अमृत (अविनाशी) वस्तु मरने (विनाशके) योग्य होती नहीं । ताते अग्नि के [यहां यह अर्थहै कि अग्नि के स्वभावरूप उष्णपनेको शीतलपनेकी प्राप्तिरूप विपरीतपना अयुक्तहै, तैसे अन्य ठिकाने भी स्वभाव का विपरीतपना अयुक्तहै, क्योंकि तैसे हुयेस्वरूप के नाशका प्रसंग प्राप्तहोताहै ताते] उष्णस्वभाववत् । ताते " प्रकृतेरन्यथाभावो नकथञ्चिद्भविष्यति " (स्वभाव का अन्यथा भाव किसीभी प्रकारसे होता नहीं) अर्थात् जैसे स्वरूप से ही जोअग्निका उष्णस्वभाव सो अन्यथा होतानहीं (तैसेहीस्वभाव का अन्यथाभाव (स्वरूपसे इतरपना) कदापि किसी प्रकारसेभी होगानहीं॥ हे सौम्य! वस्तुको अन्यथाकरना 'जैसेआम्रकाफलप्रथम खट्टाहोताहै सोई पश्चात् परिपक्क अवस्था विषे मधुर होता है सो कालकरके होताहै, क्योंकि वस्तुको अन्यथा करना कालका

स्वभावेनामृतोयस्यभावोगच्छतिमर्त्यताम्। कृतके नामृतस्तस्यकथंस्थास्यतिनिश्चलः २२। १०१॥

लक्षणहै, परन्तु जो वस्तु उत्पन्न होती है सो कालके व्यवधानसे युक्तहोने करके, कदाचित् कालके प्रभावसे अन्यथा भावको प्राप्त होवे तो होवे परन्तु जो अजन्मा कालके व्यवधानसे रहितसर्वदा एकरस स्वभाव है तिसका किसीकरके किसी प्रकार से भी अन्यथाभाव होवे नहीं। यह परम सिद्धान्त है २१। १००॥

२२। १०१ हे सौम्य! "स्वभावेनामृतो यस्य भावो गच्छति मर्त्यताम्" (जिसका स्वभावसे अमृतरूप भाव मरनेकी योग्यता को प्राप्त होताहै) अर्थात्। शङ्का। ननु, ब्रह्म कारणरूपसे कार्य्योत्पत्तिके पूर्व मरणरहित हुआभी कार्यके आकार से उत्पत्तिके अनन्तर कालविषे मरणकी योग्यताको पावेगा, तातें स्वरूपके भेदसे दोनों अविरुद्धहैं। जहां ऐसी शङ्काहै तहां कहते हैं। जिस वादीको स्वभावसे अमृतरूप भाव मरणकी योग्यता को पावताहै। अर्थात् परमार्थ से जन्मको पावता है तिस वादीकी "प्रागुत्पत्तेः सभावः स्वभावतोऽमृत इति" सो भाव, उत्पत्ति से पूर्व स्वभाव से अमृत है। ऐसी जो प्रतिज्ञा सो मिथ्याही होवेगी। प्रश्न। तब कैसे है। उत्तर "कृतकेनामृतस्तस्य कथं स्थास्यति निश्चलः" (तिसका अमृत निश्चलहुआ कैसे स्थितहोवेगा) अर्थात् तिस वादीका जन्य होनेकरके अमृत, सो भाव निश्चलहुआ अर्थात् अमृतपने के स्वभावकरके कैसे स्थित होवेगा, किन्तु किसी प्रकारसे भी स्थित होवे नहीं। इसका यह अभिप्रायहै कि आत्मा की उत्पत्ति वादीके मतविषे सर्वदा अजन्मा वस्तु कोई है नहीं, किन्तु यह सर्ववस्तु मरणके योग्य है, इसकरके मोक्षके अभाव का प्रसंग प्राप्त होवेगा २२। १०१॥

२३। १०२ हे सौम्य! [परिणामवादकी सृष्टिप्रतिपादक श्रुतिके अनुसारसे अंगीकार करनेकीयोग्यताकी शङ्काकरकेनिषेधकरतेहैं]

भूततोऽभूततोवाऽपिसृज्यमानेसमाश्रुतिः । निश्चितं युक्तियुक्तश्चयत्तद्भवतिनेतरत् २३ । १०२ ॥

शङ्का।ननु,आत्माकीअनुत्पत्तिके वादीको सृष्टिकीप्रतिपादक श्रुति-प्रमाणिक नहोवेगी, जहांऐसी शङ्काहै तहां कहतेहैं, सृष्टिकी प्रति-पादकश्रुतिहैं यह जो तेराकहनाहै सो सत्यहै परन्तु सो अन्यअर्थके परायणहै, सृष्टिपरायण नहीं । अरु यह हमने "उपायःसोवताराय" ‹सो अद्वैत बोधकी उत्पत्त्यर्थ उपायहै› इस प्रकरणके पंचदश १५ वें श्लोकविषे कहाहै । अब संसाधानके पूर्व कहेहुये भी तेराप्रश्न अरु उत्तर जो कहतेहैं सो कहनेको वांछित अर्थकेप्रति सृष्टिप्रति-पादकश्रुतिकेअक्षरोके अनुलोमपनेके विरोधकीशङ्कामात्रकेनिवा-रणार्थ है "भूततोऽभूततोवाऽपि सृज्यमाने समाश्रुतिः" ‹भूत से वा अभूतसेभी उत्पन्न होनेवाले विषे श्रुतिसमहै› अर्थात् भूतसे, कहिये परमार्थसे,उत्पन्न होनहार वस्तुविषे,वा अभूत,कहियेमाया से, वा माया विनाही सृज्यमान वस्तुविषे, सृष्टिकीश्रुति तुल्य है [यहां यह भावहै कि, परिणामवादविषे अरु विवर्तवादविषे सृष्टि प्रतिपादक श्रुतियों के अविशेषसे अद्वैतके अनुसारी श्रुति अरुयुक्ति के वशते विवर्त्तवादकीही अंगीकारकरनेकी योग्यताहै]।शङ्का।ननु, 'मुख्य अरु गौण दोनों कार्योंके मध्य मुख्य विषे शब्दके अर्थका निश्चय युक्तहै,। इसप्रकार जो वादीने कहा सो बने नहीं, क्योंकि मिथ्यापने विना अन्यप्रकारसे सृष्टिअप्रसिद्धहैं ताते, अरु निष्प्र-योजन है ताते । [अर्थात् वास्तव सिद्धान्तके विचारसे देखिये तो आप्तकाम एक अद्वैत परिपूर्णपरमात्माको सृष्टिरचनेके प्रयोजनका अभाव होनेसे सृष्टि अप्रयोजन है । अरु " सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः" ‹ बाह्य अन्तरसहित है अरु अजन्मा है › । इस श्रुतिकेप्रमाणसे । अरु अविद्या अवस्था विषेही विद्यमान सर्वगौणी (स्वप्नगत र-थादि) अरु मुख्या जाग्रतगत घटादि ' रूपसृष्टि परमार्थ से है नहीं, इसप्रकार हम कहते हैं ।। ताते [सृष्टिकी श्रुति को अद्वैत

नेहनानेतिचाम्नायादिन्द्रोमायाभिरित्यपि । अजायमानोबहुधामाययाजायतेतुसः २४ । १०३ ॥

के अनुसारी पनेकेहुये प्रमाण अरु युक्तिके अनुग्रह सहित अद्वैत ही अंगीकार करनेके योग्यहै, इस प्रकार फलित अर्थ कहतेहैं,] ताते "। निश्चितं युक्तियुक्तञ्च यत्तद्भवति नेतरत् "। (निश्चित युक्ति करके युक्त सोई होता है,अन्यनहीं) अर्थात् श्रुति करके निश्चित जो एकही अद्वितीय अजन्मा अमृत रूप वस्तु है, अरु युक्तियों करके युक्त है, सोई श्रुतिका अर्थ होनेको योग्य है अन्य कदाचित् भी नहीं । इसप्रकार इस पूर्वके ग्रंथसे कहते हैं २३ । १०२ ॥

२४।१०३॥ हेसौम्य![सृष्टिकेमिथ्यापनेके स्पष्टकरनेरूपद्वारसे अद्वैतकोही श्रुतिके अर्थपनेसे निर्द्धारकरनेको श्रुतिकेनिश्चयकोही वर्णन करते हैं]। पू०। श्रुतिका निश्चय कैसा है । उ०। जब भाव रूपही सृष्टिहोय तो तिसकरके नाना सत्यही होवेगा। अरु जब नानात्व सत्यहोय, एतदर्थ तिसके अभावके दिखावनेके अर्थ वेदका वाक्य न होवेगा। अरु "। नेहनानेतिचाम्नायादिन्द्रोमायाभिरित्यपि "। (इसविषे नाना कुछ भी नहीं, यह वेदका आम्नाय (वाक्य है, अरु इन्द्र मायाकरके ऐसे भी है) अर्थात् । "नेह नानास्तिकिञ्चन "। (यह नाना कुछ भी नहीं) इत्यादि, यह द्वैतभाव के निषेधरूप अर्थवाला वेदका वाक्य है। (अर्थात् जो यह सृष्टिभाव (सत्य, कुछवस्तु) रूप होती तो, सृष्टि प्रतिपादक श्रुतियां सर्व्व उपनिषदोंमें एकरूपही होतीं, अरु "। नेहनानास्ति किञ्चन "। यह नानात्वके अभावके प्रतिपादक अर्थवाली श्रुति न होती, अतएव सृष्टिके वाक्यों में विरुद्ध नानात्व अरु नानात्वके निषेध की श्रुतियों के देखने से नानात्वका अभावही प्रतीत होताहै । ताते प्राणके संवादवत् । अर्थात् प्राण अरु इन्द्रियों के संवाद की जो आख्यायिका है सो सर्व संघात में

प्राणकी ज्येष्ठता श्रेष्ठताके लखावनेके अर्थ कल्पित है, तैसेही एक अद्वैत आत्मतत्त्वके निश्चयकरावनेके अर्थ कल्पित जो सृष्टि सो मिथ्याही है अरु " इन्द्रोमायाभिः " <इन्द्रमायाकरके> इसप्रकार मिथ्या अर्थके प्रतिपादक मायाशब्दकरके कथनहै ताते।शङ्का।ननु, मायाशब्द प्रज्ञाका वाचीहै, ताते मिथ्याअर्थवाला नहीं है, । उ० । यह जो तेरा कथन है कि मायाशब्द प्रज्ञाका वाची है सो सत्य है । [यहां यह अर्थ है कि मायाशब्द की वाच्य जो प्रज्ञा सो चैतन्य ब्रह्म है नहीं, क्योंकि " भूयश्चान्तेविश्वमायानिवृत्तिः " < पुनः अन्तविषे विश्व (कार्य) अरु माया (कारण) इसकी निवृत्ति होती है > इत्यादिक श्रुतिवाक्यों से मायाकी निवृत्ति श्रवण करने में आवतीहै ताते । किन्तु यह प्रज्ञा इन्द्रियजन्य है अरु तिसको अविद्या के अन्वय अरु व्यतिरेक की अनुसारी होने से अविद्यारूप होने करके मिथ्या होनेसे मायाशब्द के मिथ्या अर्थवान्‌पने विषे असंभव नहीं] तथापि इन्द्रियजन्य प्रज्ञाको अविद्यात्मक होने करके माया (मिथ्या) पनेके अंगीकारसे दोष नहीं (अर्थात् अविद्या से आकाशादि भूत तिनसे इन्द्रियां तिनसे प्रज्ञा इसप्रकार होनेसे अविद्या का अन्वय जो अविद्यात्मक प्रज्ञा तिसको मायारूप से अंगीकार करने में दोष नहीं, एतदर्थ इन्द्र शब्द करके जो परमात्मा सो अविद्यारूप इन्द्रियजन्य बुद्धिवृत्ति मय माया करके बहुत रूपहुआ प्रतीत होता है । तथाच " अजायमानो बहुधा विजायत इति " < जन्मरहित हुआ बहुतप्रकारसे जन्मता है > इस श्रुतिके प्रमाणसे । ताते " अजायमानो बहुधा मायया जायते तु सः " < सो तो जन्म रहित हुआ माया करके ही बहुत प्रकार जन्मता है > अर्थात् सो इन्द्र नामवाला परमात्मा मायाकरके ही बहुत रूपसे जन्मता है । अतएव जैसे एकही अग्निविषे शीतलता अरु उष्णता ' जो परस्परमें विरुद्ध हैं, इन दोनों का होना असंभव है, तैसे एकही आत्मा विषे जन्मरहित अजपना, अरु बहुत प्रकार से जन्मपना, यह दोनों

संभूतेरपवादाच्चसम्भवः प्रतिसिद्ध्यते । कोन्वेनंजन-
येदितिकारणंप्रतिसिद्ध्यते २५ । १०४ ॥

। जो परस्परमें विरोधी हैं । संभवे नहीं । एतदर्थ सो परमात्मा माया करकेही बहुत प्रकारसे जन्मताहै, यह कथन युक्तही है। अरु फलवान् होने से आत्मा की एकता का ज्ञानही सृष्टिकी श्रुतियोंका निश्चितार्थ है "तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः" <तहां एकताके देखनेवालेको क्या मोह अरु क्या शोक है> इत्यादि वेदमंत्र का कथन है न्ताते। अरु "मृत्योः समृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति" <जो यह एक आत्मा विषे नानात्व को देखता है सो मृत्यु से मृत्यु को पावता है> इस प्रकार सृष्टि आदिक भेद दृष्टि निन्दित है २४ ॥ १०३ ॥

२५।१०४॥ हे सौम्य । [भेद दृष्टिके मिथ्यापनेविषे अन्यहेतु कहते हैं] "सम्भूतेरपवादाच्च सम्भवः प्रतिसिद्धते" <संभूतिके अपवाद (निन्दा) से संभव का निषेध करते हैं> अर्थात् "अंधंतमः प्रविशन्तिये संभूतिमुपासते" <जो संभूति की उपासना करतेहैं सो अन्धतम में प्रवेश करते हैं> इस श्रुतिके प्रमाण करके संभूति के उपासकों की निन्दा से संभव कहिये कार्य का निषेध कियाहै। अरु जिस करके परमार्थसे संभूतिके विद्यमान होने से तिसकी निन्दा संभवे नहीं, अरु श्रुतिविषे निन्दा कियाहै, एतदर्थ तिसका अवस्तुपना ही सिद्ध हुआ। शंका। ननु, विनाश(कर्म)से संभूति कहिये देवता की उपासना के समुच्चयार्थ संभूति की निन्दा है, जैसे "अन्धंतमः प्रविशन्ति ये अविद्यामुपासते" <जो अविद्या (कर्म)को उपासते हैं सो अन्धतममें प्रवेश को पावते हैं> इस वाक्यविषे कर्म्म से उपासना के समुच्चय की विधिअर्थ कर्मकी निन्दा है तैसे, समाधान। संभूति (हिरण्यगर्भ) रूप विषयवाली देवताकी उपासना के, अरु विनाश शब्द के वाच्य कर्म से समुच्चय के विधानार्थ, संभूति की निन्दाहै, यह तेरा कथन सत्य है,

तथापि जैसे [यहां यह अर्थ है कि कामचार (यथेष्टाचरण) कामवाद (यथेष्टकथन) अरु कामभक्षण (यथेष्टभोजन) इत्यादि स्वाभाविक प्रमाद मय प्रवृत्तिरूप अशुद्धिका वियोग रूप संस्कार जैसे नित्य अग्निहोत्रादिकों का फलहै, तैसे निष्काम पुरुष करके अनुष्ठानकिये कर्म उपासनाके समुच्चय का फलरूप काम नामक अशुद्धि की निवृत्तिहै, सोभी संस्कार है] पुरुषके संस्काररूप अर्थवाले विनाश नामक कर्म को स्वाभाविक अज्ञानसे जन्य प्रवृत्ति रूप मृत्युका तरणरूप अर्थवान् पना है, तैसे पुरुषके संस्काररूप अर्थवाले देवताके ज्ञान अरु कर्म के समुच्चय को, कर्मफल विषयक रागसे जन्य जो प्रवृत्ति तिस प्रवृत्तिरूप साध्य अरु साधन इन दोनोंकी इच्छारूप मृत्युका तरनारूप अर्थवान् पनाहै। इस प्रकार कर्मरूप अविद्यासे दोनों एषणारूप मृत्यु से तरे हुये, अरु उपनिषद्रूप शास्त्रके विचारविषे तत्परहुये, विरक्तको परमात्मा के एकताके विद्याकी उत्पत्ति अन्तरायवाली नहीं, इसप्रकार पूर्व होनेवाली कर्मरूप अविद्याकी अपेक्षासे पश्चात् होनेवाली अमृत भावकी साधनरूप ब्रह्मविद्या, एक पुरुषसे सम्बन्ध को प्राप्तहुई कर्मरूप अविद्यासे समुच्चय को प्राप्त होती है, इसप्रकार कहाहै। एतदर्थ अन्यअर्थ के होनेसे अमृत भावकी साधनरूप ब्रह्मविद्या की अपेक्षाकरके संभूतिका जो अपवादहै सो निन्दा के अर्थ ही होताहै, समुच्चयकी विधिके अर्थनहीं। अरु यद्यपि कर्मअरु उपासनाका समुच्चय अशुद्धिके वियोग (अभाव) का हेतुहै, एतदर्थ सोई तिसका अन्यार्थ होवेगा, अपवादरूप अन्यअर्थनहीं। तथापि परमार्थ से पवित्रतारूप फलके अभाव से अपवादकी सिद्धिहै एतदर्थ संभूतिके अपवादसे संभूतिका आपेक्षकही सत्पना है, इसप्रकार परमार्थ सत्रूपआत्माके एकताकी अपेक्षाकरके अमृत नामवाले संभव (कार्य) का निषेध कियाहै। इसप्रकार मायासे रचित अरुअविद्यासे स्थितहुयेजीवको अविद्याके नाशहुये स्वभाव रूप होनेसे परमार्थसे "कोन्वेनं जनयेदिति कारणंप्रतिसिद्ध्यते"

स एष नेति नेतीति व्याख्यातं निन्हुते यतः। सर्व्वमग्राह्यभावेन हेतुनाऽजं प्रकाशते २६। १०५॥

८ उसको कौन उत्पन्नकरेगा इसप्रकार कारणका निषेधकिया है? अर्थात् इसको कौन उत्पन्नकरेगा किन्तु कोई भी नहीं। जैसे अविद्या से रज्जुबिषे आरोपित, अरु पुनः रज्जुके विवेक से नष्ट हुये सर्पको कोई भी उत्पन्न करता नहीं, तैसे इसको कोई भी उत्पन्न करता नहीं, इसप्रकार कारणका निषेध करिहै। अभिप्राय यह है जो, अविद्यासे उत्पन्नहुये अरु नष्टहुये जीवका उपजावने वाला कारण कुछ भी नहीं, क्योंकि यह किसीसे भी हुआनहीं अरु कोईभी नहीं होताहुआ "नाऽयंकुतश्चिन्न बभूव कश्चिदिति श्रुतेः" २५। १०४॥

२६। १०५। हेसौम्य! [इस कथन करनेसे वास्तवकरिके द्वैत होतानहीं इसप्रकार कहते हैं] "अथातो नेति नेतीति आदेशः" ८अब इसके अनन्तर नेति नेति यह आदेशहोताहै ७ इसप्रकार सर्वनिषेधके प्रतिपादन किये आत्माके दुःखसे बोधन करनेकी योग्यताको मानतीहुई श्रुति, बारम्बार अन्य उपायपने करके तिसही आत्माके प्रतिपादन करनेकी इच्छासे जो जो व्याख्यान किया है तिनसर्वको निषेध करेहै, अर्थात् [८ सर्वको निषेध करेहै ७ इत्यादि रूप अर्थको स्पष्ट करतेहुये "सएषनेति नेतीति" ८सो यह ऐसे नहीं, ऐसे नहीं ७ इस श्रुतिवाक्यका व्याख्यान करते हैं। यहां यहअर्थ है कि ८ सो यह ऐसे नहीं, ऐसे नहीं, इत्यादि रूप श्रुति विशेषके निषेधमुख द्वारसे आत्माकी अदृश्यरूपताको देखावती हुई जो दृश्यरूप कार्य, मन अरु वाणीका विषय है तिन सर्व को अर्थ से निषेध करेहै। सोई श्रुति परमार्थ से तो अदृश्य ऐसे कहतीहुई दृश्यका वस्तुपना बनेनहीं, इसप्रकार कहती है। अरु तैसेहुये वस्तुपनेके असंभवसे दृश्यवर्गका अवस्तुपनाही सिद्ध हुआ] "सएषनेति नेतीति व्याख्यातंनिन्हुते यतः" ८सो यहनेति

नेति व्याख्यानकरतेहैं जातेनिषेधकरतेहैं, अर्थात् सोयहऐसानहीं ऐसानहीं इसप्रकार आत्माकी अदृश्यताको देखावतीहुई श्रुति, अर्थसे उत्पत्तिवाले बुद्धिके विषय ग्राह्यवस्तुको निषेधकरती है। अरु अर्थसे[शङ्का ननु यह श्रुति प्रपंचके समूहको क्योंनिषेधकरती है, अरु इसप्रकार होनेसे " पंकप्रक्षालन, (कीचड़ के धोनेके) न्यायकी प्राप्तिसे व्याख्यानकिये अर्थकीव्यर्थता होवेगी, यह शंका करके "अग्राह्यभावेन," अग्राह्यभावसे इत्यादिपदोंका व्याख्यान करते हैं। यहां अर्थ यह है कि "द्वैतवेत्यादि", ८ दोनों प्रसिद्ध इत्यादि वाक्यकरके व्याख्यान किये, अरु ब्रह्म आत्मामात्रस्वरूप से स्थितिपर्यन्त प्रतिपादन किये अरु ब्रह्मरूप उपेयवत् उपाय-पनेसे मानेहुये प्रपञ्च के वास्तवपने करके जानने के योग्यता की जो शङ्का, सो नहोय, इसप्रकार सर्व प्रपञ्च से रहित होनेकरके अद्वितीय ब्रह्मस्वरूप के निर्धार करने के अर्थ श्रुति ' प्रपञ्च को आरोपित होनेसे ' तिसका निषेध करे है] उपायको उपेय विषे स्थितिको न जाननेवाले पुरुषको उपायपनेकरके व्याख्यान किये वस्तुकी उपेयवत् ग्राह्यता मतिहो, इस अभिप्राय से जिस करके अग्राह्य भावरूप हेतुसे व्याख्यान किये सर्वको निषेध करतेहैं। [उपायको कल्पित होने करके उसको वास्तवपने का अभाव है] ताते, अरु उपेय (उपायकरके प्राप्तहोने योग्य ब्रह्म) को कैसे तिसप्रकारसे। उपायके अवस्तुपनेके प्रकारसे। वा। तिससत्यरूप प्रकारको वस्तुकी प्राप्ति कैसे होवेगी। यह शङ्का करके "अजं" अजन्मा इत्यादि पदका व्याख्यान करतेहैं। यहां यह अर्थहै कि, आरोपित सर्व प्रपञ्च के निषेधसेही, आरोपित सर्पादिकों के अधिष्ठानपने से भिन्न असत्पनेवत्, स्वतन्त्रपने करके। अर्थात् अधिष्ठानकी सत्ताविना। मूर्त्तादि प्रपञ्चरूप उपायके वास्तवपने के अभावके निश्चयसे, उपेयरूप अद्वितीय ब्रह्ममात्र स्वरूपता को ही प्राप्तहुये, अरु ब्रह्मकी, सदा एकरूपता कूटस्थता नित्यज्ञान स्वभावता, आदिकोंके जाननेवाले जो पुरुष तिन उत्तमाधिकारि-

असतो हि मायया जन्म युज्यते न तु तत्त्वतः। तत्त्वतो जायते यस्य जातं तस्य हि जायते २७।१०६॥

यों को, अन्यकी अपेक्षासे विना उक्त विशेषणवाला आत्मतत्त्व स्वयं आपही प्रकाशित होताहै। अरु कल्पित प्रपंचका जो उपायपना है प्रतिबिम्ब आदिकोंवत् अविरुद्ध है] ताते ऐसे उपायकी उपेय विषे स्थितिको ही जाननेवालोंको अरु उपेयकी नित्य एकरूपता है, इसप्रकारके जाननेवाले तिसउत्तमाधिकारी पुरुषको, बाह्य अन्तर सहित जन्म रहित अजन्मा आत्मतत्त्व आपसे आपही प्रकाशताहै २६॥ १०५॥

२७।१०६॥ हे सौम्य! [जो आत्मतत्त्व है सो अजन्मा अद्वितीय परमार्थ रूप है, अरु जो द्वैत है सो मायासे कल्पित असत्य है, इस प्रकार प्रतिपादन किया, तहांही अन्यहेतुको भी कहते हैं] इसप्रकारही शतावधि श्रुतियों के प्रमाणसे बाह्यान्तर सहित अजन्मा आत्मतत्त्व अद्वैत है, ताते अन्य है नहीं, इसप्रकार विद्वानोंको निश्चित ही है, अरु सो तैसे युक्तिसे भी निश्चित ही है, अब यह ही आत्मतत्त्व [जो श्रुतिके प्रमाणों से अरु युक्तियों से निश्चित किया है] पुनः अन्ययुक्ति से भी निर्द्धार करते हैं, ऐसे कहा है। अरु जो ऐसा कहे कि तहां यह आत्मतत्त्व सदाही अग्राह्य है ताते असत् होवेगा, सो कथन बनेनहीं, क्योंकि कार्यरूप लिंगवाले अनुमानके वशसे [यहां यह अनुमानरूप अर्थ है कि विवादका विषय जो जगत्का जन्म सो सत्रूप अधिष्ठानवाला है, कार्य होने से, प्रसिद्धकार्यवत्] आत्मतत्त्वके अकारणपनेकरके सद्भावके निर्णय से। जैसे विद्यमान मायाविका मायाकरके जन्मरूप कार्य है, तैसे जगत्का जन्मरूप जो कार्य है सो ग्रहण कियाहुआ मायावीवत् विद्यमान जगत् के जन्म अरु मायाका आश्रयरूपही आत्मा को लखावै है। जो कारण सहित इस जगत् का कोई आश्रय अधिष्ठान सत्य चेतन्य रूप है। अरु जिस करके विद्यमान कारण से

असतो मायया जन्म तत्त्वतो नैव युज्यते । वन्ध्यापुत्रो न तत्त्वेन मायया वाऽपि जायते ॥ २८ । १०७ ॥

मायारहित हस्ति आदिक कार्यवत् माया से जगत्का जन्म घटे है, असत्कारण से नहीं, ताते कारणका सद्भाव विवाद से रहित है। अरु परमार्थसे तो आत्माका जन्म घटता नहीं। अथवा जैसे विद्यमान रज्जुआदिक वस्तुकासर्प आदिकरूपसे जन्मवत्माया करके जन्म घटित है, स्वरूप करके तो नहीं। तैसे "सतोहि मायया जन्म युज्यते नतु तत्त्वतः" (सत्का माया से जन्म घटे है तत्त्वसे तो नहीं) अर्थात् जैसे रज्ज्वादिकों का सर्पादिरूप से जन्म घटे है, तैसे अग्राह्य सत्रूप आत्माका भी माया से जन्म घटितहै, परन्तु तत्त्व (परमार्थ) सेही अजन्मा आत्माका जन्म है नहीं। अरु "तत्त्वतो जायते यस्य जातं तस्यहि जायते" (जिस के (मतविषे) जाते जन्मताहै तिसके (मतविषे) जन्मको पाय सत्ता जन्मताहै) अर्थात् पुनः जिस वादीके मतविषे जिसकरके तत्त्वसे (अर्थात् परमार्थसत्रूपसे) अजन्मा आत्मतत्त्व जगत्रूप से जन्मताहै, तिसवादीके मतविषे अजन्मा जन्मताहै, इसप्रकार कहनेको शक्य नहीं। क्योंकि अजन्माका जन्मसे विरोधहै ताते एतदर्थ तिस वादीके मतविषे, अर्थात् जन्मको पावताहुआ जन्मताहै, इसप्रकार प्राप्तहुआ। तिसकरके जन्मको प्राप्तहुये आत्मा को पुनः जन्मको प्राप्त होने करके अनवस्थाकी प्राप्तिहै अर्थात् अजन्मा एकही आत्मतत्त्वहै, यह सिद्धहुआ २७। १०६ ॥

॥ २८ । १०७ ॥ हे सौम्य ! [कार्यजोहै सो सत्रूप कारण पूर्वक है, ऐसीव्याप्तिहै नहीं, क्योंकि असद्वादियों करके असद्रूपकारण से सत्रूप कार्यके जन्मका अंगीकारहै, "असदेवेदमग्र आसीदेकमेवा द्वितीयं तस्मादसतः सज्जायेत्" यहशंका करके कहते हैं] "असतो मायया जन्म तत्त्वतो नैव युज्यते" (असत् का माया से वा तत्त्व से जन्म घटता नहीं) अर्थात् असत् वादि-

यथास्वप्ने द्वयाभासं स्पन्दते मायया मनः। यथाजाग्रद्द्वयाभासं स्पन्दते मायया मनः॥२९।१०८॥

योंके मतविषे असत् पदार्थका मायाकरके वा तत्त्वसे किसी भी प्रकारसे जन्म घटित नहीं, तिसको अदृष्टरूपताहै ताते अरु "वन्ध्या पुत्रो न तत्त्वेन मायया वापि जायते" (वंध्याकापुत्रतत्त्व करके वा मायाकरके भी जन्मकोपावतानहीं) अर्थात् वंध्याकापुत्र जो अत्यन्त असत् है ताते उसका वास्तव करके तो क्या किन्तु माया करके भी जन्मको पावता नहीं, अतएव असद्वाद दूरसे ही अघटित (त्याजनीय) है, इत्यर्थः २८। १०७॥

२९।१०८॥हे सौम्य! [सत्वस्तुकाही मायासे जन्महोताहै,इस प्रकार कथनकिये अर्थको ही प्रतिपादन करतेहैं]॥प्रश्न।पुनःसत्वस्तु काही मायासे जन्म कैसे है। उत्तर। तहां कहतेहैं, जैसे रज्जुविषे कल्पित सर्प अपने अधिष्ठान रज्जुरूप से देखेहुये सत्यहै, इस प्रकार मन जो है सो परमार्थ ज्ञानस्वरूप आत्मरूप से देखाहुआ सत् है" यथास्वप्ने द्वयाभासंस्पन्दतेमाययामनः" (जैसे मन स्वप्नविषे मायासे द्वैताभास रूपहुआ स्फुरता है) अर्थात् जो मन अपने अधिष्ठान रूपसे देखाहुआ सत् है, सो मन जैसे रज्जुमें सर्प तैसे मायाकरके ग्राह्य अरु ग्राहकरूप से द्वैताभासरूप हुआ स्फुरता है। तैसेही " तथाजाग्रद्द्वयाभासंस्पन्दतेमाययामनः" (तैसे जाग्रत्विषे मन मायाकरके द्वैताभास रूपहुआ स्फुरता है) अर्थात् जैसे मन स्वप्नविषे माया वा अविद्या करके द्वैताभास (जगदाभास) रूपहुआ स्फुरता है, तैसेही जाग्रत्विषे भी मन मायाकरके जगदाभास रूपहुआ स्फुरता है। अर्थात् अविद्या के आश्रय हुआ मन स्वप्नविषे अध्यास संस्कार के वश आपही जगदाकार से स्फुरण होताहै, तहां जैसे पूर्वके संस्कार अध्याससे स्वप्नमेंआपको सोयाहुआ स्वप्नान्तर में देखताहै तैसेही स्वप्नके जाग्रतमेंसे स्फुरण के तीव्र संवेगसे उस जाग्रतन्तर इस दीर्घ जाग्रतरूप

अद्वयञ्चद्वयाभासं मनः स्वप्ने न संशयः । अद्वयञ्चद्वयाभासं तथाजाग्रन्नसंशयः ३० । १०९ ॥
मनोदृश्यमिदंद्वैतं यत्किञ्चित्सचराचरम् । मनसोह्य मनीभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते ३१ । ११० ॥

स्फुरण जगदाकार होताहै । ताते यह सर्व स्वप्नरूपही है, परन्तु तैसा भासता तबहै जब बोधरूप जाग्रत मे स्वस्वरूप विषे जागताहै अरु जाग्रत स्वप्नका जो भेदहै सो मनके ' मन्द 'मन्दतर तीव्र तीव्रतर स्फुरणका भेद है,' परन्तु असत्यता अरु स्मृतिमात्रता में दोनों की तुल्यता है। २९ । १०८ ॥

३० । १०९ ॥ हे सौम्य![तब द्वैतका स्वीकार किया यह आशंका करके कहते हैं] "[अद्वयंचद्वयाभासंमन स्वप्नेनसंशय." [स्वप्नविषे अद्वैतहुआ मन द्वैताभास स्फुरताहै यहां संशय नहीं, अर्थात् रज्जु सर्पवत् ' परमार्थ से आत्मारूप करके अद्वैत हुआ मन स्वप्नविषे द्वैताभास [नानारूप] होयके स्फुरता है । अरु स्वप्नविषे हस्ति हयादिक ग्राह्य, अरु चक्षुरादिक ग्राहक यह दोनों ज्ञानसे भिन्न नहीं, एतदर्थ इसमें [मनके स्वप्नरूप से स्फुरणेविषे] संशय नहीं । तैसेही "[अद्वयञ्चद्वयाभासंतथाजाग्रन्नसंशयः "[तैसेही जाग्रतविषे भी मन अद्वैतरूप हुआ सताभी द्वैताभास [नानाप्रपंचाकार] होयके स्फुरता है इसमें भी संशय कुछनहीं । क्योंकि परमार्थसतरूप विज्ञानमात्ररूपका अविशेषहै ताते [अर्थात् यावत् जाग्रत् स्वप्नका नानारूप जगत् है सो केवल एक मनके स्फुरणेमात्रहै क्योंकि सुषुप्ति समाधिआदिकों विषे मनके लयहुये जगत का अभावही है ताते मनके स्फुरणसे इतर जगत्नहीं ३० । १०९ ॥

३१ । ११० हेसौम्य! मनोमात्र द्वैत हैं इस [कथन] विषे अनुमाण कहते हैं] रज्जु सर्पवत् कल्पनारूप मनही द्वैतरूपसे युक्तहै, तहां कौन प्रमाणहै, जब यह शंका हुई तब अन्वय अरु व्यतिरेक रूप अनुमानको कहते हैं । प्रश्न । सो कैसा अनुमान है । उत्तर ।

आत्मसत्यानुबोधेन न संकल्पयते यदा। अमनस्तां तदायाति ग्राह्याभावेतदग्रहम् ३२। १११ ॥

" मनोदृश्यमिदंद्वैतंयत्किञ्चित्सचराचरम् " (देखने योग्य जो कुछ यह चराचर द्वैतहै मनही है) अर्थात् तिसही कल्पना रूप मन से देखने योग्य जो कुछ यह सचराचर नानाद्वैतहै सो सर्व (मनकी कल्पनारूप होनेसे) मनही है, यह प्रतिज्ञाहै, क्योंकि तिस मनके भावहुये द्वैतका भाव अरु मनके अभावहुये द्वैतका अभाव होताहै ताते। अरु " मनसोह्यमनीभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते " (जाते मनके अमनीभावहुये द्वैतको देखते नहीं) अर्थात् जिस करके रज्जुविषे लयकोप्राप्तहुये सर्पवत्, विवेक ज्ञानके आभास अरु सम्यक् वैराग्यकरके समाधिविषे वा सुषुप्तिविषे मनके अमन भाव (अफुर, निरोध) के हुये द्वैत प्रपंच देखते नहीं। अर्थात् रज्जुविषे जब सर्पकी प्रतीति भ्रांतिसे होती है तब तिस अध्यस्त सर्प से भय कम्प स्वेदादिकहो आवते हैं। अरु तिस भ्रांतीरूप अवस्थाविषे जो भय कम्पत्वादि होतेहैं तिसका कारण अध्यस्त सर्प हैं रज्जु नहीं। अरु जब सत्यरूप रज्जुका सम्यक् विवेक ज्ञानहोता है तब उस अध्यस्त सर्प के स्वाधिष्ठानमें लयहुये भय कम्पत्वादि सर्वका अशेष अभाव होताहै, अरु एकसत्य रूप रज्जुही अवशेष रहती है। तैसेही रज्जुस्थानीय एकअद्वैत सत्रूप आत्माविषे तिसके अज्ञानसे सर्पस्थानीय मन स्फुरण होताहै तिस मन करके भय कम्पत्वादि स्थानीय सचराचर प्रपंच द्वैतरूप जगत्उपजताहै, ताते द्वैतरूप प्रपंचका कारण मनका स्फुरणहै। अरु जब आचार्य करके अपने आप सत्यरूप आत्माका सम्यक् विवेकज्ञान होताहै तब निर्विकल्प वा विचार समाधि में मनके अमन 'अफुर' भावके प्राप्तहुये समस्त द्वैतभासका अशेष अभाव होताहै। एतदर्थ यहां द्वैतके अभावसे अद्वैत भाव सिद्धहै ३१। ११०॥

३२।१११॥ हे सौम्य! [समाधि अरु सुषुप्तिविषे द्वैतकी अप्रतीति

के हुये,भी तिसका असत्पना ,नही, यह शंकाकरके प्रमाण के आधीन प्रमेयकी सिद्धिहै इस अभिप्रायसे कहते हैं ॥ अरु मनका जो अमन भावकहा, अब तिसको प्रतिपादन करते हैं] । प्रश्न । पुनः इस मनका (जो द्वैतका कल्पकहै) अमनीभाव कैसे होताहै, उत्तर "वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्" (वाणीसे उच्चारकिया विकार नाममात्र (कहनेमात्र) ही है अरु मृत्तिकाही सत्यहै) इस श्रुतिके प्रमाणसे मृत्तिकावत् आत्मरूप ही जो सत्यहै, तिस सत्का "ऐतदात्म्यमिद ७ सर्व तत्सत्य ७ सआत्मा तत्त्वमसि" इत्यादि शास्त्रका आचार्य द्वारा उपदेशहोने के अनन्तर जो बोधहोताहै सो सत्यरूप आत्माका अनुबोध है, ऐसे कहते है "आत्मसत्यानुबोधेन न संकल्पयते यदा" (सत्यरूप आत्माके अनुबोधसे जब 'मन' संकल्पको करता नहीं) अर्थात् तिस सत्यरूप आत्माके अनुबोधसे संकल्प के अभावसे युक्त होने करके जब (तिसकालविषे) मन संकल्पको करता नही (अर्थात् जैसे बरफकी पूतली सूर्यके तेजके प्रभाव से अपने कारण रूप जलमें लयहोती है,तैसे यह स्वाधिष्ठान से अभिन्न मन रूप पूतली आचार्यरूप सूर्य के उपदेशके प्रभावसे अन्तरमुख हुई बरफकी पूतलीवत् अपने कारण अधिष्ठान आत्मरूप जलमें लीन होता है, तब तिसकाल में वा तिस निर्विकल्प समाधिमे अपने अमनभावको प्राप्तहुआ संकल्प करता नहीं, अर्थात् स्फुरणहोता नही) "अमनस्तां तदायाति ग्राह्याभावे तदग्रहम्" (तब ग्राह्यके अभावहुये ग्रहणरहित हुआ सो 'मन, अमनभावको पावताहै) अर्थात् आत्मा के अनुबोधसे यह मन संकल्पको करता नही, तब, तिसकाल विषे, जलावने योग्य काष्ठादिकों के अभावहुये अग्निके जलने के अभावत् , ग्राह्य वस्तुके अभावहुये ग्रहणकी कल्पना से रहित हुआ सो मन अमन भावको प्राप्तहोताहै ॥ अर्थात् "अमना शुभ्रो" इत्यादि प्रमाणसे जैसा मनका अधिष्ठान आत्मा अमन है तैसाही मन

अकल्पकमजं ज्ञानं ज्ञेयाभिन्नंप्रचक्षते। ब्रह्मज्ञेयमजं नित्यमजेनाजंविबुद्ध्यते ३३। ११२॥

असिन होता है "ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति" ३२। १११॥

३३। ११२॥ हे सौम्य! जो यह मनप्रधान द्वैत असत् है, तो यह समीचीन आत्मतत्त्व किसकरके जानाजाताहै, जहां इस प्रकारकी शङ्का है तहां समाधान कहते हैं "अकल्पकमजं ज्ञानं ज्ञेयाभिन्नं प्रचक्षते" (कल्पनारहित अज ज्ञानस्वरूप को ज्ञेयसे अभिन्न कहते हैं) अर्थात् सम्यंक् आत्मानुभावी जे ब्रह्मवेत्ताहैं सो सर्वकल्पनासे रहित अजन्मा (अर्थात् "येनेदꣳ सर्व्वं विजानाति तं केन विजानीयात्" "यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनोमतं" इत्यादि श्रुतियों के प्रमाणसे, जो मन बुद्ध्यादिकों की कल्पनासे आवता नहीं अरु जो मन बुद्ध्यादि 'अर्थात् तृणसे ब्रह्मपर्यन्त, सर्वका कल्पक है, अरु जो सर्वका कल्पक है सो कल्पित होता नहीं, इस परम सिद्धान्त से, सर्व कल्पना से वर्जित है, अरु जिसकरके सर्वकल्पनासे वर्जितहै तिसही करके अजन्मा है) ऐसा जो ज्ञप्तिमात्र ज्ञानस्वरूप (आत्मा) है तिसको परमार्थ से सत् ब्रह्मरूप ज्ञेय अभिन्न कहते हैं (मुमुक्षुओंकरके अज्ञात अवस्थामें जाननेयोग्य) से अभिन्न कहते हैं (अर्थात् "अयमात्माब्रह्म" यह आत्माही ब्रह्म है, ताते "नातः परमस्ति" इस आत्मा से भिन्न 'ब्रह्म नहीं' क्योंकि "तत्त्वमेवत्वमेवतत्" "तत्त्वमसि" इत्यादि श्रुतियोंके महावाक्यों ने इस ज्ञानस्वरूप चैतन्य आत्मा कोही ब्रह्मकरके कहाहै, ताते सम्यक् आत्मानुभावी ब्रह्मवेत्ता इस ज्ञानरूप आत्माको उक्तप्रकार ज्ञेयरूप ब्रह्मसे अभिन्न कहते हैं। क्योंकि, "न हि विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपोविद्यते" "विज्ञान मानन्दं ब्रह्म" "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" अग्निकी उष्णतावत् विज्ञाती (बुद्धि) के विज्ञाताका लोपनहीं, विज्ञान आनन्द रूप ब्रह्म है, सत्य ज्ञान अनन्तब्रह्महै। इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण

निगृहीतस्य मनसो निर्विकल्पस्य धीमतः । प्रचारः स तु विज्ञेयःसुषुप्तेऽन्यो न तत्समः ३४ । ११३ ॥

से सो ज्ञान ब्रह्मरूप ज्ञेयसे अभिन्न है ॥ अब तिस ज्ञानके विशेषण कहते हैं। सो ज्ञान कैसाहै कि, " ब्रह्म ज्ञेयमजं नित्यमजेनाजं विबुध्यते " (ब्रह्मरूप ज्ञेयवाला अजन्मा नित्य है, अजन्मा से जन्मरहित को जानताहै) अर्थात् अग्नि से अभिन्न उष्णता अरु उष्णतासे अभिन्न अग्निवत् जिस ज्ञानके स्वरूपविषे स्थित ब्रह्मरूप ज्ञेयहैं, इसप्रकारका ब्रह्मरूप ज्ञेयवालाहै । पुनः कैसाहै कि, अजन्माहै अरु नित्य है । अर्थात् जिस करके ज्ञानस्वरूप ब्रह्म है तिसही करके अजन्माहै अरु जिस करके अजन्माहै तिसहीकरके नित्य है । तिस आत्मस्वरूप अजन्मा ज्ञान से जन्मरहित ज्ञेयको आत्मतत्त्व आपही सम्यक्प्रकार जानता है । अर्थात् जैसे सूर्य नित्य प्रकाशरूपहै, तैसे नित्य एकरस विज्ञानघन है ताते । अन्य ज्ञानान्तरकी अपेक्षा करता नहीं ॥ इत्यर्थ ॥ ३३ । ११२ ॥

३४ । ११३ ॥ हे सौम्य ! [मुक्त पुरुषको जो ज्ञानका फलहै, सो स्वर्गादिवत् परोक्ष है नहीं, किन्तु प्रत्यक्ष है । एतदर्थ प्रसंग विषे प्राप्तहुये मनके निरोधरूप ज्ञानके फलकी प्रत्यक्षता के अर्थ प्रसंगको कहते हैं] सत्यरूप आत्माके अनुबोधकरके सङ्कल्पको न करताहुआ बाह्य विषयों के अभावसे इंधनादि रहित अग्निवत, मन जोहै सो शान्तता अरु निरोधता को प्राप्त होताहै, इस प्रकार कहा अरु इसप्रकार मनके अमनीभाव के होनेसे द्वैतका अभावकहा । अब कहते हैं। " निगृहीतस्य मनसो निर्विकल्पस्य धीमतः प्रचारः स तु विज्ञेयः सुषुप्तेऽन्यो न तत्समः " (निग्रह किये सर्व कल्पना से रहित विवेकवाले मनका प्रचार सो तो जाननेयोग्य है सुषुप्ति विषे अन्य है, तिसके तुल्य नहीं) अर्थात् इसप्रकार तिस निग्रहकिये सर्वकल्पनासे रहित (निर्विकल्प) अरु धीमान् (विवेकवाले) ऐसे मनका जो प्रचार । प्रत्यगात्म

रूपसेस्थिति। सोतो कोई एकप्रकारकरके योगीपुरुषोंकरके जानने योग्य है ॥ शंका। ननु, सर्ववृत्तियों के अभावहुये सुषुप्ति विषे। स्थित मनका जैसा प्रचार है, तैसाही प्रचार निरोध। अरु निर्विकल्पता। को प्राप्तहुये मनका भी होवेगा, क्योंकि उभय प्रकारसे वृत्तिकी निरोधता तुल्यहै ताते। अतएव तिस निरोधको प्राप्तहुये मनविषे क्या जानने योग्यहै। समाधान। सोअने नहीं, क्योंकि सुषुप्ति विषे अविद्या अरु तिसके कार्य मोहरूप अज्ञानसे ग्रस्त अरु अन्तर लीन (गुप्त) हुई अनेक अनर्थरूप फलवाली प्रवृत्तियोंकी बीजरूपा वासनावाले। उक्त प्रकारकी वासना करके युक्त। मनका प्रचार अन्यहै। अरु सत्रूप आत्माके। महावाक्यजन्य। अनुबोधरूप अग्निसे अशेष नाशहुई है अविद्याऽऽदिक अनर्थरूप फलवाली प्रवृत्तियों की बीजरूपा वासना जिसकी, अरु शान्त हुये हैं सर्वक्लेशरूप मल जिसके, इसप्रकारके निरोधको प्राप्तहुये मनका जो ब्रह्मस्वरूप विषे स्थितिरूप स्वतन्त्र प्रचारहै सो अन्यहै। अर्थात् काम कर्म वासना अविद्या इत्यादि अनर्थ करके युक्त मनका जो सुषुप्ति विषे प्रचार(लय)है सो अविद्यामें लयहै, जैसे सधूम अग्नि आवरणको पाया लयहुयेवत् भासताहै तैसे। अरु महावाक्यार्थ के सम्यक् ज्ञानाग्निकरके जिसकी कामकर्म वासना अरु अविद्या, अशेष भस्महुई हैं, ऐसे मनकी जो निर्विकल्प समाधि विषे आत्मतत्त्व में लयताहै सो। ईंधनादि उपाधि से रहितहुये अग्नि की अपने सामान्यनिर्विशेष रूपमें लयतावत्है। ताते सुषुप्तिमें मनकी लयतासे यह ब्रह्मस्थितिरूप लयता अन्यही है, इस लयताको सोई जानताहै कि जिस योगीको निर्विकल्प समाधिप्राप्तहै। एतदर्थ यह सुषुप्तिको प्राप्तहुये मनकाप्रकार तिस। आत्म स्थितिको प्राप्तहुये मनके प्रचार। के तुल्य नहीं। जिस करके इस प्रकारहै, तिसही करके तिस निरोधको प्राप्तहुये मन को जाननेको। वा करनेको। योग्यहै। इत्यभिप्रायः३४। ११३॥

३५।११४॥ हे सौम्य! पूर्व जो कहा कि सुषुप्तिको प्राप्तहुये

लीयतेहिसुषुप्ते तन्निगृहीतंनलीयते । तदेवनिर्भयंब्रह्म ज्ञानालोकं समन्ततः ३५ । ११४ ॥

मनके प्रचारका अरु (निर्विकल्प) समाधिको प्राप्तहुये मनके प्रचारका भेदहै, तिसविषे अब हेतु कहते हैं "(लीयते हि सुषुप्ते तन्निगृहीतं न लीयते)" (सुषुप्ति विषे सो लीन होताहै, गृहीत हुआ लीन होतानहीं) अर्थात् जिसकरके सुषुप्तिविषे सो मनलीन होताहै, अर्थात् सर्व अविद्यादिक वृत्तियोंकी बीजरूप वासनाकरके सहित अज्ञानमय अविशेष रूप बीज भावको पावताहै, अरु सो समाधिको पाया हुआ मन विवेक ज्ञानपूर्वक निरोधको पायासत्ता लीनहोता नहीं अर्थात् अज्ञानरूप,बीजभावको पावतानहीं। ताते सुषुप्तिवाले अरु समाधिवाले मनकेप्रचारका लीनताका भेदयुक्त ही है। अरु जब समाधिको प्राप्तहुआ मन, ग्राह्य अरु ग्राहकरूप अविद्या के किये उभय मलसे रहित होताहै, तब सो मन परम अद्वैतरूप ब्रह्मभावकोही प्राप्तहुआ होताहै। एतदर्थ "(तदेवनिर्भयं ब्रह्म ज्ञानालोकं समन्ततः)" (सोई निर्भयहै ब्रह्महै ज्ञानालोकहै सर्वओरसे है) अर्थात् जब (सम्यक् आत्मज्ञानको पायके यह मन अज्ञान रूप बीज भावसे रहित शुद्ध होताहै) तब सो मन परम अद्वैत रूप परब्रह्मही को प्राप्तहुआहै, एतदर्थ सोई भयरहित निर्भय ब्रह्म है। "विद्वान्न बिभेति कदाचन" क्योंकि भयका निमित्तरूप जो द्वैत तिस द्वैत भावके ग्रहणका अभाव है ताते। ब्रह्म शान्त अरु अभयहै ॥ अब तिसही ब्रह्मको विशेषण देते हैं। सोई ब्रह्म ज्ञानालोकहै, अर्थात् आत्माकी स्वभावभूत चैतन्यस्वरूप ज्ञप्तिरूप ज्ञानहै (आलोक) कहिये प्रकाश जिसका (अर्थात् ज्ञान रूपहै प्रकाश जिसका) ऐसा जो ब्रह्म तिसको ज्ञानालोक (एकरस ज्ञानघन) कहते हैं,अरु सर्वओरसे है, (ताते उसको 'समन्ततः' कहते हैं) अर्थात् आकाशवत् सर्वओर से निरन्तर व्याप्तहै "आकाशवत्सर्वगतः सनिरन्तरः" ३५ । ११४ ॥

अजमनिद्रमस्वप्नमनामकमरूपकम्। सकृद्विभातं सर्वज्ञं नोपचारः कथञ्चन ३६। ११५॥

३६। ११५॥ हे सौम्य! [प्रसंगविषे प्राप्तहुये अर्थ को अन्य प्रकारसे भी निरूपण करते हैं] "अजमनिद्रमस्वप्न मनामकमरूपकम्" (अज है अनिद्रा है अस्वप्न है अनाम है अरूप है) अर्थात् सोई ब्रह्म। अर्थात् ब्रह्मनामक आत्मा कि जिस विषे ज्ञानद्वारा लीनहुआ मन ब्रह्मभाव को प्राप्त होताहै। जन्म के निमित्त के अभावसे "सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः" बाह्य अन्तर सहित अजन्मा है। अरु जिसकरके रज्जुसर्पवत् अविद्यारूप निमित्त वाला जन्म है, इस प्रकार हम कहते हैं। अर्थात् जन्म के निमित्त जे अविद्याकाम कर्मादिक तिनके अत्यन्ताभाव से ब्रह्मविषे ज. न्मका हेतु न होनेसे वो वास्तव करके सदा अजन्माही है, तिस विषे अद्वैत के बोधार्थ आरोपमात्र जन्म (जगदुत्पत्ति) कही है, सो; जैसे भ्रान्तिरूप निमित्त से रज्जुका सर्परूपसे जन्महै तैसे उस अज ब्रह्मका अविद्यारूप निमित्तवाला जन्महै ऐसा हम कहते हैं। अरु सो अविद्या आत्मारूप सत्यके अनुबोध से निरोध को प्राप्तहुई है, एतदर्थ सो अजन्माहै। अर्थात् 'जैसे रज्जुको स्वस्वरूप विपर्यक् भ्रान्तिका अत्यन्ताभाव है ताते सो भ्रान्ति करके भी सर्परूप से (जो केवल भ्रान्तिमात्रही है) जन्मवान् न होके सदा अजन्माही है, क्योंकि रज्जु जो सर्प-रूप से भासती है सो भ्रान्तिकाल विषे बुद्धिको भासती है स्वयंरज्जुको नहीं, तैसेही सदा ज्ञानप्रकाश स्वरूप अद्वितीय आत्मासे जन्म के निमित्त अविद्या आदिकों के अत्यन्ताभाव से उसके शुद्ध सत्यज्ञान स्वरूप में द्वैतके अभाव से जन्म (जग- दुत्पत्ति) अध्यारोपमात्र भी नहीं, ताते उसविषे जे जन्म (जगदुत्पत्ति) अध्यारोपमात्र कही है सो भी अविद्याश्रित बुद्धिने अद्वैत आत्मतत्त्व के निश्चयार्थ कही है, परन्तु तिस

अविद्यात्मक बुद्धिका उस आत्मदेव विषे सूर्यमें अन्धकारवत् अत्यन्त अभावहै, क्योंकि सो अविद्या अपने अधिष्ठान चैतन्यसत्ता के आश्रय चैतन्यवत् हुई स्वाधिष्ठान में जन्मादि (जगदुत्पत्त्यादि) कों की कल्पना करती है, सो अविद्या आचार्य से महावाक्यार्थ का ज्ञानोपदेश पाय अपने अधिष्ठान आत्मारूप सत्यके अनुबोधवती हुई आप अपने सत्य चैतन्य अद्वैत आत्मारूप अधिष्ठान में निरोध (लय) को प्राप्त होती है, ताते वास्तव करके आत्माविषे उस कल्पक अविद्या के लयहुये, उस ब्रह्मनामक शुद्ध निरुपाधि निर्विशेष चैतन्य आत्माविषे कल्पना के भी निमित्त का अत्यन्ताभाव होने से अध्यारोपमात्र भी जन्म (जगत् की उत्पत्त्यादि) नहीं । ताते वो नित्य अजन्मा है अरु जिस करके सो अजन्मा है तिस करकेही अनिद्र (निद्रासे रहित) है । अर्थात् निद्रादिक अविद्यात्मक बुद्धिके धर्म हैं तिससे पृथक् जो अज आत्मा तिसके नहीं ताते सो अनिद्र है । । अरु जिस करके अविद्यारूप अनादि मायामय निद्रासे अद्वैतरूप आत्मतत्त्व विषे प्रबोध को पाया है, तिसकरके स्वप्नसे भी रहितहै । अर्थात् जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति आदिक जे अविद्यात्मक बुद्धिकी अवस्था तिन से रहित है । अरु जिसकरके अप्रबोधके किये जो अपने नामरूप है, सो रज्जुके ज्ञानसे सर्पवत् अपने प्रबोध से नाश को प्राप्तहुये पश्चात् यह ब्रह्मनाम करके कहते नहीं । अर्थात् एक अद्वैत निर्विशेष आत्मतत्त्व विषे नामरूपादिकों की कल्पना करनेवाले के अभाव से उसविषे नामरूपादि दोनों नहीं । वा वो किसी भी प्रकारसे निरूपण किया जातानहीं । क्योंकि वाणी आदिकों का अविषयहै ताते । ताते सो निर्विशेष आत्मतत्त्व आकार विकार से रहित निराकार होने से नाम अरु रूप से रहित है "यतोवाचो निवर्त्तन्ते" ‹जहां से वाणियां निवृत्ति होती हैं› इत्यादि श्रुतियों के प्रमाणसे किंवा "सकृद्विभातंसर्वज्ञंनोपचारः कथञ्चन" ‹सर्वदाही प्रकाशरूप है सर्वज्ञहै किसीप्रकारसे भी उपचार है नहीं›

सर्व्वाभिलापविगतःसर्व्वचिन्तासमुत्थितः । सुप्रशान्तःसकृज्ज्योतिःसमाधिरचलोभयः ३७।११६॥

अर्थात् सो (आत्मतत्त्व सर्वदाही प्रकाशरूप है, क्योंकि अग्रहण अन्यथा ग्रहण आविर्भाव अरु तिरोभाव इन सबका अभावहै ताते अरु। ग्रहण अरु अग्रहणरूप दिवस अरु रात्रि, अरु अविद्यारूप अन्धकार, यह तीन सदा अप्रकाशपने विषे कारण हैं, तिनका (उस अद्वैत आत्मतत्त्व विषे) अभावहै ताते) सो सर्वदा प्रकाशरूपही है। अरु नित्य चैतन्य प्रकाशरूप होने से ब्रह्मका सर्वदाही प्रकाशरूप होना युक्तही है। इसही करके सर्वरूप जो ज्ञानस्वरूप सो कहिये ज्ञानस्वरूप सो कहिये सर्वज्ञ, ऐसा है (अर्थात् उस ज्ञानस्वरूपको सर्वरूप से सुशोभित होने करके उसको उक्तप्रकारका सर्वज्ञ कहते हैं) इसप्रकारके इस ब्रह्म (ब्रह्मवेत्ता) विषे किसीप्रकार से भी उपचार (कर्त्तव्य) है नहीं। जैसे अन्य (अनात्मवेत्ता) को आत्म स्वरूप से इतर चित्तकी एकाग्रता आदिक कर्त्तव्य है, तैसे ब्रह्मवेत्ता को नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव करके अविद्या के सम्यक् विनाशहुये किसी प्रकार से भी कर्त्तव्यताका संभव है नहीं [यहां यह अर्थ है कि अविद्यादशाविषेही सर्व व्यवहारहै, अरु विद्यादशाविषे अविद्या को असत् होने करके कोईभी व्यवहारहै नहीं। परन्तु 'बाधितानुवृत्तिसे' अर्थात् बाधितहुये व्यवहारकी अनुवृत्ति से (विद्वान् विषे) व्यवहार के प्रतीति की सिद्धि है (प्रातिभासिकवत्) (तिस करके उस विद्वान् के स्वरूप विषे किञ्चित् भी क्षति नहीं ३६।११५॥

के अर्थ कारण कहते हैं॥ "सर्वाभिलाप विगतः सर्वचिन्ता समुत्थितः"। (सर्व अभिलापसे रहितहै, सर्वचिन्ता से सम्यक् उत्थान को पायाहै) अर्थात् भाषण करते हैं जिसकरण विशेषसे ऐसा जो सर्वप्रकारके कथनका करण वाणी, तिसको अभिलाप कहते हैं, तिस सर्वअभिलाप (कथन) से रहितहै "नातिवादी" अर्थात् यह जो एक वागेन्द्रियको कहाहै सो उपलक्षमात्रके अर्थ है, एतदर्थ ब्रह्मरूपविद्वान् वागेन्द्रिय उपलक्षणकरके सर्व बाह्यकरणोंसेरहित है, यह इसकाअर्थ है। तैसेही जिसकरके चिन्तन करते हैं ऐसी जो बुद्धि तिसको चिन्ताकहते हैं, तिससर्व चिन्तासे सम्यक्प्रकार उत्थानको पायाहै, अर्थात् बुद्धिउपलक्षण करके बुद्धि आदि सर्व अन्तःकरणों से रहितहै, क्योंकि "अप्राणोह्यमनाशुभ्रो ह्यक्षरात्परतःपरः" (अप्रमाणहै अमनहै, अरु शुभ्रकहिये शुद्धहै, अरुकार्य से पररूपअक्षर (कारण) तिससे परहै) इस श्रुतिके प्रमाणकरके सर्वकरण अरु तिनके विषयादि इनसे रहितहै। अरु "सुप्रशान्तः सकृज्ज्योति समाधिरचलोऽभयः"। (निरन्तरशान्तहै, सर्वदाही प्रकाशरूपहै समाधिरूपहै अचलहै अभयहै) अर्थात् जिसकरके बाह्यान्तरके करणादिकों से रहितहै, इसहीकरके निरन्तरशान्तहै अरु आत्म चैतन्य स्वरूपसे सर्वदाही प्रकाशरूपहै, अरु समाधि रूप निमित्तवाली बुद्धिसे जाननेयोग्यहोनेसेसमाधिरूपहै अर्थात् "दृश्यतेत्वग्र्ययाबुद्ध्यासूक्ष्मयासूक्ष्मदर्शिभिः" "प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्" इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से समाधिरूप निमित्तवाली बुद्धिका विषयहोने योग्यहै, ताते समाधिरूपहै, वा "समाधानंक्रियते चित्तंयस्मिन् स समाधिः" 'जिस विषे समाधानकरते हैं चित्तको सो कहिये समाधि, तातेभी आत्म चैतन्य प्रकाशको समाधिकहते हैं, ताते वो समाधि है, वा इस परमात्मा विषे जीव वा तिसकी उपाधि स्थापित करते हैं; याते यह परमात्मा समाधि है, अरु अचल (सर्वक्रियासे रहित) है अरु जिस करके क्रिया का उस विषे अभावहै तिसही करके अभयहै ३७। ११६॥

ग्रहो न तत्र नोत्सर्गश्चिन्ता यत्र न विद्यते। आत्मसंस्थन्तदा ज्ञानमजाति समतांगतम् ३८। ११७॥

॥३८। ११७॥ हे सौम्य! [प्रसंगविषे प्राप्तहुये अविकारी ब्रह्मविषे विधि निषेधके आधीन लौकिकरूप अरु वादिकरूप ग्रहण अरु त्याग व्यवहार हैं नहीं, इस प्रकार कहते हैं] जिस करके ब्रह्म की समाधि अचल अरु अभय है इस प्रकार कहा है, एतदर्थ "ग्रहो न तत्र नोत्सर्गश्चिन्ता यत्र न विद्यते " (तिसविषे ग्रहण नहीं त्याग नहीं, अरु जिसविषे चिन्ता विद्यमान नहीं ; अर्थात् तिस ब्रह्मविषे ग्रहण नहीं वा त्याग नहीं। अर्थात् जहां विकार वा विकारका विषयपना होताहै, तहां ग्रहण अरु त्याग होताहै। ताते अन्य विकार हेतुके अभावसे अरु निरवयवहोने से इस ब्रह्मविषे वे ग्रहण अरु त्याग दोनों संभवनहीं याते तिस विषे ग्रहण अरु त्याग यह हैं भी नहीं अरु तिस ब्रह्मविषे चिन्ता नहीं। अर्थात् जहां सर्वप्रकार (मोक्षपर्यन्त) की भी चिन्तानहीं संभवेहै, अरु अमनीभाव है, तहां ग्रहण अरु त्याग कहांसेहोंगे ' किन्तु कदापि न होंगे, इत्यर्थः। अरु जबही आत्मरूप सत्यका अनुबोध हुआ तबही विषयके अभावसे अग्निकी उष्णतावत् " आत्मसंस्थन्तदा ज्ञानमजाति समतां गतम् " (आत्माविषेही स्थितहुआ जन्म से रहित समताको प्राप्तहुआ ज्ञान होता है ; अर्थात् आत्माके सम्यक् बोधहुये विषयोंके अभावसे अग्निविषे उष्णतावत्, आत्माविषेही स्थितहुआ, अरु जन्मसे रहित परमसमताको प्राप्त हुआ ज्ञानहोताहै " अतोवक्ष्याम्यकार्पण्यमजातिसमतां गतमिति" (याते जन्मरहित अरु समताको प्राप्तहुये अकृपणभावको कहताहौं) इसप्रकार जो इस तृतीयप्रकरणकी आदि के दूसरे श्लोक में पूर्व प्रतिज्ञाकियाहै सो यह युक्ति से अरु शास्त्र से कहा, सो यहां " अजाति समतां गतम् " (जन्मरहित समताको प्राप्तहुआ होताहै) इसप्रकार कहके समाप्तिकिया। अरु इस आत्म-

अस्पर्शयोगो वै नाम दुर्दर्शःसर्वयोगिभिः । योगिनोबिभ्यतिह्यस्मादभयेभयदर्शिनः ३९ । ११८ ॥

रूप सत्यके अनुबोधसे जन्य ज्ञान कृपणताको, विषयकरनेवाला है, क्योंकि "यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वा ऽस्माल्लोकात् प्रैति स कृपण, इति" "हे गार्गी! जो इस अक्षरको न जानके इस मनुष्य शरीररूप लोकसे मरणको प्राप्तहोताहै सो कृपणहै" इस प्रकार बृहदारण्यक उपनिषद्के पञ्चमाध्याय के अष्टम ब्राह्मण विषे याज्ञवल्क्यमहाराजने गार्गीप्रति कहाहै। इस श्रुतिके प्रमाण से इस तत्त्वज्ञानको पायके सर्वजन कृतकृत्य ब्राह्मण होते हैं। इत्यभिप्रायः ॥ "यो वा एतदक्षरं गार्गि विदित्वा अस्माल्लोकात् प्रैति स ब्राह्मणः", इत्यादि श्रुतिः ३८ । ११७ ॥

३९ । ११८ ॥ हे सौम्य! यद्यपि [परमार्थरूप ब्रह्मस्वरूप से स्थितिरूप फलवाला जब अद्वैतका ज्ञानहै, तब तिसका सर्वपुरुष आदर क्योंनही करते, जहां ऐसी शंकाहै, तहां कहते हैं] यह परमार्थरूपतत्त्व प्रत्यगात्मारूप कूटस्थ सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म इसप्रकार पूर्वोक्तरीत्या तत्त्वज्ञानसे प्राप्तहोताहै तथापि (तिसकी अप्राप्तिसे (संतोष को प्राप्तहुये जे मूढ़पुरुष सो तिसविषे निष्ठावान् होतेनहीं इसप्रकार कहते हैं "(अस्पर्श योगो वै नाम दुर्दर्शः सर्वयोगिभिः" (अस्पर्शयोग नामवाला प्रसिद्ध स्मरण करते हैं, अरु योगियों से दुःखसे दर्शनकरने योग्यहै ? (सर्ववर्णाश्रमादि धर्म अरु पापादिसल] से सम्बन्धरूप स्पर्श से रहितहै ताते, अरु जीवको ब्रह्मभावविषे योजनाकरताहै, यह अद्वैतका अनुभवरूप अस्पर्श योग उपनिषदोंविषे स्मरण करते हैं (अर्थात् उक्त योग उपनिषदोंकेवाक्य प्रमाण से निश्चित करते हैं। सो वेदान्तशास्त्र (उपनिषद् ब्रह्मसूत्रादि (के विज्ञानसे रहित बहिर्मुख जे कर्म निष्ठरूप सर्वकर्मयोगी (कर्मासक्त (तिनोंकरके श्रवण मननादि रूप दुःख से देखने के योग्यहै (अर्थात् कर्मासक्त कर्मी पुरुषोंकरके

मनसोनिग्रहायत्तमभयंसर्वयोगिनाम् । दुःखक्षयःप्रबोधश्चाऽप्यक्षयाशान्तिरेवच ४० । ११९ ॥

वदान्तशास्त्र ब्रह्मविद्या के श्रवण मननादि साधनों के दर्शन भी अति दुःसाध्य हैं । क्योंकि " न कर्म्मिणो प्रवेदयन्ति रागात् " इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे उस कर्म्मनिष्ठको कर्मोंके फलके निमित्त कर्ममें रागअधिकहै ताते । अर्थात् आत्मरूप सत्यके अनुबोधरूप वस्तुकीप्राप्ति,सो श्रमसे होनेको योग्यहै । अरु " योगिनो बिभ्यति ह्यस्मादभये भयदर्शिनः " (भयरहित विषे भयको देखने के स्वभाववाले । कर्मयोगी । भयको करतेहैं ; अर्थात् जिस करके भयरहित इस । आत्मरूप सत्यके अनुबोधरूप । योगविषे,भयका निमित्त जो अपना नाश तिसको देखनेके स्वभाववाले । अर्थात् अविनाशी अभयरूप,अपनेआप आत्माविषे नाशरूप भयके देखने के स्वभाववाले । जे अविवेकी । कर्मयोगी । हैं सो अपने नाशरूप योगको मानतेहुये, सर्व भयसे रहितभी इस । आत्मानुबोधरूप । योगसे, भयको करते हैं । ताते सो । आत्मानुबोधरूप योग । सर्व योगियों करके दुःख सेही देखने (प्राप्तहोने) को योग्यहै, इसप्रकार इस श्लोक के पूर्वार्द्धसे सम्बन्ध है ३९ । ११८ ॥

४० । ११९ । हे सौम्य ! [उक्तप्रकार उत्तमबुद्धिवाले अधिकारी पुरुषोंके अर्थ, अद्वैतज्ञान अरु अद्वैत ज्ञानकाफलरूप मनके निरोधको कहके, अब मन्दबुद्धिवाले अधिकारी पुरुषोंके अर्थ मनके निरोध के आधीन आत्मज्ञान के कहने का आरंभ करते हैं] पुनः जिनको ब्रह्मस्वरूप से भिन्न मन अरु इन्द्रियादिक । आत्मा विषे रज्जुविषे सर्पादिवत् कल्पितहीहै, परमार्थ से नहीं । इसप्रकारका अनुबोध हुआ है । तिन ब्रह्मस्वरूप पुरुषों को अभय (तत्वज्ञान) अरु मोक्षनामक अक्षय शान्ति स्वभावसेही सिद्धहै, अन्यसाधनोंके आधीन नहीं, क्योंकि " सकृद्विभातंसर्वज्ञं नोपचारःकथञ्चन " (किसी प्रकारसेभी उपचार कहिये कर्त्तव्य सोहैनहीं यह पूर्व

उत्सेकउदधेर्यद्वत्कुशाग्रेणैकविन्दुना । मनसोनिग्रहस्तद्वद्भवेदपरिखेदतः ४१ ।१२०॥

इसही प्रकरणके ३६ वें श्लोक विषे कहाहै ताते, इसप्रकार हम कहतेहैं। अरु जो इन उत्तमाधिकारियों से अन्य सन्मार्गगामी मन्द अरु मध्यम दृष्टिवाले योगी (कर्मयोगी अरु उपसनयोगी) आत्मा से भिन्न मन अरु अन्य इन्द्रियादिक तिनको आत्माका सम्बन्धी देखतेहैं तिनको "मनसो निग्रहायत्तमभयं सर्वयोगिनाम्" (सर्व योगियोंको मनके निग्रह के आधीन अभयहै, अर्थात् जोमन अरु इन्द्रियोंको आत्माके सम्बन्धी देखते हैं तिन आत्मरूप सत्य के अनुबोधसे रहित, सर्व योगियों को मनके निग्रह के आधीन अभय (तत्त्वज्ञान) है। अर्थात् मनका संकल्पादिकों से अरु इन्द्रियोंका विषयोंसे यावत्‌निग्रह होतानहीं तावत यथार्थतत्त्व (आत्म) ज्ञान होता नहीं इसप्रकार योगीजन मानतेहैं। अथवा जिसकरके अविवेकी पुरुषों को आत्मा के सम्बन्धी मनको चंचल होनेसे दुःखका क्षय होतानहीं, एतदर्थ उनको दुःखकाक्षय मनके निग्रह के आधीनहै। अर्थात् जो अविवेकी मनको आत्माका सम्बन्धी मानतेहैं तिनके मतमें आत्माको जो दुःखहै सो तिसके सम्बन्धी मनके चञ्चल होनेसेहै ताते आत्माके दुःखका क्षय मनके निग्रह होनेके आधीनहै जब मनका निग्रहहोय तबहीं दुःखका क्षयहोवै तिस विना नहीं। ताते "दुःखक्षयः प्रबोधश्चाऽप्यक्षया शान्तिरेव च" (दुःख का क्षय आत्माका प्रबोध अरु अक्षय शान्ति भी मनके निग्रहसेहीहै, अर्थात् जो योगी पुरुष मनको आत्माका सम्बन्धी मानतेहैं तिनके मतमें दुःखकाक्षय अरु आत्मज्ञान अरु पराशान्ति मोक्ष यह मनके निग्रह केआधीनही है ४० । ११६॥

४१ । १२० ॥ हे सोम्य! [मोक्षकी इच्छावाले मुमुक्षुपुरुषों को मनका निरोध कैसे सिद्ध होवेगा, यह शङ्का करके कहतेहैं] "उत्सेक उदधेर्यद्वत् कुशाग्रेणैकविन्दुना" (जैसे कुशा के अग्र से

उपायेन निगृह्णीयाद्विक्षिप्तं कामभोगयोः। सुप्रसन्नं लयेचैव यथाकामो लयस्तथा ४२। १२१॥

एक बिन्दुकरके समुद्रका उत्सेक हुआ है; अर्थात् जैसे अतिसूक्ष्म कुशाके अग्र करके बाह्यफेंके हुये एकबिन्दु करके समुद्र का उत्सेक। बाह्यफेंकनेका निश्चय। टिट्टिभ नामक पक्षी को हुआ है। मनसो निग्रहस्तद्वद्भवेदपरिखेदतः। तैसे अखेद से मनका निग्रह भी होताहै; तैसे निश्चयवाले अरु उद्वेग रहित अन्तःकरणवाले जो हैं तिन पुरुषों को अनिर्वेदरूप अखेदसे। खेद रहित। मनका निग्रह भी होताहै "अभ्यासेनतुकौन्तेय वैराग्येणचगृह्यते." ४१। १२०॥

४२। १२०॥ हे सौम्य! [समाधि करनेवाले पुरुषोंको तत्त्वके साक्षात्कार होनेके प्रतिबन्धक। विघ्न। लय, विक्षेप, रसास्वाद (सुरुचि) अरु कषाय (राग) है, तिन मे आगे कहने के उपाय करके मनका निग्रह करना, क्योंकि अन्यथा समाधिकी सफलता का असंभव है ताते, इस प्रकार कहतेहैं [प्रश्न॥ क्या खेदरहित निश्चयमात्रही मनका निग्रह होनें विषे उपाय है। उ०। तहां नहीं, इस प्रकार कहतेहैं। उपायेन निगृह्णीयाद्विक्षिप्तंकामभोगयोः। उपायसे कामभोग विषे विक्षेपको प्राप्तहुये को निरोध करे; अर्थात् खेदसे रहित निश्चयवान् हुआ अग्रिम कहनेके उपायसे कामभोग अरु विषयोंविषे विक्षेपवान् हुये मनको आत्मा बिषेही निरोधकरे। अर्थात् मन सहित सर्व उत्तम स्वर्गादिकों के अरु मध्यम इसलोकके यावत् दृश्य अरु अदृश्य विषयादि भोगे हैं सो, एक सर्वाधिष्ठान आत्माविषे अध्यस्तहैं ताते स्वाधिष्ठान से उनकी इतरसत्ता के अभावमे वो असत् है अरु उन सर्वका अधिष्ठान आत्मा सत्य है, ताते जहां जहां जिन जिस विषे मनजाय तहां तहां तिसको असत्य कल्पितजान तिनका आश्रय सत्यरूप आनन्दघन आत्माका निश्चयकर तहांहीं मनको स्थिरकरे। अरु

दुःखंसर्व्वमनुस्मृत्य कामभोगान्निवर्त्तयेत् । अजंसर्व्वमनुस्मृत्यजातंनैवतु पश्यति ४३ । १२२ ॥

" सुप्रसन्नंलये चैव यथा कामोलयस्तथा " (लय विषे प्रसन्नहुये को जैसा काम तैसा लय भी है ? अर्थात्, किंवा जिस विषे मन लीनहोताहै, ऐसी जो सुषुप्ति तिसको लय कहतेहैं, तिस लय विषे प्रसन्नहुये । अर्थात् खेद रहित हुये । भी मनको निरोध करे (अर्थात् प्राणादिकोंका निग्रहकरके समाधिमें स्थितहुआपुरुषअपने मनको सुषुप्ति,निद्रा,विषेन जानेदे क्योंकि निर्विकल्प चिन्मात्र स्थितिमें अविद्यारूप जड़ सुप्ति विघ्नकारी है ताते । शङ्का ॥ ननु जब मन प्रसन्नहुआ तब किसवास्ते तिसका निरोधकरिये । जहा इसप्रकारकी शङ्काहै, तहां समाधान कहतेहैं " सुप्रसन्नंलयेचैव यथाकामो लयस्तथा " (लयविषे प्रसन्नहुये को भी । निरोधकरे । जैसाकाम है तैसाही लयभीहै (अर्थात् सुषुप्ति में लयहुआ मन प्रसन्नहोताहै परन्तु सुषुप्ति अविद्यरूप होनेसे तिस विषे लयहुआ मन पुनः जाग्रत् स्वरूप विक्षेप दुःखकोही पावता है, ताते जैसा काम मनको अनर्थका हेतुहै, तैसाही (सुषुप्तिविषे) लयका होना भी अनर्थकारी है, अतएव कामको विषय करनेवाले मन के निग्रहवत्, (अर्थात् जैसे काम अरु विषयादिकों से मनका निग्रह करते हैं । निद्रारूप लयसे भी मनका निरोध करनायोग्य है । अर्थात् लय । सुषुप्तिमें मनका लय (निद्रा) का होना, अरु विक्षेप, अफुरहुये मनमें संकल्पोंका फुरना, अरु रसास्वाद, समाधिसुखमें रागका होना, अरु कषाय कर्मणी बुद्धिआदिक अन्तःकरणके दोष ।

आत्माके श्रवण मननरूप ज्ञानका अभ्यास अरु समस्त नाम रूप क्रियात्मक जगत् से वैराग्य। इनदोनों उपायों करके 'लय' अरु विक्षेप से निवृत्त (निरोध) किया जो मन सो जब रागसे प्रतिबन्धको प्राप्तहोवे, तब श्रवण मनन अरु निदिध्यासन के अभ्यास से जन्य संप्रज्ञात (सविकल्प) समाधिपर्यन्त अभ्यास से तिस रागरूप प्रतिबन्ध से निवर्त्त करने को योग्य है। अर्थात् आत्मा के श्रवणादिकों के अभ्यासरूप उपाय करके इस मन को रागरूप प्रतिबन्ध से निवर्त्त करना योग्य है।] ॥ प्रश्न ॥ तिस मनके। [कि जिसका स्थित अचलहोना योगीजन इच्छतेहैं।] निग्रह करने का उपाय कौन है, । तहां ज्ञानाभ्यास अरु वैराग्य। उपाय। है, इस प्रकार उक्त प्रश्न का उत्तर कहतेहैं "दुःखं सर्व्वमनुस्मृत्य कामभोगान्निवर्त्तयेत्" । "सर्व्व दुःखरूपही है इस प्रकार स्मरण करके कामके भोगको निवारणकरे" अर्थात् अविद्यारचित समस्त द्वैतसर्व दुःखरूपहीहै, इसप्रकार। ज्येष्ठ श्रेष्ठों से वा शास्त्रसे स्मरणकर।सर्वदा स्मृतिमें रख।कि कामके भोग(रूपादिविषय) से प्रसरित हुये मनको। अर्थात् जो कामनाके वशहुआ मृगजलवत् इसलोक परलोकादिकों के उत्तम मध्यम विषयभोग तिनविषे आसक्त प्रसरितहुआ क्षणमात्रको भी विश्राम पावता नहीं, ऐसा जो विक्षेपवान् चञ्चलमन तिसको। वैराग्यकी भावना से निवारणकरे। [अर्थात् यावत् उत्तम मध्यम विषयभोग हैं, तिन विषे यद्यपि सुखभी प्रतीतहोताहै, तथापि विषयुक्त अति सुन्दर स्वादिष्टपाकवत् साधन परतन्त्रत्व अरु क्षीणत्व यहदो अनिवार्यदोष तिनकरके युक्त विषय दुःखरूपहीहैं इसप्रकार सम्यक् ज्ञान के अनुभवकरके, अरु "श्वोभावामर्त्यस्य यदन्तकैतत् सर्व्वेन्द्रियाणाञ्जरयन्ति तेजः" इत्यादि श्रुतिवाक्यों से स्मरणकर उक्त प्रकार सर्वत्र सम्यक् दोषदृष्टिरूप वैराग्यकीभावनासे निवारणकरे। अरु "अजं सर्व्वमनुस्मृत्य जातं नैव तु पश्यति" । "अजन्मासर्व है ऐसा स्मरण करके उत्पन्नहुआ कुछभी तो जानता नहीं" अर्थात्

लयेसम्बोधयेच्चित्तंविक्षिप्तंशमयेत्पुनः । सकषायंविजानीयात्समप्राप्तंनचालयेत् ४४।१२३॥

अजन्मा अज्ञरूप सर्वहै, इसप्रकार श्रुति अरु आचार्यके उपदेशसे स्मरणकरके पश्चात् तिस ज्ञानाभ्यासके दृढ़होनेसे तिससर्वात्म भावसे विपरीत द्वैतके समूह को तिसके अभाव से देखताही नहीं ४३ । १२२ ॥

४४।१२३॥ हे सौम्य! "लये सम्बोधयेचित्तं विक्षिप्तंशमयेत्पुनः" "लयविषे चित्तको प्रबुद्धकरे विक्षेपके प्राप्तहुयेको शान्तकरे" अर्थात् उक्तप्रकारके इन ज्ञानके अभ्यास अरु वैराग्य रूप उभय उपायोंकरके लय (सुषुप्ति) विषे लीनहुये चित्तको जगावे ।अर्थात् आत्माके अनुभव ज्ञान विषे लगावे । अर्थात् समाधिकाल में जब चित्त सुषुप्तिमें प्राप्तहोनेलगे तब लयहोने से पूर्व उस निर्विकल्प अवस्था विषे कि जहां मन अरु प्राण के अवरोध से विशेष वृत्ति आदिकों का अभाव अरु सामान्य आत्मानुभवाकार वृत्ति का भाव है तिनभावाभाव का प्रकाशक साक्षीआत्मा अज्ञात सुषुप्तिसे पृथक् सिद्धहै कि जिसकरके अज्ञान सुषुप्ति सिद्धहोतीहै सो अनुभवतत्त्व लयादिकोंका साक्षी नित्य जाग्रत् (बोध) स्वभाव है तिस अधिष्ठानविषे चित्तको जोड़े। ॥ पुनः कामों के भोगों (विषयों) विषे विक्षेपको प्राप्तहुये चित्तको शान्तकरे । इसप्रकार वारम्वार विचार अभ्यासकरनेवाले योगीका चित्त लयसेजगाया गया, अरु विषयोंसे निवृत्त कियागया,अरु समभावको प्राप्तहुआ नहीं, किन्तु मध्य अवस्थावालाहै, तब सो उस अवस्थामें कषाय दोषवालाहै "सकषायंविजानीयात् समप्राप्तंनचालयेत्" "कषाय सहितको जानना समप्राप्तको चलावेनहीं" अर्थात् लयतासेजागा अरु समता को प्राप्तहुआ नहीं ऐसेजो समाधिकी मध्यमावस्था को प्राप्तहुआ चित्त सो कषायदोष सहित होताहै तब तिस कषाय रागके (बीज) सहितको जानना । अरु तिस कषायसेभी सविकल्प

नास्वादयेत् सुखं तत्र निःसंगप्रज्ञया भवेत्। निश्चलं निश्चरत् चित्तं एकीकुर्य्यात् प्रयत्नतः ४५।१२४॥

समाधिरूप प्रयत्नसे निर्विकल्प समाधिरूप समभाव को प्राप्तकरे है, परन्तु जब चित्त सर्व विशेष वृत्तियों को त्यागके केवल समभाव की प्राप्ति के सम्मुख होय तब तिस सम प्राप्तिवाले चित्त को चलावे 'स्फुरणा के सम्मुख करे नहीं ४४।१२३॥

४५।१२४॥ हे सौम्य! [समाधि करनेकी इच्छाविषे जो सुख उपजताहै तिससुखको विषय करनेवाली इच्छासे भी मनको रोकना योग्यहै इसप्रकार कहते हैं] समाधि करनेकी इच्छावाले योगीको "नास्वादयेत् सुखं तत्र निःसंगप्रज्ञया भवेत्" (सुख को स्वादन करे नहीं तहां प्रज्ञाकरके निःसंगहोय) अर्थात् । निर्विकल्प । समाधि को प्राप्त होनेकी इच्छावाले योगीको । निर्विकल्प समाधि से पूर्व सविकल्प समाधि विषे चित्तको विषयोंसे उपराम अरु प्रत्यक् आत्मा के सम्मुख होनेसे । जो सुख होताहै तिसको सोयोगी आस्वादन करे नहीं । अर्थात् सविकल्प समाधिके अन्त अरु निर्विकल्प समाधिके पूर्वमें जो सुखहै तिसके आस्वादनको रसास्वाद कहते हैं तिस विषे आसक्त होनेनही । क्योंकि तिस समाधि विषे जो सुख प्रतीत होताहै सो अविद्याकरके कल्पित । विशेषके अभाव अरु अन्तर दुखता करके जन्य । मिथ्याहै । क्योंकि वो सत्य आत्मानन्द सुखनहीं ताते । ऐसी विवेकवती बुद्धिकरके निःसंग । अर्थात् उक्त अविद्यात्मक सुखसे निस्पृह । होवे । अर्थात् उस सुखकी स्पृहासे रहित असंगहुआ परमानन्दमय आत्मा की भावना करे, अर्थात् तिस समाधि सुखके रागसे भी चित्तको निरोधकर अराग आत्माकार होवे । अरु "निश्चलं निश्चरत् चित्तं एकीकुर्य्यात् प्रयत्नतः" (निश्चल बाहर जानेवाले चित्तको प्रयत्नसे एकाकारकरना) अर्थात् जब सुखके रागसे निवृत्तहोके निश्चल स्वभाववाला हुआ चित्त पुनः बाह्य जानेवाला होवे

यदा न लीयते चित्तं नच विक्षिप्यते पुनः । अनिंगन मनाभासं निष्पन्नं ब्रह्म तत्तदा ४६ । १२५ ॥

[अर्थात् रसास्वादसे निवृत्त निश्चल हुआ चित्तभी जो कदापि पूर्वाभ्यासके संस्कारवश बाह्य विषयों के सम्मुख वा तिस अवस्थाविषे दर्शितहुई जो सिद्धि तिसमें रागवान् हुआ तिनके सम्मुख होवे] तब तिस निश्चल हुये परभी पूर्व संस्कारों के वश बाह्य जानेवाले चित्त को भी, तिन तिन विषयों से उक्त ज्ञानाभ्यासादिक उपायों से रोंकके पुनः सविकल्प समाधिरूप प्रयत्न करके आत्माविषेही एकरूप करना । अर्थात् निर्विकल्प समाधि करके युक्त चैतन्यस्वरूप सत्ता समान मात्रही सम्पादन करना ॥ [अर्थात् समाधि से उत्थान (विषय सम्मुख) हुये चित्तको पुनः सविकल्प समाधिरूप प्रयत्नसे अन्तर आत्माके सम्मुखकर अचेत्य चिन्मात्र सत्ता समान स्वरूपविषे अभेदतासे एकाकार स्थित करना ४५ । १२४ ॥

स्वस्थं शान्तं सनिर्वाणं अकथ्यं सुखमुत्तमम्। अजमजेन ज्ञेयेन सर्व्वज्ञं परिचक्षते ४७। १२६॥

सम्पन्न होताहै; अर्थात् जब उक्तप्रकार अचल अरु अनाभास होताहै तबसो चित्त ब्रह्म स्वरूपकरके सम्पन्न होताहै ४६।१२५॥

४७।१२६ हे सौम्य! [असंप्रज्ञात (निर्विकल्प) समाधि विषे जिसरूपकरके चित्त सम्पन्न होताहै तिस ब्रह्मस्वरूप को विशेषण देतेहैं "स्वस्थं शान्तं सनिर्वाणं अकथ्यं सुखमुत्तमम्" (उत्तम सुखको स्वस्वरूप विषे स्थित शान्त निर्वाण अरु अकथ कहते हैं; अर्थात् उक्तप्रकारके योगीके प्रत्यक्ष परमार्थरूप सर्वोत्तमब्रह्म सुख को ब्रह्मवेत्ता 'आत्मरूप सत्यका अनुबोधरूप स्वस्वरूपविषे स्थित अरु सर्व अनर्थोंकी (कामनाकी) निवृत्तिरूप शान्त, अरु निर्वाण (मोक्षकरके सहित वर्त्तमान, अरु असाधारण विषयवाला होने से कहने को अशक्य। अर्थात् नेत्रमें लगाया अंजननेत्र के अति समीप नेत्रान्तर होनेसे वो नेत्रका विषय नहीं, तैसेही वागादिक सर्व इन्द्रियों का अन्तरात्मा अत्यन्त निकट होनेसे वागादिकों का अविषय है। अरु "अजमजेन ज्ञेयेन सर्वज्ञं परिचक्षते" (जन्मसेरहित अनुत्पन्नहुये ज्ञेयसे सर्वज्ञ ब्रह्मही कहते हैं; अर्थात् जैसे स्त्रीसंगादि सुख विषयजन्य है तैसे सर्वोत्तम ब्रह्मानन्द सुख विषयजन्य न होने से अरु केवल परमशान्त निर्वाण रूप होनेसे वाणी आदिकों का विषय नहीं किन्तु जन्म से रहित अनुत्पन्न हुये ज्ञेय से। अर्थात् 'अज्ञान पर्यन्त जानने योग्य अरु वास्तवसे ज्ञानस्वरूप' निर्विकल्प समाधि करके प्राप्त जो निर्विशेष ज्ञप्तिमात्र सत्तासमान आत्मतत्त्व सो अव्यक्तादिवत् जन्मवान् न होनेसे जन्मरहित अजहै अरु। आकाशादिक जो ज्ञेय हैं सो उत्पन्नहुये ज्ञेयहैं, अरु आत्मतत्त्व जो ज्ञेयहै सो अज्ञान पर्यन्त ज्ञेय है वास्तवकरके अनुत्पन्न ज्ञेयहै। तिस जन्मरहित अनुत्पन्न हुये ज्ञेयसे अभिन्नहुआ अपने सर्वज्ञरूप से सर्व ब्रह्मही कहते हैं

न कश्चिज्जायते जीवः सम्भवोऽस्य न विद्यते ।
एतत्तदुत्तमं सत्यं यत्र किञ्चिन्न जायते ४८ । १२७ ॥
इति अद्वैताख्यं तृतीयं प्रकरणं समाप्तम् ॥

अर्थात् निर्विकल्प समाधिकरके ब्रह्मको प्राप्तहुआ योगी "ब्रह्म विद्ब्रह्मैवभवति" इत्यादिप्रमाणसे ब्रह्महीं होताहै ४७ । १२६ ॥
४८ । १२७ ॥ हे सौम्य ! [उक्त उपायोंको परमार्थसे सत्यताके हुये अद्वैत की हानिहोवेगी, अरु अन्यथा उन उपायों का प्रमाज्ञान न होवेगा, यह शङ्काकरके तत्र कहतेहैं] मनके निग्रहादिक उपाय, अरु मृत्तिका सुवर्णआदिकोंवत् सृष्टि अरु उपासना, यह सर्वही परमार्थ स्वरूप की प्राप्तिके उपाय होने करके (परमार्थरूप) कहे हैं, परन्तु वास्तवसे सत्य हैं नहीं, क्योंकि " न कश्चिज्जायते जीवः संभवोऽस्य न विद्यते " (कोई भी जीव उत्पन्न होता नहीं, इसका कारण है नहीं) अर्थात्, मनके निग्रह आदिक जे उपाय (साधन कहे हैं सो परमार्थ से सत्य नहीं, क्योंकि परमार्थसे सत्यतो कोई भी करता भोक्तारूपजीव किसी भी प्रकारसे उत्पन्न होतानहीं। एतदर्थ स्वभावसे अजन्मारूप इस एकही आत्मा का कारणहै नहीं । अरु जिस करके कारण नहीं तिसही करके कोई भी जीव उपजता नहीं । यह इसका अर्थहै । अरु "एतत्तदुत्तमं सत्यं यत्र किञ्चिन्न जायते" (तिनके मध्य यह उत्तम सत्य है जहां (जिसविषे) कुछ भी उपजतानहीं) अर्थात् पूर्वके ग्रन्थविषे उपायपने करके कथन किये जो तिन व्यावहारिक सत्यरूप साधनों के मध्य यह उत्तम सत्यहै जिस सत्यरूप ब्रह्मविषे कुछ (अणुमात्र) भी उत्पन्न होता नहीं ४८ । १२७ ॥

इतिश्रीगौडपादाचार्यकृतमांडूक्योपनिषद्कारिकायां -अद्वैताख्यतृतीयप्रकरणभाषाभाष्यं समाप्तम् ॥

हरिः

ॐ तत्सद्ब्रह्म

अथ गौडपादीयकारिकायां अलातशान्ताख्य चतुर्थप्रकरणं प्रारभ्यते ॥

ज्ञानेनाकाशकल्पेन धर्म्मान् योगगनोपमान्। ज्ञेयाभिन्नेन सम्बुद्धस्तंवन्दे द्विपदांवरम् १।१२८

अथ गौडपादीयकारिकायां अलातशान्ताख्य चतुर्थप्रकरणभाषाभाष्यं प्रारभ्यते ॥

१।१२८ हे सौम्य! [पूर्वके अरु पिछलेप्रकरणके सम्बन्धकी सिद्धि के अर्थ पूर्वोक्त तीनप्रकरणों विषे उक्तार्थ को क्रमसे कथन करतेहैं] ॐकारके निर्णयरूप द्वारकरके आगम नामक प्रथम प्रकरण से प्रतिज्ञा किये। अरु द्वितीय वैतथ्याख्य प्रकरण विषे बाह्य विषयों के भेद को मिथ्यापने से सिद्धहुये अरु पुनः अद्वैताख्य तृतीय प्रकरणविषे शास्त्र अरु युक्तियों करके साक्षात् निर्द्धारकिये अद्वैत का "तदुत्तमं सत्यमिति"। यह उत्तम सत्य है। यह इस तृतीय प्रकरणके अन्तके श्लोक विषे। पूर्व प्रकरण की प्रतिज्ञा। समाप्त किया। अरु तिस इस श्रुतिके अर्थरूप जो अद्वैत सिद्धांत तिसके विरोधी (प्रतिपक्षी) हुये जे भेद (द्वैत) वादी अरु वैनाशिक (निरात्मवादी) हैं तिनका परस्पर में विरोध होनेसे उनका सिद्धान्त रागद्वेषादि क्लेशोंका आश्रय है। अर्थात् सर्व भेद वादियोंके सिद्धांतरूप वृक्ष रागद्वेषादि क्लेशरूप पक्षियोंके विश्रामका आश्रय हैं। अरु अद्वैतवादियों का जो सिद्धान्त है सो रागद्वेषादि क्लेशों का अनाश्रय है। अर्थात् रागद्वेषादि क्लेशोंका आश्रय नहीं, क्योंकि रागद्वेषादि क्लेशपरस्परके भेदको आश्रयकरके रहते हैं, अरु परस्पर का भेद द्वैतके आश्रयहै, अरु सो सर्वअनर्थोंका आश्रय जो द्वैतभाव सो अद्वैत सिद्धांतमें नाममात्रभी नहीं। ताते तिनके आश्रित जे राग द्वेषादि अनर्थ क्लेश सो कैसे होगा, किन्तु कदापि नहीं। या अद्वैत

सिद्धान्तसे "सर्वमात्मैवाभूत" जिनको सर्वात्म दृष्टिहोनेसे उस को भेदके अभावसे रागद्वेषादि क्लेश आश्रय करतेनहीं, अरु "नातिवादी" वो अतिवादी होते नहीं अर्थात् निंदास्तुति करतेनहीं ॥ अरु भेदवादियों को परस्परमें रागद्वेषादि क्लेशोंका आश्रयपना, वैष्णव मतवादी अरु शैवमतवादियोंमें इस सांप्रतकालमें सर्वको प्रत्यक्ष है, ताते भेदवादियोंका सिद्धांत रागद्वेषादि क्लेशका आश्रयहै। अरु अद्वैत सिद्धांतहै सो उक्तक्लेशोंका अनाश्रयहोनेसे सम्यक्ज्ञानहै। इसप्रकार अद्वैत ज्ञानकी स्तुतिके अर्थ, तिन भेदवादियोंके सिद्धांत का मिथ्या ज्ञानपना सूचित किया। अरु सो तिनके पक्षोंका मिथ्या ज्ञानपना यहां परस्पर विरुद्ध होने करके विस्तार से देखायके तिसके निषेध से अद्वैत ज्ञानकी सिद्धि, आवीत न्याय करके (आवीत न्याय नाम, व्यतिरेक न्यायका है जैसे जो क्रियाकरके साध्य है सो अनित्य है इस अन्वय से अनित्यताके जानेहुये भी जो अनित्य नहीं, सो क्रियाकरके साध्य भी नहीं, इस प्रकार का व्यतिरेक भी व्यभिचारकी शंकासे रहित होने करके व्याप्ति के निश्चयार्थ अंगीकार करतेहैं। अरु तैसे तर्कसे घटितहुये अर्थकेज्ञान से जानेहुये भी विरोधी अन्यवादके निषेधके वर्णन विना अन्यपक्ष के सम्यक् पनेकी शंकाहोवेगी। एतदर्थ अन्यवादोंके निषेधसे अद्वैत सिद्धांतकी सिद्धि समाप्त करने को योग्य है। इस अभिप्राय से अलात शान्ति के (अर्द्धदग्ध काष्ठ के घुमावने के), दृष्टान्तसे उपलक्षित अलात शान्ति नामक चतुर्थ प्रकरण प्रारम्भ करतेहैं। इत्यर्थः] समाप्त करनेके योग्यहै। एतदर्थ यह अलात शान्तिनामक चतुर्थ प्रकरण प्रारंभ करतेहैं। अरु तिस चतुर्थ प्रकरणविषे अद्वैत ज्ञानके सम्प्रदायके कर्त्ता नारायण भगवान्रूप आचार्यके, अद्वैत स्वरूप सेही नमस्कारार्थ यह प्रथम श्लोकहै। [आदिअन्त अरु मध्य विषे मंगलाचरण करके युक्त जो ग्रंथहैं सो प्रवृत्तिवाले होते हैं, इस अभिप्रायसे श्रीगौडपादाचार्य आदि विषे ॐकारके उच्चारणवत् अरु अन्तविषे परदेवताके प्रणामवत् मध्यविषे भी परदेवता

अस्पर्शयोगो वै नाम सर्व्वसत्त्वसुखोहितः। अविवादोऽविरुद्धश्च देशितस्तं नमाम्यहम् २।१२९॥

रूप उपदेष्टा (आचार्य) को प्रणाम करते हैं] जिस करके शास्त्रके आरंभ विषे वांछित अर्थकी सिद्धिके लिये आचार्यकी पूजा अंगीकार करते हैं। एतदर्थ यहां आचार्यको नमस्कार रूप मंगल करते हैं "। ज्ञानेनाकाशकल्पेन धर्म्मान् योगगनोपमान्, ज्ञेयाभिन्नेन सम्बुद्धस्तं वन्दे द्विपदांवरम्।" (जो ज्ञेयोंसे अभिन्न आकाश के तुल्य ज्ञानसे आकाशकी उपमावाले धर्मोंको सम्यक् जानता हुआ, तिन द्विपदनके मध्य श्रेष्ठको वन्दनाकरताहौं? अर्थात् जो नारायण नामक परमेश्वर अग्निकी उष्णताअरु सूर्य के प्रकाशवत् उपाधि करके कल्पित भेदसे बहुरूप आत्मस्वरूपधर्म्मरूप ज्ञेयपने से अभिन्न आकाशके तुल्य यद्यपि [आकाशको जड़ताकी अधिकतासे स्वप्रकाशरूप ज्ञानको आकाशकी उपमाअपूर्ण है, तथापि ज्ञानके व्यापकपने आदिक विषे आकाशकी उपमा पूर्णतासे जाननेयोग्यहै] ज्ञानरूपतासे आकाशके तुल्यताकी उपमावालेआत्मा के धर्म्मों को सम्यक्प्रकार जानता हुआ, तिस द्विपदों [मनुष्य से उपलक्षित पुरुष] के मध्यश्रेष्ठ (प्रधान) पुरुषोत्तम [गौड़पादाचार्य्य जो हैं सो पूर्व नरनारायणकरकेआश्रित बदरिकाश्रमविषे नारायण भगवान् को चित्त में ध्यायके बड़े तपको तपते हुये, तातें नारायण भगवान् प्रसन्न होयके तिनके अर्थ विद्या वरदान देतेहुये। तातेतिस नारायण भगवान् रूप परमेश्वरविषे वेदान्त सम्प्रदायका परमगुरुपना प्रसिद्ध है। यह भावहै] कोमैं वन्दना करता हौं, यह अभिप्राय है॥ उपदेष्टा आचार्य के नमस्काररूप से विरोधी पक्षों के निषेध द्वारा इसचतुर्थ प्रकरणविषे प्रतिपादन करने को इच्छित [ज्ञान, ज्ञेय, अरु ज्ञाताकेभेद रहित [अर्थात् ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, इसत्रिपुटी से रहित] परमार्थ तत्त्वका ज्ञान [परमार्थ बोधरूप] प्रतिज्ञा कियाहोताहै १।१२८॥

20222

२ । १२६ ॥ हे सौम्य! अब अद्वैत दर्शनरूप योगकी (अर्थात् अद्वैत ज्ञानकी स्तुति के अर्थ तिसको नमस्कारसे स्तुति करते हैं "(अस्पर्शयोगोवैनाम सर्वसत्त्वसुखोहितः" (अस्पर्शयोग प्रसिद्ध नामहै सर्वसत्त्व सुखहोताहै हितरूपहै,अर्थात् जिसयोगका किसी सेभी कदाचित्भी स्पर्श (सम्बन्ध) होवेनहीं, ऐसा जो ब्रह्मस्वरूप योग सो कहिये अस्पर्शयोग नामहे, सो ब्रह्मवेत्ताओं को यह अस्पर्श योगहै (अन्योंको नहीं) यह प्रसिद्धहै । (अर्थात् अस्पर्श योगनाम वाला अद्वैत ब्रह्मरूप ज्ञान है सो अद्वैत ब्रह्मके जानने वाले सम्यक् ब्रह्मवेत्ताओंको है । तिनसे इतरजे कर्मवादि तर्कवादि आदिक भेदी हैं तिनको "न कर्मिणो वेदयन्ते" "नैषा तर्केण मतिरापनेया" । इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे सो ज्ञान नहीं । ॥ अरु कोई एक अत्यन्त सुखके साधन (दिव्य सर्वोत्तम भोग्य सामग्री (करके युक्तहुआ भी योग दुःखरूप हैं।। 'जैसे तप, अरु यह (ब्रह्मरूप अस्पर्श योग) तैसा नहीं । किन्तु "सर्वेषां सत्त्वानां देहभृतां सुखयतीति" इस व्युत्पत्त्यर्थ से जो सर्व देहधारी जीवोंको सुखी करे, सो सर्व सत्त्वसुखहै । ताते सो अस्पर्श नामयोग (सर्व जीवोंको सुखरूपहै । अरु तैसेही इस योग करके हितहोता है (अर्थात् जो कदापि किसी विषयका उपभोगरूप सुख है सो सुख तो है परन्तु सो हितरूप नहीं (क्योंकि विषयों का उपभोग जन्य सुख है सो क्षणिक अरु परिणामी है ताते। अरु यह (अस्पर्श योग) सुखरूप है, अरु हितरूप है, क्योंकि (सोक्षणिक अरु परिणामी न होयके) सर्वदा एकरस अचल स्वभाव वालाहै ताते। किंवा "अविवादोऽविरुद्धश्च देशितस्तं नमाम्यहम्" (अविवादहै अविरुद्धहै उपदेशाकियाहै तिसको में नमस्कार करताहों अर्थात् जिसविषेपक्ष अरु प्रतिपक्ष के ग्रहणसे विरुद्धकथनरूपविवादनहीं, एतदर्थ अविवादहै (अर्थात् जहां द्वैतहै तहां स्वपक्ष अरु प्रतिपक्षका ग्रहणहै तहांही परस्परमें राग द्वेष पूर्वक विरुद्धकथन रूप विवादहै अरु इसभेदरहित अद्वैत अस्पर्श नामयोगविषे भेदवे

भूतस्य जातिमिच्छन्ति वादिनः केचिदेवहि । अभूतस्यापरे धीरा विवदन्तः परस्परम् ३।१३०॥
भूतं न जायते किञ्चिदभूतं नैव जायते । विवदन्तोऽद्वयाह्येवमजातिं ख्यापयन्तिते ४।१३१॥

अभाव सें स्वपक्ष अरु परपक्ष अरु तदाश्रित रागद्वेष अरु परस्परका विरुद्ध कथनरूप विवाद सम्भूलनहीं, ताते सो अविवाद है। अर्थात् जिस पुरुषको एकअद्वितीय ब्रह्मका सो रूपही अस्पर्श योग प्राप्तहुआ है सो विद्वान् "विद्वान् भवते नातिवादी" सम्यक् अद्वैतज्ञानी हुआ किसीका भी खंडन मंडनरूप विवाद करतानहीं, ताते सो अविवाद है। क्योंकि अविरुद्ध है। अतएव ऐसा जो (सर्वोत्तम सुख रूप हितरूप अविवाद अरु अविरुद्ध योग जिसशास्त्रने सम्यक् उपदेशकियो है, तिस शास्त्रको मैं नमस्कार करता हौं २। १२९॥

३। १३० हे सौम्य! [अद्वैत वादको अविरुद्ध होने करके तिस विषे विवादके अभावको स्पष्ट करनेको प्रथम द्वैतवादियोंके विवादको उदाहरण करके कहते हैं] । प्रश्न। द्वैतवादी परस्पर विरोध को कैसे प्राप्त होते हैं; । उत्तर। कहते हैं "भूतस्य जातिमिच्छन्ति वादिनः केचिदेवहि" (कोई एकवादी विद्यमान भूतों (वस्तुओं) की उत्पत्ति इच्छते हैं, अर्थात् जिस करके कोई एक सांख्यशास्त्र मतके अनुसारी द्वैतवादी विद्यमान वस्तुकी उत्पत्ति को इच्छते हैं, सर्व नहीं अरु "अभूतस्यापरेधीरा विवदन्तः परस्परम्" (पंडितपने के अभिमानी अन्य अविद्यमान वस्तुकी उत्पत्तिको इच्छते परस्पर विवाद करते हैं; अर्थात् जाते सांख्यवादियों से अन्य अपनेविषे पंडितपने के अभिमानी वैशेषिक अरु नैयायिक मतके, अविद्यमान वस्तुकी उत्पत्तिको इच्छते हैं, एतदर्थेही परस्पर विवाद करते हैं (अन्यको जय करने को इच्छते हैं इत्यभिप्रायः) ३। १३०॥

ख्याप्यमानामजातिन्तैरनुमोदामहे वयम् ।
विवदामो न तैः सार्द्धमविवादं निबोधत ५ । १३२ ॥

४ । १३१ हे सौम्य ! । प्रश्न । इसकहे प्रकार विरुद्ध कथन से परस्परके पक्षके खंडनकेकर्त्ता वादियों करके सिद्धकिया क्याहोता है । उत्तर । तहां कहतेहैं "भूतं न जायते किञ्चिदभूतं नैव जायते" (कुछभी भूत (विद्यमान) उपजता नहीं, अविद्यमान उपजता नहीं) अर्थात् कुछ भी विद्यमान वस्तु उपजता नहीं, क्योंकि सो आत्मावत् विद्यमान है ताते, इसप्रकार कहताहुआ असत् वादी सत् के जन्मरूप सांख्यके पक्षका निषेध करताहै । अरु तैसे अविद्यमान वस्तुभी उपजतानहीं,क्योंकि सो शशशृंगवत्अविद्यमान है ताते । इस प्रकार कहताहुआ सांख्यवादी भी असत् के जन्मरूप असत्वादीके पक्षका निषेध करताहै "विवदन्तोऽद्वयाह्येवमजातिं ख्यापयन्ति ते" (ऐसे अद्वैतवादी विवाद करते हुये अनुत्पत्तिको ख्यापन करते हैं) अर्थात् जो अद्वैतवादी हैं सो विवाद करते (निर्णयकरते) हुये । अरु सत् अरु असत् के जन्म रूप, इस परस्पर के पक्षरूप विवादको निषेध करतेहुये । कोई कहताहै इसविद्यमान वस्तुकी उत्पत्ति है कोई कहताहै अविद्यमान की उत्पत्ति है इस प्रकार परस्परमें वादी विवाद करते हैं, तिनदोनोंके पक्षको निषेध करतेहुये । सत् असत् से भिन्न (विलक्षण) वस्तुके अर्थ से अनुत्पत्ति को प्रकाश करते हैं ४ । १३१ ॥

५।१३२ हेसौम्य ! [तब वादियोंकरके उक्तहोनेसे अनुत्पत्तिभी तुमकरके निषेध करनेको योग्यहै यह शंका करके कहते हैं [इस प्रकार तिनप्रतिवादियों करके । अर्थात् "ख्याप्यमानामजातिन्तैरनुमोदामहे वयम्" (तिनकरके प्रकाशित किया अनुत्पत्ति को हम अनुमोदन करते हैं) अर्थात् ऐसे तिन प्रतिवादियों करके प्रकाशित किया जो अनुत्पत्ति तिसकोही इसप्रकार होवो, ऐसे हम केवल अनुमोदन करते हैं । परन्तु "विवदामोन तै. सार्द्धम-

अजातस्यैव धर्म्मस्य जातिमिच्छन्ति वादिनः।
अजातो ह्यमृतो धर्म्मो मर्त्यतां कथमेष्यति ६।१३३॥
न भवत्यमृतं मर्त्यं न मर्त्यममृतन्तथा।
प्रकृतेरन्यथाभावो न कथञ्चिद्भविष्यति ७।१३४॥

विवादं निबोधत" (तिनके साथ विवाद करते नहीं अविवाद को श्रवणकरो) अर्थात् जैसे वे (भेदवादी) परस्पर विवाद करते हैं, तैसे हम तिनके साथ पक्ष अरु प्रतिपक्ष के ग्रहण से विवाद करते नहीं। एतदर्थ हे हमारे शिष्यो! हमकरके अनुमोदनकिये अविवादको (अर्थात् विवाद से रहित परमार्थ रूप ज्ञान को श्रवण करो ५।१३२॥

६।१३३ हे सौम्य! [उत्पन्नहुये वस्तुकेही जन्मकरके अनर्थकी प्राप्तिसे अरु अनवस्था दोषकी प्राप्तिसे अनुत्पन्नहुये पदार्थकेही जन्मको सत्वादी अरु असत्वादी सर्वही स्वीकार करतेहैं। इसप्रकार अन्यवादियों के पक्षका अनुवाद करते हैं] "अजातस्यैवधर्मस्य जातिमिच्छन्ति वादिनः" (सर्ववादी जन्मरहित धर्मकी उत्पत्ति को इच्छते हैं (अर्थात् सर्व जो सत् असत्वादी है सो, जो जन्म रहित ही धर्म्मनामवाला परमात्माहै, तिसकी उत्पत्ति को इच्छते हैं परन्तु "अजातो ह्यमृतो धर्म्मो मर्त्यतां कथमेष्यति" (अजन्मा मरणरहित धर्म्म मरनेकी योग्यताको कैसे पावेगा) अर्थात् अजन्मा अरु अमृत (मरणरहित) जो धर्म नामक परमात्मा सो मरणकीयोग्यताको कैसे प्राप्तहोवेगा, किन्तु किसीप्रकारसेभी प्राप्त होवे नहीं॥ अर्थात् जो जन्मताहै तिसका मरण भी निश्चित है, ताते जो परमात्मा उत्पन्नहोय तो विनाशभी अवश्य होगा, परन्तु सो परमात्मा श्रुतिके प्रमाण अरु अनुभवसे निराकार महासूक्ष्म एकअद्वैत परिपूर्ण अजन्माहै, अरु जिसकरके अजन्मा है तिसही करके कदापि मरणके योग्य नहीं। ६।१३३॥

७।१३४ हे सौम्य! [परिणामी ब्रह्मके वादविषे जो अब्रह्मवा-

स्वभावेनामृतो यस्य धर्म्मोगच्छति मर्त्यताम् ।
कृतकेनाऽमृतस्तस्य कथंस्थास्यतिनिश्चलः ८ । १३५॥

दियों करके दूषण कहे हैं, सो भी हमने अनुमोदन किया है, इस प्रकार मानके कहते हैं,] "न भवत्यमृतं मर्त्यं न मर्त्यममृतं तथा" (मरणरहित मरनेके योग्य होता नहीं, तैसे मरनेके योग्य मरण रहित नहीं) अर्थात् मरणरहित जो ब्रह्म सो मरने के योग्य होता नहीं, क्योंकि स्थितरूपका विरोधहै ताते । तैसेही मरने के योग्य कार्य सो स्वरूपकी स्थितिविषे वा प्रलय अवस्थाविषे मरणरहित ब्रह्मको पावता नहीं । एतदर्थ "प्रकृतेरन्यथाभावो न कथञ्चिद्भविष्यति" (प्रकृतिका अन्यथा भाव किसीप्रकार से भी होगा नहीं) अर्थात् प्रकृति , कहिये स्वभाव, का अन्यथा भाव किसी प्रकार से भी होनेका नहीं ॥ इति सिद्धम् ७ । १३४ ॥ ८ । १३५ हे सौम्य ! "स्वभावेनामृतो यस्य धर्म्मोगच्छति मर्त्यताम्" (जिसका स्वभावसे मरणरहित धर्म मरने की योग्यता को पावताहै) अर्थात् जिस परिणामवादी के मतमें स्वभावसेही मरणरहित धर्म्म (परमात्मा नामक पदार्थ) कार्य भावकी प्राप्ति से मरने की योग्यता को प्राप्तहोताहै "कृतकेनाऽमृतस्तस्य कथं स्थास्यति निश्चलः" (तिसका समुच्चयके अनुष्ठानसे मरणरहित निश्चलहुआ कैसे स्थित होवेगा) अर्थात् तिस वादी के मतविषे समुच्चय के अनुष्ठान से मरणरहित अरु मुक्तहुआ कहने के योग्यहै । सो धर्म निश्चलहुआ कैसे स्थितहोवेगा, किन्तु किसी प्रकार से भी स्थितहोवे नहीं ॥ [पूर्व अद्वैत नामक प्रकरण विषे कथन कियाहै अर्थजिन्होंका ऐसे इन ६ से लेके ८ पर्यन्त तीन श्लोकों का जो पुन. यहां निर्देश कियाहै, सो अन्य वादियों के पक्षों के परस्पर विरोध करके प्रसिद्धहुये अपने अनुमोदनके लखावने के अर्थ किया है ८ । १३५ ॥

सांसिद्धिकी स्वाभाविकीसहजा अकृताचया। प्रकृतिःसेति विज्ञेयास्वभावं न जहातिया९॥ १३६॥

६।१३६ हेसौम्य! जिसकरके जब यह लौकिक प्रकृति भी अन्यथा भावकोपावती नहीं, तबयह अजन्मा अरु अमृत स्वभाव वाली प्रकृति अन्यथा भावको न प्राप्तहोवे, इसमें क्या कहना है किन्तु कुछभीनहीं। प्रश्नाकौन यह प्रकृतिहै तहां।उत्तराकहतेहैं। "सांसिद्धिकी स्वाभाविकी सहजा अकृता च या" सांसिद्धिकीहै स्वाभाविकी है सहजाहै अरु जो अकृतहै, अर्थात् [प्रकृतिका अन्यथाभाव किसी भी प्रकारसे होनेका नहीं, इस प्रकार ७ वें श्लोकविषे कहा। तहां प्रकृति शब्दके अर्थको कहते हैं] सम्यक् सिद्धि विषे होनहार है एतदर्थ सांसिद्धिकी है। जैसे सिद्ध योगियोंकी अणिमादि ऐश्वर्यकी प्राप्तिरूप जो प्रकृतिहै, सो भूत अरु भविष्यत्काल विषे अन्यथा भावको पावती नहीं, तैसेही सो प्रकृति अन्यथा भावको पावती नहीं, एतदर्थ तिसको सांसिद्धिकी कहतेहैं।तैसेही स्वभावहीसे सिद्धहै याते सोई स्वाभाविकीहै,जैसे अग्निआदिकोंकी उष्ण अरु प्रकाशादिरूप प्रकृतिहै सोभीकालान्तरविषे अरुदेशान्तर विषेभीव्यभिचारको प्राप्तहोती नहीं,तैसेही यहभीव्यभिचारको पावतीनहीं एतदर्थ इसको स्वाभाविकीकहते हैं। अरु तैसेही सहजा। आत्माके साथही होनहारहै। जैसे पक्षी आदिकों की आकाश विषे गमनादिरूप प्रकृति (स्वभाव) सहजहै। तैसेही यह आत्माके साथही होनेवाली है, एतदर्थ इसको सहज कहतेहैं। अरु अन्यभी जो कोई एक किसी निमित्त से भी अकृत (अरचित) होवे, जैसे जलकी अधोदेश विषे गमनादि रूप प्रकृतिहै, अरु जैसे घटका घटत्वहै अरु पटका पटत्वहै, तैसे अन्यभी जो कोई एक कदाचित् भी स्वभावको त्यागेनहीं सोसर्व प्रकृति है। इस प्रकार जाननेको योग्यहै। अरु "प्रकृतिःसेति विज्ञेया स्वभावं न जहाति या" जो स्वभावको त्यागेनहीं सो

कारणं यस्य वै कार्यं कारणं तस्य जायते। जायमानं कथमजं भिन्नं नित्यं कथञ्च तत् ११ । १३८॥

विकार रहित जो आत्मा तिस विषे विकार की कल्पना के हुये तिसकी वासना से उन वादियों को स्वभाव की हानिही होती है यह दोष है १०।१३७॥

११।१३८॥ हे सौम्य! [प्रसंगविषे प्राप्त हुये अर्थको त्यागकेसांख्य वादियोंके पक्षविषे वैशेषिक आदिकरके कथन किया अरु आप अद्वैत वादियों करके अनुमोदन किया जो दूषण है, तिसका अनुवाद करते हैं] सत् कहिये विद्यमान वस्तुकी उत्पत्ति के कहनेवाले सांख्यवादियों करके अप्रटित कैसे कहा है, जहां ऐसा प्रश्न है तहां वैशेषिककहते हैं "कारणं यस्य वै कार्यं कारणं तस्य जायते" (जिसके मतविषे कारणही कार्य होता है तिसके मतविषे कारण जन्मता है) अर्थात् जिस सांख्यवादियों के मतविषे मृत्तिकावत् उपादानरूप कारणही कार्य्य होता है। जैसे मृतपिंड घटरूप परिणाम को तैसे कारण कार्य के आकार से परिणाम को प्राप्त होताहै। तिनके मतविषे जन्मरहित ही कारण महत्तत्त्वादि कार्य रूपसेही जन्मता है। अरु जब महत्तत्त्वादिकों के आकारसे उत्पन्न होनेवाला प्रधानहै तब सो अजन्मा अरु नित्य कैसे कहा है, एतदर्थ जन्मता है अरु अजन्मा नित्य है, इसप्रकार तिन करके यह विरुद्ध कथन किया है। अरु "जायमानं कथमजं भिन्नं नित्यं कथञ्च तत्" (सो जायमान है तब अज कैसे होगा, अरु विदारण को प्राप्तहुआ नित्य कैसे होवेगा? अर्थात् सो प्रधान एकदेशसे भिन्नता भेद वा विदारण को प्राप्त हुआ नित्य कैसे होवेगा [विवाद का विषय जो प्रधान सो अनित्य है, क्योंकि सावयव है, ताते। घटादिकोंवत्, इस अनुमान के अभिप्राय से दृष्टान्त को साधते हैं] जिसकरके लोक विषे सावयव एक देशसे फूटने रूप धर्मवाला घट नित्य देखा नहीं,

कारणाद्यद्यनन्यत्वमतः कार्य्यमजं यदि । जायमा नाद्धि वै कार्य्यात् कारणं ते कथं ध्रुवम् १२ । १३९ ॥

अजाद्वै जायते यस्य दृष्टान्तस्तस्य नास्ति वै । जाताच्च जायमानस्य न व्यवस्था प्रसज्यते १३ । १४० ॥

एतदर्थ एक देशसे विदारण को पाया जो प्रधान सो अजन्मा है अरु नित्य है, इसप्रकार जो उन सांख्यवादियों करके कथन किया है सो विरुद्ध किया है । यह इसका अभिप्राय है ११ । १३८ ॥

१२ । १३९ ॥ हे सौम्य ! अब पूर्व देखाया जो कार्य्य कारणका भेदवाद तिसके निषेधरूप उक्तार्थकोही स्पष्ट करने के अर्थ कहते हैं "कारणाद्यद्यनन्यत्वमतः कार्य्यमजं" (जब कारण से अनन्यपना मानता है तब कार्य्य अजन्मा है ? अर्थात् जब जन्मरहित कारण से कार्यका अनन्यपना तेरेको वांछित (मन्तव्य) है, तब तिस प्रकारके (जन्मरहित; कारण से अपृथक् होने करके कार्य भी अजन्मा है, ऐसे प्राप्तहुआ । एतदर्थ तेरे मतको प्रधानका अजन्यपना अरु जन्यपना यह विरोध हुआ । अरु कार्य है सो अजन्मा है यह दूसरा विरुद्ध हुआ । किंवा कार्य कारण के अनन्य भावविषे अन्यदोष यह है कि "यदि, जायमानाद्धि वै कार्य्यात् कारणं ते कथं ध्रुवम्" (जब प्रसिद्ध जायमानकार्य से अनन्य कारण है तब सो तेरे मतविषे नित्य अरु अचल कैसे होवेगा, किन्तु किसी प्रकारसे भी होवे नहीं । अरु जैसे कोई कहे कि कुक्कुट (मुरगे) का एक अङ्ग (मस्तकादि कोई) भोजनार्थ पचावते (पकावते) है अरु दूसरा अंग (गर्भाशय, अंडोंके जन्मार्थ कल्पना करते हैं (रहने देते हैं) सो कहना बने नहीं । तैसे कार्य से अभिन्न कारण नित्य अरु ध्रुव है, ऐसी व्यवस्था तेरे मतविषे बने नहीं, अरु अद्वैतवादियों के माया विवाद विषे कार्य कारण के अभेद होनेसे भी कार्य केही कारणमात्रपने के अंगीकार से यह दोष है नहीं यह सिद्धहुआ १२ । १३९ ॥

हेतोरादिः फलं येषामादिर्हेतुः फलस्य च। हेतोः फलस्य चानादिः कथं तैरुपवर्ण्यते १४।१४१॥

१३।१४०॥हे सौम्य! "अजाद्वै जायते यस्य दृष्टान्तस्तस्य नास्ति वै" (अजन्मासे जन्मता है तिसविषे दृष्टान्त है नहीं) अर्थात् जिस प्रधानवादीके मतविषे अनुत्पन्न वस्तुसे कार्य उत्पन्न होताहै,तिस के मतविषे दृष्टान्त है नहीं। अरु दृष्टान्त के अभाव से केवल अर्थ करकेही अनुपन्न वस्तुसे कुछ भी, उत्पन्न होता नहीं, इसप्रकार सिद्ध होताहै। अरु "जाताच्च जायमानस्य न व्यवस्था प्रसज्यते" (उत्पन्न हुये से उत्पन्नहुयेका (अंगीकार है तब) सो व्यवस्थाको प्राप्त होता नहीं) अर्थात् जब पुनः उत्पन्नहुये कारण से उत्पन्नहुई वस्तुका अंगीकारहै, तब सो अन्य उत्पन्नहुये से उत्पन्न होताहै, अरु सोभी अन्य उत्पन्न हुयेसेही उत्पन्न होनाहै, इसप्रकार होनेसे व्यवस्था प्राप्त न होगी, किन्तु अनवस्था दोपही प्राप्त होवेगा। इत्यर्थ १३।१४०॥

१४।१४१॥ हे सौम्य! [द्वैतवादियोंकरके परस्परके पक्षके निषेधद्वारा सिद्धकिया जो वस्तुकी जन्यपना, सो अद्वैतवादीने अनुमोदन किया। अब श्रुतिप्रतिपादित अरु विद्वान्के अनुभव का अनुसारी द्वैतका निषेध भी इस अद्वैतवादीने अनुमोदन कियाहीहै। इसप्रकार कहते हैं] "यत्र त्वस्य सर्व्वमात्मैवाऽभूत्तदिति" (जहां तो जिस पुरुषको सर्व्व आत्माही होताहुआ) इसप्रकार श्रुतिने परमार्थ से द्वैतका अभावकहाहै। तिसको आश्रयकरके कारणरूप द्वैतका दुर्निरूपणपना कहतेहैं। "हेतोरादिः फलं येषामादिर्हेतुः फलस्य च" (जिसहेतुका आदि फलहै अरु फलकाहेतु आदि है) अर्थात् जिन वादियों के मतविषे धर्म्मादि रूप हेतुका आदि (कारण) देहादि संघातरूप फल है, अरु देहादि संघातरूप फलका धर्म्मादिरूप हेतु आदि (कारण) है। इसप्रकार हेतु अरु फलके परस्परके कार्य्य अरु कारणभावकरके

॥ सम्भवे हेतुफलयोरेषितव्यः क्रमस्त्वया ॥ युगपत्सम्भवे यस्मादसम्बन्धो विषाणवत् १६।१४३॥ ॥ फलादुत्पद्यमानः सन्न ते हेतुः प्रसिद्ध्यति। अप्रसिद्धः कथं हेतुः फलमुत्पादयिष्यति १७।१४४॥ ॥

॥१६।१४३॥ हे सौम्य! [प्रतीतिसे हेतु अरु फलकी उत्पत्ति को स्वीकार करने योग्य होनेसे तिसका निषेध करना युक्त नहीं, यह शंका करके कहतेहैं] " संभवेहेतुफलयोरेषितव्यः क्रमस्त्वया " (हेतु अरु फलकी उत्पत्तिविषे क्रम तुम्हकरके अन्वेषण करने को योग्य है) अर्थात्, हे वादी, जब उक्त प्रकारका विरोध अंगीकार करनेकेयोग्य नहीं, ऐसे तू मानताहै। तब हेतु अरु फलकी उत्पत्ति विषे हेतु पूर्वहै फल पश्चात् है इसप्रकारका जोक्रमहै सो तुम्हकरके अन्वेषण करने योग्य है। अरु। "युगपत्सम्भवे यस्मादसम्बन्धो विषाणवत्"। (जाते एककालविषे सम्भव के हुये शृंगोंवत् असम्बन्धहोवेगा) अर्थात् जिसकरके एककाल विषे उत्पत्तिके होने से शृंगोंवत् असम्बन्ध होवेगा। जैसे एक काल विषे उत्पन्न होनेवाले वाम दक्षिणरूप जो गौके दोनों शृंग तिनका परस्पर कार्य कारण भावकरके असम्बन्ध है, तैसेही एककालविषे उत्पन्न हुये हेतु अरु फलका कार्य कारण भावसे असम्बन्ध होवेगा, एतदर्थ तिनका क्रम तुझकरके अन्वेषण करने के योग्य है १६।१४३॥

॥१७।१४४॥ हे सौम्य! [अब। "पुण्यो वै पुण्येन कर्म्मणा भवति"। (पुण्य कर्म्म करके निश्चय पुण्यरूप होता है) इत्यादिक श्रुति प्रमाणसे धर्मादिकों विषे हेतु अरु फल भावकी शंका करके श्रुतिको अघटित अर्थ विषे प्रमाणहोने के असम्भव से श्रुतिका पूर्वापर भाव (प्रथम पश्चात् पना) अवश्य कहने के योग्य है, इसप्रकार कहते हैं]। प्र०। तब तिनका (हेतु अरु फलका) सम्बन्ध कैसे है,। उ०। कहते हैं, " फलादुत्पद्यमानः सन्न ते हेतुः प्रसिद्ध्यति " (फलसे उत्पन्न होनेवाला हुआ हेतु

यदि हेतोः फलात्सिद्धिः फलसिद्धिश्च हेतुतः। कतं रत्पूर्व्वनिष्पन्नं यस्य सिद्धिरपेक्षया ॥ १८ । १४५ ॥

अशक्तिरपरिज्ञानं क्रमकोपोऽथवा पुनः। एवं हि सर्व्वथा बुद्धैरजातिः परिदीपिता १९ । १४६ ॥

सिद्ध होगा नहीं? अर्थात् जन्य अरु स्वरूप से अप्रतीत रूपवाले फलसे उत्पन्न होनेवालाहुआ हेतु शशशृंग आदिक असत् वस्तुवत् सिद्ध न होवेगा। अर्थात् जन्मको न पावेगा। अरु "अप्रसिद्धः कथंहेतुः फलमुत्पादयिष्यति।" (अप्रसिद्धहुआ हेतु कैसे फलको उत्पन्न करेगा? अर्थात् शशशृंगादिकोंवत् अप्रतीतिरूपवाला अप्रसिद्धहुआ हेतु तेरेमतविषे कैसे फलको उत्पन्न करेगा। क्योंकि परस्परकी अपेक्षाकरके सिद्धिवाले शशशृंगके तुल्य वस्तुओंका कार्य कारणभाव से कहीं भी सम्बन्ध देखा नहीं ॥ यह अभिप्राय है १७।१४४॥

१८।१४५॥ हे सौम्य! "यदिहेतोः फलात्सिद्धिः फलसिद्धिश्च हेतुतः" (जब फलसे हेतुकीसिद्धि अरु हेतुसे फलकीसिद्धि है? अर्थात् असम्बन्धपने रूप दोषसे हेतु अरु फलके परस्पर कार्य कारण भावके निषेधकियेहुये भी जब तुझकरके फलसे हेतुकी सिद्धि अरु हेतुसे फलकीसिद्धि अंगीकार कियाही है, तब "कतरत्पूर्व्वनिष्पन्नं यस्य सिद्धिरपेक्षया" (पूर्वकी सिद्धिकी अपेक्षासे जिसकी सिद्धिहोती है ऐसा पूर्व उत्पन्नहुआ कौन है? अर्थात् उक्त प्रकार जब हेतु अरु फलकी परस्परसे सिद्धि अंगीकार कियाहै, तब हेतु अरु फलके मध्य पूर्वकी सिद्धिकी अपेक्षासे जिस पश्चात् होनहारकी सिद्धि होती है, ऐसा पूर्व उत्पन्नहुआ कौन है सो आप कहिये १८।१४५॥

१९।१४६॥ हे सौम्य! "अशक्तिरपरिज्ञानं क्रमकोपोऽथवापुनः" (अशक्ति अपरिज्ञान है, अथवा क्रम कोप होवेगा? अर्थात् जब यह क्रम जाननेको अशक्य है, इसप्रकार मानता है, तब सो यह

बीजांकुराख्यो दृष्टान्तः सदा साध्यसमो हि सः । नहि साध्यसमो हेतुः सिद्धौ साध्यस्य युज्यते २० । १४७ ॥

अशक्ति (अर्थात् कहनेका असामर्थ्य (अज्ञानहै, अर्थात् तत्त्वका अविवेकरूप मूढ़ताहै । अथवा पुनः जो यह तूने , हेतुसे फलकी सिद्धि होती है अरु फलसे हेतुकी सिद्धि होती है, इसप्रकार अन्योन्यके पश्चात् होने रूप क्रमकहा (अर्थात् हेतुसे पश्चात् फल होताहै अरु फल से पश्चात् हेतुहोता है ऐसाक्रम तूनेकहा (तिसका कोप (अर्थात् अन्यथा भावरूप विपर्यय (होवेगा । यह अभिप्राय है । अरु " एवं हि सर्व्वथाबुद्धैरजातिः परिदीपिता " (ऐसे बुद्धिमानों ने सर्वप्रकारसेही अनुत्पत्तिही प्रकाशित किया है ? अर्थात्, इसप्रकार [परस्पर के पक्षके निषेधरूप द्वारसे सत् अरु असत् वस्तुके जन्मके निषेध कियेहुये क्रम अरु अक्रम करके उत्पत्तिके असम्भवसे वादियों करके देखाईहुई अनुत्पत्तिही हम को इष्ट होती है, इसप्रकार अजातवादको समाप्त करते हैं] हेतु फलके कार्य्यकारण भावके असम्भवसे परस्परकी अपेक्षासे दोष के कहनेवाले वादीरूप पण्डितोंने सर्वप्रकारसेही सर्व वस्तु की अनुत्पत्तिही प्रकाशित कियाहै १९ । १४६ ॥

२० । १४७ ॥ हे सौम्य ! अब पूर्वपक्षी शङ्काकरताहै । शङ्का (हे सिद्धान्ती ! हेतु अरु फलका कार्य्य कारण भावहै, इसप्रकार हम ने कहाहै । अरु तैंने 'जैसे पुत्रसे पिताका जन्म होता है, अरु गौके शृङ्गोंवत् असम्बन्ध होवेगा, इत्यादिरूप कहने को इच्छित अर्थसे रहित शब्दमात्र को आश्रयकरके, वहछल कहा है । अरु जिसकरके हमों ने असिद्ध हेतुसे फलकी सिद्धि, वा असिद्धफल से हेतुकी सिद्धि, अंगीकार किया नहीं, किन्तु बीजांकुर न्यायवत् हेतु अरु फलका कार्यकारण भाव अंगीकार कियाहै, तहां हमारे मतविषे कोई भी दोषनहीं । अब समाधान । कहते हैं " बीजांकुराख्यो दृष्टान्तः सदा साध्यसमो हि सः " (बीज अंकुर नामवाला

जो दृष्टान्त है सो सदा साध्यकरके तुल्य है? अर्थात् जो वीजांकुर न्यायवाला दृष्टान्त है सो सुद्ध मायावादी के मतविषे, साध्यकरके सदा तुल्यही है, क्योंकि वास्तव करके कार्य कारण भावकी प्रतीति कही भी नहीं ताते। यह तात्पर्य है। शङ्का। ननु, वीज अरु अंकुर का जो कार्यकारण भाव है सो प्रत्यक्ष अनादि है, इसप्रकार जब वादी ने कहा तब सिद्धान्ती समाधान कहता है, हे वादी! वीज अरु अंकुर व्यक्तिका कार्य कारणभाव तुझकरके अंगीकार कियाहै, किंवा वीज अरु अंकुरके सन्तानका कार्याकारणभाव अङ्गीकार कियाहै, तहां प्रथमपक्ष। जो वीज अरु अंकुरकी व्यक्तिका कार्या-कारणभाव सो। बनेनहीं, क्योंकि पूर्व पूर्व के पिछलेवत् आदि-मानपनेका अङ्गीकार है ताते। जैसे, अबी उत्पन्न हुआ वीजआ-दिकवाला पिछला अंकुर औ पिछला वीज, अन्य अंकुर अरु वीज से पूर्व है, एतदर्थ क्रमकरके उत्पन्न होनेसे आदिवाला है। इस रीति से एकएक सर्व वीज अरु अंकुर के समूह को आदिवाला होने से किसी के भी अनादिपनेका। अर्थात् परस्पर कारणपनेका सम्भव नहीं। इसप्रकार हेतु अरु फलों के भी अनादिपनेका अरु परस्पर कारणपनेका सम्भव नहीं। अरु जो दूसरा पक्ष कहे कि वीज अरु अंकुरकी सन्तति (सन्तान) का अनादिपना है, तो सो भी बनेनहीं, क्योंकि तिनकी सन्ततिकी एकरूपताका असम्भव है ताते। अरु जिसकरके उन वीज अरु अंकुरके अनादिपनेके वादियों करके, वीज अरु अंकुर से भिन्न वीज अरु अंकुरका सन्तान नामक एक व्यक्ति अङ्गीकार किया नहीं। अतएव हेतु अरु फल का अनादिपना उन वादियों करके कैसे वर्णनकिया है, सो कहो। तैसे हेतु अरु फलके कार्यकारण भावकी कहीं भी प्रतीतिका स-म्भव न होनेसे, अन्यभी जो हमोंने कहाहै, सो छलरूपहै नहीं। यह अभिप्राय है। अरु लोक में प्रमाणविषे कुशल पुरुषोंकरके "। नहि साध्यसमो हेतुः सिद्धौ साध्यस्य युज्यते"। (साध्यसे तुल्यहेतु साध्य की सिद्धी विषे जोड़ते नहीं? अर्थात् साध्यवस्तु से तुल्यहेतु कहि

पूर्वापरापरिज्ञानमजातेः परिदीपकम्। जायमाना-द्धि वै धर्म्मात्कथं पूर्व्वं न गृह्यते २१। १४८॥

स्वतो वा परतो वाऽपि न किञ्चिद्वस्तु जायते। स-दसत्सदसद्वाऽपि न किञ्चिद्वस्तु जायते २२। १४९॥

दृष्टान्त साध्यकी सिद्धिविषे सिद्धिके निमित्त योजना करतेनहीं यहां हेतुशब्दके मुख्यार्थको त्यागके दृष्टान्तरूप गौणअर्थ कहने को इच्छितहै, क्योंकि सूचकहै ताते। अरु जिसकरके प्रसंगविषे प्राप्तहुआ हेतुहैनहीं दृष्टान्तहै, यातेसोई ग्रहणकियाहै २०।१४७॥

२१।१४८॥ हे सौम्य!। प्रश्न। पण्डितोंने सर्व वस्तुकी अनुत्पत्ति कैसे प्रकाशित कियाहै,। उत्तर। " पूर्वापरापरिज्ञानमजातेः परिदीपकम् " (पूर्वापर (कार्य्य कारण) का अपरिज्ञान अनुपत्तिका प्रकाशक है) अर्थात् जो यह हेतु अरु फलके कार्य अरु कारणभावका अपरिज्ञानहै सोई यह अनुत्पत्तिका प्रकाशक कहिये अवबोधकहै। अरु " जायमानाद्धि वै धर्म्मात्कथं पूर्व्वं न गृह्यते " (उत्पन्न होनेवाले प्रसिद्ध धर्मसे पूर्व कैसे ग्रहणकरते नहीं ? अर्थात् जब उत्पन्नहोनेवाला धर्म्म कहिये कार्य्य ग्रहण करतेहैं, तब उत्पन्नहोनेवाले प्रसिद्ध कार्य्यरूप धर्मसे पूर्व (कारण) कैसे ग्रहणकरते नहीं। अरु जिसकरके उत्पन्न होनेवाले कार्यके ग्रहणकरनेवाले पुरुषोंकरके तिसकाजनक अवश्यग्रहण करनेयोग्यहै, क्योंकि जन्यजनकका संबन्ध अभिन्नहै ताते, अतएव सो कार्य कारण का अज्ञान अनुत्पत्ति का प्रकाशक है इत्यर्थः २१। १४८॥

२२। १४९॥ हे सौम्य! इस कथनकरनेके हेतुसे कुछभी वस्तु जन्मता नहीं, इसप्रकार सिद्धहोताहै। अरु "स्वतो वा परतो वाऽपि न किञ्चिद्वस्तु जायते। सदसत्सदसद्वाऽपि न किञ्चिद्वस्तु जायते" (स्वतः वा परतःवाउभयसे कुछभी वस्तु उत्पन्नहोता नहीं याते सत, असत, वा सदसत, कुछभी वस्तु उत्पन्नहोता नहीं

अर्थात् जिसकरके आपसे वा परसे वा दोनोंसेभी कुछभी वस्तु उपजता नहीं, एतदर्थ सत्, असत, वा सदसत् दोनों रूपभी कुछभीवस्तु उत्पन्नहोता नहीं । । अर्थात् जब स्वतः वा परतः कुछ किसीप्रकारभी उत्पन्नहोतानहीं, तब सत्‌रूपसे वा असत्‌रूपसे वा सदसत् उभयरूपसे कुछभी उपजता नहीं ॥ इसका यहभावार्थहै किजो उत्पन्नहोनेवाला वस्तुआपसे वा पर (दूसरे) से वा स्व, पर दोनोंसे सत् वा असत् वा सदसत् उभयरूप उपजताहै, तिसका किसीभी प्रकारसे जन्म संभवे नहीं । जैसे घट आपही तिसहीघटसे उपजता नहीं, तैसेप्रथम आपही अनुत्पन्न होनेसे अपने स्वरूपसे उपजता नहीं। जैसे घटसेपट अरु पटसे अन्यपट उपजता नहीं, तैसे अन्यसे अन्यभी उपजता नहीं । अरु जैसे घट अरुपट इन दोनों से घट वा पट उपजता नहीं, तैसे दोनोंसेभी कोईवस्तु उपजतानहीं । शंका । ननु, मृत्तिकासे घट उपजताहै अरु पितासे पुत्र उत्पन्नहोताहै । तब कैसेकहते हो जो उक्तप्रकार कुछभी उपजता नहीं । समाधान । तहांकहतेहैं 'मूढ पुरुषोंको' उपजताहै, ऐसाज्ञान अरु शब्दहै, यह तेरा कथन सत्यहै, तथापि सोईशब्द अरु ज्ञान विवेकी पुरुषों करके वे शब्द अरु ज्ञान क्या सत्यहै वा असत्य है, इसप्रकार यावत् परीक्षाकरते हैं तावत् वो मिथ्या है, क्योंकि तद्विषयक निश्चय नहीं । । इसप्रकार परीक्षाकियेहुये शब्द अरु ज्ञानका विषय घट पुत्रादिरूप जोवस्तुहै सो शब्दमात्रहीहै "वाचारंभणंविकारो नामधेयम्" "वाणी से उच्चारणकिया विकार कहनेमात्रही है" इसश्रुतिके प्रमाणसे । अतएव शब्द अरु ज्ञानको । अर्थात् शब्द अरु तदाश्रितज्ञानको । असत्यविषयत्वान्‌पना माननेके योग्य है अरु जबसत्‌है तब उपजता नहीं, क्योंकि सत्‌वस्तु उत्पत्तिमान् होतीनहीं ताते । मृतपिंडादिवत् । अरु जबअसत्‌है तोभीजन्मतानहीं (विद्यमान नहीं) क्योंकि शशशृंगवत् असत्‌है ताते । अरु जबसदसद्रूपहै तोभीजन्मतानहीं, क्योंकि तमप्रकाशवत् परस्पर

हेतुर्नजायतेऽनादेः फलञ्चापिस्वभावतः। आदिर्न विद्यते यस्य तस्य ह्यादिर्न विद्यते २३।१५०॥

विरुद्धरूपके एकवस्तुपनेका असंभव है ताते। एतदर्थ कुछभी वस्तु जन्मता नहीं, इति सिद्धम्॥ पुनः जिन बौद्धों के मत विषे उत्पत्तिरूप क्रियाही उपजतीहै, इसप्रकार क्रियाकारक अरुफल की एकता अरु वस्तुका क्षणिकपना अङ्गीकार किया है, एतदर्थ वेवादी दूरसेही युक्तिकरके रहित हैं, क्योंकि 'यह ऐसे है, इस निश्चयकी स्थितिका अन्यक्षण विषे अभाव है ताते, अरु अनुभव किये वस्तुकी स्मृतिका अभाव है ताते २२।१४६॥

२३।१५०॥ हे सौम्य! किञ्च, हेतु अरु फलके अनादिपने को अंगीकार करनेवाले तुम्ह वादी करके बलात्कारसे हेतु अरु फल की अनुत्पत्तिही अंगीकार की होगी। प्रश्न। कैसे अंगीकार की होगी। उत्तर। तहां कहते है "हेतुर्नजायतेऽनादेः फलं चापि स्वभावतः। आदिर्नविद्यते यस्य तस्य ह्यादिर्न विद्यते"। (आदिरहित से हेतु जन्मता नहीं अरु आदि रहित हेतु से फल भी स्वभाव से 'उपजता नहीं'। अरु जिसकी आदि नही तिसकी आदि विद्यमाननही; अर्थात् आदि रहित फल से। (अर्थात् जो फल 'देहादिक' आदि से है नहीं तिन से।) तिनसे हेतु (अदृष्ट) जन्मता नहीं, अरु आदि रहित हेतु से फल भी स्वभावसे (अपने आपसे) जन्मता नहीं। अरु जिस करके अनुत्पन्न हुये 'अनादि फल से' (अर्थात् जो उत्पन्नही नहीं हुआ ऐसे फल से) हेतुका जन्म, अरु आदि रहित अजन्मा हेतुसे फलभी स्वभावसेही (अर्थात् निमित्त विनाही) उपजता है इस प्रकार तुम्ह करके अङ्गीकार न किया होगा। ताते हेतु अरु फल के अनादिपने के अङ्गीकार करनेवाले तुम्ह करके हेतु अरु फलकी अनुत्पत्तिही अङ्गीकार किया है। एतदर्थ लोकविषे जिसका आदि (कारण) है नहीं तिसकी आदि (उत्पत्ति) है नहीं। अर्थात् कारण वाले वस्तु

प्रज्ञप्तेःसनिमित्तत्वमन्यथाद्वयनाशतः । सङ्क्लेश
स्योपलब्धेश्चपरतन्त्राऽसितामता २४ । १५१ ॥

की ही उत्पत्ति अंगीकार करते हैं, कारणरहित की नहीं । एत-दर्थ अनादिरूप इन हेतु अरु फलकी अनुत्पत्तिही सिद्ध हुई । इति सिद्धम् २३ । १५० ॥

२४ । १५१ ॥ हे सौम्य! [वस्तुके वास्तव करके जन्मके असं-भवसे एक अजन्मा विज्ञान घनमात्र तत्त्व है इसप्रकार कहा अब बाह्य अर्थके वाद को उठावते है] उक्तार्थ को ही दृढ़ करने की इच्छा से पुनः आक्षेप करते हैं " प्रज्ञप्तेः सनिमित्तत्वमन्यथा द्वयनाशतः " (प्रज्ञप्तिका निमित्त करके सहितपना है, अन्यथा द्वैतके नाशसे तिसका नाश प्राप्तहोवेगा) अर्थात् शब्दादिकों की प्रतीति रूप जो ज्ञान सो प्रज्ञप्ति है' तिस प्रज्ञप्तिका विषय रूप निमित्त (कारण) करके सहितपना (आपसे पृथक् विषयवान् पना) है, इसप्रकार हम प्रतिज्ञा करते हैं । ताते शब्दादिकोंकी प्रतीति रूप प्रज्ञप्ति विषय रहित होवे नहीं, तिसको विषय रूप निमित्त करके सहितपनाहे ताते । अतएव इस प्रज्ञप्तिको आपते भिन्न वस्तुरूप विषयवान्पना युक्तहै । अन्यथा (अर्थात् तिसको विषय रहितपने के हुये) शब्द स्पर्श नील पीत रक्तादिकोंके ज्ञानों की विषयता रूप द्वैतका अभावहै नहीं, क्योंकि सो प्रत्यक्ष है ताते । एतदर्थ ज्ञानो की विचित्रतारूप द्वैतके दर्शन से अन्य वादियों का शास्त्र परतन्त्र है, इस प्रकार अन्यों का जो शास्त्र तिसके परतन्त्र आश्रयरूप ज्ञानसे । भिन्न बाह्यार्थ की अस्तिता (विद्यमानता) माननी (हमको वांछित) है अरु प्रकाशवान् स्वरूप प्रज्ञप्तिका नील पीतादि बाह्य विषयोकी विचित्रता विना स्वाभाविक भेदसेही विचित्रपना संभवे नहीं, जैसे स्फटिक का नीलादिक उपाधिरूप आश्रयों के विना विचित्रपना घटे नहीं, तैसे, यह अभिप्रायहै । इस [बाह्यार्थविना अग्निकरके दाहआदिकों

प्रज्ञप्तेःसनिमित्तत्वमिष्यतेयुक्तिदर्शनात् । निमित्त स्यानिमित्तत्वमिष्यतेभूतदर्शनात् २५। १५२ ॥

केकिये दुःखकी प्रतीतिका असंभवहै ताते, बाह्यार्थहै, इस प्रकार करतेहैं।] अन्य हेतुसेभी परतन्त्र आश्रयरूप ज्ञानसे पृथक् बाह्यार्थकी अस्तिता (सद्भाव) है। अरु "सङ्क्लेशस्योपलब्धेश्चपरतन्त्राऽस्तितामता।" क्लेशकी उपलब्धि से परतन्त्रकी अस्तिता मानी है? अर्थात् क्लेश कहिये दुःख तिसकी प्रतीतिसे परतन्त्र की अस्तिता मानी है। जिसकरके अग्नि आदिक निमित्तका किया दुःख प्रतीति होताहै। अरु जब दाहाऽऽदिकों का निमित्त अग्नि आदिक बाह्यवस्तु, ज्ञानसे भिन्न न होय तो दाहादिकरूप दुःख प्रतीत न होना चाहिये, परन्तु सो प्रतीत होताहै, एतदर्थ तिस प्रतीति करके बाह्यार्थ है, इस प्रकार हम मानते हैं। अरु जिस करके विज्ञानमात्र विषे क्लेशयुक्त नहीं, अरु अन्य स्रक् चन्दनादिकोंके ठिकाने दुःखका अदर्शनहै ताते। अर्थात् अग्निदाहादिकों से क्लेशकी प्रतीतिहै ताते, अरु स्रक् चन्दनादिकों के ठिकाने दुःख का अदर्शनहै ताते। एतदर्थ ज्ञानसे भिन्न बाह्यार्थ के अभावहुये दुःख की प्रतीतिका अभाव है, ताते। ज्ञान से भिन्न बाह्यार्थ संभव है ताते। इत्यभिप्रायः २४। १५१॥

निमित्तं न सदा चित्तं संस्पृशत्यध्वसुत्रिषु। अनिमित्तो विपर्यासः कथं तस्य भविष्यति २७। १५४॥

कहिये भ्रम होवेगा, क्योंकि तिसकरके रहित विषे तिसकी बुद्धिरूप विपर्य्यास तिस प्रकार का है ताते, अरु विपर्य्यास के अंगीकार किये कहीं भी अविपर्यास काहिये अभ्रांति कहने के योग्यहै, क्योंकि अन्यथा ख्यातिवादियों करके भ्रान्तिकी अभ्रान्ति पूर्वक तिसका अंगीकार है ताते] अर्थाभास भी उक्त चित्तसे भिन्न है नहीं, किन्तु चित्त कहिये 'ब्रह्म' चैतन्य, ही घटादिरूप अर्थवत् भासता है। जैसे स्वप्नविषे भासता है तैसे २६। १५३॥

२७।१५४ हेसौम्य! [ज्ञानकोविषयरूपआश्रयकरकेसहितताके अभाव हुये तिसके तिसप्रकार होनेकी प्रतीति भ्रान्ति होवेगी, अरु भ्रान्ति जो है सो आभ्रान्तिरूप प्रतियोगी वालीहै,इसप्रकार अन्यथा ख्यातिके मतकी शंका लेके कहते हैं] शंका। ननु, तब चैतन्यको असत् घटादिकों विषे घटादिक की आभासतारूप विपर्यय (भ्रम) होवेगा,। अरु तैसे हुये कहिंक (किसी भी ठिकाने) अविपर्यक कहने को योग्यहै। अर्थात् जब चैतन्य को असत् घटादिकों विषे घटादिकों की आभासतारूप भ्रम होवेगा तब तिस भ्रमका प्रतियोगी जो अभ्रम सो भी किसी न किसी विषे कहने को योग्यही है। तहां उत्तर कहते हैं, [भ्रान्ति तो अन्यप्रकारसे भी होवेगी, इसप्रकार कहते हैं]" निमित्तंनसदाचित्तंसंस्पृशत्यध्वसुत्रिषु " (निमित्त तीनमार्गों विषे भी सदा चित्त (चैतन्य) को स्पर्श करता नहीं ; अर्थात् निमित्त जो है विषय सो भूत भविष्यत् अरु वर्त्तमानरूप इन तीन मार्गों (कालों) विषे भी चित्तारूय चैतन्य को स्पर्श करता नहीं, जब कहीं भी स्पर्श करे तब सो परमार्थ से अविपर्यय है। एतदर्थ तिस चित्तके स्पर्शकी आपेक्षा से असत् घटविषे घटका आभासरूप विपर्य्यास होवैहै, परन्तु सो चित्त (चैतन्य) का अर्थ (विषय) से कदाचित्भी स्पर्शहै

तस्मान्नजायतेचित्तंचित्तदृश्यंनजायते। तस्यपश्यन्तियेजातिंखेवैपश्यन्तितेपदम्, २८। १५५॥

नहीं "अनिमित्तो विपर्य्यासः कथंतस्यभविष्यति" (निमित्तरहित विपर्य्यास तिसको कैसे होवेगा? अर्थात् जब चैतन्यका अर्थसे स्पर्श किसीप्रकार भी नहीं; ताते निमित्तरहित तिस चित्तको विपर्य्यास कहिये भ्रान्ति कैसे होवेगी, किन्तु किसी प्रकारसे भी विपर्य्यास है नहीं। इत्यभिप्रायः। अरु यहही चित्त (ब्रह्मचैतन्य) का स्वभाव कहिये अविद्याहै कि जो घटादिरूप निमित्तके अविद्यमानहुये तद्वत् (विद्यमानहुयेवत्) भासना एतदर्थ अभ्रान्तिके अभावसे भ्रान्तिकेभी असम्भवहुये। अर्थात् जो जिसका सापेक्ष है सो तिसके अभावसे अभाव होताहै। ज्ञानकी असत् घटादिकों विषे घटादिकोंकी आभासरूपता निर्वाह करते हैं २७।१५४॥

२८। १५५॥ हे सौम्य! [इसप्रकार बाह्यार्थ वादी के पक्षको विज्ञानवादी के मतद्वारा निषेधकरके अब विज्ञानवादका भी निषेध करते हैं] "प्रज्ञप्तेः सनिमित्तत्वं" (प्रज्ञप्तिका निमित्त सहितपनाहै) इससे आदिलेके यहां पर्यन्त विज्ञानवादी जो बौद्ध तिसका बाह्यार्थ के वादीके पक्षके निषेध परायण वचनहैं, सो आचार्यने अनुमोदन किया। अब तिसही वचनको हेतुकरके तिस विज्ञानवादीके पक्षके निषेधार्थ यह कहते "तस्मान्न जायतेचित्तं चित्तदृश्यं न जायते" (ताते चित्त जन्मता नहीं। जैसे। चित्तका दृश्य जन्मता नहीं) अर्थात् जिसकरके विज्ञानवादीने असत्ही जो घटादिक तिसविषे चित्त (चैतन्य) को घटादिकों की आभासरूपता अङ्गीकार कियाहै सो हमोंने भी परमार्थ दृष्टि से अनुमोदन किया। अतएव तिस चित्तकी भी जन्मके अविद्यमान हुये ही जानने में आवनहार वस्तुकी आभासरूपता होनेको योग्यहै एतदर्थ चित्त कहिये चैतन्य जन्मता नहीं; जैसे चित्तका दृश्य जन्मता नहीं तैसे। एतदर्थ तिसही चित्तकरके देखने को अशक्य

अजातंजायतेयरमादजातिःप्रकृतिस्ततः । प्रकृतेरन्यथाभावोनकथञ्चिद्भविष्यति २९ । १५६ ॥

चित्तस्वरूपके धर्म्म, तिसकारणसे , क्षणिकता दुःखरूपता अरु अनात्मरूपता, इत्यादिकों को देखतेहुये "। तस्य पश्यन्ति येजातिं खेवैपश्यन्ति ते पदम् "। (जो तिसकी उत्पत्तिको देखते हैं सो आकाशविषे पादोंको प्रसिद्ध देखते हैं) अर्थात् जो विज्ञानवादी तिस चित्त । चैतन्य । की उत्पत्ति को देखते हैं सो आकाश विषे । अनहुये । पक्षि आदिकों के पादचिह्नों को प्रसिद्ध देखते हैं। एतदर्थ यह विज्ञानवादी अन्य द्वैतवादियों से भी अत्यन्त विचार शून्यहै । इत्यर्थः । अरु जे शून्यवादी हैं सो भी सर्वकी शून्यता को देखते हुयेही अपने सिद्धान्तको भी शून्यताकी प्रतिज्ञा करते हैं, सो आकाशको मूठी विषे ग्रहण करने की इच्छा करते हैं। अतएव सो शून्यवादी विज्ञानवादी की अपेक्षा तिससे भी अधिकतर विचार शून्यही है २८ । १५५ ॥

२९ । १५६ ॥ हे सौम्य ! "अजमेकंब्रह्मेति" (अजन्मा एक ब्रह्महै) इसप्रकार जो पूर्व प्रतिज्ञा कियाहै, तिसके कहेहुये हेतुओं से जो जन्मका अनिरूपण तिसकरके सो अजन्मा ब्रह्म सिद्ध हुआ । तिस सिद्धहुये अर्थके फलकी समाप्ति के अर्थ यह श्लोक है । [यहां यह अर्थ है कि, जब चैतन्यरूप स्फूर्ति अजन्मा इष्टहै, तब सो ब्रह्महीहै, क्योंकि सो एक कूटस्थ स्वभाव वाला है ताते । अर्थात् कूट नाम है लोहकार वा सुवर्णकार की ऐरन का कि जिसके आश्रय वो सर्व कार्यों को करते हैं अरु वो जहां जैसा है तहां तैसाही निर्विकार है, तद्वत् निरुपाधि निर्विकार एकरस चैतन्यको भी "कूटवत्तिष्ठतीति कूटस्थः" इस व्युत्पत्त्यर्थ से उसको कूटस्थ कहते हैं । सो पुनः वास्तवसे अजन्माही है, तथापि मायामे जन्मवान् होता भासे है, इसप्रकार जन कल्पना करते हैं, तब तिस कूटस्थ को अजन्मा होनेकरके

अनादेरन्तवत्त्वंचसंसारस्यनसेत्स्यति। अनन्तताचा
दिमतोमोक्षस्यनभविष्यति ३०।१५७॥

तिसकी अनुत्पत्तिही। अजन्मापनाही। प्रकृति कहिये स्वभाव होताहै] "। अजातंजायते यस्मादजातिः प्रकृतिस्ततः "। ६ जिसकरके अजन्मा जन्मता है, तिसकरके अनुत्पत्तिही प्रकृति है, अर्थात् अजन्माही जो चैतन्य ब्रह्म है सो जन्मता है, इसप्रकार वादियों करके कल्पनाकिया है। अरु जिसकरके सो चैतन्य ब्रह्म कूटस्थ, अजन्मा जन्मता है, एतदर्थ तिसकी अनुत्पत्ति प्रकृति कहिये स्वभावहै। ताते "। प्रकृतेरन्यथाभावो नकथञ्चिद्भविष्यति "। प्रकृतिका अन्यथाभाव किसी प्रकारसेभी होतानहीं, अर्थात् जाते चैतन्य ब्रह्मकी अनुत्पत्तिही स्वभाव, प्रकृति, है ताते सो अनुत्पन्नतारूप प्रकृतिका अन्यथाभाव कहिये उत्पत्ति, जन्म, किसी प्रकारसे भी होता नहीं॥ इति सिद्धम्॥ २६।१५६॥

३०।१५७॥ हेसौम्य! आत्माके विषे संसार अरु मोक्ष, इनके परमार्थसे सद्भावके माननेवाले वादियोंको यह दूसरादूषण कहतेहैं। पूर्वथानहीं, इस अवच्छेदसे रहित अनादि संसारकी अन्तवानता कहिये समाप्ति युक्तिसे सिद्ध न होगी। अरु जिस करके लोकविषे अनादिहुआ कोईभी पदार्थ अन्तवान् देखानहीं, एतदर्थ [यहां यह अनुमानहै कि विवादका विषय जोसंसार सोअन्तवान् हैनहीं क्योंकि आत्मावत् अनादि भावरूपहै ताते] यह अर्थ घटितहै॥ अरु जो ऐसाकहै कि बीज अरु अंकुरका हेतु अरु फल भावसे जो सम्बन्धहै, तिसके सन्तानके अनादि भावरूप हुयेभी तिसका अन्त देखते हैं ताते, संसारकी अनन्तताके साधने विषे 'अनैकान्तिकतेति' ‹अनादिहोनेसे› । यह जो हेतु कहा तिसको व्यभिचारवानता है। सो कथन बने नहीं, क्योंकि बीज अरु अंकुर के सम्बन्ध के संतानरूप वस्तुको एकरूपताके अभावकर के पूर्व इसप्रकरणके २० वें श्लोकसे निषेधकियाहै। अरु "। अनन्तताचा-

आदावन्तेचयन्नास्तिवर्त्तमानेऽपितत्तथा । वितथैः सदृशाःसन्तोऽवितथाइवलक्षिताः ३१ । १५८ ॥

दिमतो मोक्षस्यनभविष्यति ॥ (आदिवाले मोक्षकी भी अन्तता न होगी,अर्थात् तैसे ज्ञानकी प्राप्तिकालविषे उत्पत्तिरूपआदिवाले मोक्षकी अनन्तताभी न होगी, क्योंकि आदिवाले घटादिकों विषे अनन्तताको देखते नहीं । अरु जोकहे कि घटादिक नाशवान् हैं क्योंकि अवस्तुरूप हैं ताते, इसप्रकार मानेहुये दोष नहीं, । तो तैसाहोनेसे परमार्थसे मोक्षके सद्भावके प्रतिज्ञाकी हानिहोवेगी, अरु मोक्षको शशशृंगवत् असत् होतेही तिसके आदिवान्पनेका (ज्ञानसे उत्पत्तिका) अभाव होवेगा ३० । १५७ ॥

३१।१५८॥हेसौम्य! वादी कहताहै तब मोक्षको आदिअन्त वान्पना होहु,। तहां सिद्धान्ती कहताहै, "आदावन्तेचयन्नास्ति वर्त्तमानेऽपितत्तथा, वितथैःसदृशाःसन्तो ऽवितथाइवलक्षिताः" । (जो आदि अरु अन्तविषे नहीं है सो वर्त्तमानविषे भी नहीं, जैसे मिथ्यावस्तुके सदृशहुयेभी सत्यवत् जानते हैं, अर्थात् मृगजला-दिक वस्तुआदि अरु अन्तविषे हैनहीं सोअपने वर्त्तमानसमयभी तैसेही ,आदि अन्तवत्‌ही,हैनहीं । अथवा जोवस्तु अपने अभाव हुये है नहीं, सोअपनी उत्पत्तिसे पूर्वभी हैनहीं अरु जो अपनेआदि अन्तमें नहीं सो अपने वर्त्तमान कालमेंभी हैनहीं "अव्यक्तादीनि भूतानि" इत्यादि गीतोक्तिप्रमाणसे। जैसे यह दृष्टान्तहै तैसेमोक्षा-दिक पदार्थभी । सम्यक् ज्ञानकरके जन्य होनेसे । मिथ्यावस्तु के तुल्य है, तथापि उसको मूढ़ पुरुष सत्यवत् जानते हैं । । अर्थात् सत् शुद्ध स्वरूप आत्माविषे जो भ्रान्तिमात्र बंधहै सो अविवेकी को सत्यवत् भासताहै, तैसेही भ्रान्तिरूप बन्धका प्रतिपक्षी(सा-पेक्षिक) जो मोक्ष सोभी भ्रान्तिरूप असत् है तथापि सो भी अविवेकी पुरुषोंको सत्यवत् भासताहै । ३१ । १५८ ॥

३२।१५९॥हेसौम्य! शंका। ननु,मृगजलादिकोंसे स्नानपाना-

सप्रयोजनतातेषांस्वप्नेविप्रतिपद्यते । तस्मादाद्यन्त
वत्त्वेनमिथ्यैवखलुतेस्मृताः ३२ । १५९ ॥

दिरूप प्रयोजनकी अप्रतीति (असिद्धि) से सो मिथ्याहै, परन्तु मोक्ष अरु स्वर्गादिकों के सुखादिकों की प्राप्तिरूप प्रयोजन की प्रतीतिहै, ताते मोक्षादिकोंका मिथ्यापना नहीं, । यह शंकाकरके समाधान, कहते हैं "सप्रयोजनतातेषां स्वप्नेविप्रतिपद्यते" तिनकी सप्रयोजन सहितता स्वप्नविषे विपर्य्ययको पावती है, अर्थात् तिन मोक्षादिकोंकी सप्रयोजनता स्वप्नविषे विपर्य्ययको प्राप्तहोती है। अरु जैसे स्वप्नविषे देखहुये पदार्थोंकी विपरीतता(असत्यता) जाग्रत् विषे होती है। अर्थात् स्वप्नमें यह स्वप्नहै अरु मिथ्याहै ऐसी प्रतीत होतीनहीं अरु जब जाग्रतको प्राप्तहोताहै तब जाग्रत्से स्वप्नकी विपरीतता प्रतीतहोती है। तैसे जाग्रत्विषे देखहुवे पदार्थोंकी विपरीतता स्वप्नविषे होतीहै। अर्थात् जाग्रत्से विपरीत स्वप्न है अरु स्वप्नसे विपरीत जाग्रत् है इस कहने से स्वप्न विषे जाग्रत् नहीं अरु जाग्रत् विषे स्वप्न नहीं, अतएव ये दोनों परस्पर विपरीत व्यभिचारी होनेसे मिथ्याहैं। यह अर्थहै। अरु "तस्मादाद्यन्तवत्त्वेन मिथ्यैवखलुतेस्मृताः" तस्मात् आदि अन्तवान् होनेकरके तिनको निश्चयकरके मिथ्याही जानाहै, अर्थात् तिस जाग्रत् अरु स्वप्नके परस्पर विपरीत व्यभिचारीपने के दृष्टान्तों करके आदि अरु अन्तवान् होनेसे, विवेकी पुरुषों ने निश्चय करके मोक्षादि सर्व मिथ्याही जानेहैं। अर्थात् जाग्रत् अरु स्वप्नवत्, बंध अरु मोक्ष यहभी परस्पर विपरीत व्यभिचारी, अरुसापेक्षिक होनेसे मिथ्याहैं, अरु जैसे जाग्रत् स्वप्नका परस्पर व्यभिचारहै, तैसे उनका एकसाक्षी आत्मासे भी व्यभिचारहै, तैसेहीइन बन्ध अरु मोक्षका परस्पर, अरु अव्यभिचारी निर्पेक्ष सत्य एक रूप आत्मासे, व्यभिचारहै, ताते ज्ञानवानोंने इन बन्ध अरु मोक्ष दोनोंको निश्चयसे मिथ्याकरकेही जाना है। । अरु यद्यपि यह

सर्वेंधर्मामृषास्वप्नेकायस्यान्तर्निदर्शनात् । संवृत्ते ऽस्मिन्प्रदेशेवैभूतानांदर्शनंकुतः ३३ । १६० ॥

दोनोंश्लोक द्वितीय प्रकरणमें व्याख्या किये हैं, तथापि यहांबंध अरु मोक्षके अभावके प्रसंगसे पुनः पठनकिये हैं, ताते यहां पुनरुक्तिदोप विचारणीय नहीं ३२ । १५६ ॥

३३।१६० हे सौम्य ! "निमित्तस्यानिमित्तत्वमिष्यतेभूतदर्शनात्" "परमार्थके देखनेसे निमित्तका अनिमित्तपना हमों करके अंगीकार कियाहै, यह २५ वें श्लोकविषे कथनकिया, जो अर्थसो अब इन श्लोकोंसे विस्तारित करते हैं । [जिस हेतुकरके स्वप्नका मिथ्यापना इष्टहै तिस हेतुको जाग्रत् विषेभी तुल्यहोनेसे । जाग्रत् काभी मिथ्यापना इष्टकरके । अजन्मा (जन्मादि विकार रहित) ज्ञानमात्र तत्त्वही अंगीकार करनेयोग्यहै, इस कहनेके अभिप्राय से कहतेहैं] "सर्वेधर्म्मामृषास्वप्ने कायस्यान्तर्निदर्शनात्" "स्वप्न विषे सर्वधर्म्म मिथ्याहै शरीरान्तर होनेसे" अर्थात् जब शरीरान्तरहोनेसे स्वप्नके सर्व पदार्थ असत्य हैं, तब विराट् के शरीरान्तर सर्व जगत्के देखनेसे तिसका मिथ्यापना निवारणकरनेको शक्य नहीं । अर्थात् बृहदारण्यक उपनिषद् विषे, शरीरके अन्तर एक खड़े केशके सहस्रवें भाग प्रमाण हिताना म्नि नाड़ियांहैं तिनमेंसे एकनाड़ी के अन्तर स्वप्नजगत् भासता है, परन्तु स्वप्नके पर्वत सागरादि सहित जगत् के होने प्रमाण देशकाल वस्तुका अति संकोच अभाव होनेसे, अरु तिस नाड़ी के अन्तर भी महासूक्ष्म आत्माकी पूर्णता से, एकठिकाने दोवस्तु रहे नहीं इस न्यायसे, उस नाड़ीके अन्तरस्थानादिकों के अभावसे वहां भासमान जो स्वप्नजगत् सो भ्रान्तिमात्र होनेसे असत्है । तैसेही इस जाग्रत् जगत्को विराट्के शरीरान्तर होनेसे अरु तहांभी इस व्यष्टिशरीरवत् देशकालादिकोंके संकोचसे अरु चैतन्य आत्माकी पूर्णव्याप्तिसे यहदृश्यमान जो जाग्रत् जगत् तिसकोभी भ्रान्तिरूपहोने

नयुक्तंदर्शनंगत्वाकालस्यानियमाद्गतौ । प्रतिबुद्ध-श्चवैसर्वस्तस्मिन्देशेनविद्यते ३४। १६१॥

से तिसका मिथ्यापना निवारण करनेको शक्य नहीं। अरु जो ऐसा कहो कि यह समस्त जाग्रत् जगत् विराट्का वपुहै, विराट् के शरीरान्तर स्वप्नवत् नहीं, ताते असत्भी नहीं, । तो श्रवणकरो हे सौम्य! आकाशसे भी महासूक्ष्म आत्मतत्त्व घनशिलावत् पूर्णतासे व्याप्त है, उससे खालीस्थान जगत्के रहनेको कोई नहीं, अरु एकेठिकाने दोवस्तु रहेनहीं इसन्याय प्रमाण देखने से उस परिपूर्ण अखंड चैतन्यविषे उससे रीते स्थानके अभावसे आकाशादि सर्व जगत् उस अधिष्ठान तत्त्वविषे रज्जुमें सर्पवत् अध्यस्त होने से भ्रान्तिरूप असत्यही निश्चयकरने के योग्यहै। यह अर्थ है, किंवा, जब योग्य देशके अभावसे स्वप्नका मिथ्यापना दृष्ट है, तब प्रत्यगात्मा से अभिन्न अखंड एक रस अवकाश रहित इस ब्रह्मरूप देशविषे प्रसिद्ध विद्यमान वस्तु का दर्शन कहांसे होगा, किन्तु ब्रह्मको आपसे इतर अवकाश रहित होनेसे किसी प्रकारसे भी, उसविषे अन्यका दर्शन बनेनहीं, । अरु जिस करके स्थान विना जगत्का दर्शन होता है, तातेस्थान विनाके स्वप्नवत् जाग्रत् जगत् भी मिथ्या है। यह इसका अर्थ है ३३। १६०॥

३४। १६१॥ हे सौम्य! अब उक्तार्थको ही वर्णन करते हैं "नयुक्तंदर्शनंगत्वा कालस्यानियमाद्गतौ" (गति विषे काल के अनियमसे जायके दर्शनयुक्तनहीं) अर्थात् जैसे स्वप्नबिषे देशान्तर को जाने में कालके अनियमसे देशान्तरको जायके देखना युक्त नहीं। अर्थात् स्वप्नमें जो अनेक योजनोंके अन्तरवाले देशान्तर वा द्वीपान्तरको अरु तहांके पदार्थोंको पुरु देखताहै सो शरीरसे बाह्य उन देशान्तर वा द्वीपान्तरमें जायके देखता नहीं क्योंकि जाग्रत्को त्यागके स्वप्नको प्राप्त होने के मध्य इतना दीर्घ काल नहीं जो उन देशान्तरके प्राप्त होने में चाहिये, किन्तु शनैःशनैः

जाग्रत्की निवृत्ति अरु स्वप्नकी प्रवृत्ति प्रायः समकालही होती है, अरु तैसेही स्वप्नकी निवृत्तिके समकालही जाग्रत्की प्राप्ति होती है ताते जाग्रत्से स्वप्नमें जाने अरु स्वप्नसे जाग्रत्में आवने के मध्य इतना दीर्घ काल नहीं जो स्वप्नमें देहसे बाह्य देशान्तर को जाय अरु आवे । तैसे जाग्रत् विषे भी मरणोत्तर अर्चिरादि मार्गसे जायके ब्रह्मका दर्शन युक्त नहीं, क्योंकि ब्रह्म जो है सो काल, अरु देश, के अवच्छेदसे रहितहै । अर्थात् यहां जो स्वप्नके दृष्टान्तसे, जाग्रत्विषे मरणोत्तर अर्चिरादि मार्ग से जायके ब्रह्म के दर्शन युक्त नहीं ऐसा कहाहै सो अस्तु परन्तु अर्चिरादि उत्तरायण मार्ग के साधनेवालेको, ब्रह्मात्माके अभेद ज्ञानीवत् शरीर से उत्क्रमण (निकसे) विना यहांहीं "ब्रह्मैवसन्ब्रह्माप्येति" निर्विशेष ब्रह्म भावकी प्राप्तिवत्, ब्रह्म प्राप्ति नहीं, किन्तु उसको अर्चिरादि क्रमसे ब्रह्मलोक प्राप्तिहै, ताते उसका मरणोत्तर बाह्य गमन युक्तहै "यचेमेऽरण्ये श्रद्धातपइत्युपासते तेऽर्चिषमभिसम्भवत्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाण यदमापूर्य्यमाणपक्षाद्यान् षडुदङ्केतिमासांस्तान् । मासेभ्यःसंवत्सरं संवत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसोविद्युतं तत्पुरुषोमानवःसएनां ब्रह्म गमयत्येषदेवयानःपन्था इति"; "तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेतीति" इत्यादि प्रमाण से अर्चिरादिकों के उपासकको साक्षात् मोक्ष प्राप्ति न होयके उसको सुषुम्णानाड़ीके मार्ग देहसे उत्क्रमणहोय देवयान मार्गकी रीतिसे ब्रह्मलोक प्राप्ति अरु ब्रह्माके साथ सापेक्षिक मोक्ष है, ॥ किंवा ॥ "प्रतिबुद्धश्चवैसर्व्वस्तस्मिन्देशे नविद्यते" (सर्वजन प्रबोधको पाया हुआ तिस देशविषे विद्यमान होता नहीं) अर्थात् जैसे सर्वजन जिस देशविषे स्थितहोय सोयेहुये स्वप्नोंको देखते हैं सो पुनः प्रबोध (जाग्रत्) को पाय के तिस देशविषे कि जिन देशान्तर वा द्वीपान्तरोंको स्वप्नमें देखताहै, स्थित होतानहीं । इसप्रकार होने से स्वप्नका मिथ्यापनाही वांछितहै । तैसे जाग्रत्विषे भी जिस देहरूप देशविषे स्थित

मित्राद्यैःसह सम्मन्त्र्य सम्बुद्धो न प्रपद्यते। गृहीतञ्चापि यत्किञ्चित् प्रतिबुद्धो न पश्यति ३५। १६२॥

हुआ पुरुष संसारको अनुभव करताहै, पुनः ब्रह्मभावको पाया हुआ तिस देहरूप देशविषे स्थित नहीं है, क्योंकि परिपूर्ण ब्रह्मरूप होयके स्थित हुआहै। एतदर्थ जाग्रत्का भी मिथ्यापना अंगीकार करने योग्यहै॥ इस श्लोक का तात्पर्य्यरूप अर्थ यहहै कि जाग्रत्विषे गमनागमनके काल जो नियमितहैं अरु जो देश प्रमाणसे हैं, तिनके नियमसे स्वप्नविषे देशान्तरको गमन होवे नहीं, किन्तु देहके भीतर देशान्तरादि प्रपंच देखते हैं, तैसे जाग्रत्विषे भी घटित हैं, याते तिन। जाग्रत् अरु स्वप्न। दोनों को तुल्यहोने से, उन दोनोंका मिथ्यापनाभी तुल्यहीहै ३४। १६१॥

३५। १६२॥हे सौम्य! [जैसे स्वप्नविषे विसंवादसे, अर्थात् निष्फल प्रवृत्तिके जनक भ्रमरूपतासे, अप्रमाणपनां इच्छितहै, तैसे ही जाग्रत्विषेभी ब्रह्मवादियोंके साथ मिल विचारकरके अविद्या निद्रासे सम्यक्प्रकार प्रबोधको पाया जो पुरुष, सोपुरुष, परम श्रेय, हमोंकरके साधनेयोग्यहै, वा नहीं। इसप्रकार विचार किये मोक्षके साध्यभावको जानता नहीं। अर्थात् ब्रह्मवेत्ताओंका सत्संगी सम्यक् विचारवान् आत्मानुभावि पुरुष, मोक्ष हमों करके साधनेयोग्यहै इस भावको जानता नहीं। क्योंकि, उसको सत्संगके प्रभाव से आत्माकी एकता के अनुभवहुये सर्वकी नित्य मुक्तताका निश्चयहै ताते। एतदर्थ मुमुक्षुपना अरु श्रवणादिसाधनोंकी कर्त्तव्यता भ्रान्तिसेंही है, इसप्रकार कहते हैं] "मित्राद्यैःसह सम्मन्त्र्य सम्बुद्धो न प्रपद्यते, गृहीतञ्चापि यत्किञ्चित् प्रतिबुद्धो न पश्यति" (मित्रादिकोंकेसाथ गुप्तभाषणकरके प्रबोधको पाया हुआ पावतानहीं, अरु ग्रहणकिये जिस किसीकोभी देखता नहीं) अर्थात् स्वप्नविषे मित्रादिकोंके साथ गुप्त भाषण करके प्रबोधको पायाहुआ पावता नहीं। अरु [किंवा स्वप्नवत् अनुभवकिये उप-

स्वप्ने चावस्तुकः कायः पृथगन्यस्य दर्शनात् । यथा कायस्तथा सर्वं चित्तदृश्यमवस्तुकम् ३६ । १६३ ॥

देशादिकों को विद्वान् देखता नहीं, क्योंकि तिस विद्वान् करके साध्य फलका अभावहै, [उससे श्रेष्ठ अरु अन्य कुछभी न होनेसों इसप्रकार कहते हैं] ग्रहणकिये जिसकिसको । अर्थात् स्वप्नविषे ग्रहणकिया जो कुछ। सुवर्णादिपदार्थ तिनकोभी देखता (पावता) नही, अरु गयाहुआ देशान्तरके ताईं जातानहीं । अर्थात् स्वप्न विषे जिन देशान्तरको जाता है, तिन देशान्तरको जाग्रत् हुआ जातानहीं ३५ । १६२ ॥

३६ । १६३ ॥ हे सौम्य ! [किंवा स्वप्नावस्था विषे जिस शरीर करके नदी अरण्यादिकोंविषे विचरता है, सो मिथ्या है, क्योंकि तिस स्वप्नगत देहसे भिन्न निश्चल जाग्रत्‌गत शरीर को देखतेहैं, तैसे जाग्रत् विषे भी जिस संन्यासी आदिक शरीरसे लोकोंकरके पूजने योग्य वा द्वेषकरने योग्य देखते हैं, तिसको मिथ्या कहते हैं, क्योंकि तिस शरीरसे पृथक् ब्रह्मनामवाला कूटस्थरूप शरीर का यथार्थ अनुभवहै ताते, इसप्रकार कहते हैं] "स्वप्ने चावस्तुकः कायः पृथगन्यस्य दर्शनात्" [स्वप्नविषे जो शरीर है सो अवस्तु रूप है, अन्य से पृथक् देखने से] अर्थात् स्वप्नविषे अरण्यादिकों में भ्रमताहुआ जो शरीर देखते हैं सो अवस्तुरूप है, क्योंकि तिस स्वप्न के शरीर से पृथक् जाग्रत् का शरीर देखते हैं ताते "यथा कायस्तथा सर्वं चित्तदृश्यमवस्तुकम्" [जैसे शरीर तैसे चित्त का दृश्य सर्व अवस्तुरूप है] अर्थात् जैसे स्वप्नका दृश्य शरीर असत् है तैसे जाग्रत् विषे भी सर्व चित्तका दृश्य अवस्तुरूपही है, क्योंकि चित्तका दृश्य (कल्पित है ताते । अरु स्वप्न के तुल्य होने से जाग्रत् भी असत्यही है, ऐसा इस प्रकरण का अर्थ है ३६ । १६३ ॥

३७ । १६४ ॥ हे सौम्य ! [जैसे जाग्रत्‌को अनुभव करते हैं,

ग्रहणाज्जागरितवत्तद्धेतुः स्वप्न इष्यते । तद्धेतुत्वात्तु तस्यैव सज्जागरितमिष्यते ३७। १६४॥

तैसे स्वप्न को भी अनुभव करते हैं। अरु स्वप्न को जाग्रत्‌का कार्य्य होनेसे जो स्वप्नका द्रष्टा है तिसहीका जाग्रत् । स्वप्नरूप कार्य हुआ विद्यमान है अरु स्वप्न असत् है । एतदर्थ स्वप्नवत् जाग्रत् का मिथ्यापनाही है । इस प्रकार कहते हैं] इस कहने के हेतु से भी जाग्रत् की वस्तुका असतपना है । "। ग्रहणाज्जागरित वत्तद्धेतुः स्वप्न इष्यते "। (जाग्रत्‌वत् ग्रहणसे तिस हेतुवाला स्वप्न अंगीकार करते हैं; अर्थात् जाग्रत्‌वत् ग्राह्य ग्राहक रूपसे स्वप्नके ग्रहणसे तिस जाग्रत्‌रूप हेतुवाला (जाग्रत् का कार्य) स्वप्न अंगीकार करते हैं, [किंवा, जाग्रत्‌का अनेक पुरुषों को साधारण होने रूप जो विद्यमानपनाहै सो वास्तवसे है नहीं; क्योंकि स्वप्न का कारण है ताते, किन्तु तैसे अनेक को साधारण होनेवत् भासमानपना है, इसप्रकार कहते हैं] तिस हेतुवाला होने से (जाग्रत्‌का कार्य होनेसे) तिसही स्वप्नके द्रष्टाको जाग्रत् सत्य अंगीकार करते हैं, अन्योंका नहीं ' जैसे स्वप्न है, । [प्रमाता के होते बाध्य होनेरूप स्वप्नका मिथ्यापना है, अरु जाग्रत् को पुनः तिस बाध्यहोने की अप्रतीति से परमार्थ से सत्पना है, अरु कार्य को मिथ्यापने के हुये कारणको भी मिथ्यापना है, इस विषे प्रमाणके अभावसे सर्वको साधारण अरु विद्यमान जो जाग्रत् सो मिथ्याहोने के योग्य नहीं । यह शंकाकरके कहते हैं] यह अभिप्रायहै। जैसे स्वप्नजो है सो स्वप्नके द्रष्टाकोही सत्य है (अर्थात् साधारण विद्यमान वस्तुवत् भासता है, तैसे तिस जाग्रत् रूप कारणवाला होनेसे तिस स्वप्नका स्वप्नके द्रष्टाकोही साधारण विद्यमान वस्तुवत् भासताहै, परन्तु साधारण विद्यमान जो वस्तु है सो स्वप्नवत् है नहीं । यह इसका अभिप्रायहै ३७। १६४॥

३८। १६५॥ हे सौम्य! [स्वप्न अरु जाग्रत् के कार्य्य कारण

उत्पादस्याप्रसिद्धत्वादजंसर्व्वमुदाहृतम् । नचभूता दभूतस्य संभवोस्ति कथञ्चन ३८ । १६५ ॥

भावके हुये भी दोनोंका मिथ्यापना तुल्य नहीं 'क्योंकि सो परस्पर अत्यन्त विलक्षणहै । यह शंकाकरके कहते हैं] शंका। ननु, जागृत्के पदार्थको स्वप्नकी कारणताके हुये तिस । जागृत्के पदार्थ । का स्वप्नवत् अवस्तुपना न होवेगा, क्योंकि जिसकरके स्वप्न अत्यन्त अस्थिर है अरु जागृत्को स्थिर देखते हैं, अतएव तिनकी परस्पर विलक्षणता है ताते । तहां । समाधान । कहते हैं । हे वादी! तिसप्रकारका अनुभव अविवेकी पुरुषोंको होता है, यह तेरा कथन सत्य है, परन्तु विवेकी पुरुषोंको तो किसी भी वस्तुकी उत्पत्ति प्रसिद्ध है नहीं "। उत्पादस्याप्रसिद्धत्वादजं सर्व मुदाहृतम् ।" [उत्पत्तिको अप्रसिद्धहोने से सर्व अजन्मा कहाहै] अर्थात् विवेकी पुरुषोंको किसी भी पदार्थकी उत्पत्ति प्रसिद्ध नहीं, एतदर्थ उत्पत्तिको अप्रसिद्धहोनेसे अज आत्माही सर्व है "सबाह्याभ्यन्तरोह्यज." 'बाहर भीतर सहित है अरु अजन्मा है' इस श्रुतिके प्रमाणसे । इसप्रकार वेदान्तों विषे सर्व अजन्माही कहा है । अरु सत्रूप जाग्रत्से असत्रूप स्वप्न उपजाता है, इस प्रकार तू मानताहै, तथापि सो । जाग्रत् । असत्ही है । क्योंकि "। नच भूतादभूतस्य संभवोस्ति कथञ्चन ।" विद्यमान से अविद्यमानका किसीप्रकार से भी संभव नहीं] अर्थात् विद्यमान पदार्थ से अविद्यमान वस्तुका किसीप्रकार से भी संभवहोना संभवे नहीं । अरु लोक विषे असत्यरूप शशशृंगादिकों का किसीप्रकार से भी संभव होतानहीं अरु देखा भी नहीं ३८ । १६५ ॥

३९ । १६६ ॥ हे सोम्य! । शंका । ननु, हे सिद्धान्ति! तूनेही तो ३७ वें श्लोकविषे स्वप्न जाग्रत्का कार्य्य है इसप्रकार कहाहै तब उत्पत्ति अप्रसिद्ध है ऐसा कैसे कहता है, । तहां समाधान कहते हैं, हे वादी । जिसप्रकार कार्य कारणभाव हमोंकरके कहने को

असज्जागरिते दृष्ट्वा स्वप्ने पश्यति तन्मयः। असत् स्वप्नेऽपि दृष्ट्वा च प्रतिबुद्धो न पश्यति ३९। १६६॥

नास्त्यसद्धेतुकमसत्सदसद्धेतुकन्तथा। सच्चसद्धेतुकं नास्तिसद्धेतुकमसत्कुतः ४०।१६७॥

इच्छितहै, तैसे कहतेहैं, सो तू सावधानहोय श्रवणकर "। असज्जागरितेदृष्ट्वा स्वप्ने पश्यति तन्मयः "। [जाग्रत् विषे असत्को देखके तन्मय हुआस्वप्नविषेदेखताहै]अर्थात् असत् (रज्जुसर्पवत्कल्पित) वस्तुको देखके तिसके भावकी भावना करके युक्त 'वा तिस असत् वस्तुके ज्ञानके दृढ संस्कार करके युक्त ' तन्मय हुआ पुरुष जाग्रत्वत् स्वप्नविषे ग्राह्य अरु ग्राहक (विषय अरु इन्द्रिय) रूप से कल्पना करता हुआ देखताहै, [जैसे जाग्रत् विषे देखेहुये प्रपञ्चको स्वप्नविषे देखने से जाग्रत्की वासनाके आधीन जो स्वप्न सो जाग्रत् का कार्य होने करके व्यवहार करते हैं, तैसे स्वप्नविषे देखेहुये प्रपंचको जाग्रत्विषेभी देखनेसे जाग्रत्को तिस स्वप्नका कार्यपना सिद्ध होता है, यह शंका करके श्लोकके उत्तरार्द्ध को कहते हैं (व्याख्यान करते हैं)] तैसे "। असत्स्वप्नेऽपि दृष्ट्वा च प्रतिबुद्धो न पश्यति"। (स्वप्नविषे असत्को देखके जाग्रत्को प्राप्त हुआ देखता नहीं) अर्थात् 'जैसे जाग्रत्के असत् पदार्थों में तन्मय हुआ स्वप्नविषे तिनको देखताहै, तैसे स्वप्नविषे भी असत् अविद्यमान, वस्तुको देखके जाग्रत् को प्राप्तहुआ पुरुष कल्पना न करताहुआ देखता नहीं, अरु तैसे कदाचित् जाग्रत् विषे भी देखके स्वप्नविषे नहीं देखताहै, यहअर्थ श्लोकके चकारसे बोधित है। ताते विशेषकरके स्वप्नको जाग्रत्की वासनाके आधीनहोने से, जाग्रत्को स्वप्नका हेतुहै इसप्रकार कहते हैं, परन्तु सो। जाग्रत्। परमार्थसे सत्यहै ऐसेकरके कहते नहीं ३९। १६६॥

४०।१६७॥ हे सौम्य! [व्यवहार दृष्टिसे जाग्रत् अरु स्वप्नका कार्य कारणपना कहा, अरु वास्तवदृष्टिसे तो कहीं भी कार्य्य का-

रणपनाहै नहीं । इसप्रकार कहतेहुये वस्तुके अज्ञानसे अवस्तुही कार्यहोताहै,ऐसे कहनेवालेके मतका निषेध करतेहैं,] परमार्थसे तो किसीका भी किसीभी प्रकारसे कार्य कारणभाव संभवता नहीं । प्रश्न । कार्य कारणभाव कैसे नहीं संभवे है, । उत्तर । तहां प्रथम , जो वस्तुके अज्ञानसेंही अवस्तुरूप कार्य होता है, ऐसे माननेवाले पुरुषोंप्रति कहते हैं " नास्त्यसद्धेतुकमसत् सद सद्धेतुकन्तथा " [असत् हेतुवालेको असत् कहते हैं सो है नहीं, सत् असत् हेतुवाला है नहीं] अर्थात् असत् जो शशशृंगादिक सो जिस असत्काही कारण हे ऐसे जे आकाशके पुष्पादिक तिनको असत् हेतुवाला असत् कहतेहैं सो है नहीं । अरु शून्यवादी तो । "असतः सज्जायते " इस विकल्पकी श्रुति प्रमाण से । शून्यसेही सत्रूप कार्यहोता हे इसप्रकार मानते हैं, अब तिनके प्रति कहते हैं, जैसे सत् , विद्यमान, घटादिरूप वस्तु भी असत् हेतुवाला । अर्थात् शश शृंगादिकोंका कार्य । होतानहीं । अर्थात् अभाव (असत्) रूप जे शशाके शृंग (सींग) तिसका कार्य भावरूप , सत्य, धनुष किसीने भी कहीं भी किसी कालविषे भी देखानहीं, ताते अभावरूप शून्य कारणसे भावरूप सत्य कार्यकी उत्पत्ति कहनी माननी असत्ही है ॥ अब कारण अरु कार्य्य दोनों के सद्भाव के माननेवाले जे सांख्यादि वादी तिनके प्रति कहते हैं "सच्च सद्धेतुकं नास्ति सद्धेतुकमसत्कुतः " [, सत्, सत् हेतुवाला नहीं, तब सत्रूप हेतुवाला असत् कैसे होगा, कदापि होता नहीं,] अर्थात् । सांख्यवादी कारण-प्रधान अरु तिसका कार्य सूक्ष्म-स्थूल प्रपंच, इन दोनोंविषे सद्भाव मानतेहैं कि सत् कारण से सत् कार्य्य होताहै। तिनके प्रति कहतेहें, जैसे सत् , विद्यमान घटादिक सत् हेतुवाला । अर्थात् अन्य सत्वस्तुका कार्य नहीं । । अर्थात् सत् उसको कहतेहैं जो उत्पत्त्यादि रहित काल-त्रयअबाध्य- सदा एकरसरहे-सो सत् , अरु प्रधान कार्यरूप से उत्पन्न होनेवाला ताते सत् नहीं, अरु कार्य अपनी उत्पत्तिसे पूर्व

अरु लयके पश्चात् अभावरूप होनेसे उत्पत्ति अभाववालाहुआ कदापि सत् होनेके योग्य नहीं, ताते कार्य, कारण उभय विसत् भावनाके करनेवालेका मत सत् नहीं। अब कोई एकवादी इस मिथ्या प्रपंचरूप सृष्टिका सत्रूप ब्रह्मकारण है। (अर्थात् सत्रूप ब्रह्मसे यह मिथ्यासृष्टि उत्पन्न होती है, इसप्रकार वर्णन करते हैं, तिनके प्रतिनिषेधकरते हैं कि, तैसे सत्रूप हेतुवाला (सत्काकार्य) कैसे संभवेगा। किन्तु कदापि नहीं। अर्थात् जो सत् होताहै सो कार्य भावको प्राप्तहोता नहीं क्योंकि एकरस सत्रूप है ताते, अरु सत्से असत्कार्य, अर्थात् सत्का कार्य असत् होतानहीं क्योंकि कारण सद्रूप है, अरु कार्यरूप प्रपंच असत् है, ताते सो सत्का कार्य होने के योग्य नहीं, ताते सत् रूप ब्रह्म अरु असत् प्रपंच इनका कार्य कारण भाव युक्तनहीं। अरु जो कहो कि "सदेवसौम्येदमग्रआसीत" इत्यादि श्रुतियोंने इस सृष्टिका कारण सत्कहा है, तो तिन श्रुतियों का तात्पर्य कार्य्या कारण भाव कहने का नहीं किन्तुएक अद्वैत आत्मतत्त्व के प्रकाशनार्थ है, क्योंकि "वाचारम्भण विकारो नामधेयं" इत्यादि श्रुतियोंने कार्यको वाचारम्भण (कहने) मात्रही कहाहै पृथक् सत्तावाला नहीं, ताते "मृत्तिकेत्येवसत्यं"। एकमृत्तिका ही सत्यहै, इस दृष्टान्तसे एकसर्वाधिष्ठान सत्आत्माही सत् है, ऐसे कहके "एतदात्म्यमिदꣳसर्वं तत्सत्यꣳ सआत्मा तत्त्वमसि" इस उपदेश से कार्य्याकारण भाव भेद रहित एक अद्वैत आत्मतत्त्व प्रकाशित किया है॥ ताते सत्रूप ब्रह्मका असत्रूप सृष्टिकार्यहै यह कथन अयुक्तहै।॥ अरु अन्यप्रकारका कार्यकारण भाव सम्भवे नहीं, वा कल्पनाकरनेको शक्य नहीं, एतदर्थ विवेकी पुरुषोंको किसीभी वस्तुका कार्य्याकारण भाव सिद्ध नहीं॥ इत्यभिप्रायः॥ ४०। १६७॥

॥ ४१। १६८॥ हे सौम्य! पुनःभी असत्रूप जाग्रत् अरु स्वप्नके पदार्थों से कार्य कारण भावकी शङ्काको अन्य हेतुसे दूरकरतेहुये

विपर्य्यासाद्यथा जाग्रदचिन्त्यान् भूतवत् स्पृशेत् । तथा स्वप्ने विपर्य्यासाद्धर्म्मांस्तत्रैव पश्यति ४१ । १६८ ॥

उपलम्भात् समाचारादस्तिवस्तुत्ववादिनाम् । जातिस्तु देशिताबुद्धैरजातेस्त्रसतां सदा ४२ । १६९ ॥

कहते हैं "विपर्य्यासाद्यथाजाग्रदचिन्त्यान् भूतवत् स्पृशेत्" "जैसे जाग्रत्विषे विपर्य्याससे अचिन्त्य परमार्थवत् स्पर्शकरता है" अर्थात् जैसे कोईपुरुष जाग्रत्विषे विपर्य्यास कहिये अविवेक से अचिन्त्य कहिये चिन्तन करनेको अशक्य, रज्जु सर्पादिक पदार्थोंको परमार्थवत् स्पर्श करता है । अर्थात् स्पर्श करतेहुयेवत् विकल्प करताहै "तथा स्वप्ने विपर्य्यासाद्धर्म्मांस्तत्रैव पश्यति" "तैसे स्वप्नविषे विपर्य्याससे धर्मोंको तहांहीं देखताहै" अर्थात् जैसे जाग्रत्विषे तैसे स्वप्नविषे विपर्य्यास (अविवेक) से हस्तिअश्वादि पदार्थोंको तहांहीं (अपने अन्तरजहां स्वप्नके पदार्थयोग्यस्थान का अभाव है) देखता है, । अर्थात् देखेहुयेवत् कल्पना करता है, परन्तु जाग्रत् से उत्पन्नहोनेवालेको देखतानहीं ४१ । १६८ ॥

४२।१६९॥ हे सौम्य ! [वास्तव दृष्टिसे कार्यकारण भावके अप्रसिद्धहुये "जन्माद्यस्य यतः" , इस जाग्रत्के जन्मादिक जिस से होते हैं, इत्यादि वेदान्त शास्त्र व्याससूत्रोंकरके ब्रह्मको जगत् काकारण कैसे सूचितकिया है, ।यह शङ्काकरके कहते हैं] "उपलम्भात् समाचारादस्तिवस्तुत्ववादिनाम् , जातिस्तुदेशिताबुद्धैरजातेस्त्रसतां सदा" "उत्पत्ति उपालम्भसे अरु सम्यक् आचरण से, ऐसे कहनेके स्वभाववाले अरु अनुत्पत्ति से सदा भयके पावनेवाले के अर्थ उपदेशकिया है" अर्थात् व्यासादिक अद्वैतवादी पण्डितोंने जो जगदुत्पत्ति कही है (उपदेशकियाहै) सो तो उपालम्भ,द्वैतकी प्रतीति,से। अरु वर्णाश्रमादिक धर्म्मके सम्यक् आचरणसे। इनदोनों हेतुओं से "वस्तुभावमस्ति" ,द्वैतका वस्तुभाव है, इसप्रकार कहने के स्वभाववाले वस्तुवादी, श्रम जगत् की

अनुत्पत्तिसे सदाभयके पावनेवाले दृढ़ आग्रही कर्मादिकोंविषे श्रद्धावान् मन्दविवेकियोंकेअर्थ [कार्यकारण भावको अंगीकारकरके जन्मके उपदेश करनेवाले अद्वैतवादियों का उपदेश मन्द विवेकियों विषे विवेकी दृढ़ता का उपाय होने करके कैसे होवेगा, यह शङ्का करके तब कहते हैं] वो (कर्म्मवादी मन्द विवेकी) तिस उत्पत्तिको प्रथम गृहणकरो, परन्तु पश्चात् वेदान्तके अभ्यासियों को अजन्मा अद्वय आत्मा को विषय करनेवाला विवेक स्वतःहीहोवेगा " वेदान्ताभ्यासिनान्तुस्वयमेवाजाद्वयात्मविषयो विवेको भविष्यतीति" इसप्रकार दृढ़विवेक का उपाय होनेकरके, उपदेश करते हैं, परन्तु परमार्थ बुद्धि से नहीं । अरु जिसकरके वे (कर्म्मवादी) अविवेकी पण्डित स्थूल, बहिर्मुख, बुद्धिवाले होने से, अनुत्पन्नहुये वस्तुसे अपने विनाशको मानतेहुये सदा भयकोही पावने हैं, एतदर्थ तिनके लिये सूत्रकारादिक पण्डितों की प्रवृत्ति उचितहै। यह अर्थ है (अर्थात् कर्म्मवादी आदिकजे बहिर्मुखवृत्तिवाले मन्द विवेकी हैं तिनको आत्मसत्ता से पृथक् सत्तावाला जगत् भासताहै; तिसकी निवृत्तिके अर्थ उनपरउपकार करतेहुये सूत्रकार व्यासादि वेदान्ती पण्डितों ने ब्रह्म से जगदुत्पत्ति कहीहै तिसकरके वो स्वतःही समझेंगे कि कारणसे कार्य की पृथक् सत्ताहोती नहीं अरु यह सर्वजगत् ब्रह्मसे उत्पन्नहुआ है ताते इसकी पृथक् सत्ताके अभाव से यह ब्रह्मरूपही है, इस प्रकार एक अद्वैत ब्रह्मज्ञान होनेके अर्थ सूत्रकार ने ब्रह्म से सृष्टि का जन्म (उत्पत्ति) कही है, परमार्थ दृष्टि से नहीं। अरु यहही अर्थ " उपायःसोवताराय नास्ति भेदः कथञ्चन " इस तृतीय प्रकरणके १५ वें श्लोक विषे कहा है (सोसृष्टिका प्रकार) अद्वैत विषे बुद्धिकी उत्पत्ति के अर्थ है (४२ । १६६ ॥

४३ । १७० ॥ हे सौम्य ! [" उदरमन्तरंकुरुते अथ तस्यभयं भवतीति" ८ जो थोडाभी अन्तर (भेद) करताहै पश्चात् तिसको भयहोता है ? इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से ब्रह्म विषे विकार के

अजातेस्त्रसतान्तेषामुपलम्भाद्वियन्तिये । जातिदोषा न सेत्स्यन्ति दोषोऽप्यल्पोभविष्यति४३।१७०॥

देखने वाले को भयका होना सुनतेहैं । अरु तैसे हुये श्रुति के अर्थ के जाननेवाले पण्डितों को भी भेदज्ञानसे अनुग्रहकी योग्यता न होगी [यहशङ्का करके तब कहते हैं] "[अजातेस्त्रसतान्तेषामुपलम्भाद्वियन्तिये,]" "[अनुत्पत्तिसे भयको पावतेहुये उपलंभ (आत्मा) से विरुद्ध जाते हैं,]" अर्थात् जो ऐसे उपलम्भ (प्रतीति) से अरु सम्यक् आचरणसे अनुत्पत्तिसे [अर्थात् अनुत्पन्न हुई वस्तुसे] भयको पावते हुये द्वैत वस्तु है, इसप्रकार अद्वैत आत्मासे विरुद्ध जाते हैं [अर्थात् द्वैत को प्राप्तहोते हैं] तिन अनुत्पत्ति से भयको प्राप्तहोनेवाले श्रद्धा सम्पन्न सन्मार्ग को आश्रय करनेवालेको "[जातिदोषा न सेत्स्यन्ति दोषोऽप्यल्पोभविष्यति]" "जाति के किये दोष होते नहीं, यद्यपि कोईदोष अल्पही होवेगा," अर्थात् जाति कहिये प्रतीति के किये दोष होतेनहीं [अर्थात्सिद्धि को पावते नहीं,क्योंकिसन्मार्ग कहिये विवेकमार्ग तिसविषे प्रवृत्त होतेहैंताते । अरु यद्यपि (जो,कदापि) कोईएक दोषहोताहै,सोभी सम्यक् ज्ञानकी अप्राप्तिरूप निमित्तकाकियागर्भवासादिरूप अल्प ही दोष होवेगा यह अर्थहै ॥ अर्थात् यहांजो कहाहै किजो कदापि कोई एक,दोषहोताहै सोभी सम्यक् ज्ञानकी अप्राप्तिरूप निमित्त का किया गर्भवासादि अल्प दोष होवेगा, सो गर्भवासको अल्प दोष कहा सो आक्षेप प्रतीति होता है, क्योंकि गर्भवासरूप दोष सर्व दोषोंका मूल है, ताते उक्त कथनका यह अभिप्राय प्रतीत होता है कि सम्यक् ज्ञानसे रहित पुरुष को गर्भवास-उपलक्षण करके सर्व दोष (अनर्थ) प्राप्तहोता है ४३ । १७० ॥

॥ ४४ । १७१ ॥ हे सौम्य! [शंका] ननु, द्वैत की प्रतीति अरु वर्णाश्रमके धर्म्मके आचारकोप्रमाणरूप होनेसे, द्वैतवस्तु वास्तव हीहै, सो कथन बने नहीं, क्योंकि प्रतीतिकहिये अनुभव अरुआ-

जात्याभासं चलाभासं वस्त्वाभासं तथैव च । अजाचलमवस्तुत्वं विज्ञानंशान्तमद्वयम् ४५ । १७२ ॥

चलाभासं वस्त्वाभासं तथैव च ” [जात्याभास है चलाभास है अरु वस्तुआभास है तैसेही] अर्थात् जैसे देवदत्त । अर्थात् कोई एक मनुष्य । उत्पन्न होता है ; । अर्थात् देवदत्त इस नामसे जो शरीर तिस शरीरान्तर जो शरीरी जीव सो, देवदत्त नामका लक्ष्यहै सो जीव अनादि होने से उत्पन्न होतानहीं परन्तु शरीरकी उत्पत्ति से तिस शरीरी का उत्पन्न होना है,सो आभासमात्रहै, परन्तु कहतेहैं, जैसे देवदत्त उत्पन्नहोता है । तैसे विज्ञान (विज्ञान घन, विज्ञप्ति) सो उत्पत्त्यादिकों से रहित हुआ भी । स्वमाया करके । उत्पन्नहुयेवत् भासताहै, एतदर्थ वो जात्याभास है । अरु जैसे सोई देवदत्त चलता है, । अर्थात् वास्तव करके देवदत्तनामक देही (जीवात्मा) अचल है, परन्तु शरीरके सम्बन्ध से घटाकाशवत् चलता भासता है सो उसमें आभासमात्रहै तथापि तिसकों देख के कहते हैं कि, देवदत्त चलताहै । तैसे सो । विज्ञान आप अचलहुआ स्वमायाकरके । चलता भासताहै, अतएव सो चलाभास है । अरु जैसे सोई देवदत्त गोरहै दीर्घहै पीन (मोटा) हैं, इसप्रकार भासता है तैसे सो विज्ञान (विज्ञप्ति चैतन्य) द्रव्य रूप धर्मीवत् भासता है । परन्तु “ अस्थूलमनण्वमदीर्घं ” इत्यादि प्रमाणसे द्रव्यके धर्म्मों से रहित अद्रव्यहै । अरु “रूपंरूपं प्रतिरूपो बहिश्च ” द्रव्यों के साथ मिलने से द्रव्य धर्मवान् भासताहै । एतदर्थ वो वस्त्वाभासहै । ताते देवदत्त जन्मताहै, चलता है, वस्तुहै, दीर्घ है, गोरहै तैसेही यह विज्ञान भासता है । परन्तु “अजाचलमवस्तुत्वं विज्ञानंशान्तमद्वयम्” [अजन्माहै,अचलहै, अवस्तुभाव है, विज्ञानघन है, शान्त है, अद्वय है, अर्थात् जो । विज्ञप्ति शरीरादि अनहुई उपाधि साथ मिलने से, ' उपजेवत् चलतेवत् वस्तुवत् भासता है, सो वास्तव करके अजन्मा है

ऋजुवक्रादिकाभासं मलातस्पन्दितं यथा । ग्रहणग्राहकाभासं विज्ञानस्पन्दितन्तथा ४७ । १७४ ॥

४७ । १७४ ॥ हे सौम्य ! " अजन्मा अचल अरु जात्याभास है " इसप्रकार पूर्व ४५ वें श्लोक विषे, कथनकिये परमार्थरूप ज्ञानको दृष्टान्तसे वर्णन करतेहुये कहते हैं । " ऋजुवक्रादिकाभासमलातस्पन्दितंयथा " " जैसे सरल अरु वक्रादिक आभास अलातकाचलनाहै " अर्थात् जैसेलोकविषे सरल अरु वक्र (अर्थात् सीधा अरु टेढ़ा) आदिक प्रकार वा आकारवाला जो आभास कहिये प्रकाश है, सो अलात कहिये बनेठी वा अर्द्धदग्ध काष्ठरूपउल्का, तिसका चलना है (अर्थात् बनेठी वा अर्धदग्धकाष्ठके मुखपर जो एक अग्निबिंदु है तिस अग्नि बिन्दुका जो वक्रादिरूपसे सीधा टेढ़ा आदिक भासनाहै सो उस बनेठी वा अर्द्धदग्ध काष्ठके चलने वा भ्रमणसे है, उस अग्नि बिन्दुके स्वरूपसे ही नहीं ।" ग्रहण ग्राहकाभासं विज्ञानस्पन्दितन्तथा " " तैसे ग्रहण अरु ग्राहकका आभास विज्ञानका चलनाहै " अर्थात् (जैसे अलातगत अग्निबिन्दुका जो सीधाटेढ़ा भासनाहै सो उसअलातके भ्रमणादिकों सेहै, तैसेही ग्रहण अरु ग्राहकका जो आ... कहिये भासनाहै सो विज्ञानका अविद्यासे चलनेवत् च... [अपने स्वरूपको न त्यागकरनेवाले अधिष्ठानका जो नाना आकारसे अवभास (प्रतीति अरु तिसकाविषयहै ति... निवर्त्त कहते हैं । यहां विज्ञानका जो स्फुरण... ...कारसे ना' है सो निवर्त्त रूपहै] अविद्याकरके अचल विज्ञानको ... चलनानहीं, तिसकरकेही विज्ञानको अजन्मा अचल है, ... प्रकार पूर्व कहाहै ४७ । १७४ ॥

४८ । १७५ ॥ हेसौम्य! अब, विज्ञानशान्तहै, इसप्रकारपूर्व ४... श्लोकविषे वर्णन कियाहै तिसको अब दृष्टांत करके ... " अस्पन्दमानमलातमनाभासमजं यथा " " जैसे चलनेसे

अस्पन्दमानमलातमनाभासमजंयथा। अस्पन्दमानंविज्ञान मनाभासमजं तथा ४८। १७५॥

अलातेस्पन्दमानेवै नाभामा अन्यतो भुवः। नततोऽन्यत्रनिस्पन्दान्नालातम्प्रविशन्तिते ४९। १७६॥

अलात अनाभास अरु अजन्माहै? अर्थात् निस्पन्दमान अलात (अर्थात् भ्रमणे से रहित बनेठी) सरलादिक आकार से जन्म रहित हुआ अनाभास अरु अजन्मा है (अर्थात् अलात के वा काष्ठके मुखपर लगा जो अग्निबिन्दु सो अलातके भ्रमणेसे भ्रमण रूपसे उत्पन्न होय भ्रमतेवत् भासताहै अरु उस अलातके स्थित हुये वो अग्निबिन्दु जैसा उत्पत्ति अरु भ्रमणसे रहितहै तैसाही अनाभास अरु अजन्मा होताहै, अर्थात् वो अलातपरका अग्नि बिन्दु जैसे अलातकेभ्रमण से पूर्वहै तैसाही अलातके भ्रमण के शान्तहुये है, अरु मध्यविषे जो भ्रमणरूप से उत्पन्नहुये अरुभ्रमतेवत् भासताहै सो अलातके भ्रमणरूप उपाधि करके भासताहै, परन्तु तिस अलात के भ्रमणकाल में भी वो अग्निबिन्दु अपने स्वरूपसे अलातके भ्रमणादिकों करके रहित सदा एकरस है। "अस्पन्दमानं विज्ञानमनाभासमजं तथा" (तैसे निस्पन्दहुआ विज्ञान अनाभास अरु अजन्माहै? अर्थात् जैसे अलातका अग्नि-बिन्दु जैसा अज, अचल है, तैसा अलातके स्थिर हुये भासता है तैसेही अविद्या करके चलायमान अरु अविद्याकी निवृत्तिके हुये चलनेसे रहित (अर्थात् उत्पत्त्यादि आकारसे अभासमान) हुआ जो विज्ञान सो अनाभास कहिये अचल अरु अजन्माही है। वा विज्ञान कहिये बुद्धि तद्विशिष्ट जो विज्ञान(चैतन्य) सो बुद्धिरूप उपाधिकेसाथ मिलनेसे बुद्धिके जन्मादि वा कर्तृत्व भोक्तृत्वादि धर्मवान् भासताहै परन्तु स्वरूपसे तैसानहीं। इत्यर्थः ४८। १७५॥

४९। १७६॥ हे सौम्य! [अलातके दृष्टान्तविषे सरल वक्रादिक आकारोंका असत्पना कैसेहै, इस शङ्काकेहुये निरूपण के असहन

करने से तिनकाअसत्पनाहै, इसप्रकार समाधान कहतेहैं, । यहां यह अर्थहै कि अलात वा अर्द्धदग्धकाष्ठ जब भ्रमताहै तब तिस विषे अन्य देशान्तर से उसमें आयके प्रकाश होताहै, इसप्रकार कथन करने को शक्यनहीं क्योंकि सरल अरु वक्रादिक प्रकाशोंके देशान्तर से आगमन की अप्रतीतिहै ताते, अरु जब सोई अलात स्थित वा स्थिर होताहै तब तिससे अन्य ठिकाने प्रकाश होताहै यहभी कहने को शक्यनही क्योंकि तहांभी तिनकी अप्रतीतिकी तुल्यता है ताते । (अर्थात् जैसे अलातके अग्निबिंदु के जे सरल वक्रादि रूप प्रकाशहै तिनका अलातके भ्रमणकाल में देशान्तर से आयके अलातमें प्रवेशकी अप्रतीतिहै, तैसेही अलातके भ्रमण रहित स्थिरहुये उन प्रकाशोंकी देशान्तर जानेकीभी अप्रतीति है ताते अलातबिन्दुके सरलवक्रादिक प्रकाशोंकी देशान्तरसे आवागमनकी अप्रतीति तुल्यही है । अरु वे आभास, प्रकाश, इसही अलातविषे लीनभी होतेनहीं, क्योंकि उस अलातको उन आभासों के उपादानपने का अभावहै ताते । अरु जब भ्रमण का निमित्त अलात उपादानहोवे, तब तिसको प्रतीतिमात्र निमित्त होने से तिस निमित्त करके हुयेजे प्रकाश तिन के अभावके अदर्शनसे सरल अरु वक्रादिक जे आकार हैं, सो भ्रमण के अभाव के हुयेभी अलातविषे होवेंगे । परन्तु ऐसाहैनहीं, एतदर्थ सो अलात सरल वक्रादि प्रकाशोका उपादाननहीं, ताते किसी प्रकार से भी निरूपणके असहने से तिनका असत्पनाहै) " अलातेस्पन्दमानेवै नाभासा अन्यतोभुवः " (अलातके स्पन्दमानहुये आभास अन्य ते होनेवाले नहीं, अर्थात्, किंवा तिसही अलात के चलते हुयेसीधे अरुवक्रादिक आभास (प्रकाश) अलातसे अन्यकिसीभी देश से आयके अलात विषे होते नहीं, एतदर्थ सो प्रकाश अन्य से होनेवालेनहीं । अरु "नततोऽन्यत्रनिस्पन्दान्नालातम्प्रविशंतिते" (अचलहुये तिससे अन्य ठिकाने निकसतेनहीं, औ अलातके तांई प्रवेश करते नहीं; अर्थात् अलातके अचल हुये सो सीधे टेढ़े

न निर्गता अलातात्ते द्रव्यत्वाभावयोगतः। विज्ञानेऽपि तथैव स्युराभासस्याविशेषतः ५०।१७७॥

प्रकाश अलात से निकल अन्य ठिकाने (देशान्तर) को जाते नहीं, अरु वे प्रकाश अचल हुये अलात विषे प्रवेश करते नहीं (अर्थात् अलात विषे लगा जो अग्निबिन्दु तिसके भ्रमण से भासतें जे सीधे टेढ़े प्रकाश सो किसी देशान्तर से आयके भासते नहीं अरु उस अग्निबिन्दु के स्थिरहुये देशान्तरको जातेनहीं अलातही में लयभी होते नहीं ' क्योंकि अलात से निकसे नहीं, ताते, अभिप्राय यह है कि अलातके जे सीधे टेढ़े आदिक प्रकाश' हैं सो न तो उस अग्निबिन्दु से निकसे हैं न देशान्तरसे आये हैं, अरु अग्निबिन्दुके स्थिरहुये न तो देशान्तर को जातेहैं न उसही मे लयहोते हैं। किन्तु उस काष्ठके भ्रमणेसे वह अग्निबिन्दु आपही सीधा टेढ़ाहो भासताहै सोभी उपाधि के सम्बन्धसेहै स्वरूप से नहीं ४९। १७६॥

५०। १७७॥ हे सौम्य, किंवा "न निर्गता अलातात्ते द्रव्यत्वाभावयोगतः" (अलातसे निकसेहुये नहीं द्रव्यभाव के अभावके योग से) अर्थात् वे आभास कहिये सीधे टेढ़े प्रकाश ग्रह से निकसे हुयेवत् अलात (अग्निबिन्दु) से निकसे हुये नही, क्योंकि उनको द्रव्यभाव के अभाव का योग है (अर्थात् उनको वस्तुपने का अभावहै (ताते। जिस करके वस्तुका प्रवेशादिक सम्भवे है अवस्तुका नहीं, ताते तिन आभासों को वस्तुपने के अभाव से अवस्तुरूपहुये (तिनके, निकसनेका अरु प्रवेशहोनेका असम्भवहै ताते। अरु "विज्ञानेपि तथैव स्युराभासस्याविशेषतः" (तैसेही विज्ञानविषे भी आभाससे अविशेष (तुल्य) होनेसे) अर्थात् अलातके अग्निबिन्दुवत्, विज्ञान (विज्ञप्तिमात्र चैतन्य) विषे भी उत्पत्त्यादिकों के आभास होतेहैं, तिनकी अलातके आभासों से अविशेषता है। अर्थात् अग्निबिन्दु के सीधे टेढ़े प्रकाशा-

विज्ञाने स्पन्दमाने वै नाभासा अन्यतोभुवः । न ततोऽन्यत्र निस्पन्दान्न विज्ञानं विशन्तिते ५१ । १७८ ॥

कारों विषे अरु विज्ञान (चैतन्य) के जन्मादिक आकारों विषे आभासमात्रताकी तुल्यता है ५० । १७७ ॥

५१ । १७८ ॥ हे सौम्य, । प्र० । तिन (अलात के सीधे टेढ़े प्रकाशरूप आभास की अरु विज्ञान के जन्मादिक आभासोंकी) विषे आभासों की एकता कैसेहै, । तहां उत्तर कहते हैं "(विज्ञाने स्पन्दमाने वै नाभासा अन्यतो भुवः" (विज्ञानके स्पन्दहुये अन्य से भी आभास होने को योग्य नहीं ? अर्थात् विज्ञान (कहिये विज्ञप्तिमात्र चैतन्य आत्मा, जो कि अपने स्वरूपकरके अचलहै) तिसके जिस किसप्रकार से (अर्थात् मायादिक उपाधिसे) भी चलतेहुये तिस विज्ञान से अन्य (प्रधानादिक) अन्य किसी कहीं से भी आयके आभास (जन्मादिक) तिस 'विज्ञान' विषे होनेको योग्य नहीं, क्योंकि तिसकी प्रतीति का अभाव है ताते। अरु "(न ततोऽन्यत्र निस्पन्दान्न विज्ञानं विशन्तिते" (निस्पन्द हुये तिसके अन्य ठिकाने होने को योग्य नहीं, अरु वे विज्ञानविषे प्रवेश करते नहीं ? अर्थात् (जो किसी भी प्रकार से चलनको प्राप्तहुये विज्ञानके) चलनेसे रहित अचल स्थिरहुये तिस विज्ञान से इतर ठिकाने वे आभास होनेके योग्य नहीं, क्योंकि प्रतीति रूप आभास को सर्वत्र तवही विज्ञानकी अचलपने करके विषे तुल्यता है ताते। अरु सो आभास तिसही विज्ञानविषे प्रवेश करते नहीं क्योंकि तिस केवल शुद्ध विज्ञानको तिन आभास के उपादान पने की अप्रतीति है ताते ॥ अर्थात् ज्ञप्तिमात्र चैतन्य विज्ञान से जन्मादि आभास उपजते नहीं तिसही से (... विषे वेशको पावते नहीं एतदर्थ वे जन्मादि आभास निस विज्ञानविषे मायाकृत भ्रान्तिमात्रही हैं, वास्तव से नहीं ५१ । १७८ ॥

५२ । १७९ ॥ हे सौम्य, (न निर्गता विज्ञानात्सेऽद्रव्यत्वा...

न निर्गताविज्ञानात्तेद्रव्यत्वाभावयोगतः। कार्य्य कारणताभावाद्यतोऽचिन्त्याःसदैवते ५२। १७९॥

गतः" (सो विज्ञानसे निकसते नहीं द्रव्यत्वके अभाव करकेयुक्तहोने से) अर्थात् जैसे वे जन्मादि आभास विज्ञान कहिये चैतन्यविषे प्रवेश करते नहीं, तैसेही वे आभास विज्ञप्तिसे निकसतेभी नहीं, क्योंकि वह द्रव्यभाव कहिये वस्तुभाव के अभाव करके युक्त हैं, ताते॥ इसका यह तात्पर्यहै विज्ञानका अन्यसर्व अलातके तुल्य है, परन्तु विज्ञानका जो सदा अचलपना है सो अलातसे विशेष है। अर्थात् विज्ञान विषे जो जन्मादिक आभास हैं सो कुछवस्तु न होयके केवल आभास (भ्रान्ति) मात्रहीहै ताते वास्तव करके न तो विज्ञानसे निकसते हैं न विज्ञानमे प्रवेशको प्राप्त होतेहैं। अरु अलात के आभासोंका (प्रकाशोंका) जो अलात से निकसना अरु अलातमें प्रवेशका पावना भासता है सो अलातके भ्रमणे करके भासताहै, अरु विज्ञान है सो अलातवत् चल न होयके अचलहै यह उसमें अलातसे विशेषता होनेसे उसविषे जन्मादिक आभासके होनेके हेतुका अभाव है॥ प्रश्न। तब अचल विज्ञान, ज्ञप्तिमात्र, विषे जन्मादिको के आभास किसके किये हैं। तहां उत्तर कहते हैं, "कार्य्यकारणताभावायतोऽचिन्त्याः सदैवते" (जाते वे कार्य कारण भावके अभावसे सदैव अचिन्त्य हैं) अर्थात् जिसकरके वे जन्मादि आभास तिन आभासोंके अरु विज्ञप्तिमात्र विज्ञानके कार्यकारण भावका अभावहोनेसे। अर्थात् जन्य जनक भावके असंभवकरके सो आभास अभावरूपहैं ताते सो सदा अचिन्त्य कहिये अनिर्वचनीय है॥ अथवा आभासोंको अरु विज्ञानको कार्य्यकारण भावका अभाव है, अर्थात् आभासों को भ्रान्तिमात्र होनेसे नतो कोई उनका कारणहै नवह किसी का कार्यहै, अरु विज्ञान को अजन्मा होनेसे न वह किसीका कारण है न किसीका कार्यहै, अतएव आभास अरु विज्ञानके कार्य्य कारण

द्रव्यंद्रव्यस्यहेतुःस्यादन्यदन्यस्य चैवहि । द्रव्यत्व
मन्यभावोवाधर्म्माणांनोपपद्यते ५३ । १८० ॥

भावका अभावहै, परन्तु वे आभास केवल भ्रांतिमात्र अध्यस्त होनेसे सत् नहीं किन्तु असत् हैं अरु विज्ञान उनआभासों का अधिष्ठान (आश्रय) होनेसे असत् न होके सत्रूप है क्योंकि आश्रयविना भ्रान्ति होती नहीं, अरु ज्ञानकाल विषे भ्रांतिके अभावहुये सत्रूप अधिष्ठान पावताहै, अरु जैसे मरुस्थलकाजल अनहुआभी अपने अधिष्ठान मरुस्थलको सत्रूप होनेसे सदैव भासताहै ताते अत्यन्त असत्भी नहीं, अरु जो पुरुष जलजानके प्रवर्त होताहै तिसको जलकी प्राप्तिहोती नहीं ताते सो सत्भी नहीं किन्तु अनिर्वचनीय है, तैसेही अनहुये जन्मादि आभास अपने अधिष्ठान नित्य सत्विज्ञान विषे सदाही,अनिर्वचनीयहै । एतदर्थ सो मिथ्याही होतेहैं ॥ जैसे अलात बिन्दुमात्र विषे मिथ्या जो सरलादिक अलातके आभास तिनविषे । विनाविचारि । सरलादि आभास बुद्धि होतीहै, तैसेही विज्ञान (विज्ञप्ति) मात्रविषे मिथ्या जो जन्मादिक तिन विषे । विनाविचारितही । जन्मादिक बुद्धिहै सो मिथ्याहै । ताते सो सर्वथा त्याग करने योग्यही है । यहसमुदायका तात्पर्यार्थ है ५२ । १७९ ॥

५३ । १८० ॥ हे सौम्य ! "कार्यकारणताभावात्" «कार्य्य अरु कारण भावके अभावसे» इसप्रकार जो ५२ वें श्लोकविषे कहा, तिसको प्रतिपादन करनेका अब आरंभ करतेहैं । यहांयह अर्थ है कि, अवयवरूप जो द्रव्यहै सो अवयवीरूप द्रव्यका उपादानहै । अरु अवयवके जो गुणहैं सो अपने समान जातिवाले अवयवीके गुणोंविषे असमवायी कारणदेखेहै । इसप्रकार आत्मा को द्रव्यपनाहै नहीं कि जिसकरके उसको उपादानपनाहोवे । अरु तिसरूपवाले गुणों का कहीं भी असमवायी कारणपना है नहीं क्योंकि तिस आत्मा विषेभेदरूप गुण गुणी भावके कथन का

एवं न चित्तजा धर्म्माश्चित्तं वाऽपि न धर्म्मजम् ।
एवंहेतुफलाजातिं प्रविशन्ति मनीषिणः ५४॥१८१॥

असम्भवहै ताते] इस प्रकार "अजमेकमात्मतत्त्वमिति" अज, कहिये अवयव अवयवी भाव रहित, अरु एक कहिये गुण गुणी भाव रहित, आत्मतत्त्वहै ? इस प्रकार सिद्धहुआ । तिस आत्म तत्त्वविषे जिन वादियों करके जन्मादिकों के आभास अरु विज्ञान का कार्यकारण भाव कल्पितहै, तिनके मतविषे " द्रव्यं द्रव्यस्य हेतुः स्यादन्यदन्यस्यचैवहि " (द्रव्य द्रव्यका अरु अन्य अन्य का हेतु (कारण) होताहै ; अर्थात् जिन वादियों के मत विषे जन्मादि आभासोंका अरु विज्ञानका कार्य्य कारण भावकल्पित है तिनके मतविषे द्रव्य द्रव्यका अरु अन्य अन्यका कारण होता है, परन्तु तिसही का । अर्थात् अपना कारण आप । सो होता नहीं । अरु जिसकरके लोकविषे जो अद्रव्य कहिये रूपादि गुण है, सो स्वतन्त्र किसी का भी कारण देखा नहीं । अरु " द्रव्यत्व मन्यभावो वा धर्म्माणां नोपपद्यते " (धर्म्मका द्रव्यभाव वा अन्य भाव उपपद्यनहीं ; अर्थात् जिसकरके आत्माको अन्य का कारणपना वा कार्यपना प्राप्तहोवे ऐसा आत्मरूप धर्म्मोंकाद्रव्य भाव वा किसी से भी अन्य भाव बनता नहीं । अर्थात् द्रव्यभाव करके रहित निराकार निर्विशेष आत्माका द्रव्यभाव न होनेसे वो किसी का भी कारण नहीं अरुएक अद्वैतहोने से उसका किसीसे अन्यभाव भी नहीं । एतदर्थ अद्रव्यरूपहोनेसे अरु सर्वसे अभिन्न अनन्य होने से आत्मा न किसी का कार्य है न किसीका कारण है, यह अर्थ है ५३ । १८० ॥

५४ । १८१ ॥ हे सौम्य ! [रचने को इच्छित जो घटतिस घटके ज्ञान के अनन्तर घट उत्पन्न होता है, अरु उपजाहुआ; इदं घट, इस प्रकार विषय रूप होनेसे अपने ज्ञानका उत्पादकहै, इस प्रकार का व्यवहारभी संभवतानहीं, क्योंकि किसी भी वस्तुको

यावद्धेतुफलावेशस्तावद्धेतुफलोद्भवः । क्षीणेहेतु फलावेशे नास्तिहेतुफलोद्भवः ५५ । १८२ ॥

विद्वान्की दृष्ट्यनुसार भिन्नरूपता नहीं इसप्रकार कहते हैं,] " एवं न चित्तजा धर्म्माश्चित्तं वा ऽपि न धर्म्मजम् " (इसप्रकार , धर्म्म , चित्त से जन्यनहीं, वा चित्त भी , वाह्य , धर्मसे जन्य नहीं ; अर्थात् ऐसे उक्तप्रकार के हेतुओं करके आत्मरूप विज्ञान स्वरूपही चित्त कहिये चैतन्य ब्रह्म है, एतदर्थ घटादि रूप वाह्य धर्म चित्तजो चैतन्य तिस करके जन्यनहीं । वा चित्तभी वाह्य धर्म्म से जन्य नहीं । अरु जीवरूप धर्म्मोंका परमात्मस्वरूप चित्त से जन्म युक्तनहीं, क्योंकि सर्वजीवाख्य धर्म्मोंको विज्ञानस्वरूप के आभास कहिये प्रतिविम्ब भाव है ताते (अर्थात् यावत् जीव हैं सो सर्व विज्ञानरूप चैतन्य के (जलगत सूर्य के प्रतिविम्ववत्, प्रतिविम्बरूपहैं ताते उनका परमात्मा से जन्म युक्त नहीं, " एवं हेतु फलाजातिं प्रविशन्ति मनीषिणः " (इसप्रकार बुद्धिमान् पुरुष हेतु अरु फलकी अनुत्पत्ति को निश्चय करते हैं ; अर्थात् चैतन्य करके वाह्य घटादिक जन्य नहीं, तैसेही चैतन्य भी वाह्य घटादिक करके जन्यनहीं, अरु अन्तरसर्वजीव भी चैतन्यसे जन्य नहीं , प्रतिविम्बरूपहोने से, ताते अन्तर वाह्यके सर्वधर्म्म चैतन्य करके जन्य नहीं केवल भ्रांतिमात्र हैं (इसप्रकार बुद्धिमान् पुरुष कहते हैं वा निश्चय करते हैं । तात्पर्य यह है कि जो ब्रह्मरूप हुये ब्रह्मवेत्ता हैं सो वह ब्रह्मवेत्ता कहिये यथार्थ वेदवेत्ता हैं सो आत्माविषे हेतु अरु फलको (अर्थात् प्रारब्ध अरु देह जो परस्पर हेतु अरु फलरूपहैं तिन्होंको (अभावरूपही निश्चयकर के जानते हैं ५४ । १८१ ॥

५५ । १८२ ॥ हे सौम्य ! [फल जो देहादिक तिनसे हेतु जे धर्म्मादिक सो होते नहीं,अरु तैसेही उक्तहेतु से उक्तफलादिकभी होते नहीं । इसप्रकार वास्तविक दृष्टि से उपदेश किया । अबनिम

यावद्धेतुफलावेशःसंसारस्तावदायतः । क्षीणेहेतुफलावेशे संसारं न प्रपद्यते ५६ । १८३ ॥

विषयक मुमुक्षुओंके आग्रहकी निवृत्ति के अर्थ तिस विषे आग्रहके अभावाभावके हुये तिनकी उत्पत्ति अरु अनुत्पत्ति को देखावेहैं] प्रश्न । जो पुनः हेतु अरु फल विषे आग्रहको प्राप्तहुये हैं तिनको क्या फलहोता है । उत्तर । "यावद्धेतुफलावेशस्तावद्धेतुफलोद्भवः" (यावत् हेतु अरु फलविषे आग्रहहै तावत् हेतु अरु फलका उद्भव होता है) अर्थात् धर्म अरु अधर्मनामवाले जे हेतु (शरीरोत्पत्तिके कारण) हैं तिनका कर्त्ता मैं हौं, धर्मअधर्म मेरे हैं तिन धर्म अधर्मों का फल कालान्तरविषेकोई एक (स्वर्गनरकादि) देश विषे प्राणधारियों के समूह विषे (अर्थात् कोईककयोनिविषे (उत्पन्नहुआ मैं भोगूंगा। इसप्रकारका यावत् हेतु अरु फलविषे (कर्तृत्व भोक्तृत्वका) आग्रह है । अर्थात् तिनविषे तत्पर चित्तवाले पुरुषकरके अपने आपविषे हेतु अरु फलका आरोप करते हैं तावत् धर्म अधर्मरूप हेतुका अरु तिनके फलका उद्भव कहिये (उच्छेदरहित प्रवृत्ति, होती है। तथाच "धर्म्मैतरौतत्रपुनःशरीरकं पुनःक्रियाश्चात्रउदीर्यतेभवः" अरु "क्षीणेहेतु फलावेशे नास्ति हेतुफलोद्भवः" (हेतु अरु फलविषे आग्रहके क्षीण हुये हेतु अरु फलका उद्भव होता नहीं) अर्थात्, जब पुनः, जैसे मन्त्रअरु ओषधिकरके प्रेतादिक के आवेशके अभावहोनेवत्, उक्तप्रकारकेअद्वैत तत्त्वके (श्रवण मनन, दर्शनसे 'अविद्याकरके उद्भूत जोहेतु अरु फल तिनका आवेश सम्यक् प्रकार दूर होताहै, । तब तिन उक्त हेतु अरु फलविषेआग्रहके क्षीण (नाश) हुये हेतु अरु फलकापुनः उद्भव होता नहीं । इति सिद्धम् ५५ । १८२ ॥

५६।१८३ हे सौम्य! ।प्रश्न। जो कदापि हेतु अरु फलकाउद्भवहोवे तो क्या दोषहै । उत्तर। कहते हैं । "यावद्धेतुफलावेशः संसारस्तावदायतः" अर्थात् यावत् सम्यक् ज्ञानकरके हेतु अरु

संवृत्याजायतेसर्वं शाश्वतंनास्ति तेनवै । सद्भावेन ह्यजंसर्वमुच्छेदस्तेननास्तिवै ५७।१८४॥

फलका आग्रह (सम्यक्प्रकार अशेष) निवृत्त होता नहीं, किन्तु (अज्ञान) करके होताहै तावत् अक्षीणहुआ संसार दीर्घहोता है (अर्थात् यावत् सम्यक् आत्मज्ञान करके उक्त हेतु अरुफल इन विषयक आग्रह अशेष निवृत्त होतानहीं तावत् अज्ञानकरके हेतु अरु फलरूप संसार विस्तारको ही पावता है) अरु " क्षीणेहेतु फलावेशे संसारं न प्रपद्यते " (हेतु अरु फलविषयक आग्रहके क्षीणहुये संसारको पावता नहीं) अर्थात् पुनः जब (सम्यक् आत्मज्ञानकरके) उक्तहेतु अरु फल विषयक (समूल 'अज्ञान' के) आग्रह अशेष क्षीण (नाश) होताहै तबकारण के अभाव हुये संसारको पावतानहीं ॥ इति सिद्धम् ५६ । १८३ ॥

५७ । १८४ ॥ हे सौम्य ! । शङ्का । ननु, " अजादात्मनोऽन्य न्नास्ति " (अजन्मा आत्मा से अन्य है नहीं) इसप्रकार कूटस्थ अद्वितीय आत्मतत्त्वको इच्छनेवाले तुम करके, हेतु अरु फल, अरु संसारकी, उत्पत्ति अरु विनाश कैसे कहा है, हे वादी ! अपनी इस शंका का समाधान श्रवण कर " संवृत्या जायते सर्वं शाश्वतं नास्ति तेन वै " (ढापने से सर्व उपजता है तिसकरके नित्य नहीं है) अर्थात् अविद्या के आधीन लौकिक व्यवहाररूप ढापने से सर्व उपजता है तिसहेतु करके उत्पन्न हुये अविद्या के आधीन वस्तुविषे नित्य (नित्यता) है नहीं, एतदर्थ उत्पत्ति अरु विनाशरूप संसार उपजता है, इसप्रकार कहते हैं । अरु "सद्भावेनह्यजंसर्वमुच्छेदस्तेन नास्तिवै " (सद्भावसे जन्मरहित सर्वहै तिसकरके उच्छेद है नहीं) अर्थात् जिस करके परमार्थ सद्भाव, परमार्थसत्ता, से तो जन्म रहित सर्व आत्माही है " आत्मैवेदं सर्वं " इत्यादि श्रुति । एतदर्थ तिस जन्म के अभावरूप कारणकरके हेतु अरु फलादिक किसी का भी उच्छेद

धर्मा य इति जायन्ते जायन्ते तेन तत्त्वतः ॥ जन्म मायोपमन्तेषां सा च माया न विद्यते ५८। १८५ ॥

काहिये विनाश है नहीं॥ [यहां यह भाव है कि, जैसे सम्मुखवर्ति रज्जु विषे सर्प के अभावका अनुभवकर्त्ता विवेकी पुरुष, सर्प नहीं यह रज्जु है वृथाही भयको क्यों प्राप्त होता है, इसप्रकार भ्रान्त पुरुषको कहता है अरु वह भ्रान्त पुरुष तो अपने अपराध सेही शुद्ध रज्जु विषे सर्पकी कल्पनाकर भयको पावतसन्ते भागता है। तहां विवेकीका वचन मूढ़ की दृष्टिसे विरोधको पावता नहीं, तैसे परमार्थरूप कूटस्थ आत्माका दर्शन व्यावहारिक जन्मादिकों के वचन से विरोध को न पायके अविरुद्धही है, ५७। १८४ ॥

५८। १८५ ॥ हे सौम्य! ["संवृत्या जायते सर्वम्" लौकिकव्यवहार से सर्व होताहै ? इसप्रकार ५७ वें श्लोक के विषे कहा, तिसको अब पुनः वर्णन करते हैं] "धर्मा य इति जायन्ते जायन्ते तेन तत्त्वतः" जो भी धर्म्म जन्मते हैं ऐसे तत्त्व से सो जन्मते नहीं अर्थात् जो भी आत्मा अरु अन्य अनात्मरूप धर्म्म कहिये पदार्थ उपजते हैं इसप्रकार कहते हैं॥ अर्थात् कल्पना करते हैं। सो धर्म्म इसप्रकार के हैं, इसप्रकार पूर्वोक्त लौकिक व्यवहाररूप ढकन (पड़दा) कहते हैं, कि ढांपने कहिये गुप्तपनेसेही वे धर्म्म जन्मतेहैं, परन्तु तत्त्व कहिये परमार्थ से जन्मते नहीं। अरु "जन्म मायोपमन्तेषां सा च माया न विद्यते" तिनका जन्म मायाकी उपमावाला है अरु सो माया विद्यमान है नहीं अर्थात् जो पुनः ढपने से तिन उक्तप्रकार के धर्मोंका जो जन्म है सो, जैसे मायाका जन्म होता है तैसे है, एतदर्थ सो तिनका जन्म मायाकी उपमावाली प्रतीत करने के योग्यहै। प्रश्न। तब मायानामक कुछ वस्तु होवेगी, । उ०। सो माया कुछ विद्यमान नहीं, अभिप्राय यह है कि अविद्यमान वस्तुका नाम मायाहै॥ ५८। १८५॥

यथा मायामयाद्बीजाज्जायते तन्मयोऽङ्कुरः । ना-
सौ नित्यो न चोच्छेदी तद्वद्धर्मेषु योजना ॥ ५९ । १८६ ॥
नाजेषु सर्वधर्मेषु शाश्वताशाश्वताभिधा । यत्र
वर्णा न वर्तन्ते विवेकस्तत्र नोच्यते ॥ ६० । १८७ ॥

॥ ५९ । १८६ ॥ हे सौम्य ! प्रश्न – तिन धर्म्म कहिये पदार्थों का जन्म माया की उपमावाला कैसे है, – तहां, उत्तर, कहते हैं "यथा मायामयाद्बीजाज्जायते तन्मयोऽङ्कुरः" जैसे मायामय बीजसे मायामय अंकुर होती है, अर्थात् जैसे आम्रादिकों की मायामय बीजसे, अर्थात् कोई ये मायावी पुरुष करके आरोपित आम्रादिक वृक्षके मायामयबीजसे मायामय अंकुर उपजता है। अरु "नासौ नित्यो न चोच्छेदी तद्वद्धर्मेषु योजना" यह नित्य नहीं वा विनाशी नहीं तैसे धर्म्मों विषे योजना है, अर्थात् यह मायामय अंकुर नित्य नहीं, वा विनाशी नहीं, क्योंकि मिथ्या है ताते, तैसेही धर्म कहिये पदार्थों विषे जन्म अरु नाशादिकों की योजना है। अर्थ यह है कि परमार्थसे धर्म्मों का जन्म वा नाश घटता नहीं ॥ ५९ । १८६ ॥

॥ ६० । १८७ ॥ हे सौम्य ! [सिद्धान्त से सर्व अजन्मा है, इस प्रकार जो ५७ वें श्लोक विषे कहा, तिसको वर्णन करते हैं] "नाजेषु सर्वधर्म्मेषु शाश्वताशाश्वताभिधा" अजन्मा सर्व धर्म्मों विषे नित्य है वा अनित्य है ऐसा नाम कहना नहीं अर्थात् परमार्थ से तो नित्य एकरस विज्ञप्तिमात्र सत्तारूप अजन्मा सर्व धर्म्म कहिये आत्माविषे नित्य है वा अनित्य है, ऐसा नाम, कहना, प्रवर्त्त होता नहीं। क्योंकि "यत्र वर्णा न वर्तन्ते विवेकस्तत्र नोच्यते" जिन विषे वर्ण प्रवर्त्त होते नहीं तिन विषे विवेक कहते नहीं, अर्थात् जिन्हों करके अर्थों का वर्णन करिये ऐसे जे शब्द तिनको वर्ण कहते हैं, सो जिस आत्मा विषे वर्ण "यह ऐसा है" इस प्रकार कहने को प्रवर्त्त होते नहीं, तिस आत्मा विषे नित्य है वा अनित्य है, ऐसा विवेक कहते नहीं क्योंकि

यथा स्वप्ने द्वयाभासं चित्तं चलति मायया। तथा जाग्रद्द्वयाभासं चित्तं चलति मायया ६१। १८८॥

अद्वयञ्च द्वयाभासं चित्तं स्वप्ने न संशयः। अद्वयञ्च द्वयाभासं तथा जाग्रन्न संशयः ६२।१८९॥

"यतोवाचो निवर्त्तन्ते" इत्यादि श्रुति प्रमाण है ६०। १८७॥ ६१। १८८॥ हे सौम्य! आत्माको शब्दकी अगोचरताके अर्थात् अविषयताके हुये, यह आत्मा व्याख्याकारोंकरके शब्दों सेही प्रतिपादनकरनेकी योग्यताको कैसे प्राप्त होताहै, यहशंका करके चित्तका स्फुरणमात्र अविचारित सुन्दर प्रतिपाद्य अरु प्रतिपादकरूप द्वैतहै, इसप्रकार दृष्टान्त सहित कहतेहैं "यथास्वप्नेद्वयाभासं चित्तं चलति मायया। तथा जाग्रद्द्वयाभासं चित्तं चलति मायया" जैसे स्वप्नविषे द्वैताभासरूप चित्त (मन) मायासे चलताहै, तैसे जाग्रतविषे द्वैताभासरूप चित्त मायाकरके चलित होताहै ६१। १८८॥

६२। १८९॥ हे सौम्य! शंका। ननु, स्वप्नविषे प्रतिपाद्य अरु प्रतिपादकरूप द्वैतको मनके चलन कहिये स्फुरणमात्ररूप के हुये भी जाग्रत्विषे तिसप्रकार मनका स्फुरणमात्र कैसे होवेगा, यह शंकाकरके उत्तर कहतेहैं "अद्वयञ्च द्वयाभासं चित्तं स्वप्ने न संशयः। अद्वयञ्च द्वयाभासं तथा जाग्रन्न संशयः" स्वप्नविषे अद्वैतरूपहुआ चित्त द्वैताभासरूप होता है, यामें संशय नहीं, तैसे जाग्रत् विषे अद्वैतरूपहुआ चित्त द्वैताभासरूप होताहै इसमें संशय नहीं, अर्थात् स्वप्नविषे वास्तव करके अद्वैतरूप हुआही मन अपनी स्फुरणतासे द्वैतरूप होताहै तिसमें संशयनहीं, तैसे जाग्रत् विषे भी अद्वैतरूप हुआही मन अपनी स्फुरणतासे द्वैतरूप होता है इसमें भी संशय नहीं॥ अरु जो पुनः परमार्थ से अद्वैतरूप विज्ञानमात्र वस्तुको वाणीका विषयपनाहै सो मनका स्फुरणमात्रहै, परमार्थसे नहीं, यह पूर्व अद्वैतनामक तृतीय

स्वप्नदृक् प्रचरन् स्वप्ने दिक्षु वै दशसु स्थितान्।
अण्डजान् स्वेदजान् वाऽपि जीवान् पश्यति यान् सदा ६३। १९० ॥

स्वप्नदृक् चित्तदृश्यास्ते न विद्यन्ते ततः पृथक्।
तथा तद्दृश्यमेवेदं स्वप्नदृक् चित्तमिष्यते ६४।१९१॥

प्रकरणविषे व्याख्यान किये इन ,६१,६२, दो श्लोकोंका तात्पर्यहै ६२। १८९ ॥

६३। १९० हे सौम्य! "स्वप्नदृक् प्रचरन् स्वप्ने दिक्षु वै दशसु स्थितान्! अण्डजान् स्वेदजान् वाऽपि जीवान् पश्यति यान् सदा " (स्वप्नका द्रष्टा स्वप्नविषे विचरता हुआ दशहों दिशाविषे स्थित, अण्डज वा स्वेदजरूप भी जीवों को सदा देखताहै ? अर्थात् इस कथनके हेतु से भी वाणी का विषय जो द्वैत तिसका अभाव है, जैसे स्वप्नरूप स्थानविषे स्वप्न जगत् का देखने वाला ऐसा जो स्वप्नका द्रष्टा सो स्वप्नविषे विचरताहुआ दशहों दिशा विषे स्थित कहिये वर्त्तमान अण्डज वा स्वेदजरूप भी [जरायुज अरु उद्भिज्जरूप] जिन प्राणियोंको सदा देखताहै [सो तिससे भिन्न नहीं इसप्रकार अग्रिम श्लोक से सम्बन्धहै ६३।१९० ॥

६४। १९१ ॥ हे सौम्य! । प्र० । जब ऐसे है तब तिसकरके हुआक्या, । तहां उत्तर कहतेहैं "स्वप्नदृक् चित्तदृश्यास्ते न विद्यन्ते ततः पृथक्" (स्वप्नद्रष्टा के चित्तकरके देखनेयोग्य तिससे पृथक्नहीं, अर्थात् स्वप्नद्रष्टाके चित्त कहिये मनकरके देखनेयोग्य वे जीव सो स्वप्नद्रष्टा के चित्त से भिन्ननहीं। अरु जो ऐसा कहे कि तब चित्तही जीवादिक भेदके [द्रष्टा अरु चित्तके] आकार से विकल्पको पावताहै, । सो कथन बनेनहीं । तहां कहतेहैं "तथा तद्दृश्यमेवेदं स्वप्नदृक् चित्तमिष्यते " (तैसे यह स्वप्नके द्रष्टाका चित्त तिसकरके देखनेके योग्यही अङ्गीकार करतेहैं ? अर्थात् तैसे यहस्वप्नके द्रष्टाका चित्तभी स्वप्नकेद्रष्टाकरके देखनेके योग्यही

चरन् जागरिते जाग्रद्दिक्षुवै दश सुस्थितान्। अण्डजान् स्वेदजान् वाऽपि जीवान् पश्यति यान् सदा ६५। १९२॥
जाग्रच्चित्तेक्षणीयास्ते न विद्यन्ते ततः पृथक्। तथा तद्दृश्यमेवेदं जाग्रतश्चित्तमिष्यते ६६। १९३॥

अंगीकार करतेहैं। अर्थात् जैसे स्वप्नके द्रष्टाकरके स्वप्नके पदार्थ देखने योग्यहैं, तैसे चित्तभी है। एतदर्थ स्वप्नके द्रष्टासे भिन्न चित्तनाम कोई वस्तु नहीं, इत्यर्थः ६४। १९१॥

६५।१९२॥ हेसौम्य! अब दृष्टान्त विषे स्थित अर्थको दार्ष्टान्त विषे योजना करतेहैं। "चरन्जागरिते जाग्रद्दिक्षुवै दशसुस्थितान्, अण्डजान् स्वेदजान्वाऽपि जीवान् पश्यति यान्सदा" (जाग्रत्विषे जाग्रत्के दशहोदिशा विषे विचरता तहां स्थित अंडज वा स्वेदज भी जिन जीवोंको सदा देखता है) अर्थात् जाग्रत् विषे जाग्रत् अवस्थावाला पुरुष दशहो दिशा विषे स्थित जे अंडज वा स्वेदज, जरायुज अरु उद्भिज्जरूप, चारिखानिके जिन जीवोंको। अर्थात् कार्य्य कारणात्मक संघातको। सदा देखताहै ६५।१९२॥

६६।१९३॥ हे सौम्य! "जाग्रच्चित्तेक्षणीयास्ते न विद्यन्ते ततः पृथक्" (जाग्रत्के चित्तसे देखनेके योग्य तिससे पृथक् विद्यमान नहीं) अर्थात् जाग्रदवस्थावाले पुरुष के चित्तकरके देखने के योग्य वे। उक्त चारखानि के। जीव तिस जाग्रदवस्थावाले पुरुषके चित्तसे भिन्न नहीं। "तथा तद्दृश्यमेवेदं जाग्रतश्चित्तमिष्यते" (तैसे यह जाग्रत्का चित्त तिस द्रष्टाकरके देखने के योग्यही अंगीकार करतेहैं) अर्थात् जैसे जाग्रत् के द्रष्टाकरके जाग्रत् के जीवादि पदार्थ देखने के योग्यहैं, तैसे इस जाग्रदवस्थावाले पुरुषका चित्त तिस जाग्रत्के द्रष्टा पुरुषकरके देखने के योग्य है ऐसा अंगीकार करतेहैं॥ अरु इन '६५, ६६'-दो श्लोकोंके भावार्थरूप यह दो अनुमानहैं। जाग्रदवस्थावाले पुरुषकेदृश्य जो जीवादि सोतिस

उभे ह्यन्योन्यदृश्ये ते किन्तदस्तीति चोच्यते । ल-
क्षणाशून्यमुभयं तन्मतेनैव गृह्यते ६७ । १९४ ॥

के चित्तसे अभिन्नहै, क्योंकि चित्तकरके देखनेयोग्यहै ताते, जैसे स्वप्न के द्रष्टाके चित्तकरके देखने के योग्य स्वप्नके जीवादिक । चित्तसे अभिन्नहैं । तैसे ॥ अरु सो जीवोंके देखनेरूप चित्तहैसो द्रष्टा से अभिन्न है, क्योंकि, द्रष्टाका दृश्य है ताते, स्वप्न के चित्तवत् ६६ । १९३ ॥

६७ । १९४ ॥ हेसौम्य! [दृश्यअरुदर्शनकेभेदकेग्राहक प्रमाण करके बाधितहुये यह दोनों हेतुहैं, । यह शंका करके तब कहतेहैं। यहां यह अर्थहै कि दृश्य अरु दर्शन, यहदोनों परस्परकी अपेक्षा से सिद्ध होनेवाले हैं । दृश्यकी सिद्धिहुये तिसकरके अविच्छिन्न कहिये विशिष्ट दर्शन (ज्ञान) सिद्धि होती है, अरु तिस दर्शनके सिद्धहुये तिसकरके अविच्छिन्न दृश्य (विषय) सिद्ध होते हैं, इस प्रकार अन्योन्याश्रय रूप दोष करके दृश्य वा दर्शन सिद्ध होते नहीं । एतदर्थ तिनके भेदकेग्राहक प्रमाणके अभावसे उन दोनों हेतुओंका बाध है नहीं] ये जीव अरु चित्त यह दोनों परस्परके दृश्य कहिये विषय होतेहैं अरु जिसकरके जीवादिक विषयोंकी अपेक्षावाला चित्त प्रसिद्ध होताहै, अरु जिसकरके चित्तकी अपेक्षावाला जीवादिक दृश्यहै, एतदर्थ " उभेह्यन्योन्यदृश्येते किन्तदस्तीतिचोच्यते " ये दोनों अन्योन्यकरके दृश्यहैं सो क्या है ऐसे (प्रश्नकर्त्ताप्रति) कहते हैं अर्थात् ये जीव अरु चित्त दोनों परस्परके दृश्य हैं । अर्थात् परस्पर करके देखने (विषयकरने) योग्य हैं, अरु जिसकरके वे दोनों परस्पर के दृश्य हैं, एतदर्थ अन्योन्याश्रयरूप दोषके सद्भावसे चित्त अथवा चित्तकरके देखनेके योग्य जो दृश्य पदार्थहै सो क्याहै, इसप्रकार प्रश्न किये हुये, तिनेकी पूछकरके 'यह कुछभी हैनहीं, इसप्रकार कहाहै वा कहतेहैं । जैसे स्वप्नविषे "तत्ररथानरथयोगा " इत्यादि प्रमाण

यथास्वप्नमयोजीवो जायतेम्रियतेऽपिच। यथाजीवास्तथासर्वे भवन्ति न भवन्तिच ६८। १६५॥

से। हस्ती वा हस्तीका चित्त विद्यमानहैनहीं तैसे यहां जाग्रत् विषे भी विवेकीपुरुषको कुछभी वस्तु विद्यमानकरके प्रतीतहोतानहीं॥ यह अभिप्राय है। प्रश्न॥ जाग्रत्विषे चित्त वा चित्तका दृश्य यह दोनों विद्यमान कैसे नहीं, तिहां उत्तर, कहतेहैं॥ लक्षणाशून्यमुभयं तन्मतेनैव गृह्यते॥ यह दोनों लक्षणाशून्य है तिनके मत सेही ग्रहण करते हैं, अर्थात् जिस करके लखा (देखा) जाय सो कहिये लक्षणा ऐसा जो प्रमाण तिसकोयहां लक्षणा कहतेहैं। अरु जिस करके चित्त अरु चित्तका दृश्य (चेत्य) यह दोनों लक्षणा काहिये प्रमाण तिससे रहित हैं, ताते तिनके भेदका प्रमाणीकर्ता प्रमाण करने योग्यपना है नहीं। अरु वादियोंने तो तिनके मत करके। तिस दृश्य अरु ज्ञानविषे तत्पर अर्थात् चित्तवान्ताख्य दोष करके। सो दृश्य अरुदर्शन ग्रहण कियेहैं, ताते घटकी बुद्धि को दूरकरके [यहां यह अर्थ है कि घट विषे कयां प्रमाणहै, इस प्रकार प्रश्न किये हुये ज्ञान प्रमाण है, ऐसा उत्तर बने नहीं क्योंकि अन्य वस्तुओं के ज्ञानविषे अतिप्रसङ्ग (अतिव्याप्ति) हो, वेगी ताते। अरु घटका ज्ञान प्रमाणहै, ऐसा उत्तर भी बने नहीं क्योंकि अन्योन्याश्रय दोषका प्रसंग प्राप्त होता है ताते। अतएव घट अरु तिसके ज्ञानका प्रमाण अरु प्रमेयभाव सम्भवे नहीं] घट ग्रहण करते नहीं, अरु घटको दूरकरके घटकी बुद्धि (ज्ञान) भी ग्रहण करतेनहीं। एतदर्थ तिस ज्ञान अरु ज्ञेयरूप चित्त अरु चित्त के दृश्यविषे प्रमाण अरु प्रमेय का भेद कल्पना करने को शक्य नहीं॥ इत्यभिप्रायः॥ ६७। १६४॥

६८। १६५॥ हे सौम्य! [दर्शन कहियेज्ञान से भिन्न अण्डजादि दृश्य पदार्थोंके असद्भावके अनुमानके ग्राहक प्रमाणकरके बाधको निवारण करके, अब दर्शनसे भिन्न तिन अंडजादिकनके

यथामायामयोजीवो जायतेम्रियतेऽपिच । तथाजीवाश्रमीसर्व्वे भवन्तिनभवन्तिच ६९ । १६६ ॥

यथानिर्मितकोजीवो जायतेम्रियतेऽपिवा । तथा जीवाश्रमीसर्व्वे भवन्तिनभवन्तिच ७० । १९७ ॥

असद्भाव के हुये जन्मादिकोंकी प्रतीतिका बाधहोवेगा, इसशङ्का को दूर करते हैं,] "यथास्वप्नमयोजीवो जायतेम्रियतेऽपिच। तथाजीवाअमीसर्वे भवन्तिनभवन्तिच"। "जैसे स्वप्नमय जीव जन्मताहै अरु मरताभी है, तैसेही, यह सर्वजीव होते भी हैं अरु नहीं भी होते"॥ अर्थात् जैसे स्वप्न विषे अनहुयेही जीव जन्मते अरु मरते हैं, तैसे यह जाग्रत् के जीव भी न हुये हुये जन्मते अरु मरते हैं ६८ । १९५ ॥

६९ । १९६ ॥ हे सौम्य ! [अब मायामय जीव के अरु निर्मितक जीवके भेदके जानने की इच्छावाले के प्रति कहतेहैं] "यथा मायामयोजीवो जायतेम्रियतेऽपिच । तथाजीवाअमीसर्व्वे भवन्तिनभवन्तिच"। "जैसे मायामय जीव उपजता है अरु मरता भी है, तैसे यह सर्व्व जीव होते भी हैं अरु नहीं भी होते" अर्थात् [जैसे इन्द्रजालिक मायावियों की माया से] मायामय जीव जन्मताहै अरु मरता भी है, तैसेही प्रज्ञप्तिमात्र चैतन्यकी मायासे [जो कि वास्तवमें हैं नहीं] यह [अण्डजादि] सर्व जीव उत्पत्यादि होते भी हैं अरु नहीं भी होते ६९ । १९६ ॥

७० । १९७ ॥ हे सौम्य! "यथानिर्मितकोजीवो जायतेम्रियतेपिवा । तथाजीवाअमीसर्व्वे भवन्तिनभवन्तिच"। "जैसे निर्माण किया जीव जन्मता भी है वा मरता भी है, तैसे यह सर्व जीव होते भी हैं अरु नहींभी होते"॥ अर्थात् जैसे मन्त्र ओषधि आदिक सामग्री से इन्द्रजाली आदिक मायावियों करके निर्माण किया जीव जन्मताभी है अरु मरता भी है, तैसेही यह अण्डजादि सर्वजीव होते हैं नहीं भी होते। अर्थात्, ६८,६९,७०,इनतीन

न कश्चिज्जायते जीवःसम्भवोऽस्य न विद्यते । एत त्तदुत्तमं सत्यं यत्र किञ्चिन्न जायते ७१ । १९८ ॥

श्लोकोंका तात्पर्यार्थ यह है कि, जैसे [संवित् कहिये चैतन्य रूप ज्ञान तिससे भिन्न अण्डआदिकों का परमार्थकरके सद्भावके अभावके अनुमान का जन्मादिककी प्रतीति से बाधहोता नहीं, क्योंकि सद्भावके अभावहुये भी स्वप्नादिकों विषे जन्मादि विकल्पके बाहुल्यता की प्रतीति है ताते । इसप्रकार ६८, ६९, ७०, इनतीन श्लोकों के तात्पर्यको कहते हैं] स्वप्नमय मायामय अरु औषधि आदिकरके रचित अण्डजादि जीव जन्मते हैं अरु मरते हैं, तैसेही यह मनुष्यादिरूप जीवभी अविद्यमानहुयेही चित्तकी कल्पनामात्रही हैं ७० । १९७ ॥

७१ । १९८ ॥ हे सौम्य ! "न कश्चिज्जायतेजीवः सम्भवोऽस्य न विद्यते" (इसका कारण नहीं ताते कोई भी जीव जन्मता नहीं ? अर्थात् जिसकरके [जो वादी , जन्मादिक सत्यहै , इस प्रकार मानता है तिसके प्रति पूर्व तृतीय प्रकरणकेअन्तके श्लोकविषे " न कश्चिज्जायते जीवः " इत्यादि कहा है तिस अर्थको पुनःस्मरण करावते हैं] इस (जगत्) का कारण नहीं, तिसही करके कोई भी जीव जन्मता (उपजता) नहीं । अरु "एतत्तदुत्तमं सत्यं यत्र किञ्चिन्न जायते" (जिसविषे कुछ भी जन्मता नहीं यह तिनके मध्य उत्तम सत्यहै? अर्थात् जिस सत्यरूप (एक अद्वितीय) ब्रह्मविषे कुछ किञ्चिन्मात्र भी उपजता नहीं, यह उन पूर्वके ग्रन्थोंविषे उपायपने करके उक्त सत्योंके मध्य उत्तम सत्यहै । इसका भावार्थ यह है कि , व्यवहारविषे सत्य विषयका अरु जीवोंका जन्म मरणादिक स्वप्नादिकों के जीवोंवत् है । अर्थात् जैसे स्वप्नविषे जीवादिक अनेक पदार्थ उपजते विनशते हैं तैसेही यह जाग्रत् के जीवादिकों को कल्पना मात्रही जानना । इसप्रकार पूर्वके तीन श्लोकोंविषे कहा, परन्तु " न कश्चिज्जायते

चित्तस्पन्दितमेवेदं ग्राह्यग्राहकवद्द्वयम्। चित्तं निर्विषयं नित्यमसंगन्तेनकीर्त्तितम् ७२।१९९॥

जीवः" ८ कदापि कोई भी जीव जन्मता नहीं यह परमार्थ से जो सत्य है॥ इस श्लोकका अर्थ पूर्व तृतीय प्रकरणके अन्त के श्लोकविषे कहा है ७१। १९८॥

७२।१९९॥ हे सौम्य! "। चित्तस्पन्दितमेवेदं ग्राह्यग्राहकवद्द्वयम्, चित्तं निर्विषयं नित्यमसंगन्तेन कीर्त्तितम्" । ८ चित्तका स्फुरण रूपही यह ग्राह्य अरु ग्राहकवाला द्वैत, विषयरहित चित्त है तिसकरके नित्य असंग कहा है, अर्थात् [ज्ञानको, कल्पित दृश्यकरके उपहित कहिये उपाधिवाले रूपकरके दृश्यपना होने से, तिसका देखेहुये पदार्थों से भिन्न सद्भाव है नहीं, इसप्रकार स्वप्नके दृष्टान्त से कहा, अब वास्तवसे ज्ञानको विषयसे सम्बन्ध के अभावसे आत्माही ज्ञान है, इसप्रकार कहते हैं] चित्त जो मन तिसका स्फुरणरूपही यह ग्राह्य कहिये विषय अरु ग्राहक कहिये इन्द्रिय, इनवाला द्वैत है, अरु विषयरहित चित्त कहिये चैतन्य आत्मा है। तिस हेतुकरके सो चित्त कहिये आत्म चैतन्य को नित्य असंग कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि सर्व ग्राह्य अरु ग्राहकवाला चित्तका स्फुरणरूपही द्वैत परमार्थ से आत्माही है "आत्मैवेदं सर्वं" एतदर्थ सो चित्त संज्ञक चैतन्य आत्मा निर्विषय है। अरु तिस निर्विषयहोने रूप हेतुकरके तिसको नित्य असंग कहा है "असंगोह्ययं पुरुषः" ८ असंगही यह पुरुषहै, यह बृहदारण्य उपनिषद् के प्रमाणसे। विषय सहित वस्तुका विषयविषे संग कहिये आसक्ति होवे है अरु चित्त संज्ञक आत्मा जिसकरके अविषय है एतदर्थही असंग है, इस युक्तिसे आत्मा का असंगपना सर्वदा सिद्धही है। जैसे आकाश निराकार निरवयव अतिसूक्ष्महोने से जल घृत तैलादिक सर्वमें व्याप्तहुआ जलादिक किसीपदार्थ अरु तिनके धर्मोंसाथ कदापि स्पर्श

योऽस्तिकल्पितसंवृत्या परमार्थेनत्नास्त्यसौ । परतन्त्राभिसंवृत्या स्यान्नास्तिपरमार्थतः ७३ । २०० ॥

भी करता नहीं, तैसे आकाशसे भी महासूक्ष्म निराकार निर्विकार आत्मा आकाशादि सर्व में व्याप्तहुआ-हुआ भी सदा असंगहीहै । ७२ । १६९ ॥

७३।२००॥ हे सौम्य ! । शंका । ननु, जब निर्विषय होनेकरके चित्त जो चैतन्य ब्रह्म, तिसका असंगपना है, तब सो असंगपना सिद्धहोता नहीं, क्योंकि शास्ता कहिये शिक्षाका करनेवालागुरु, शास्त्र अरु शिष्य । अर्थात् शास्ता, शास्त्र अरु शिष्य, इत्यादि प्रमाता प्रमाणादिक विषय विद्यमान हैं ताते । समाधान । यह दोष बने नहीं, क्योंकि " योस्तिकल्पितसंवृत्या परमार्थेननास्त्यऽसौ ," जो कल्पित तिसकरके हैं यह परमार्थसे है नहीं, अर्थात् जो शास्त्र शास्तादि पदार्थ विद्यमान है, सो परमार्थकी प्राप्तिका साधन (उपाय) होने करके कल्पित जो व्यवहार तिसकरके है । परन्तु यह शास्त्रादि पदार्थ परमार्थ से है नहीं । इसमें " ज्ञातेद्वैतं नविद्यते " जानेहुये द्वैत है नहीं ? यह प्रथम प्रकरणके २५ वें श्लोक करके, उक्त वाक्य अनुकूल है । अरु [ननु, वैशेषिक वादी जो हैं सो द्रव्यसे आदिलेके समवाय पर्यन्त षट्पदार्थोंको परमार्थ से मानते हैं, अरु जब तैसे है तब चैतन्यको असंगपना कैसेहै, । तहां, समाधान, कहते हैं, । यहां यह अर्थहै कि वैशेषिक मतवादियोंकी परिभाषासे कल्पित व्यवहारके अनुसारसे जो द्रव्य से आदिलेके समवाय पर्यन्त पदार्थ हैं सो परमार्थसे हैं नहीं, किन्तु व्यवहार सत्ताकरके भासताहै, अतएव चैतन्यआत्माकाअसंगपना सर्वदा अविरुद्धहीहै ।] "परतन्त्राभिसंवृत्या स्यान्नास्तिपरमार्थतः" अन्य , शास्त्रके, व्यवहार से होय सो परमार्थ से नहीं, अर्थात् जो अन्य वैशेषिकादि मतवादियों के शास्त्रके व्यवहार से होय सो परमार्थ से निरूपण कियाहुआ नहीं । अतएव , तिसकरके

अजःकल्पितसंवृत्या परमार्थेननाप्यजः। परतन्त्रो ऽभिनिष्पत्त्या संवृत्या जायतेतु सः ७४।२०१॥

असंगकहाहै,इसप्रकारका जोहमाराकथनसोयुक्तहीहै७३।२००॥

७४।२०१॥हेसौम्य!॥शंका।ननु,शास्त्रादिकनको व्यवहाररूपताके होनेसे "अजइति" ‹अजन्माहै› यह। शास्त्रोक्त कल्पनाभी व्यवहाररूपही होगी,। समाधान। तहां ऐसेंही सत्यहै,यहकहते हैं "। अजःकल्पितसंवृत्या परमार्थेननाप्यजः"। ‹कल्पितव्यवहारसेही अजन्मा है परमार्थसे अजन्माभी नहीं› अर्थात् शास्त्रादिकोंके कल्पित व्यवहारसेही अजन्माहै, ऐसा कहतेहैं, अरु परमार्थसेतो अजन्माभी नहीं। अरु "। परतन्त्रोऽभिनिष्पत्त्या संवृत्याजायते तु सः"। ‹अन्य शास्त्रकी प्रसिद्धिसे सोतो व्यावहारिक है,अरु जन्मताहै› अर्थात् जिसकरके [यहां यह अर्थहै कि, द्रव्यका अरु गुणादि पांचका जो लक्षणहै, सो तिससे व्यावर्त्तक अपने लक्षणके संभवविना कल्पते नहीं। अरु तैसेहुये तिन तिनके लक्षण से तिनकी प्रतीतिके हुये तिससे भिन्नकी प्रतीति होवेहै, अरु तिस भिन्न पदार्थ के जो लक्षणसे तिसकी प्रतीतिकेहुये तिससे व्यावृत्त ।पृथक्किये। पदार्थकी प्रतीतिहोनेहै। इसप्रकार परस्परकेआश्रयरूप दोषसे कुछभी वस्तु वास्तवसे सिद्धहोती नहीं] अन्य परिणामवादियोंके शास्त्रकी प्रसिद्धिसे।। अर्थात् अन्योंके शास्त्रनिषे जो परिणामरूप जन्मकी प्रसिद्धिहै तिसके निषेधसे।। जो "आत्मा अजन्मा है" ऐसे कहाहै सोतो व्यवहारसे है। अरु जिसकरके अजन्मा है तातेजन्मरूप प्रतियोगी को व्यवहारकरके सिद्धहोनेसे तिसका निषेधरूप अजन्मापनाभी तैसाही है। यह अर्थ है। एतदर्थ " अजइति " अजन्मा है, इसप्रकारकी यह कल्पना भी परमार्थरूप विषयसे प्रवृत्त होनीनहीं। [अजन्मापने आदिकव्यवहारकरके उपलक्षित जोस्वरूपहै तिसका अकल्पितपनाहै, क्योंकि तिसको कल्पनाका अधिष्ठानपना है ताते। अरु कल्पित

अभूताभिनिवेशोऽस्ति द्वयं तत्र न विद्यते। द्वयाभावं स बुद्ध्वैव निर्निमित्तो न जायते ७५। २०२॥

यदा न लभते हेतूनुत्तमाधममध्यमान्। तदा न जायते चित्तं हेत्वाभावे फलं कुतः ७६। २०३॥

दिकोंको अकल्पित वस्तुके प्रमाज्ञान। प्रमाण जन्यज्ञान। की अहेतुता नहीं, क्योंकि प्रतिविम्बादिकों को विम्बादिकों के प्रमा की हेतुता सिद्ध है ताते, ऐसा जानना] इत्यर्थः ७४। २०१॥

७५। २०२॥ हे सौम्य! । शङ्का। ननु, [ज्ञानको, कल्पित शास्त्रादिकोंसे अन्यता (पृथक्ता) के हुये तिसको मिथ्याहोनेसे अपुनरावृत्ति कहिये आवागमनसे रहित मोक्षरूप फलकी साधनता होगीनहीं,] । समाधान। तहां कहते हैं "अभूताभिनिवेशोस्ति द्वयं तत्र न विद्यते, द्वयाभावं स बुद्ध्वैव निर्निमित्तो न जायते" (असत्‌विषे अभिनिवेशहै तिसविषे द्वैत विद्यमान नहीं, द्वैतके अभावको जानके ही निमित्तसे रहित होता है सो नहीं) अर्थात् जिसकरके असत् कहिये मिथ्या ज्ञानका विषय संसार है, एतदर्थ असत्यरूप द्वैतविषे केवल अभिनिवेश, कहिये आग्रह, है। अरु जिस करके तिस आत्माविषे मिथ्या आग्रहमात्र अरु जन्मका कारण द्वैत विद्यमानहै नहीं, एतदर्थ जो पुरुष द्वैत के अभावको जानकेही मिथ्या द्वैतके आग्रहरूप निमित्तसे रहित होता है सो जन्मता नहीं। अर्थात् मिथ्या ज्ञानरूप द्वैत प्रपञ्चके आग्रह रूप अभिनिवेशके सम्यक् अभाव हुयेही मोक्षहै। "ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः"। ७५। २०२॥

७६। २०३॥ हे सौम्य! ["निर्निमित्तो न जायते" (निमित्त से रहित हुआ जन्मता नहीं) इसप्रकार जो पूर्व ७५ वें श्लोक विषे कहा तिस इस अर्थको वर्णन करते हैं] जाति कहिये वर्ण अरु आश्रमको। अर्थात् ब्राह्मणादि वर्ण अरु ब्रह्मचर्य्यादि आश्रम, इनकरके युक्त पुरुषके अर्थ विधान किये जे शम

दम अग्निहोत्रादि विहित कर्म्म रूप हेतु, सो फलाभिलाषा से रहित निष्काम अधिकारी पुरुषों करके अनुष्ठान किये धर्म्म [अर्थात् धर्म्म अरु कर्म्मका इसप्रकार विचारहै कि कर्म्म जो शब्द है सो, नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित्त, अरु कामुक, अरु निषिद्ध इन पांचोप्रकारके कर्म्मों विषे समान वर्त्तताहै, परन्तु सर्व कर्म धर्म्म नहीं क्योंकि निषिद्ध आदि कर्म्मोंको धर्मपना नहीं, ताते जिन सन्ध्या गायत्री अग्निहोत्रादिक कर्म्मोंके न करने से प्रत्यवाय (पातक) होताहै सो कर्म्म मुख्य (उत्तम) धर्म्म है, अरु जिन अश्वमेधादिक यज्ञ रूप कर्म्म के न करने में प्रत्यवाय नहीं अरु करे तो फलकी प्राप्तिहोय, ताते सो कामनावाले के अर्थ होने से गौण (मध्यम) धर्म्म है, अरु अश्वमेधादि यज्ञ जो पूर्वराजर्षियोंने किये हैं सो बहुधा स्वर्ग प्राप्तिकी कामनासे, वा महत् प्रायश्चित्त की कामना से किये हैं, अतएव यज्ञादिक कामुक कर्म्म गौण धर्म है, ताते निष्काम अधिकारी करके अनुष्ठान किये अग्निहोत्रादि कर्म्म रूप मुख्य धर्म्म। सो देव भावादिक उत्तम जन्मकी प्राप्ति के प्रयोजनार्थहोनेसे केवल उत्तमहै। अरु धर्म्म अधर्म मिश्रित रूप कर्म्म [अर्थात् यहां धर्म्म अधर्म्म को मिश्रित कहा है तिस करके कुछ अश्वमेधादि धर्म्म अरु ब्रह्महत्यादि अधर्मका समुच्चय नहीं कहा, किन्तु कामनासे रहित जो केवल उत्तम अग्निहोत्रादि धर्म्म, अरु तिनकी अपेक्षा कामुक कर्म्म रूप अधर्म्म तिनका समुच्चय धर्म्माधर्म्म अरु मिश्रित शब्दका अर्थ जानना। सो मनुष्यादिक मध्यम जन्म भावकी प्राप्तिके अर्थ होनेसे, मध्यमहै। अरु जो निषिद्धाचरणहै सो तिर्य्यगादि अधम योनिकी प्राप्तिका निमित्त होनेसे अधर्म्म रूप प्रवृत्ति विशेष अधर्म्म है। अतएव "यदा न लभते हेतूनुत्तमाधम मध्यमान्, तदा न जायते चित्तं हेत्वाभावे फलं कुतः"। [जब चैतन्य उत्तम मध्यम अरु अधम हेतुओं को देखता नहीं, तव जन्मता नहीं अरु हेतुके अभाव हुये फल कहांसे होगा? अर्थात् [उक्त प्रकार के उत्तम मध्यम

अनिमित्तस्य चित्तस्य याऽनुत्पत्तिः समाऽद्वया। अ-
जातस्यैव सर्व्वस्य चित्तदृश्यं हि तद्यतः ७७। २०४॥

अधम हेतुओं को। जब चित्त कहिये चैतन्य उन अविद्या करके कल्पित उत्तम मध्यम अरु अधम हेतुओं को, सर्व कल्पना से रहित एक ही अद्वितीय आत्मतत्त्व को जानता हुआ, देखता नहीं। जैसे अविवेकी बालकों करके आकाश विषे दृश्यमान जो मल (मलिनता) तिसको विवेकी पुरुष देखता नहीं, तद्वत् तब देवादिक आकारों करके उत्तम मध्यम अरु अधम, कर्मोंके फलरूप से जन्मता नहीं। अरु बीजादिक के अभाव हुये धान्य के वृक्षादिकोंवत् हेतु के अविद्यमान हुये फल उपजता नहीं; एतदर्थ हेतु के अभाव हुये फल कहां से होवेगा किन्तु कहीं से भी नहीं ७६। २०३॥

७७। २०४॥ हे सौम्य! ["तदा न जायते चित्तं" (तब चित्त जन्मता नहीं) इसप्रकार अभी ७६ वें श्लोक विषे कहा, सो कालपरिच्छेदकी प्रतीतिसे आगंतुकताकी शंका करके निवारण करते हैं] "हेत्वभावे चित्तं नोत्पद्यत इति" (हेतु के अभाव हुये चित्त उपजता नहीं) इसप्रकार पूर्व श्लोकविषे कहा। पुनः तिस चित्तकी अनुत्पत्ति किस प्रकारकीहै सो अब कहतेहैं "अनिमित्तस्य चित्तस्य याऽनुत्पत्तिः समाऽद्वया" (अनिमित्त चित्त की जो अनुत्पत्तिहै सो सम अद्वैतरूप है) अर्थात् परमार्थ ज्ञान दर्शन से निवृत्त हुआहै, धर्म्म अधर्म्म नामवाला जो उत्पत्तिका निमित्त है सो, जिसका ऐसा जो चित्त सो अनिमित्तचित्त कहते हैं। तिस अनिमित्त चैतन्यकी जो मोक्षनामवाली अनुत्पत्ति है सो सर्वदा [जैसे रूपेकी कल्पना कालविषे भी सीपीका अरूपापना स्वाभाविक है। अर्थात् अविवेकी पुरुष को लोभके वशसे जिसकालमें सीपीविषे रूपेकी भ्रांतिहोती है, तिस कालविषे भी सीपीका जो अरूपापनाहै सो स्वाभाविक सिद्धही है। तैसे ही

बुद्धानिमित्ततां सत्यां हेतुं पृथगनाप्नुवन्। वीतशोकं तथा काममभयं पदमश्नुते ७८। २०५॥

जन्मकी कल्पना कालविषे भी चैतन्यरूप ज्ञानकी निष्प्रपंच अद्वितीय ब्रह्मरूपता स्वाभाविकही है। अरु जन्मके भ्रमकी निवृत्तिकी अपेक्षा से तो "तदा न जायते" ‹तब जन्मता नहीं› इसप्रकार कहा। अरु यह ‹ सर्वदा, इसपद करके सूचित करते हैं। केवलमोक्षावस्थावाले चैतन्यकाही अजन्मापना होय ऐसा नहीं, किन्तु घटादिक उपहित चैतन्यको भी अजन्मापनाहै, इस अभिप्रायसे यहां ‹ सर्व अवस्था विषे, इसप्रकार कहा। अरु चैतन्य के सर्वही प्रतिबिम्बको अपने बिम्बके तुल्य ब्रह्मरूपता है ताते। इसहेतुके अभिप्राय से यह अनुत्पत्ति अद्वैतरूप कहीहै] सर्वावस्था विषे समकहिये विशेष रहित अरु अद्वितीय है। [सर्व द्वैतको चैतन्यका दृश्य होने करके मिथ्यात्व होनेसे, अरु नित्य सिद्ध परिपूर्ण चैतन्य नामक स्फूर्तिको जन्मका असंभवहै ताते, तिसकी जो अनुत्पत्ति है सो उक्त लक्षणवाली युक्त ही है] अरु "अजातस्यैव सर्वस्य चित्तदृश्यं हि तद्यतः" ‹जन्मरहित चित्तका सर्व दृश्यही है› अर्थात् जिसकरके सम्यक् ज्ञानसे पूर्व भी सो द्वैत अरु जन्मचित्त (चैतन्य) का दृश्यहीहै। एतदर्थ निमित्त रहित अद्वैतरूप चैतन्य की जो अनुपपत्ति सो सम अरु अद्वैतही है। अरु सो अनुत्पत्ति पुनः कदाचित् होताहै, इसप्रकार नहीं, वा कदाचिन होता नहीं, इसप्रकार नहीं, किन्तु चैतन्य आत्मा सर्वदा एकरूप एक रसही है "पर प्रत्यक् एकरसः" इत्यर्थः ७७। २०४॥

७८। २०५॥ हे सौम्य! ["द्वयाभावं सबुद्ध्वैव निर्निमित्तो न जायते" ‹ सो द्वैतके अभाव को जानके निमित्त से रहित हुआ जन्मता नहीं › इसप्रकार पूर्व ७५ वें श्लोकविषे कहाहै, तिसको अब पुनः वर्णन करते हैं] "बुद्धानिमित्ततां सत्यां हेतुं पृथगनाप्नुवन्" ‹ निमित्तरहित सत्ताकोजानके हेतुको पृथक् ग्रहण करता

अभूताभिनिवेशाद्धि सदृशे तत्प्रवर्त्तते। वस्त्वभा-
वं सम्बुद्धैव निःसङ्गं विनिवर्त्तते ७९। २०६॥

हुआ; अर्थात् उक्त प्रकारकी युक्ति करके जन्मका निमित्त जो द्वैत तिसके अभावहुये, निमित्तरहित परमार्थरूप सत्ताको जान के धर्म्मादिक कारणरूप हेतु को देवादिक योनिकी प्राप्तिके अर्थ भिन्न गृहण करता हुआ। अर्थात् बाह्य विषयोंकी इच्छासे रहित हुआ। "वीतशोकं तथाकाममभयं पदमश्नुते" विगतशोक काम से रहित अभयपदको प्राप्तहोताहै; अर्थात् देवादि योनिके प्रापक जे उक्तधर्म्मादिक तिनको अग्रहणकरता हुआ, अरु कामसेरहित विगत शोक हुआ। अर्थात् अविद्यादि कारण कार्य से रहित हुआ। अभय पदको प्राप्तहोता है। पुनः जन्मको पावता नहीं अर्थात् यहां जो कहा कि पुनर्जन्मको पावता नहीं सो जिन अ-विवेकियों की दृष्टिसे आत्मा जन्मता है तिनकी दृष्टिकी अपेक्षा से कहाहै, नतु आत्मा तो सदा अजन्मा एकही है ७८। २०५॥

७९। २०६॥ हे सौम्य! [जब ऐसे है तब उक्तप्रकारके पदकी प्राप्ति सदाही है, यह शंका करके कहते हैं] "अभूताभि-निवेशाद्धि सदृशेतत्प्रवर्त्तते" अभूत अभिनिवेश से सदृशविषे सो प्रवर्त्त होता है; अर्थात् जिसकरके मिथ्या द्वैतविषे द्वैतके सद्भावका निश्चयरूप जो मिथ्या आग्रह है, तिस अविद्यात्मक व्यामोहरूप मिथ्या अभिनिवेश कहिये आग्रह से सदृश कहिये तिसके अनुसारी, वस्तुविषे सो चित्त प्रवर्त्त होता है। एतदर्थ "वस्त्वभावंसम्बुद्धैव निःसंगं विनिवर्त्तते" सो वस्तुके अभावको जानकेही निःसंगहुआ निवृत्तहोताहै; अर्थात् सो पुरुष तिस द्वैत रूप वस्तुके अभावको सम्यक्प्रकार जानके ही। अर्थात् जबजा-नता है तब। अपना चित्त जैसे तिस मिथ्या अभिनिवेश के विषयसे निःसंग, कहिये निरपेक्ष, हुआ निवृत्तहोता है, तैसे तिसकी निवृत्तिके अनुसारी होता है ७९। २०६॥

निवृत्तस्याप्रवृत्तस्य निश्चला हि तदा स्थितिः ।
विषयः स हि बुद्धानां तत् स्वाम्यमजमद्वयम् ८० । २०७॥
अजमनिद्रमस्वप्नं प्रभातम्भवति स्वयम् । सकृद्वि-
भातो ह्येवैष धर्म्मो धातुः स्वभावतः ८१ । २०८ ॥

८० । २०७ ॥ हे सौम्य ! " निवृत्तस्याप्रवृत्तस्य निश्चला हि तदा स्थितिः, विषयः स हि बुद्धानां तत्स्वाम्यमजमद्वयम् " (निवृत्त हुये अप्रवर्त्त भये की अचल ब्रह्मरूप स्थिति होती है, जाते वह बुद्धिमानों का विषय है सो समभाव अज अद्वैत है; अर्थात् यदि ऐसे (उक्तप्रकार) होय तदा द्वैतरूपविषयोंसे निवृत्त हुये, अरु अन्य विषय विषे अभावके ज्ञानसे अप्रवर्त्त हुये चित्त (आत्मा) की चलन से रहित (अचल) स्वरूपही अद्वैत एक रस विज्ञान घन ब्रह्मरूप स्थिति होती है । अर्थात् भेदवादियों करके कल्पित शास्त्रोंका जो द्वैत भावरूप विषय तिस द्वैतभावादि रूप विषयों से निवृत्त हुये, अरु अन्य शब्दादि विषयों विषे तिनको भ्रान्ति रूप होनेसे तिनके अभावदर्शक यथार्थ ज्ञान से तिनविषे अप्रवर्त्त हुये चित्त, कहिये आत्मा, की यह निश्चल स्वरूपही । अर्थात् स्वरूपसेही, जैसी है तैसी । निश्चल अद्वैत एकरस विज्ञानघन ब्रह्मरूप स्थितिहोती है । अरु जिस करके सो मोक्षरूप आत्मा "दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः, प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् " इत्यादि श्रुतिप्रमाण से, परमार्थदर्शी बुद्धिमानों का विषय है, एतदर्थ सो समभाव कहिये परम निर्विशेष वस्तु अजन्मा अरु अद्वैत रूप है ८० । २०७ ॥

८१ । २०८ ॥ हे सौम्य।प्रश्न । पुनःभी यहसूक्ष्मदर्शी बुद्धिमान् पण्डितोंकाविषय ब्रह्मस्वरूपसे स्थितिरूप मोक्षकैसाहै, तहांउत्तर कहते हैं " अजमनिद्रमस्वप्नं प्रभातम्भवति स्वयम् " (अज है, निद्रासे रहितहै, स्वप्न रहितहै, अरु आपही प्रकाशरूप होताहै; अर्थात् सो समभाव अजन्माहै, अरु निद्रा अरु स्वप्नसे रहितहै,

सुखमाव्रियतेनित्यंदुःखंविव्रियतेसदा । यस्यकस्यच धर्म्मस्यग्रहेणभगवानसौ ८२।२०९॥

अरु आपही प्रकाशरूप होता है, अन्य सूर्य्यादिक प्रकाशवानोंकी अपेक्षावाला नहीं, अर्थात् ज्ञानरूप स्वप्रकाश स्वभाववाला है "तस्यभासा सर्वमिदं विभाति" अरु "सकृद्विभातोह्येवैष धर्मो धातुःस्वभावतः" (सर्वदा प्रकाशरूपही यह धर्म्म स्वभावसे धातु है) अर्थात् सर्वदा प्रकाशरूपही यह इस लक्षणवाला आत्मनामक धर्म्म स्वभावसेही धातु कहिये सर्वका धारण करनेवालाहै वा धातु कहिये वस्तुके स्वभाव से युक्त प्रकार काहै ८१।२०८॥

८२ । २०९ ॥ हे सौम्य ! प्रश्न । इसप्रकार कथनकियाभी परमार्थतत्त्व लौकिक पुरुषों करके क्यों नहीं ग्रहण होता । तहां उत्तर कहते हैं " सुखमाव्रियतेनित्यंदुःखंविव्रियतेसदा, यस्यकस्यच धर्म्मस्य ग्रहणेभगवानसौ " (जिस किस भी धर्म्म के ग्रहणसे सुख सदा आच्छादित करतेहैं, दुःखसदा प्रकट करिये है यह भगवान्) अर्थात् तिसकरके जिस किसभी द्वैतवस्तुरूप धर्म्म (कहिये पदार्थ, के ग्रहणके आग्रहसे) (अर्थात् द्वैतरूप वस्तु कुछहै इस प्रकारके आग्रहसे) सुख जोहै सो सदा श्रमबिनाही आच्छादन करते हैं (अर्थात् उक्त प्रकारके असत् द्वैतरूप वस्तुके आग्रहरूप आवरण करके सुख स्वरूप जो आत्माहै तिसको निरन्तर विना ही श्रमके आच्छादन करते हैं) अरुतिस सुखविषे (उक्त प्रकारका आवरण जो है, सो अपनी निवृत्तिके अर्थ अद्वैतके ज्ञानके निमित्त (साधन) कोही इच्छताहै, अन्य प्रयत्नकी अपेक्षा करतानहीं । अरु दुःख जोहै सो सदा प्रकट करते हैं, क्योंकि परमार्थका ज्ञान अतिदुर्लभहै ताते (अर्थात् यावत् यह पुरुष अपने दुःखोंको आचार्यके समीप जाय प्रकट कहता नहीं अरु आचार्य उसको दुःखी देखता नहीं तावत् उसको दुःखकी समूल निवृत्तिके अर्थ तत्त्व ज्ञान उपदेश करता नहीं, अतएव तत्त्व ज्ञानको अति दुर्लभ जान

अस्तिनास्त्यस्तिनास्तीति नास्तीतिनास्तिवापुनः ।
चलस्थिरोभयाभावैराट्टणोत्येवबालिशः ८३ । २१० ॥

के दुःखको सदा प्रकट करतेहैं। तिस हेतुसे यह भगवान् 'कहिये सर्व करके पूजनेयोग्य' अद्वैतरूप आत्मदेव, वेदान्त शास्त्र अरु आचार्यों करके अनेक प्रकारसे कथन कियाहुवा भी जाननेको शक्य नहीं। क्योंकि "आश्चर्योयस्यवक्ताकुशलोस्यलब्धा" ‹इसआत्मा का कहनेवाला आश्चर्यरूपहै, अरु प्राप्तहोनेवाला कुशल है›यह श्रुतिकेप्रमाणसे आत्मदेवकावक्ता श्रोताआश्चर्यवत्है ८२।२०९॥

८३ । २१० ॥ हे सौम्य ! "अस्तिवानास्ति" ‹है वा नहीं है› इत्यादिक'सूक्ष्मविषयवाले बुद्धिमान् पंडितोंके भी आग्रहसे जब भगवान् परमात्माके आवरणहीहै तब मूढ़जनोंकी बुद्धिको आवरणहै तिसमें क्या कथनहै, इस प्रकार के अर्थको देखावतेहुये कहते हैं। अस्ति नास्त्यस्ति नास्तीति नास्तीति नास्तिवा पुनः, चलस्थिरोभयाभावैराट्टणोत्येवबालिशः। ‹है, नहीं है, है नहीं है, नहीं है पुनःनहींहै,ऐसे। अरु सत् असत्भावजोहै सोस्थिर अस्थिर रूप है ताते इन चल, स्थिर उभयरूप अरु अभावों करके बालक आवरण करतेही हैं› अर्थात् "आत्मा देहादिकों से भिन्नहै, इस प्रकार कोई एक वैशेषिकादि मतवादी जानते हैं। अरुआत्मादेहादिकों से तो भिन्न है परन्तु बुद्धिसे भिन्ननहीं। इसप्रकार अन्य क्षणिकवादी जानताहै। अरु आत्मा है भी अरु नहीं भी है, इस प्रकार अन्य जो अर्द्धक्षणिकवादी सत्यअरु असत्यका कहनेवाला दिगम्बर जानता मानता कहताहै। अरु आत्मा नहीं है पुनःनहीं है, इसप्रकार हठपूर्वक अत्यन्तशून्यवादी मानताहै [यहां यह अर्थ है कि अनित्य घटादिकों से सुखादिआकारपरिणामवाला होने करके, विलक्षण होने से अस्ति भाव रूप जो यह प्रमाता कहा सो चल अरु सोपाधिक हुआ परिणामी है] तिनमें अस्ति जो है सो चल कहिये अस्थिर,है। क्योंकि घटादि अनित्य

कोट्यश्चतस्र एतास्तु ग्रहैर्यासां सदा वृतः। भगवानाभिरस्पृष्टो येन दृष्टः स सर्व्वदृक्॥ ८४।२११॥

वस्तुवों करके विलक्षणहै ताते। अरु नास्तिभाव जो है, सो स्थिर, है क्योंकि सदा निर्विशेष निरुपाधि है ताते अरु सदसद्भावजो है सो, स्थिर अरु अस्थिर, उभयरूप है। अरु स्थिर, अस्थिर विषय हैं, सो अभाव है। तिन इन चल, अरु स्थिर उभय रूप, अरु अभाव करके सर्व भी सत् अरु असत् वादियोंका वादीरूप, बालक कहिये अविवेकी भगवान् (प्रत्यगात्मा) को आच्छादन करताही है। अरु यद्यपि वो वादी पण्डितहै, तथापि परमार्थ तत्त्वके अबोधसे उक्तप्रकार, के, बालकही हैं। तब जो स्वभावही से मूढ पुरुष हैं सो बालक कहिये परमार्थ तत्त्वके विवेक से शून्य होय इसमें क्या आश्चर्य है। इत्यभिप्रायः॥ तथाच " नायमात्माप्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुतेतनूंस्वाम् ८३।२ १०॥ ८४।२११॥ हे सौम्य!। प्रश्न। पुनः जिसके सम्यग्ज्ञान करके पुरुष, अबालक, कहिये विवेकी बुद्धिमान् पंडित, होते हैं ऐसा जो परमार्थ तत्त्व (प्रत्यगात्मा) सो कैसाहै, तहां, उत्तर, कहते हैं (कोट्यश्चतस्र एतास्तु ग्रहैर्यासां सदावृत.) (जिन, के आग्रह से सदा आवृत है, चारकोटियां हैं तिनकरके) अर्थात् जिनकोटियों के प्राप्ति के निश्चयरूप ग्रहणों से (अर्थात् आग्रह, हठ, विशेषसे) आत्मा सदाआवृत, कहियेढकाहुआ, है। अरु वे प्रसिद्ध " अस्तिनास्ति, इति " (है अरु नहीं है) इत्यादिक प्रकारसे कथनकरीहुई वादियों करके कल्पितशास्त्रों के निर्णय से निरूपण करने योग्य चार कोटियां, कहिये पक्ष, हैं। अरु (भगवानाभिरस्पृष्टो येन दृष्टः स सर्व्वदृक्) (भगवान्, स्पर्श रहित जिसने देखा है सो सर्वदृक् (द्रष्टा) होताहै) अर्थात् तिन वादियों की इन " अस्तिनास्ति " इत्यादि चार कोटियोंसे (अर्थात्

प्राप्य सर्व्वज्ञतांकृत्स्नां ब्राह्मण्यंपदमद्वयम्। अनाप न्नादिमध्यान्तं किमतःपरमीहते ८५।२१२॥

, अस्ति, नास्ति, निर्विशेष, विशेष,इन चार कोटियोंसे। जोभगवान् (प्रत्यगात्मा) स्पर्शरहित। अर्थात्, अस्ति, नास्ति, भावादिकोंसे रहित। है जिस। मुनि कहिये वेदान्तशास्त्र के मनन विषे कुशल पुरुष ने देखा (साक्षात् यथार्थ अनुभव किया) है सो उपनिषदों का वेत्ता पुरुष। अर्थात् मुख्यताकरके उपनिषद्ही वेदान्तहै। सर्वदृक्, कहियेसर्वज्ञ, परमार्थदर्शी बुद्धिमान् पंडित होताहै॥ क्योंकि "मैत्रेय्यात्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुतेमते विज्ञाते इद ँ सर्व्वं विदितम्" इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से जो सर्वाधिष्ठान प्रत्यगात्माको सम्यक्प्रकार जानता है सो पण्डित सर्व्वज्ञ होता है। तिससे इतर सर्व मायिक सर्वज्ञता है, इसप्रकार जानना ८४।२११॥

८५।२१२॥ हे सौम्य! "प्राप्य सर्व्वज्ञतां कृत्स्नांब्राह्मण्यं पदमद्वयम्, अनापन्नादिमध्यान्तं किमतः परमीहते" (सम्पूर्ण सर्व्वज्ञताको पायके अद्वैत अरु आदि मध्य अन्तको प्राप्तहुये अरु ब्रह्मभावरूप पदको पायके इसके पश्चात् क्या चेष्टाकरता है, कुछभी नहीं,) अर्थात् सो ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण,इस उक्तप्रकार की समस्त सर्वज्ञताको पायके अद्वैत, अरु 'आदि मध्य अन्त कहिये उत्पत्तिस्थिति अरु लय' इनको अप्राप्तहोयके,अरु "एषनित्यो महिमा ब्राह्मणस्य" (यह नित्य महिमा ब्राह्मणकाहै) इसबृहदारण्यकी श्रुतिप्रतिपादित ब्रह्मभावरूपपदको पायके इस सर्वोत्कृष्ट आत्मलाभके। कि "आत्मलाभान्नपरंविद्यते" इत्यादि प्रमाणसे जिसलाभ से पर (श्रेष्ठ) अन्यलाभ विद्यमान नहीं। पश्चात् क्या निष्प्रयोजन चेष्टाकरता है, (अर्थात् साक्षात् आत्मज्ञान होनेके पश्चात् सो विद्वान् क्या निष्प्रयोजन कर्म्मादिकों में प्रवर्त्त होता है। किन्तु कदापि वृथा चेष्टा करता नहीं क्योंकि

विप्राणां विनयो ह्येष शमः प्राकृतउच्यते ॥ दमः प्रकृतिदान्तत्वादेवं विद्वाञ्छमं व्रजेत् ८६ । २१३ ॥

"नैवतस्य कृतेनार्थं तस्यकार्य्यं न विद्यते" इत्यादि गीतास्मृति के प्रमाण से उसको कर्मों से कुछ भी अर्थ नहीं, ताते उसको कुछभी कर्त्तव्यता विद्यमान है नहीं । अर्थात् उक्त प्रकार के आत्मलाभी को कुछ भी कर्तव्य नहीं ८५ । २१२ ॥

८६ । २१३ ॥ हे सौम्य ! ["यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति" (यावत् जीवतारहे तावत् अग्निहोत्र को करे) इत्यादि श्रुतिको अविद्वान् को विषय करनेवाली होने से, विद्वान् (आत्मज्ञानी) को अग्निहोत्रादि कर्म कर्त्तव्य नहीं, इसप्रकार कहा] अब तिस विद्वान्को भी शमदमादिककी विधिसे कर्त्तव्य है, यह शङ्काकरके कहते हैं, । यहां यह अर्थ है कि ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण को यह विनय स्वाभाविक है, ताते सो श्रुतिकी आज्ञाके अधीन कर्त्तव्यताको सम्पादन करता नहीं अरु शमभी स्वाभाविक है ताते श्रुतिकी आज्ञासे करता नहीं । अरु दम भी स्वाभाविक होने से श्रुतिकी आज्ञाको इच्छता नहीं । अर्थात् शमदमादिक जो साधन है सो सम्यक् आत्मज्ञानकी प्राप्ति से पूर्व जिज्ञासावस्था में " शान्तो दान्त उपरातितितिक्षुसमाहितो भूत्वा " इत्यादि श्रुति आज्ञा प्रमाण कर्त्तव्य है अरु जब उन साधनों करके अन्तःकरण की शुद्धिद्वारासम्यक् ज्ञान होताहै, तब वह पूर्वकिये शमादिक साधन स्वभाव भूत होने से वह विद्वान् साधनप्रवर्त्तक श्रुति आज्ञाको इच्छता नहीं । इसप्रकार कूटस्थरूप आत्मस्वरूप का जाननेवाला विद्वान् पुरुष सर्व विकार से रहित ब्रह्मस्वरूपसे स्थित होता है "ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति"] "विप्राणांविनयोह्येषशमःप्राकृत उच्यते, दमः प्रकृतिदान्तत्वादेवं विद्वाञ्छमंव्रजेत्" (ब्राह्मणों का विनयहै सोई स्वाभाविकशम कहतेहैं, अरु दमभी यहीहै स्वाभाविक दम होने से ऐसे विद्वान् शमको पावता है) अर्थात् ब्राह्मणों

रावस्तु सोपलम्भञ्च द्वयं लौकिकमिष्यते। अवस्तु सोपलम्भंच शुद्धलौकिकमिष्यते ८७।२.१४॥

(ब्रह्मवेत्तों)काजो यह स्वाभाविकआत्मस्वरूपसे स्थितिरूप विनय है, यह विनयहै। अरु यहही विनय स्वाभाविक शम कहते हैं। अरु दमभी यही है, क्योंकि स्वभावसे शान्तरूप होनेसे स्वाभाविक दमकरके युक्त है ताते। ऐसे उक्तप्रकारका स्वभावसे शान्त ब्रह्मका जाननेवाला विद्वान् ब्रह्मस्वरूप स्वाभाविक शान्तिरूप शमको पावताहै। अर्थात् सम्यक् आत्मवेत्ता विद्वान्की जो स्वरूप स्थिति है सोई शमदमादि हैं, क्योंकि आत्मास्वभावसेही शम दमादि रूपहै ताते, सो विद्वान् भी तैसाही है ८६। २१३॥

८७। २१४॥ हे सौम्य! [इसप्रकारपरमतके निराकरण द्वारा आत्मतत्त्व निर्धार किया। अब अपनी प्रक्रियासे तीन अवस्थाके कथन द्वारा भी तिस आत्मतत्त्वका निर्द्धार करने को प्रथम दोनों अवस्थाका कथन करते हैं] ऐसे (उक्तप्रकार) परस्पर विरुद्धहोनेसे संसारके कारण अरु रागद्वेषरूप दोषोंकेआश्रय वादियोंके सिद्धान्तहै, एतदर्थ सो मिथ्याज्ञातरूपही है, इसप्रकार तिनकी युक्तियोंसेही देखायके, अरु उक्त चारकोटियोंसे रहित राग द्वेषादिकदोषोंका अनाश्रय स्वभावसेही शान्त अद्वैत सिद्धान्तहीं सम्यक्ज्ञानहै,यह निर्णय यहांपर्य्यन्त समाप्तकिया।अब [यहांयह अर्थहै कि शिष्यकरके साधनेयोग्य जे आरोपदृष्टि तिसको आश्रय करकेजाग्रदादि पदार्थके शोधनपूर्वक जोबोधकाप्रकार सो अपनी प्रक्रियाहै। ताते तिसही आत्मतत्त्वके लखानेके अर्थ ('परायण) शेषग्रन्थहै] अपनी प्रक्रियासे आत्मतत्त्व लखानेकेअर्थ अवशेपरहे ग्रंथका आरम्भहै, [जो प्रातिभासिक अरुव्यावहारिक रूप स्थूल पदार्थोंका समूह, सूर्य्यादि देवताके अनुग्रहकरके युक्त इन्द्रियों करके जानाजाय व जानते हैं सो जाग्रदवस्था है] सत् कहिये स्थूल, वस्तु करके सहित जो वर्त्तमान होवे ऐसा जो व्यवहार,

अवस्त्वनुपलम्भञ्च लोकोत्तरमिति स्मृतम् । ज्ञानं ज्ञेयञ्च विज्ञेयं सदा बुद्धैः प्रकीर्तितम् ८८ । २१५ ॥

तिसको, सवस्तु, कहते हैं । सवस्तु सोपलम्भञ्च द्वयं लौकिक मिष्यते ॥ (अवस्तु अरु सोपलम्भ रूप ; शास्त्र ; द्वैत लौकिक प्रसिद्ध है ; अर्थात् स्थूल वस्तुकरके वर्त्तमान होय ऐसा जो व्यवहार तिसको , सवस्तु, कहते हैं । अरु तैसेही उपलम्भ , कहिये प्रतीति तिसकरके सहित जो वर्तमानहोवे तिसको , सोपलम्भ, कहतेहैं । ऐसा जो सवस्तु अरु सोपलम्भ रूप , शास्त्रादिक सर्व व्यवहारका विषय ग्राह्य अरु ग्राहकरूप द्वैत लौकिक (अर्थात् लोक विषे प्रसिद्ध जाग्रदवस्था (ऐसे लक्षणवाला जाग्रत् वेदान्तविषे अङ्गीकार कियाहै [बाह्य इन्द्रियनका किया जो व्यवहार, सो संवृत्ति, शब्दका अर्थ है । सो भी स्थूल पदार्थोंवत् स्वप्नविषे होते नहीं । तैसे होने से बाह्य इन्द्रियों के विलयहुये जाग्रत्की वासना से मनका तिन तिन पदार्थोंके आभास रूप आकार से भासना सो , स्वप्न, शब्दका अर्थ है] । अरु " अवस्तुसोपलम्भञ्च शुद्धं लौकिक मिष्यते ॥ (अवस्तु अरु सोपलम्भ रूप शुद्ध लौकिक अंगीकार करते हैं ; अर्थात् स्थूल व्यवहार के भी अभावसे अवस्तु रूप, अरु प्रतीति सहित वस्तुवत् असत् वस्तु विषे भी प्रतीति होवे है । तिस प्रतीति करके सहित वर्तमानहै, एतदर्थ , सोपलम्भ , है । ऐसा अवस्तु अरु सोपलम्भ रूप शुद्ध (अर्थात् स्थूल जाग्रत्से केवल सूक्ष्म (लौकिक (अर्थात् सर्व प्राणियों को साधारण (सम) होने से लोक विषे प्रसिद्ध स्वप्न (है इसप्रकार अंगीकार करते हैं ८७ । २१४ ॥

ज्ञाने च त्रिविधे ज्ञेये क्रमेण विदिते स्वयम् । सर्वज्ञता हि सर्वत्र भवतीह महाधियः ८९।२१६॥

ग्राह्य अरु ग्रहणसे जो रहितहै सो लोकोत्तर है। अर्थात् उक्त जाग्रत् अरु स्वप्न रूप लोकसे पीछे होनेवाली जो सुषुप्ति अवस्था तिसको लोकोत्तर कहते हैं इसप्रकार जान्या है, अतएव तिस सुषुप्तिको लोकातीत कहते हैं। अरु जिस करके ग्राह्य अरु ग्रहण का विषयही लोकहै, तिसके अभावसे सर्व प्रवृत्तिका बीज सुषुप्ति अवस्था है, इसप्रकार शास्त्रवेत्ता पुरुषोंको प्रसिद्ध है। अरु "ज्ञानं ज्ञेयञ्च विज्ञेयं सदा बुद्धैः प्रकीर्तितम्" (ज्ञान अरु ज्ञेय, अरु विज्ञेय सदा बुद्धिमानोंने कहा है), अर्थात् उपाय सहित परमार्थ तत्त्व लौकिक, शुद्ध लौकिक, अरु लोकोत्तर, इस क्रमकरके जिस ज्ञानसे जानिये है, सो ज्ञान उक्त इन तीन ज्ञेय रूपहै, क्योंकि इस ज्ञानसे भिन्न ज्ञेयका असम्भवहै तातें। अरु सर्ववादियोंकरके कल्पित वस्तुके इन्हीं तीनोंविषे अन्तरभाव होनेसे, विशेषकरके जाननेयोग्य परमार्थ रूप सत्य एक तुरीयनामवाला अद्वैत अजन्मा आत्मतत्त्वही सदा परमार्थदर्शी ब्रह्मवेत्ता पण्डितोंने कहा है "ज्ञेयंयत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते" इत्यादि गीतोक्त भगवद्वाक्य प्रमाणसे सर्व ब्रह्मवेत्ता पण्डितोंने अपने शिष्य मुमुक्षुओंप्रति विशेषकरके जानने योग्य वस्तु एक तुरीय नाम वाला आत्मतत्त्वही कहा है। अतएव सर्व जिज्ञासुओं को आत्मज्ञानार्थ पुरुषार्थ कर्त्तव्य योग्य है ८८।११५॥

८९।२१६॥ हे सौम्य! ["आत्मनिविज्ञाते सर्वमिदंविज्ञातंभवतीति" (आत्माके जानतमंते सर्वयह जाना जाता है)। इसश्रुति की जो प्रतिज्ञा है सो उक्तवस्तु (आत्मा) के ज्ञानहुयेही सिद्धहोती है, इसप्रकार कहतेहैं] "ज्ञानेचत्रिविधेज्ञेये क्रमेणाविदितेस्वयम्, सर्वज्ञताहिसर्वत्र भवतीहमहाधियः" (ज्ञानविषे अरु तीनप्रकारे ... स्वयं (आत्माको) जानेहुये, महाबुद्धिमान्

॥ हेयज्ञेयाप्यपाक्यानि विज्ञेयान्यग्रयाणतः॥ तेषामन्यत्र विज्ञेयादुपलम्भस्त्रिषु स्मृतः॥ ९०॥ २१७॥

पुरुषको इसलोक विषें सर्वत्र सर्वज्ञताही होती है ॥ अर्थात् लौकिकादिक विषयवाले ज्ञानविषें, अरु लौकिकादिक तीनप्रकारके ज्ञेयविषे, तहां प्रथम लौकिक। जाग्रत्। स्थूलहै, तिसके अभावहुये पश्चात् शुद्ध लौकिक। स्वप्न। है। तिसके अभावहुये पश्चात् लोकोत्तर। सुषुप्ति। है। इसप्रकारही क्रमकरके तीनों स्थानके अभावसे, परमार्थ सत्य तुरीय अज अद्वैत अभय आत्मतत्त्व के जानेहुये सर्वलोकसे अतिशय। अलौकिक। वस्तुको विषय करनेवाली सूक्ष्म बुद्धिकरके युक्तहोने से, इसप्रकार जाननेवाला जो आत्मवेत्ता महाबुद्धिमान् पुरुषहै तिसको इस संसारविषें सर्वदा आत्मस्वरूपभूतही सर्वज्ञता; कहिये सर्वरूप ज्ञानभाव, होती है, क्योंकि एकवारके जानेहुयेही स्वरूप विषे व्यभिचारका अभाव है ताते। [अर्थात् जैसे एकवारही सम्यक्प्रकार रज्जुके जानेहुये पुनः उसविषे सर्प जलधारादि भ्रान्तिरूप व्यभिचार होता नहीं तैसे] । अरु जिसकरके अन्यवादियोंवत् परमार्थके ज्ञाता पुरुषको ज्ञानके उद्भव अरु तिरस्कार होतानहीं, एतदर्थ, आत्मवेत्ता विद्वान्को परिपूर्ण ज्ञानरूपता होवेहै ॥ ८९॥ २१६॥

९०॥ २१७॥ हेसौम्य ! [तीन अवस्थाके ज्ञेयपनेके कथनसे तिनका परमार्थसे सद्भाव होवेगा। यह शंकाकरके तिसका निषेध करते हैं] लौकिकादिकनके क्रमकरके ज्ञेयपनेके कथनसे परमार्थसे अस्तिभावकी शंका होतीहै, । सो युक्तनहीं; इसप्रकार कहतेहैं। त्यागनेयोग्य लौकिकादि, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, यह तीन आत्मा विषे असत्पने करके रज्जुविषे सर्पवत् त्यागकरने योग्य (हेय) है। अरु यहां उक्त चार कोटियोंसे रहित जो परमार्थतत्त्व सो ज्ञेय कहते हैं अरु बाह्य तीन एषणासे संन्यासीकरके प्राप्तहोने योग्य; पांडित्य, बाल्य, अरु मौन, इन नामवाले क्रमसे जे, 'श्रवण, मनन, निदि-

प्रकृत्याकाशवज्ज्ञेयाः सर्व्वे धर्म्मा अनादयः ।
विद्यते नहि नानात्वं तेषां क्वचन किञ्चन ९१।२१८॥

ध्यासन, रूप साधन सो प्राप्त करने योग्य हैं । अरु राग द्वेष काम क्रोध मोहादि जो कषायनामवाले दोष हैं सो पकावने को योग्य होनेसे पाक्य हैं । [अर्थात् जैसे पाकक्रिया अन्नादिक उदर विषे विकारकेहेतु वा अंकुरके उत्पादक होतेनहीं, तैसेही शमदम क्षमा आर्जवता आदिरूप अग्निकरके सम्यक् प्रकार से पाककिये उक्त कषायादि दोष सो विद्वान्केविषे आभासमात्र रहेहुये अपने अनर्थरूप अंकुर वा फलके उत्पादक होतेनहीं] । ताते "हेयज्ञेयाप्य पाक्यानि विज्ञेयान्यग्रयाणतः । तेषामन्यत्रविज्ञेयादुपलम्भस्त्रिषु स्मृतः" (हेयज्ञेय आप्य पाक्य उपायोंकरके जाननेयोग्यहै । तिन काज्ञेयसे अन्यत्र उपलंभ तीनठिकाने जान्या है) अर्थात् उक्तसर्व हेय (त्याज्य) ज्ञेय (जाननेयोग्य) आप्य (पावनेयोग्य) पाक्य (पकावनेयोग्य) जो हैं सो संन्यासियोंकरके उपायनसे जाननेके योग्य हैं । अरु प्रथमसे तिन हेयादिकोंका ज्ञेयते । [अर्थात् परमार्थसत्य एक ब्रह्मरूप ज्ञेयको छोड़िके] अन्य ठिकाने जो अविद्याकी कल्पनामात्र उपलंभ कहिये ज्ञान है, सो , हेय, आप्य, अरु पाक्य, इन तीनविषे भी ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंने जान्या है । तिनके परमार्थ सत्य से नहीं ॥ इत्यर्थः ॥ ९० । २१७ ॥

९१ । २१८ हे सौम्य ! [जो पूर्व कहा , अस्तिआदि चार कोटियों से रहित जो ज्ञेय (जानने योग्य) है सो परमार्थ तत्त्वहै, तिसको अब स्पष्ट करते हैं] " प्रकृत्याकाशवज्ज्ञेयाः सर्वे धर्म्मा अनादयः । विद्यते नहि नानात्वं तेषां क्वचन किञ्चन " (सर्व धर्म्म स्वभावसे आकाशवत् हैं अरु अनादि हैं अरु जानने योग्य हैं । तिनका नानात्व कहीं भी कुछ भी विद्यमान नहीं) अर्थात् परमार्थ से तो सर्व धर्म्म 'कहिये आत्मा' स्वभावसे सूक्ष्मनिरंजन अरु सर्वगतपने विषे आकाशवत् है " आकाशवत्सर्वगतः

आदिबुद्धाः प्रकृत्यैव सर्व्वे धर्म्माः सुनिश्चिताः।
यस्यैवम्भवति क्षान्तिः सोऽमृतत्वायकल्पते ९२।२१९॥

स नित्यः " अरु अनादि ' कहिये व्यवधान से रहित नित्य हैं, इसप्रकार मुमुक्षुओं करके जानने योग्यहैं। अरु तिनका नानात्व कहीं भी (अर्थात् देशकाल अवस्थादिक किसीविषे भी) कुछ भी (अर्थात् अणुमात्र भी) विद्यमान नहीं (अर्थात् एक अद्वैत परिपूर्ण आत्माविषे एक अणुमात्र भी नानात्व नहीं ॥ यह अर्थ है ९१। २१८॥

९२। २१९॥ हे सौम्य ! अब आत्माख्यधर्म्मकी ज्ञेयताकहिये जाननेकी योग्यता, भी व्यावहारिकही है, पारमार्थिक नहीं, इस प्रकार कहतेहैं। " आदिबुद्धाः प्रकृत्यैवसर्व्वे धर्म्माः सुनिश्चिताः " ' सर्व धर्म स्वभावसेही आदिविषे बुद्ध निश्चित स्वरूपवालेहैं ' अर्थात् सर्व धर्म , कहिये आत्मा, स्वभावसे ही आदिविषे बुद्धहै, (अर्थात् जैसे नित्यप्रकाश स्वरूप है तैसेही नित्य बोध स्वरूप है अर्थात् नित्य निरन्तर बोधरूपही प्रकाशवाला है) अरु तिसका निश्चय अब करनेका है ऐसा नहीं, अरु ऐसा है, ऐसे भी नहीं इस प्रकारके संशय युक्त स्वरूपवाले नहीं, किन्तु नित्य निश्चित स्वरूप वालेहैं " यस्यैवम्भवति क्षान्तिः सोऽमृतत्वायकल्पते " ' जिस को ऐसे शान्ति होती है सो अमृत भावके अर्थ समर्थ होता है ' अर्थात् जिस करके सर्व धर्म्माख्य आत्मा बोध रूप निश्चित स्वरूपवाले हैं, ताते जिस मुमुक्षुको ऐसे उक्त प्रकार करके अपने अर्थ वा परके अर्थ सर्वदा बोधरूप निश्चय विषे निरपेक्षतारूप शान्ति होती है (अर्थात् जैसे सूर्य्य अपने अर्थ अरु परके अर्थ अन्य प्रकाशकी अपेक्षा से रहित होता है, तैसे जिसको आत्मा विषे सर्वदा बोध के कर्त्तव्यता की निरपेक्षारूप शान्ति होती है सो अमृतभाव , कहिये मोक्ष , के अर्थ समर्थ होता है ॥ इत्यर्थः ९२। २१९॥

आदिशान्ता ह्यनुत्पन्नाः प्रकृत्यैव सुनिर्वृताः । सर्व्वे धर्माः समाभिन्ना अजं साम्यं विशारदम् ९३ । २२० ॥
वैशारद्यन्तु वै नास्ति भेदे विचरतां सदा । भेदनिम्नाः पृथग्वादास्तस्मात्ते कृपणाः स्मृताः ९४ । २२१ ॥

९३।२२०॥ हे सौम्य! [अब विद्वान् मुमुक्षुकी रुचिवढ़ावने के अर्थ अविद्वान् की निन्दाको दिखावते हैं] तैसे (उक्त प्रकार के) आत्मा विषे शान्ति की कर्त्तव्यता भी है नहीं, इस प्रकार कहते हैं "आदिशान्ता ह्यनुत्पन्नाः प्रकृत्यैव सुनिर्वृताः । सर्व्वे धर्माः समाभिन्ना अजं साम्यं विशारदम्" (सर्व्व धर्म आदिविषे शान्त अनुत्पन्न हैं अरु स्वभावसे ही सम्यक् सुखरूप हैं अरु समान हैं अभिन्न हैं, अरु जन्मरहित समभाव विशारद हैं) अर्थात् जिसकरके सर्व्व धर्म्म कहिये आत्मा, आदिविषे, कहिये नित्य ही शान्त हैं, अरु अनुत्पन्न, कहिये अजन्मा, हैं अरु समान हैं अरु अभिन्न हैं। इसप्रकार जिसकरके जन्म रहित समभाव कहिये आत्मतत्त्व, विशारद कहिये विशुद्ध है, ताते शान्ति वा मोक्ष कर्त्तव्य नहीं । अरु जिस करके नित्य एक स्वभाववाले आत्मा का कुछ भी किया हुआ होता है नहीं, एतदर्थ आत्माको संसार दुःख की निवृत्ति वा सुख की उत्पत्ति क्रिया जन्य नहीं, किन्तु नित्यही सिद्ध है इत्यर्थः ९३। २२० ॥

९४।२२१॥ हेसौम्य! [ऐसे उक्तप्रकार, अविद्वान् नानात्वदर्शी की निन्दाको दिखायके, अबविद्वान्की प्रशंसाको प्रसारित करते हैं] जोपुरुष उक्तप्रकारके परमार्थतत्त्वके ज्ञाता हैं सोई लोकविषे अकृपण (ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण) हैं "एतदक्षरं गार्गि विदित्वा अस्माल्लोकात्प्रैति, स ब्राह्मणः"। अरु तिन अकृपण से अन्य तो सर्व कृपण हैं, इसप्रकार कहते हैं "वैशारद्यन्तु वैनास्ति भेदे विचरतां सदा, भेदनिम्नाः पृथग्वादास्तस्मात्ते कृपणाः स्मृताः" (द्वैतवादी भेदके अनुयायी हैं ताते तिनको कृपण जानते हैं, भेदविषे

अजेष्वजमसंक्रान्तं धर्म्मेषु ज्ञानमिष्यते । यतो न क्रमते ज्ञानमसंगं तेन कीर्त्तितम् ९६ । २२३ ॥

आत्मारूप अरु सर्वभूतों के हितरूप विद्वान्के मार्गविषे पद (पद चिह्न) को खोजतेहुये देवता भी मोहको पावते हैं । जैसे आकाश विषे पक्षियोंकी, वा जलविषे मीनादिकोंकी गति (खोज वा पाद चिह्न) देखते (पावते) नहीं ? तैसेही पावनेयोग्य पद से रहित पुरुष, परिपूर्ण ज्ञानवान् महात्मा की गति जाननेको शक्यनहीं (क्योंकि वो ज्ञानवान् आवागमन से रहित होनेसे गति (मार्ग) से रहितहै) ताते " गतिरत्रनास्ति " इत्यादिक श्रुतियोंके प्रमाणसे ९५ । २२२ ॥

९६ । २२३ ॥ हे सौम्य ! [" अजे साम्ये " (अजन्मा समभावहे ? इसप्रकार जो पूर्व ९५वें श्लोक विषे कहा, सो प्रमेय है, तिसको विषय करनेवाले निश्चयवाला प्रमाता है, अरु तिस प्रकारका निश्चयरूप ज्ञान प्रमाण है । इसप्रकार वस्तुके परिच्छेद, कहिये भेद, के, हुये तिन ज्ञानीपुरुषका महाज्ञानवान्पना कैसे है । यह शङ्काकरके कहते हैं] । शङ्का । कैसे उनका महाज्ञानीपना है । तहां, समाधान, कहते हैं । अजेष्वजमसंक्रान्तं धर्म्मेषु ज्ञानमिष्यते । यतोनक्रमतेज्ञानमसंगंतेनकीर्त्तितम् ॥ (अजन्माधर्मोविषे अजन्मा ज्ञानहै न जाननेवाला अङ्गीकार करते हैं । जाते ज्ञान गमन करता नहीं ताते असंग कहा है ? अर्थात् जिसकरके सूर्य विषे उष्णता अरु प्रकाशवत्, अजन्मा 'कहिये अचल, धर्म ' कहिये आत्मा ' विषे अजन्मा ' कहिये अचल ' ज्ञान अंगीकार करते हैं, क्योंकि आत्मा ज्ञानस्वरूप है ताते (एतदर्थ अजन्मा ज्ञान अन्य अर्थविषे न जाननेवाला अंगीकार करते हैं । अरु जिस करके ज्ञान अन्य अर्थ विषे गमन करता नहीं, तिसही कारण करके सो आकाश के तुल्य असंग है ९६ । २२३ ॥

९७ । २२४ ॥ हे सौम्य ! [कूटस्थरूप ब्रह्मही तत्त्व है, इसप्र-

अणुमात्रेऽपिवैधर्म्येजायमानोऽविपश्चितः । असङ्गता सदानास्तिकिमुतावरणच्युतिः ६७ । २२४ ॥
अलब्धावरणाःसर्वेधर्माःप्रकृतिनिर्मलाः । आदौबुद्धास्तथामुक्ताबुद्ध्यन्तइतिनायकाः ६८ । २२५ ॥

कार अपने (सिद्धान्ती) के मतविषे ज्ञान असंग सिद्ध होताहै, इसप्रकार कहा। अरु मतान्तरविषे पुनः अपने को विषय करने वालाहोने से ज्ञानका असंगपना असंगत होताहै, इसप्रकार कहते हैं] " अणुमात्रेऽपिवैधर्म्यजायमानोऽविपश्चितः । असङ्गता सदा नास्ति किमुतावरणच्युतिः " (अणुमात्र भी विरुद्ध धर्मवाले अरु उत्पन्न होनेवाले विषे अविवेकी को सदा असंगभाव नहीं तब आवरण का नाश क्या कहना है ? अर्थात् याते अन्य वादियों के मतविषे अणुमात्र ' कहिये अल्प रंचकमात्र, भी विरुद्ध धर्म्मवाले, अरु बाह्य वा अन्तर उत्पन्न होनेवाले वस्तु (पदार्थ) विषे अविवेकी पुरुषको जब सदा (निरन्तर) असंगभाव नहीं है तब उनको बन्धरूप आवरणका नाश न होवे इसमें क्या कहना है, किन्तु कुछ भी नहीं ६७ । २२४ ॥

। ६८।२२५॥ हे सौम्य ! [जो कोई ऐसा कहे कि तिन वादियोंको आवरणकानाश नहीं ऐसेकहनेवालेजो तुम सिद्धान्ती अनावरण वादी तिन, तुमने अपने सिद्धान्तविषे आत्मारूप धर्म्मोंको आवरण अंगीकार किया, सो कथन बने नहीं, इसप्रकार कहते हैं " अलब्धावरणाःसर्व्वेधर्म्मा.प्रकृतिनिर्मलाः " (सर्व्व धर्म्म आवरणको अप्राप्त हैं अरु स्वभाव से निर्मल हैं ? अर्थात् सर्व्व धर्म्म ' कहिये आत्मा ' । अर्थात् यहाँ आत्माको सर्व शब्दकरके जो बहुवचन है सो बुद्ध्यादिरूप उपाधिको लेके हैं ' घटाकाशवत्, ऐसे जानना, अरु निरुपाधि आत्मा तो एकही है महदाकाशवत्' ऐसे जानना । अविद्यादिक बन्धनरूप आवरणको अप्राप्त ' कहिये बन्धन रहित, हैं । अरु स्वभावसे निर्मल 'कहिये सदा शुद्ध,

क्रमते नहि बुद्धस्य ज्ञानं धर्मेषु तापिनः। सर्वे धर्मास्तथा ज्ञानं नैतद्बुद्धेन भाषितम् ९९। २२६॥

हैं "शुद्धमपापविद्धम्" अरु "आदौबुद्धास्तथामुक्ताबुद्ध्यन्त इतिनायकाः" (आदिविषे बुद्धहैं तैसे मुक्त हैं, ऐसे नायक जानते हैं ऐसे कहते हैं) अर्थात्, जैसे धर्म्माख्य आत्मा आवरण रहित शुद्धहै तैसे, आदिविषे कहिये नित्य, बुद्ध, कहिये बोधस्वरूप, है। अरु तैसेही नित्य मुक्त है। जिसकरके नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाववाले आत्मा हैं ताते ही बन्धन रहित हैं, इसप्रकार पूर्वके "अलब्धावरणाः" इस पदसे सम्बन्ध है। अरु प्रश्न जब ऐसे हैं तब कैसे जानते हैं, तहां 'उत्तर' कहते हैं, जैसे नित्य प्रकाशरूप हुआ भी सूर्य्य प्रकाशता है, इसप्रकार कहते हैं, अथवा जैसे नित्य अचलहुये भी पर्वत नित्यही स्थित होतेहैं, इस प्रकार कहते हैं। तैसेही ये आत्मा नायक (अर्थात् जाननेको समर्थ होनेकरके स्वामी) हुये भी अर्थात् बोधशक्ति युक्त स्वभाव वाले हुये भी जानते हैं, इसप्रकार कहते हैं ९८। २२५॥

९९।२२६॥ हे सौम्य! "क्रमतेनहिबुद्धस्यज्ञानंधर्म्मेषुतापिनः। सर्व्वेधर्म्मास्तथाज्ञानंनैतद्बुद्धेनभाषितम्" (संतापवाले पंडितनका ज्ञान धर्म्मोंविषेजाता नहीं; अरुसर्वधर्म भी अरुज्ञान भी तैसे हैं) अर्थात्, जिसकरके 'सन्तापवाले' कहिये सूर्य्य के तापवाले, आकाशकेतुल्य भेदसेरहित, वा पूजाकरनेयोग्य बुद्धिमान् परमार्थदर्शी पण्डितकाज्ञान अन्याविषयरूप धर्म्मोंविषे जातानहीं, किन्तु जैसे सूर्य्यविषे प्रकाश अभिन्नरूपसे स्थितहै, तैसे आत्मरूपधर्म विषेही स्थित है, इसप्रकार अंगीकार करतेहैं। ताते आत्मा विषे मुख्यपना होनेके योग्य है। अरु सर्व धर्म्म, कहिये आत्मा, भी तैसेही हैं अर्थात् ज्ञानवत्ही आकाशकेतुल्य होनेकरके अन्य अर्थ विषे कोई भी जाते नहीं। अरु जो इस चतुर्थ प्रकरण के प्रथम श्लोकविषे "ज्ञानेनाकाशकल्पेन" (आकाशके तुल्य ज्ञान से

इत्यादिक कथनकरनेका आरंभ कियाथा, सो यह आकाश के तुल्य सन्तापवाले परमार्थदर्शी पण्डितोंका, (ज्ञानआत्मासे) अभिन्न होनेकरके, आकाशके तुल्य ज्ञान अन्य किसीभी अर्थ विषे जाता नहीं (अर्थात् जैसे आकाशकी अवकाशता आकाश से अभिन्न होने करके अन्य किसी विषेभी जाता नहीं, तैसे परमार्थदर्शी विद्वान्का ज्ञान आत्मासे अभिन्न होनेकरके अन्य किसीभी अर्थ विषे जातानहीं) तैसे धर्म्माख्य आत्मा है ॥ इसरीति से आकाशवत्, अचल, अक्रिय, निरवयव, नित्य, अद्वितीय, असंग, अदृश्य, अग्राह्य, क्षुधादिकों से रहित ब्रह्मरूप आत्मतत्त्वहै। क्योंकि "न-द्रष्टुर्दृष्टे विपरिलोपोविद्यते" । (द्रष्टाकी दृष्टिका लोप विद्यमान है नहीं) इस श्रुति के प्रमाणसे । अरु, ज्ञान, ज्ञेय, अरु ज्ञाता, इनके भेद से रहित परमार्थ तत्त्व अद्वैतहै (अर्थात् अद्वैत रूप आत्मतत्त्व से इतर ज्ञेय (जाननेयोग्य) वस्तुका अभावहै ताते जानतरूप ज्ञानकाभी अभावहै अरु जब, ज्ञेय, ज्ञानका, अभाव है ताते आत्माविषे ज्ञाताविशेषणका भी अभाव है, इस प्रकार विशेष विशेषण, अरु विशेष्यत्वके अभावसे एक अद्वैत निर्वाच्य परमार्थ तत्त्वही है) यह बुद्धने कहा नहीं। अरु यद्यपि बाह्यार्थका निषेध अरु ज्ञानमात्रकी कल्पनारूप अद्वैतवस्तु की समीपता कही है तथापि यह तो परमार्थ तत्त्वरूप अद्वैत वेदान्त विषेही जानने के योग्य है ॥ इत्यर्थः ॥ ९९ । २२६ ॥

१००।२२७ ॥ हे सौम्य ! [चार प्रकरणोंकरके युक्तइस कारिकारूप शास्त्रकी आदिवत् अन्तविषे भी परदेवतारूप तत्त्व को स्मरणकरते हुये तिसके नमस्काररूप मंगलाचरणको सम्पादन करते हैं] शास्त्रकी समाप्ति विषे परमार्थ तत्त्वकी स्तुत्यर्थ नमस्कार कहते हैं "दुर्दर्शमतिगम्भीरमजं साम्यं विशारदम्। बुद्ध्वा पदमनानात्वं नमस्कुर्मोयथाबलम् (दुःखसे देखने योग्य अति गंभीर अजन्मा समभावरूप विशुद्ध नानाभाव से रहित पदको जानके यथाबल तथा नमस्कार करते हैं) अर्थात् दुःखसे दर्शन

दुर्दर्शमतिगम्भीरमजंसाम्यंविशारदम् । बुद्ध्वापद मनानात्वंनमस्कुर्मोयथाबलम् १०० । २२७ ॥

इति गौडपादीयकारिकायामलातशान्ताख्यं चतुर्थप्रकरणम् ॥

इति श्रीगौडपादाचार्य कृत कारिका सहित मांडूक्योपनिषद् समाप्तम् ॥

के योग्य, कहिये "अस्ति,नास्ति" ८ है, नहीं है ? इत्यादि चार कोटियोंसे (जो वादियों करके कल्पित सापेक्षक हैं) रहित होने से अतिश्रम (सूक्ष्मबुद्धिकरने) से जानने योग्यहै, अरु एतदर्थही अति गंभीर, कहिये-अल्पबुद्धिवाले पुरुषोंकरके महासमुद्र-वत् दुःखसे प्रवेश करने के योग्य, अरु अजन्मा, समभावरूप विशुद्ध नानाभावसे रहित, ऐसे पदको जानके तिसरूपहुये हम तिसपदके अर्थ, परमार्थ से व्यवहार करने के अयोग्यको भी, मायासे व्यवहारका विषय सम्पादनकरके (अर्थात् जो वास्तव करके सर्व व्यवहारातीत-एक अद्वैत निर्वाच्य परमार्थ तत्त्व है, तिस विषे नमस्कार करनेयोग्य अरु नमस्कार करनेवाला अरु नमस्काररूप क्रिया इनकी कल्पना करके) जैसी सामर्थ्य है तैसे नमस्कार, विधान, करते हैं १०० । २२७ ॥

इति श्री गौडपादाचार्य कृत कारिकाचतुर्थ प्रकरण, भाषाभाष्य, समाप्तम् ॥

भाष्यकार श्रीशंकराचार्य्यकृत मंगलाचरणम् ॥

अजमपिजनियोगंप्रापदैश्वर्य्ययोगादगतिचगतिमत्ताम्प्रापदेकंह्यनेकम्। विविधविषयधर्म्मग्राहिमुग्धेक्षणानांप्रणतभयविहन्तृब्रह्मयत्तन्नतोस्मि १॥

१॥ हे सौम्य! अब भाष्यकार श्रीशंकराचार्य भी भाष्यकी समाप्तिविषे शास्त्रकरके प्रतिपादन किये पर देवताके स्वरूपको स्मरण करके तिसके नमस्काररूप मंगलाचरणको आचरण करते हैं॥ "अजमपि जनियोगं प्रापदैश्वर्य्ययोगादगतिच गतिमत्ताम्प्रापदेकंह्यनेकम्। विविधविषयधर्म्मग्राहिमुग्धेक्षणानां प्रणतभयविहन्तृब्रह्मयत्तन्नतोस्मि" जो जन्मसे रहितहुआ भी ऐश्वर्यके योगसे प्राप्तहोता हुआ, गतिसे रहित हुआ गतिमान् पनेको प्राप्त होताहुआ अरु एकहुआ, विविध प्रकारके विषयरूप धर्म्मों के ग्रहणकरनेवाले विवेकहीन दृष्टिवाले को अनेकवत् भासता है, अरु जो ब्रह्म प्रणतके भयको नाश करता है तिसके अर्थ मैं नमस्कार करता हों; अर्थात् जो ब्रह्म जन्मादिक सर्व (षड्भाव) विकार रहितहुआ भी अर्थात् वास्तव से कूटस्थ सिद्ध है तथापि सो अनिर्वचनीय अज्ञानके शक्तिरूप ऐश्वर्यके योगसे आकाशादि कार्य्यरूप करके जन्मके बन्धन को प्राप्त होताहुआ। अर्थात् प्राप्त होयके जगत्का उपादान कारण है, ऐसे व्यवहार का भागी होता है, इसप्रकार श्रुति अरु ब्रह्मसूत्र विषे ब्रह्मको जगत् का कारणपना प्रसिद्ध है। अरु जो ब्रह्म, यद्यपि कूटस्थपने अरु व्यापकपने करके गमन से रहित हुआ स्थित होताहै, तथापि उक्तप्रकारके अज्ञानके माहात्म्यसे कार्य्य ब्रह्मरूपनाको पायके गमनमानपने को प्राप्त होताहुआ। अरु जो ब्रह्म एक हुआ, अर्थात् वास्तव से सर्व नानाभावसे रहित एक

प्रज्ञावैशाखवेधक्षुभितजलनिधेर्वेदनाम्नोऽन्तरस्थं भूतान्यालोक्यमग्नान्यविरतजननग्राहघोरेसमुद्रे । कारुण्यादुद्दधारामृतमिदममरैर्दुर्लभं भूतहेतोर्यस्तंपूज्याभिपूज्यं परमगुरुममुं पादपातैर्नतोऽस्मि २ ॥

रस अद्वैत है, इसप्रकार उपनिषदों करके जानाजाता है, तथापि अनादि अनिर्वचनीय अविद्या के वशतें विविधप्रकार के विषयरूप धर्म्मों के ग्रहण करनेवाले होने करके विवेकरूप दृष्टि से रहित पुरुषों को, जीव, जगत्, अरु ईश्वर, इन भेदों करके अनेकवत् भासताहै। अरु जो ब्रह्म आचार्यके उपदेशसे जनित बुद्धिवृत्तिविषे फलरूपसे आरूढ़हुआ प्रणत, कहिये ब्रह्मनिष्ठावान् पुरुषों के, अविद्या अरु तिसके कार्य्यरूप भयका नाशकरताहै, तिस सर्व उपनिषदों विषे प्रसिद्ध सर्व परिच्छेद (भेद) से रहित प्रत्यगात्मारूप ब्रह्मके अर्थ मैं नमस्कार करताहौं, अर्थात् तिसको विषयकरनेवाले भावको प्रकट करताहौं १ ॥

२ ॥ हे सौम्य ! अब ग्रन्थरचनाके प्रयोजनके देखावनेपूर्वक इस व्याख्यान किये आगमरूप शास्त्रके कर्त्ता होनेरूपसे स्थित हुये परमगुरु को प्रणाम करते हैं " प्रज्ञावैशाखवेधक्षुभितजलनिधेर्वेदनाम्नोऽन्तरस्थं भूतान्यालोक्यमग्नान्यविरतजननग्राहघोरेसमुद्रे । कारुण्यादुद्दधारामृतमिदममरैर्दुर्लभंभूतहेतोर्यस्तं पूज्याभिपूज्यंपरमगुरुममुंपादपातैर्नतोऽस्मि " (जो निरन्तर जन्मरूप ग्राहोंकरके भयंकर समुद्रविषे परवश हुये भूतोंको देखके करुणाभावसे बुद्धिरूप मंथनकाष्ठके डालने से विडोलन को प्राप्तहुये वेदनामक समुद्रके अन्तरस्थित अरु देवताओं को भी दुःखसे प्राप्तहोने योग्य इस अमृत को भूतनके हेतुसे उद्धार करता हुआ, तिस इस पूज्योंकरके भी पूजने को योग्य परम गुरुको पादनविषे पतनसे मैं नम्रहुआहौं) अर्थात् जो जन्मादि रूप ग्राहादि जलचरोंकरके भयंकर जो संसाररूप समुद्र तिस

यत्प्रज्ञालोकभासा प्रतिहतिमगमत् स्वान्तमोहान्धकारो मज्जोन्मज्जच्च घोरे ह्यसकृदुपजनोदन्वति त्रासनेमे। यत्पादावाश्रितानां श्रुतिशमविनयप्राप्तिरग्र्या ह्यमोघा। तत्पादौ पावनीयौ भवभयविनुदौ सर्व्वभावैर्नमस्ये ३॥ इति॥

विषे पर (कर्म्म) वशहुये प्राणियोंको देखके प्रकटहुई जो करुणा तिसकरके वुद्धरूपी मंथनकाष्ठ (रयि) के डालने से मंथनको प्राप्तहुये वेदनामक समुद्रके अन्तर स्थित अरु। "देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा नहि सुविज्ञेयमणुरेष धर्म्मः" इत्यादि प्रमाण से। देवताओं करकेभी दुःप्राप्य, इस ज्ञानरूप अमृतको प्राणियोंके हितार्थ उद्धारकरता (निकासता) हुआ, तिस इस पूज्योंकरके भी पूजनेयोग्य (अर्थात् श्रीशंकराचार्य्य करके पूजनेयोग्य उनके गुरु श्रीगोविन्दाचार्य, अरु तिनकरके पूजनेयोग्य उनकेगुरु श्रीगौडपादाचार्य, अतएवयहां भाष्यकार श्रीशंकराचार्य ने परमगुरु गौडपादाचार्य्यके अर्थ (पूज्योंकरके भी पूजने योग्य यह विशेषण दियाहै। परमगुरुको उनके चरणोंविषे अपनेमस्तक के वारंवार नमनभावरूप पतन से।) अर्थात् उनके चरणों में वारंवार अपने मस्तकको स्पर्श करावनेसे। मैं नम्रहुआहों २॥

॥३॥ हे सौम्य! पुनः अव अपने गुरुकी भक्तिके, विद्याकी प्राप्ति विषे अन्तरंगपनेको अंगीकारकरके तिन गुरुकेपादपद्म युगलको प्रणाम करतेहैं "यत्प्रज्ञालोकभासा प्रतिहतिमगमत् स्वान्तमोहान्धकारो मज्जोन्मज्जच्चघोरे ह्यसकृदुपजनोदन्वतित्रासनेमे। यत्पादावाश्रितानां श्रुतिशमविनयप्राप्तिरग्र्याह्यमोघा तत्पादौपावनीयौभवभयविनुदौसर्व्वभावैर्नमस्ये" (जिनकी वुद्धिरूप प्रकाशकी प्रभासे मेरा अनेक-जन्ममय घोर भयंकर समुद्रविषे अनुद्भूत अरु उद्भूत अन्तःकरणविषे मोहरूप अन्धकार नाशको प्राप्तहोताहुआ, तिनके उभय पादपद्मके अर्थ आश्रितहुये श्रव-

णज्ञान शान्ति अरु विनयकी प्राप्ति होती है, अरु जाते सफल है ताते श्रेष्ठ है, अरु पवित्र करनेवाले, संसार के किये भय को नाश करने वाले, तिनके उभय पादपद्मोंके अर्थ सर्वके भावसे नमस्कार करताहों; अर्थात् जिनकी बुद्धिरूप प्रकाशकी प्रभासे मेरा अनेकदेव तिर्यक्आदिक योनियोंविषे नानाप्रकारके देहभेदके ग्रहणरूप जन्ममयघोर कहिये क्रूर, अरु भयंकर समुद्र विषे कदाचित् कार्यरूपसे अनुद्भूतअरु कदाचित् कार्यरूपसेउद्भूत कहिये अनर्थकारी अन्तःकरणविषे व्याकुलताके हेतु अविवेकका कारण अनादि अज्ञानमय मोहरूप अन्धकार नाशहोताहुआ, अरु जिन गुरुके उभय चरणोंकेताईं आश्रितहुये अन्य शिष्योंको भी मनन अरु निदिध्यासन सहित श्रवणज्ञान अरु इन्द्रियोंकी उपरतिरूप शान्ति अरु नम्रतारूप विनय (निरहंकारता) की प्राप्तिहोतीहै। अरु जिसकरके उन श्रवणादिकोंकी प्राप्ति सफल है ताते श्रेष्ठहै सो होतीहै। अरुसर्व जगत् केभी पवित्रकरनेवाले अरु अपने सम्बन्धी सर्वजनो के संसार के किये भयको कारण सहित नाशकरनेवाले, तिन हमारेगुरुके युगलपाद पद्मोंकेअर्थ कायिक, वाचिक, मानसिक, इनसर्व के प्रकटभावसे नमस्कार करताहों॥ नमस्कार करताहों, नमस्कार करताहों ३॥ इति मंगलम्॥

इति श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य ब्रह्मानन्दसरस्वति पूज्यपाद अति अल्पज्ञ, शिष्य यमुनाशंकर नागरब्राह्मणकृत माण्डूक्योपनिषद् संहितगौडपादीयकारिका, श्रीभगवत्पाद भाष्यानुसार क्वचित् स्वकल्पित भाषाभाष्य समाप्तम्॥

हरिः ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु॥

ॐ अथ

अब इस भाषाभाष्यकार कृत सर्व उपनिषद् आदिकों का प्रणवोपासन विचार देखावने के अर्थ संग्रहनाम प्रकरण, प्रारम्भकरतेहैं ॥

सूचना ॥

हे सौम्य ! यह माण्डूक्यनाम उपनिषद् केवल प्रणवकी व्याख्या अरु ब्रह्म आत्माकी अभेद एकताका बोधक अरु संन्यासियोंका उपास्य इष्ट होनेसे सर्व उपनिषदोंका सारहै, अतएव कर्मादिकों से अरु तिनके फलादिकों से उपराम चित्त वैराग्य शील मुमुक्षुओं को उसकी उपासना अरु अर्थविचार अवश्य कर्त्तव्य है, क्योंकि ब्रह्मप्राप्ति के अर्थ यह सर्वोत्तम आलम्बन (आश्रय) है "एतदालम्बनंश्रेष्ठमेतदालम्बनंपरम्, एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते" इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे। एतदर्थ यहां इस उपनिषद्की अरु तदुपरि श्रीगौडपादाचार्यकृत कारिकाकी व्याख्याकी समाप्तिके पश्चात् अवसर पायके अन्य उपनिषदोंमें जो प्रणवोपासना अरु तिसका फल अरु प्रणवकी महिमा कही है, अरु जिसप्रकार हिरण्यगर्भादिक सातो सिद्धान्तकारोंने अपने अपने सिद्धान्तानुसार प्रणवोपासना कहीहै अरु जिसप्रकार अन्य ऋषियोंने मात्राके विचार कहे हैं अरु प्रणवके जो १० नाम हैं सो अरु तिनकी व्याख्या अरु जिसप्रकार अकारादि मात्राओंके लय चिंतन से सर्वाधिष्ठान निर्विशेष शुद्ध प्रणवके लक्ष्य तुरीय आत्माका लक्ष्य कराया है सो इत्यादि सर्व अरु अन्य भी कल्पित विचार, जो प्रणव विषयक है, तुम्हारे प्रति संक्षेपमात्र कहताहों क्योंकि यहां प्रणव विषयक विचार कहने का अवसर अवकाश है, तिसको भी सावधानहोय श्रवण करो ॥

ईशावास्योपनिषद्गतॐकारोपासना

ॐक्रतोस्मरकृतꣳस्मर क्रतोस्मरकृतꣳस्मर ॥

हे सौम्य! अब प्रथम ईशावास्य नामक शुक्लयजुर्वेदीय संहितोपनिषद्के सप्तदशवें १७ वें मन्त्रके उत्तरार्द्धविषे प्रणवोपासना पूर्वक निष्काम कर्म्मकर्त्ता पुरुषके अर्थ वा वर्णत्रयी के मनुष्य जो वेदाध्ययन के अधिकारी हैं तिनके अर्थ उनके अन्तकाल , कहिये देहावसानसमय, ॐकार के स्मरणकरनेके अर्थ वेदकी वा वेद द्वारा ईश्वरकी आज्ञाहै। अरु तिस आज्ञाके अनुसार उक्त प्रकारके उत्तम विद्वान् पुरुष अपने देहावसान समय अपने मनको जो शिक्षा करते हैं तिसको श्रवण करो। तथाच श्रुतिः "ॐक्रतोस्मरकृतꣳस्मर क्रतोस्मरकृतꣳस्मर" ये विद्वान् अपने मनसे कहते हैं, हे निरन्तर संकल्प विकल्प के करनेहारे महाचंचल संकल्परूप मन! तू इतनेकालपर्य्यन्त असंख्य संकल्पोंको करताही रहा, अरु उभयलोकके विषयोंको अरु शास्त्रानुसार कर्म्मों के होनहार फलको स्मरण करताही रहाहै सो अस्तु, परन्तु अब जो तुझको स्मरण करने योग्यहै तिसही के स्मरण करनेका समय आय उपस्थितहुआहै, अरु जिसकी तैंने सम्यक्प्रकार उपासना, कहिये जप अरु अर्थकी भावना, कियाहै तिस ॐकारका, जो ब्रह्मका प्रतीकहै, स्मरण कर, क्योंकि जिस समय के साधने के अर्थ बाल्यावस्थासेही उपासनादिक कियेहैं, सो समय अब प्राप्तहै। अतएव अब तू अपनेपरम कल्याणार्थ ॐकारका स्मरणकर। अरु हे मन! बाल्यावस्था (यज्ञोपवीत संस्कार) से आरु अद्यावधि पर्य्यन्त जो तूने कर्म्मानुष्ठान कियाहै, अर्थात् जिनसंध्या गायत्री अग्निहोत्रादि निष्काम कर्मोके करनेमे अशुभ कामुक कर्मस्पर्श करने नहीं "एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्तिनकर्म्म लिप्यतेनरे" इसमन्त्रप्रमाणसे। तिन कर्मोको स्मरणकर। अर्थात् नेरेकर्म उपासना ऐसेनहीं कि देहत्यागोत्तर अशगति प्राप्तहोंने

कठवल्लीउपनिषद्गतप्रणवोपासना॥

सर्व्वेवेदा यत्पदमामनन्ति तपाᳬंसि सर्व्वाणिचय द्वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य्यञ्चरन्ति तत्तेपदᳬं संग्रहेणब्रवीम्योमित्येतत्॥ एतद्ध्येवाक्षरम्ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरम्परम्। एतद्ध्येवाक्षरंज्ञात्वा योयदिच्छति तस्य तत्॥ एतदालम्बनᳬंश्रेष्ठमेतदालम्बनम्परम्। एतदालम्बनंज्ञात्वा ब्रह्मलोकेमहीयते॥

काभय होय, अतएवतू अपनेकिये सर्व्वोत्तम कर्म्म उपासना को इस उपस्थित समय स्मरणकर समयको साध निर्भयहो॥ हे सौम्य! इसप्रकार मनुष्यवर्णत्रयी को सर्वकाल परमोत्तम वेदोक्त कर्म्म उपासना करके अन्तसमय तिनके स्मरण से अवगति से निर्भयहोय परमोत्तम गतिको प्राप्तहोना योग्यहै यह शुक्लयजुर्माध्यन्दिनि संहिताकी अन्तिम आज्ञा है। अरु इस मन्त्रार्थ में जो स्मरण करनेको दोवार कहाहै सो स्मरणके आदरार्थ है, अतएव अपने कल्याणार्थ ॐकारका स्मरण विचार अवश्यही कर्त्तव्यहै॥ इति सिद्धम्॥

अथ कठवल्लीउपनिषत्सम्बन्धिप्रणवविचार॥

हे सौम्य! अब कठवल्ली उपनिषद्विषे जो ॐकारोपासनाकी प्रशंसा महिमा कही है तिसको भी श्रवण करो। हे प्रियदर्शन! कोई एक उद्दालक नाम ऋषिके नचिकेता नामबालक पुत्र सर्व्वोत्तमाधिकारी ने आत्मदेव के जानने की इच्छा धारके तीसरे वरदान करके अपने आचार्य भगवान् वैवस्वत (यमराज, वा मृत्यु) महाराजसे प्रार्थना किया कि हे भगवन्! "अन्यत्र धर्म्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात्। अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद" जो शास्त्रोक्त धर्म्म अरु तिसके स्वर्गादिक फल

से, अरु तिनके कारक साधनों से पृथक्है, अरु तैसेही शास्त्रकरके कहे अधर्म्म अरु तिनके नरकादिफल अरु कारक साधनों से पृथक् है । अरु तैसेही इन कार्य्य अरु कारणों से भी अन्यहै, अरु तैसेही भूत भविष्यत् अरु वर्त्तमान कालत्रयसे भी जो पृथक् है, अर्थात् भूत भविष्यत् वर्त्तमान यह तीनकाल, अरु कार्य्य कारण देश, अरु धर्म्म अधर्म्म अरु तिनके फल अरु साधन, यह वस्तु । इसप्रकार उक्त देश काल वस्तुसे पृथक् हुआ, इन करके परिच्छेद (भेद) को प्राप्त होतानहीं, ऐसा जो सर्व व्यवहारके विषय से रहितहै, अर्थात् जो प्रमाणादिक अरु बुद्ध्यादिक किसीका भी विषय नहीं, तिस वस्तुको आप देखतेहो अर्थात् साक्षात् यथार्थ अनुभव करतेहो अतएव सो वस्तु मेरेप्रति कहो ॥ हे सौम्य ! इस प्रकार जब नाचिकेता ने आत्मजिज्ञासापूर्वक मृत्यु भगवान् से विनय किया तब तिसको श्रवणकर प्रथम निर्विशेष आत्मतत्त्व न कहके तिसकी प्राप्तिमें मुख्य आलम्बन जो आत्माका प्रतीक ओंकार तिसकी उपासनाकी अरु तिसके ज्ञानकी महिमा कहते हुये ॥ मृत्युरुवाच " सर्व्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांश्ंसि सर्व्वाणि च यद्वदन्ति । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य्यञ्चरन्ति तत्तेपदꣳसंग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥ एतद्ध्येवाक्षरंब्रह्म एतदेवाक्षरम्परम् । एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्यतत् ॥ एतदालम्बनꣳश्रेष्ठमेतदालम्बनम्परम् । एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते " १५, १६, १७, ॥ हे नाचिकेतः! ऋगादि सर्व वेद, अर्थात् ऋगादि वेदके एक देश ब्रह्मविद्या रूप उपनिषद, जिस पावने योग्य पदको अविभाग से, एकही निश्चयमे, प्रतिपादन करते हैं ॥ हे सौम्य! यहां वेद शब्दके अर्थ से वेदके एक देशरूप उपनिषद् का ग्रहण है, तिसका यह तात्पर्य है कि उपनिषद् जो है सो ज्ञानके साधन होनेकरके नित्य । प्रणव के लक्ष्य । परमात्म पदमे साक्षात् सम्बन्धवाले हैं । अर्थात् उपनिषदोंके महावाक्यार्थ ज्ञानसे परमात्मा की अपरोक्ष साक्षात् अनन्यप्राप्ति

होतीहै, अतएव उपनिषद् परमात्मपद से साक्षात् सम्बन्धवाले हैं। अरु जिसकी प्राप्तिकेअर्थ सर्वविद्वान् तपको (स्वधर्म्मानुष्ठानको) कहतेहैं। अथवा सर्वतपआचरण करनेवाले तपस्वी जिसको कहते हैं। अरु जिसकी इच्छाधारके गुरुकुलवासादि ब्रह्मचर्य्यको आचरतेहैं। अर्थात् जिस प्रणवकेलक्ष्य परमात्मपदकी प्राप्तिकी इच्छावाले श्रद्धासम्पन्नहुये गुरुकुल में वासकर उपनिषदों का अध्ययनादि रूप ब्रह्मचर्य करते हैं। अरु जिस पद के जानने की इच्छा तूभी करताहै। हे नचिकेतः! तिसपदको तेरेअर्थ संक्षेपमात्र कहताहौं सोयह ॐकारही है। अर्थात् हे नचिकेतः! जिस पदको जाननेकोतू इच्छताहै तिसका प्रतीक (प्रापक) ॐकारहै, क्योंकि वह ॐकारकालक्ष्य अरु ॐकाररूप प्रतीकवालाहै। ताते यह ॐ अक्षर सगुण वा त्रिमात्रिक होने से अपर (अश्रेष्ठ) ब्रह्म है, अरु यही अक्षर अपने लक्ष्यरूपसे गुण वा मात्रासे रहित अविनाशी अमात्रिक निर्गुण पर (श्रेष्ठ) ब्रह्महै। एतदर्थ इस उक्त अक्षरको सम्यक्प्रकार जानके जो उपासनाकरता है सो पर वा अपर जिस ब्रह्मको प्राप्तहोनेको इच्छताहै तिसको सोई होता है। अर्थात् जो ब्रह्मलोककी इच्छाधारके त्रिमात्रिक प्रणवकी समाहित चित्त ब्रह्मचर्य्यादि साधनपूर्वक जपादिरूपसे उपासना करता है तिस को सोई ब्रह्मलोक होता है। अरु जो मुमुक्षु मोक्षकी इच्छाधार के त्रिमात्रिक प्रणवके विचारपूर्वक तिसके अधिष्ठान अमात्रिक आत्माका ब्रह्मकेसाथ अभेद अभ्यास वा निदिध्यासन करना है तिसको प्राप्तहोताहै। अतएव हेनचिकेतः! ब्रह्मलोक प्राप्तिवाले को अन्य अन्नादि आलम्बनों से इस त्रिमात्रिक प्रणवोपासना रूप आलम्बन श्रेष्ठ है, क्योंकि प्रणवोपासना के आलम्बन से ब्रह्मलोक को प्राप्तहुआ विद्वान् ब्रह्मा से प्रणव के लक्ष्य का ज्ञान पाय पुनरावृत्ति से रहित मोक्ष होताहै। अरु परब्रह्मप्राप्ति की इच्छावाले को इस ॐकारकी विचाररूप उपासना अन्यसर्व साधनों के मध्य प्रशंसाकरनेयोग्य परमोत्तम आलम्बन (आश्रय)

अथ प्रश्नोपनिषद्गतप्रणवोपासना २ ॥

स योहवैतद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत कतमंवावसतेन लोकं जयतीति ॥

हे, मुमुक्षुको परमात्म प्राप्तिके अर्थ इस ॐकारकी उपासना से अधिकश्रेष्ठ आलम्बन कोईनहीं, एतदर्थ इस आलम्बनको सम्यक्प्रकार जानके उपासनाकरनेवाला ब्रह्मलोकविषे महिमा को पावताहै, अर्थात् जो ब्रह्मलोक की प्राप्तिकी इच्छासे त्रिमात्रिक ॐकारकी उपासना करताहै सो तिसके आश्रय ब्रह्मलोकमें जाय ब्रह्मावत् पूजनीय होता है। अरु जो साक्षात् ब्रह्मप्राप्ति के अर्थ इस ॐकाररूप प्रतीकद्वारा तिसके लक्ष्य परब्रह्मकी उपासना करता है सो ब्रह्मरूप लोकविषे अनन्यहुआ तिसकी महिमाको प्राप्तहोताहै "ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति" हे सौम्य ! उक्तप्रकार मुमुक्षु के अर्थ अमृतत्व प्राप्तिमें ॐकारकी उपासनारूप आलम्बन से इतर सर्वोत्तम आलम्बन कोई नहीं। ऐसा कठवल्ली उपनिषद् की श्रुतिवाक्य प्रमाणसे सिद्धही है। अतएव मुमुक्षु करके अपने मोक्षार्थ सर्वोत्तम परमश्रेष्ठ ॐकारोपासनाकाही आश्रयकरना उचितहै ॥ इति ॥ २ ॥

अथ प्रश्नोपनिषद्गत ॐकारोपासना ३ ॥

हे सौम्य ! अब अथर्ववेदीय प्रश्नोपनिषद् में जिसप्रकार प्रश्नपूर्वक ॐकारके पर अरु अपर दो भेद अरु क्रमसे मात्राओं के उपासकोंकी गति कही है, तिसको भी संक्षेपमात्र कहताहों सावधानहोय श्रवणकरो ॥ हे प्रियदर्शन ! प्रश्नोपनिषद्के पञ्चम प्रश्नविषे सत्यकाम नामक ऋषि ने अपने आचार्य पिप्पलाद नामकऋषिसे प्रश्नकिया है कि "स यो ह वैतद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत. कतमं वावसतेन लोकं जयतीति"

तस्मैसहोवाच। एतद्वै सत्यकाम परञ्चापरञ्च ब्रह्म यदोङ्कारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति ॥

हे भगवन् (पूजनेयोग्य) मनुष्यों के मध्य सो आश्चर्यवत् है जो कोई एक मनुष्य अपने मरण पर्य्यन्त सम्यक्प्रकार सर्व धर्म्माचरण अरु इन्द्रियों के अरु मनके निग्रहवाला हुआ समाहित चित्ततासे ॐकारके अभिध्यान से 'कर्म्मों के फल जे स्वर्गादि अनेक लोक हैं तिनमें से कौन से लोक का जय करता है' अर्थात् वह प्रणवोपासक कौनसे लोक को प्राप्त होता है, सो आप कृपा करके कहिये॥ हे सौम्य! इस प्रकार जब सत्यकामनामवाले ऋषि ने अपने आचार्य्य पिप्पलाद ऋषि से प्रश्न किया तब सो उत्तर कहतेहुये। "तस्मैसहोवाच। एतद्वै सत्यकाम परञ्चापरञ्च ब्रह्म यदोङ्कारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति"। पिप्पलाद मुनि तिस प्रश्नकर्ता सत्यकाम प्रति कहतेहुये हे सत्यकाम! यह जो सत्य अक्षर पुरुषनामवाला परब्रह्म है अरु जो प्रथम उत्पन्न हुआ प्राणनामक अपर ब्रह्म है, सो उभय प्रकारका ब्रह्म ॐकार ही है। अथवा ॐकारका लक्ष्य सर्व्वाधिष्ठान अमात्रिक परब्रह्म है, क्योंकि मात्रारूप उपाधि से पर (पृथक्) है ताते वा मात्रा वाले सोपाधि ब्रह्म से श्रेष्ठ है ताते। अरु तिसका प्रतीक होनेसे त्रिमात्रिक अक्षर वर्णात्मक ॐकार अपर (अश्रेष्ठ) ब्रह्म है। अरु इस ॐकार अक्षर (वर्ण) को जो ब्रह्मत्व है सो 'जैसे शालिग्राम नामक पाषाण को विष्णु (हिरण्यगर्भ) का प्रतीक होनेसे उसको भी विष्णुपना है, तैसे है, ताते इस ॐकार को निरुपाधि निर्विशेष सर्व्वाधिष्ठान परब्रह्म का प्रतीक होने से यह अपर ब्रह्म है, तिसकी अकारादि मात्रा की जाग्रदादि अवस्थादि रूप पादों के साथ एकताकर प्रथममात्रा को दूसरी में अरु दूसरी को तीसरी में, अरु तीसरी को, तीनोंकी अपेक्षा से, जो सर्व्वाधिष्ठान चतुर्थ शिव है तिसमें लयकर तदाकार अनन्य स्थिति से ए-

स यद्येकमात्रमभिध्यायीत तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते । तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति ३ ॥

कात्स्न्य ध्यानकरके उस ॐकार का लक्ष्य जानने में आवता है। इसप्रकार जानके जो परब्रह्म है सो ॐकारही है। अर्थात् "ॐ" इस ॐकार अक्षरका जो लक्ष्य अविनाशी अक्षर परब्रह्म है ताते ॐकारही परब्रह्म है, अरु परब्रह्म का वाचक 'प्रतीक' होने से यह अपरब्रह्म है। इसप्रकार ॐकार को पर अरु अपर उभय ब्रह्मरूप जाननेवाला पुरुष ॐकारकी उपासना के आश्रय दोनों में से एकको पावता है। अर्थात् जो ॐकारकी उपासना (मात्राओंकी लयता) के विचाररूप आलम्बन से सर्ववृत्ति आदिकोंके अभावसे निर्विकल्प समाधिमें निर्विशेष आत्मस्थिति दृढ़तासे पावता है सो अभेदतासे परब्रह्म को पावता है। अरु जो उक्तप्रकार की आत्मस्थिति को न पायके तिसकी प्राप्तिके अर्थ 'ॐ' इस अक्षरकी जप विचारात्मक उपासनाको सम्यक्प्रकार यथाशास्त्र विधि आश्रयकरताहै, सो तिसका फल ब्रह्मलोकको प्राप्तहोय वहां ब्रह्मद्वारा लक्ष्यको पावताहै ॥ हे सौम्य! उक्तप्रकार कहके पुनः पिप्पलाद मुनि कहताहुआ कि हे सत्यकाम! अब ॐकारकी मात्राके ज्ञान उपासनाकेआश्रय अधिकारी उपासकों को जो जो फल, कहिये गति, प्राप्तहोता है तिसकोभी क्रमशः श्रवण करो जो पुरुष ॐकारको ब्रह्मका प्रतीक होनेसे समीपवर्ती अरु आलम्बनों में श्रेष्ठ आलम्बन परम उपकारक साधन जानताहै, अरु त्रिमात्रिक प्रणवकी उपासना करने योग्य है, इस प्रकार जानताहै। परन्तु ॐकारकी सर्व मात्राओं को यथार्थ विभाग पूर्वक जानता नहीं, किन्तु ॐकारकी एक अकार मात्रा ही उपासना करने योग्य है, इसप्रकार जानके ॐकार की पूर्णरूप

से उपासना न करके खण्डरूपसे एकमात्रा कीही उपासना करताहै सो खण्डोपासक भी अवगतिको पावता नहीं, अब उसको जो गति प्राप्त होतीहै सो श्रवण करो " स यद्येकमात्राममभिध्यायीत तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते । तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति " । अर्थ यह जो, सो उक्तप्रकार का उपासक जब केवल एकमात्राके विभागका जाननेवाला हुआ सर्वदा एक मात्रा रूपसे ही ॐकारको ध्यावता (ध्यान विचार करता) है, सो पुरुष तिस ॐकारकी एकमात्राके ध्यानके प्रभावसे ही तिस मात्राका साक्षात्कारवान् हुआ , देहत्यागके अनन्तर तत्काल ही पृथिवी (मनुष्यलोक) विषे । जन्म । पावताहै, तहां पृथिवी विषे अनेक योनियों के जन्म हैं तिनमें तिस उपासक को सर्वोत्तम वर्णत्रयी में से, कोई एक मनुष्यलोक (शरीर) को ॐकारकी ऋग्वेदरूप प्रथममात्रा प्राप्त करती है, तब सो उपासक मनुष्यलोकमें द्विजोत्तमहुआ तपकरके, ब्रह्मचर्य करके, श्रद्धा करके, सम्पन्नहुआ महिमाको अनुभव करताहै । हे सौम्य ! महिमाका स्वरूप सामवेदीय छान्दोग्य उपनिषद्विषे " गो अश्वमिहमहिमेत्याचक्षते हस्ति हिरण्यं दासभार्य्यं क्षेत्राण्यायतनानीति " गो अश्व हस्ति आदिक पशु अरु सेवकादिक भृत्य । अरु भार्य्या उपलक्षण करके भार्य्या पुत्र पौत्रादि कुटुम्ब, अरु सुवर्ण उपलक्षण करके सुवर्ण रजत रत्नादिक धन, अरु रोगादिकों से रहित अरु दीर्घायु सहित सुन्दर शरीर, अरु क्षेत्र पृथिवी (राज्य) अरु आयतन कहिये सुन्दर निवासस्थान । इत्यादिको को महिमा करके प्रतिपादन कियाहै, तिस महिमाको वो ॐकार की एक मात्राका उपासक पावता है । परन्तु श्रद्धादिकोंसे रहित हुआ यथेष्टाचरण करता नहीं किन्तु शास्त्रानुसार ही चेष्टा । अरु पूर्वाभ्यास वश प्रणवोपासना । ही करताहै । अतएव उक्तप्रकार का प्रणवोपासक दुर्गतिको कदापि प्राप्तहोता नहीं ॥ ॥ हे सौम्य!

अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते । स सोमलोकं स सोमलोके विभूतिमनुभूयपुनरावर्त्तते ४ ॥

उक्तप्रकारके उपासकसे अन्य पुरुष ॥ अथयदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते । स सोमलोकं स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्त्तते ॥ अर्थ, यदि ॐकारकी दो मात्रा के जाननेवाला ॐकारको, अकार, उकार, इन दो मात्रारूप जानके मात्राओं के विभागपूर्वक ॐकारको ध्यावताहै । अर्थात् ॐकारका जप अरु दोमात्राके विभागके विचारसे अर्थ भावना रूप ध्यान करताहै, सो यजुर्वेदमय चन्द्रमारूप देवतवाले । अर्थात् चन्द्रमा है देवता जिसका ऐसे मनविषे एकाग्रता से आत्म भावको प्राप्त होताहै, सो । देहत्यागान्तर ॥ यजुर्वेद सम्बन्धी ॐकारकी दोमात्राके प्रभावसे अन्तरिक्षरूप आधारवाले चन्द्रलोक को प्राप्त होताहै, अर्थात् तिस ॐकारकी दोमात्राके उपासक साधकको यजुर्वेद जो है सो चन्द्रलोक सम्बन्धी जन्म प्राप्त करता है । अर्थात् जो पुरुष यजुर्वेद सम्बन्धी ॐकारकी दो मात्रारूपसे उपासना करते हैं सो उस उपासना के प्रभाव से यहां देहत्यागान्तर चन्द्रलोक में । जो इस लोक की अपेक्षा उत्तम अरु द्वितीय है । जन्म पावता है, तब सो तिस चन्द्रलोक सम्बन्धी महिमा (विभूति) को अनुभव करके (भोगके) पुनः इस मनुष्यलोक में आय जन्म पावता है । यह ॐकार को दो मात्रारूप जानके उपासना करनेवाले की गति कहीहै । अरु धूमादि दक्षिणायन मार्गवालोंकी भी यही गति है हे सौम्य ! अब ॐकार के तीनों मात्रा की पूर्ण उपासक की जो गति है तिसको भी श्रवण करो ॥ यः पुनरेतन्त्रिमात्रेणत्रोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुष मभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः ॥ अर्थ, पुनः जो पुरुष तीनमात्रा का ज्ञाताहुआ, अरु इस ॐकार

यः पुनरेतन्त्रिमात्रेणैवोमित्येतेनैवाक्षरेणपरं पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्य्ये सम्पन्नः। यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै सपाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकम्। सएतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते तदेतौश्लोकौ भवतः ५॥

को ब्रह्मका प्रतीक होनेसे ब्रह्म प्राप्ति में उसको परम आलम्बन जानके, त्रिमात्रिक ॐकार रूप सूर्य्य के अन्तरगत पुरुषको। ॐकारके लक्ष्यको। ध्यानकरता है। अर्थात् जिस अधिष्ठान रूप परम पुरुष के आश्रय तीनों पादरूप मात्रा अध्यस्तहैं, अरु सर्प में रज्जुके अन्वयवत् जिसका तीनों मात्राओं में अन्वय है। अरु सत्यरूप रज्जु में अध्यस्त असत्य सर्प के व्यतिरेकवत् व्यतिरेक है; तिस सर्वाधिष्ठान निरुपाधि परम पुरुषको, त्रिमात्रिक ॐकार जो ब्रह्मका प्रतीक है तिसरूप सूर्य्यविषे उक्त परमपुरुषको ध्यानकरता है; वा आकाशगत सूर्य्य मंडलविषे, अरु त्रिमात्रिक 'ॐ' इस अक्षररूप सूर्य्य विषे जो सूर्य्यादि सर्वका प्रकाशक सर्वाधिष्ठान सर्वका आश्रय परमपुरुषहै तिसको उभय सूर्य्य विषे एक जानके अरु तिसके साथ आत्माकी एकताजानके। अर्थात् जो चैतन्यपुरुष प्रकाशरूप से सूर्य्य विषे स्थित है, अरु सर्वका साक्षीरूपसे शरीरादि संघातविषे स्थित है, अरु लक्ष्यार्थरूप होयके त्रिमात्रिक 'ॐ' इस अक्षरविषे स्थितहै, सो एकही है इसप्रकार 'ॐ' इस अक्षरविषे, अरु सूर्य्यमंडलविषे, अरु शरीरादि संघातविषे, अरु इन तीनोंको उपलक्षणकरके, अधिदैवत, अधिभूत, अध्यात्म, इन तीनोंप्रकारके जगत्विषे, एक अखंड अविनाशी चैतन्यपुरुषको "ॐकारेवेदं सर्व्वम्" इत्यादि श्रुति अरु स्वानुभव प्रमाणसे। जो मात्राओं के ज्ञान पूर्वक ध्यानकरता है सो तिस ध्यान उपासना के प्रभाव से मरणोत्तर। तेजोमयहुआ। तेजोमय सूर्य्य विषे प्राप्त होताहै।

अरु सो उपासक ,जैसे ॐकारकी दोमात्रा का उपासक चन्द्रलोकमें विभूतिको अनुभवकर पुनरावृत्तिको प्राप्त होताहै, तैसे त्रिमात्राका उपासक सूर्य्यमंडलविषे प्राप्तहुआ पुनरावृत्तिको प्राप्त होता नहीं, किन्तु सूर्य्यविषे प्राप्तहुआ ही होताहै । अर्थात् सूर्य्यलोकमें जाय वहां की विभूति महिमाको भोक्ताहुआ वहां ही रहता है " । यथा पादोदरस्त्वचा विमुच्यत एवं हवैस पाप्मना विनिर्म्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं " । अरु सो पुरुष ,जैसे सर्प अपनी जीर्ण त्वचाको त्यागके पश्चात् नवीनहुआ पुनः उस परित्याग कीहुई जीर्ण त्वचाको देखता (पावता वा ग्रहणकरता) नहीं । तैसेही प्रसिद्ध सो प्रणवोपासक सर्प की त्वचास्थानीय अशुचितारूप पापों से मुक्त होताहै । । अथवा जैसे सर्प अपनी जीर्ण त्वचाको त्याग नवीन हुआ पुनः उस त्यागी हुई त्वचाको ग्रहण करता नहीं, तैसे वो तीनमात्रा का उपासक इस मनुष्य लोक सम्बन्धी शरीर रूप पापो से मुक्त हुआ सूर्य्य लोक विषे देव शरीरको पाय पुनः इसलोक सम्बन्धी शरीर को न ग्रहण करके देवरूपही रहता है । अरु इस लोक सम्बन्धी शरीररूप पापोंसे मुक्तहुआ सूर्य्यलोकविषे देवशरीरको पाय वहां भी उपासना के प्रभावसे, तीसरी मात्रारूप सामवेद करके, सूर्य्यलोकसे भी ऊंचे हिरण्यगर्भ नामक ब्रह्माकेसत्यलोक नामकलोकको प्राप्तहोताहै ॥ अरु " सएतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरिशयंपुरुषमीक्षते तदेतौ श्लोकौ भवतः " सो तीसरीमात्रा या तीनोंमात्रा का उपासक विद्वान् पुरुष सत्यलोक में स्थितहुआ इस सर्वोत्कृष्ट जीवघनरूप हिरण्यगर्भ से । अर्थात् सर्व सूक्ष्म शरीरों की समष्टतारूप हिरण्यगर्भ है अतएव उसको जीवघन कहतेहैं । पर कहिये श्रेष्ठ, परमात्म नामवाले पुरुषको ' जोसर्व शरीररूप पुरियों में स्थितहै वा सर्व शरीरगत पुरीतति नाड़ीविषे स्थितहै ' देखताहै । अर्थात् जो ॐकारका लक्ष्य अरु हिरण्यगर्भादि सर्व अध्यस्थोंका अधिष्ठान जो एक सर्वात्मा परमपुरुषहै तिसको

तिस्रोमात्रामृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः। क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यक् प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः॥६॥

साक्षात् सोऽहमस्मि भावसे अनुभवकर्त्ता पुरुष पुनरावृत्तिसे रहित हुआ ब्रह्मके साथ वा ब्रह्मसे महावाक्यार्थका ज्ञानोपदेश पायके मोक्ष होताहै। तहां इस अर्थ के प्रकाशक अग्रिम दो मन्त्र प्रमाणहैं। तिस्रोमात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः। क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यक्प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः॥ अर्थ तीन संख्या हैं जिनकी ऐसी जो ॐकारकी अकार उकार, मकार, यह तीनमात्रा हैं, सो मृत्युकी विषयही हैं अरु परस्पर सम्बन्ध वालीहैं, अरु वो तीनों मात्रा विशेष करके एकएक विषय विषेही योजना करीगई होवें ऐसा नहीं, किन्तु विशेषकर के एकही ध्यानकाल विषे त्यागकीहुई, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, यह तीन स्थान, अरु तिन के अभिमानी, जे, स्थूल, सूक्ष्म, कारण, के अभिमानी, वैश्वानर, हिरण्यगर्भ, अरु अव्याकृत, तिनसे अपृथक्, विश्व, तैजस, प्राज्ञ, पुरुषतिनकी, अकार, उकार, मकार, इनतीनमात्रासे तादात्म्य करके। अर्थात् जाग्रदवस्था विश्वाभिमानी स्थूल भोग, इस व्यष्टि प्रथम पादकी, विराट् स्थान वैश्वानर अभिमानी स्थूल भोग, इस समष्टि पादसे एकताकर तिसका अकार रूप प्रथम मात्रासे तादात्म्य करके। अरु तैसेही स्वप्नावस्था तैजसाभिमानी विरलभोग, इस व्यष्टि द्वितीय पादकी सूक्ष्मस्थान हिरण्यगर्भाभिमानी विरलभोग, इस समष्टि द्वितीय पादसे एकताकर पुनः तिसका उकाररूप द्वितीय मात्रा से तादात्म्य करके, पुनः सुषुप्ति अवस्था प्राज्ञाभिमानी आनन्द भोग, इस व्यष्टि तृतीय पादको कारणावस्था रुद्रवा ईश्वराभिमानी आनन्द वा अज्ञान भोग इससमष्टि तृतीय पादविषे एकता करके, पुनः उस पादकी मकारमात्रासे तादात्म्य करके। अर्थात् उक्त प्रकार जाग्रदादि

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं स सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते ॥ तमोंकारेणैवायतनेनान्वेतिविद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परञ्चेति ॥ ७ इति ॥

तीनों पादों को अकारादितीनों मात्रासे तादात्म्य (एकता) करके ध्यानरूप जो बाह्य भीतर अरु मध्यकी योगक्रिया है तिसको सम्यक् ध्यानके कालविषे योजनाकिये हुये जब वे तीनोंमात्रायोजना किया होय, अर्थात् समष्टि उक्त पादोंविषे व्यष्टि उक्त पादोंकी योजनाकरके पुनः क्रमशः प्रथम अकार मात्राको द्वितीय उकारमात्राविषे लयकरे, अरु उस अकारयुक्त द्वितीय उकार मात्राको मकाररूप तृतीय मात्राविषे लयकरे, पुनः उस तृतीय मात्राको उस ॐकारके वाच्य अधिष्ठान विषे नामनामी के अभेद से लयकरे, वा अध्यस्तरूप तीनों मात्राको उसके अधिष्ठान से अपृथक् जानके लयकरे ॥ इसप्रकार सम्यक् ध्यानके कालविषे तीनोंमात्रा उक्तप्रकार जब योजना करीहोय, तबउस ॐकारका ज्ञाता योगी चलायमान होतानहीं । अर्थात् विक्षेपको पावता नहीं, किन्तु अचलही होताहै । अरु जिसकरके उक्तप्रकारका प्रणवोपासक विद्वान् "ॐकारएवेदं सर्वम्" इत्यादि प्रमाण अनुभवसे सर्वात्मा ॐकाररूपहुआहै एतदर्थ उसका चलना (विक्षेप) किसकारणसे होवेगा ? किसीसे भी नहीं, क्योंकि विक्षेप का कारण द्वैतभेद भानहै, सो उसको न होयके सर्वत्र ॐकार आत्मभानही है, ताते विक्षेप के कारण द्वैतभानके अभावसे एक ॐकारदर्शी विद्वान् चलायमान होतानहीं ॥ हे सौम्य ! "ऋग्भिरेतंयजुर्भिरन्तरिक्षंससामभिर्यत्तत्कवयोवेदयन्ते" अर्थ, ऋग्वेद से ॐकारको एक मात्रारूप जानके भजन उपासन करनेवाला पुरुष इस मनुष्य लोकको प्राप्तहोताहै, अरु यजुर्वेद से ॐकार को दोमात्रारूप जानके उपासना करनेवाला विद्वान् देहत्यागोत्तर पितृलोक (चन्द्रलोक) को प्राप्त होताहै । अरु जिसको

अथमुण्डकोपनिषद्गतप्रणवोपासनाप्रारभ्यते॥
प्रणवोधनुःशरोह्यात्माब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते। अप्रमत्तेनवेद्धव्यंशरवत्तन्मयोभवेत्॥

अथ मुण्डकोपनिषद्गतप्रणवोपासनाप्रारभ्यते॥

हे सौम्य! मुंडकउपनिषद् के द्वितीय मुंडकगत द्वितीयखण्ड के चतुर्थ मन्त्र विषे कहा है, " प्रणवोधनुःशरोह्यात्मा ब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते। अप्रमत्तेनवेद्धव्यंशरवत्तन्मयोभवेत् " अर्थ। ॐकार रूप धनुप है, अर्थात् वाणके लक्ष्य (निशाने) विषे प्राप्त होनेको धनुष कारण है, धनुष विना वाण लक्ष्य विषे प्राप्त होता नहीं। तैसेही आत्मा (बुद्धिविशिष्ट चैतन्य) रूप वाणको अपने लक्ष्य अक्षर ब्रह्मविषे प्राप्त होनेको कारण ॐकारोपासन है, अतएव ॐकारको धनुपरूपकरके कहा है। अरु जैसे वाण चलावने का अभ्यासकिये, अरु संस्कारयुक्त (शिलीमुख) हुआ वाणधनुपके आश्रयहुआ लक्ष्यविषे स्थित होता है, तैसेही, ॐकारकी उपासना के विचाररूप से सूक्ष्म शिलीमुख अरु शमदमादि साधनों करके संस्कारयुक्त हुआ, प्रणवोपासना रूप धनुप के आश्रय उक्त आत्मारूप वाण सो अपने आभास (प्रतिविम्ब) भावको जोकि अवस्थात्रयात्मक बुद्धिरूपा उपाधि के सम्बन्धसे प्राप्त हुआ है। त्यागके अपने अक्षररूपबिम्बविषे जैसे प्रतिविम्ब बिम्ब में तैसे, अभेदता से स्थित होता है। एतदर्थ, आत्मरूप वाणको अपने अक्षररूपलक्ष्य विषे प्राप्तहोने को प्रणव जो है सो धनुपवत् धनुप है। अरु उक्त आत्मारूप वाण है। अर्थात् उपाधि करके लक्षित परमात्मा अक्षरकाही जलादिकोंगत सूर्यादिकों के प्रतिविम्बवत्, इस देहादिक संघात विषे सर्व बुद्धियोंकी वृत्तियों का साक्षीहुआ प्रवेशको पायाहै सो वाणवत् वाणहै। अरु आत्मा के अर्थ जो विषयों की तृष्णा सोई प्रमादहै, तिस प्रमादसे रहित

अप्रमत्त अरु सर्व से वैराग्यवान् जितेन्द्रिय समाहितचित्तता इत्यादि साधनरूप संस्कारसम्पन्नता तिसकरके सहित से वेधन (प्रवेश) के योग्य जो ब्रह्म सो लक्ष्य है। ताते प्रणवरूप धनुष के आश्रय आत्मरूप वाणकी जब ब्रह्मरूप लक्ष्यविषे प्रवेशरूपसे उक्त लक्ष्यका वेधन होता है, तिसके पश्चात् आत्मा वाणवत् लक्ष्य विषे तन्मयतारूप होता है। अर्थात् जैसे बाणको लक्ष्य के साथ एकरूपतामयफल होताहै, तैसेही देहादि अनात्माकार वृत्तियों के तिरस्कार से अक्षर के साथ तन्मयतारूप फलकोप्राप्त होना, यह सर्व बुद्धिमान् मुमुक्षुओं करके योग्य है ॥ हे सौम्य ! अब इसका और प्रकार से कल्पित विचारको श्रवण करो हे प्रियदर्शन ! धनुष से जो बाण चलता है सो अपने मार्गगत वस्तुओंको उल्लंघनकरता अपने लक्ष्यको प्राप्तहो तन्मय होताहै, तैसे ही यह चिदाभासरूप वाण त्रिमात्रिक प्रणवरूप धनुष से अपने बिम्ब ब्रह्मरूप लक्ष्य की ओर चलता है, तब अपने जाग्रदादि अवस्थारूप व्यष्टिपादों को, विण्डादि समष्टिपादों के साथ, अरु तिनको अकारादि मात्राओं के साथ अभेद विचार के तिनको अध्यस्त होने से पीछे अविद्यात्मकताकी ओर डाल आप अपने अमात्रिक ब्रह्मरूप लक्ष्य विषे प्राप्तहोय पश्चात् विचाररूप वेग से रहित हुआ लक्ष्यमय होताहै ॥ अरु यहां जो कहाहै कि "शरवत् तन्मयो भवेत्" तिसका विचार इसप्रकार जानना कि, बाण जो है सो अपने लक्ष्यमें प्रवेशको पाय अदृश्य होनेसे तन्मयहुये वत् भासता है, परन्तु लक्ष्यरूपतासे अभेद तन्मय होता नहीं अर्थात् बाण लक्ष्य में प्रवेश पायाहुआभी लक्ष्यके साथ अभेद एकताको पावता नहीं लक्ष्य से विजाति है ताते, एतदर्थ इसका अर्थ अग्रिम कल्पित कहे प्रकार भी जानने योग्य है। प्रणवरूप धनुषके आश्रय चिदाभासरूप बाणकरके ब्रह्मरूप लक्ष्यको प्रमाद (आलस्य वा विषयासक्तता) से रहितहोय वेधन करना योग्य है । यहां पर्यंत बाणके दृष्टान्त प्रमाण यथार्थ है

आगे जो तिसका फल "शरवत्तन्मयो भवेत्" तारूप होना कहा है। तिसको जल अरु हिमका दृष्टान्त विचार-युक्त है, क्योंकि जलको भी ,शर, कहते हैं, अरु जल हिमकी अभेद एकता भी युक्त है। अर्थात् जैसे ,गुलेल, वा धनुष, कि जिनका आकार एकरूप है, नामक यन्त्रके आश्रय हिम (बरफ) का खंड रूप गिल्ला व बाण जलकी ओर चलाया हुआ अपने लक्ष्य जल को प्राप्त होय अभेद तन्मयताको प्राप्त होताहै, ताते शर शब्दका अर्थ जल अंगीकार करके उक्त दृष्टान्त प्रमाण विचारनेसे अभेद तन्मयता होने में शंका रहेनहीं, अरु अर्थ भी युक्त है। अर्थात् जैसे जल अपनी शीतलता स्वभाव करके हिम भावको प्राप्त होताहै, अरु जलकी कोमलतादि धर्मसे विपरीत काठिन्यतादि धर्मवाला भासता है, परन्तु सो तिस हिम अवस्थामें भी जलसे इतर कहने मात्रही है, अरु पुनः जलमें गया अपने काठिन्यतादि बाह्य धर्म को त्याग अभेदता से जलके साथ तन्मयताको पावताहै "यथा नद्य:स्यन्दमानाः समुद्रेस्तंगच्छन्ति नामरूपे विहाय, तथाविद्वा-न्नामरूपाद्विमुक्तःपरात्परंपुरुषमुपैतिदिव्यम्" तैसेही ब्रह्मकी इच्छा वा स्वभाव रूपा माया करके ब्रह्मही अल्पज्ञतादि धर्मवाला जीव भावको प्राप्तहुआसा भासता है, परन्तु वास्तव करके तत्त्व-मस्यादि प्रमाणोंकरके ब्रह्मरूपही है, सो जीव (चिदाभास) प्रणव रूप धनुषको आश्रयकर आप बाणवत् हुआ ब्रह्मरूपजल लक्ष्यमें प्रवेशकर तन्मयताको प्राप्तहोताहै। तात इसचिदाभासरूप आ-त्मा जीवको ब्रह्मरुप लक्ष्य के साथ अभेद तन्मयता होने के अर्थ प्रणवोपासनारुपमुख्यआलम्बनहे॥ "ॐमित्येवंध्यायथ" "ॐ" इस उक्तप्रकारसे ॐकाररूप आश्रयवालेहुये शास्त्रोक्त कल्पना से ॐकारकाध्यानकरो, इसप्रकारज्ञानवान् आचार्य्यने मुमुक्षुकोब्रह्म आत्माकी अभेदतारूपमोक्षकी प्राप्तिकेअर्थ ॐकारकीउपासना रूपसर्वोत्तमआलम्बनकहा, तिसहीको आश्रय करनायोग्य है॥

प्रणवोपासनविचारसम्पूर्णम्॥ ॐम॥

अथ कृष्णयजुर्वेदीयतैत्तिरीयोपनिषद्गत प्रणवविचार॥

ॐम्। ॐमितिब्रह्म ॐमितीदꣳ सर्वम्। ॐमित्येतदनुकृतिर्हस्मवा अप्योश्रावयेत्याश्रावयन्ति। ॐमितिसामानि गायन्ति। ॐꣳशोमिति शास्त्राणिशꣳसन्ति। ॐमित्यध्वर्युः प्रतिगरंप्रतिगृणाति। ॐमितिब्रह्माप्रसौति। ॐमितिअग्निहोत्रमनुजानाति। ॐमितिब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह। ब्रह्मोपाप्नुवानीति ब्रह्मैवोपाप्नोति ॐ दश इति॥

हे सौम्य! अब तैत्तिरीयोपनिषद् विषे जिसप्रकार प्रणवकी श्रेष्ठता वर्णनकियाहै तिसकोभी श्रवणकरो-ॐमितिब्रह्म। ॐमितीदꣳसर्वम्। ॐमित्येतदनुकृतिर्हस्मवा अप्योश्रावयेत्याश्रावयन्ति। ॐमिति सामानिगायन्ति। ॐꣳशोमिति शास्त्राणिशꣳसन्ति। ॐमित्यध्वर्युः प्रतिगरंप्रतिगृणाति॥ अर्थ अब सर्व उपासनाके अंगभूत ॐकारोपासन कहते हैं। ॐ, इसप्रकारका यह शब्दरूप ब्रह्महै, इसप्रकार मनकरके ॐकारकी मात्रादिकोंका स्मरण विचाररूप उपासनाकरे। अरु जिसकरके 'ॐ' इसप्रकारका शब्द यहसर्व है। अर्थात् शब्दरूप यहसर्व प्रपञ्चएक ॐकारसेही व्याप्त है, अरु जो वाच्य (नामी) है सो वाचक (नाम) के अधीनहै, एतदर्थ यह सर्व ॐकारही है, इसप्रकार कहतेहैं॥ अबॐकारकोसर्वसे ज्येष्ठ श्रेष्ठ होनेसे तिसकी स्तुति कहते हैं। ॐकारको उपास्य होनेसे, ॐकारका यह अनुकरणहै। अर्थात् जाते अन्यकरके "कहताहों वा पावताहों, ऐसेकहे वचनको श्रवणकरके, ॐ, ऐसे अनुकरण करताहै, एतदर्थ ॐकार अनुकरणहै, यह ॐकारका अनुकरणपना प्रसिद्धहै। अरु ॐ, इसप्रकार श्रवणकरावो, इस कथनको प्राप्तहुये पुरुष उसॐकारके उच्चारणपूर्वक श्रवणकरावते हे

तैसेही जो सामवेद के गायनकरनेवाले पुरुषहैं सो 'ॐ' इसप्रकार सामोंको गायनकरते हैं। अर्थात् सामवेदके गानकरके सर्वसामग ॐकारही को गायन करते हैं। अरु जो ऋचाके पाठक हैं सो 'ॐशो' ऐसे शास्त्र कहिये गानरहित केवल ऋचाको कथन करते हैं। अरु तैसेही जो अध्वर्यु (अर्थात् यज्ञविषे यजुर्वेदीय ऋत्विज् विशेष) है सो 'ॐ' इसप्रकार प्रतिगर (वेदके शब्द विशेष) को हवन करनेवाले के कथन कथनप्रति उच्चारण करताहै (अर्थात् यज्ञ में ऋग्वेदीय ऋत्विज् हवन करनेवाला होता है सो जब मन्त्रों को उच्चार करताहै तब अध्वर्यु उसके प्रतिमन्त्र के साथ ॐकारपूर्वक प्रतिगर का उच्चार करता है) अरु जो ब्रह्मा (यज्ञकर्मका कर्त्ता (वा यज्ञमें दक्षिण दिशामें स्थित होय यज्ञका रक्षण करनेवाला ऋत्विज् विशेष) है सो 'ॐ' इस प्रकार अनुमोदन करता है अरु 'ॐ' इस प्रकार अग्निहोत्र को अनुमोदन करता है। (अर्थात् होता करके होम करताहों, इसप्रकारके कथन कियेहुये को 'ॐ' ऐसे कहके अनुमोदन करता है। अरु जो ब्राह्मण है सो 'ॐ' इसप्रकार कहने को इच्छताहुआ, अध्ययन करता हुआ 'ॐ' ऐसेही कहता है (अर्थात् अध्ययन करने को ॐकाररूपसे ग्रहण करताहै। अरु ब्रह्म 'कहिये वेद' को प्राप्त होऊंगा इसप्रकार इच्छा करता हुआ, 'ॐकारद्वारा वेदकोही प्राप्त होताहै' वा ब्रह्म 'कहिये परमात्मा' को प्राप्त होऊंगा इसप्रकार आत्माको प्राप्त होनेकी इच्छा को करता हुआ 'ॐ' ऐसेही कहता है (अर्थात् आत्मकामा पुरुष ॐकारकी उपासना द्वारा आत्मपद को प्राप्तहोता है इन सर्वका अभिप्राय यहहै कि ॐकारकेउच्चारण पूर्वक करीहुई सर्व क्रियाको फलवान्पनाहै, एतदर्थ ॐकाररूप ब्रह्मकी उपासना करनी योग्यहै यह इसका तात्पर्य है ॥

इति तैत्तिरीय उपनिषद् सम्बन्धी प्रणवोपासनविचार ॥

—०—

अथ सामवेदीयछान्दोग्यउपनिषद्सम्बन्धीप्रणवोपासनविचार ॥

ॐमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत ॥
ॐमित्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम् १ ॥

हे सौम्य! अब सामवेदीयछान्दोग्य उपनिषद्सम्बन्धी प्रणवोपासन विचार संक्षेपमात्र श्रवणकरो। इस उपनिषद्में 'प्राण' आदित्यादि, अनेक दृष्टि से प्रणवोपासना कही है सो सर्व यहां न कहके ॐकारकी रसतमत्वादि श्रेष्ठता अरुब्रह्मप्राप्तिमें मुख्यआलम्बन अरु मोक्षसाधनता संक्षेपमात्र कहताहों। अरु इसकासविस्तर विचार इस उपनिषद्की व्याख्यामें होगा "ॐमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत"। 'ॐ' यह जो एकवर्णात्मक अक्षरहैसोपरब्रह्मका प्रतीक, मुख्यनाम होनेसे इसकी अपरब्रह्म रूपसे उपासना कर्त्तव्य है; क्योंकि यह परब्रह्मका प्रतीक अरु नाम होने करके इसकी उपासनासे परब्रह्म प्रसन्नहोताहै, जैसे लोकविषे जिसका प्रियनामलेके बोलावने से वहनामी प्रसन्नहोताहै तैसे। अरु यह परब्रह्मका प्रतीक (प्रतिमा)अरुनाम है ताते इसविषे ब्रह्मबुद्धि कर इसकी मात्राओं के विचारपूर्वक इसके लक्ष्यकी ध्यानादि रूपसे उपासना कर्तव्यहै। अर्थात् इसॐकार अक्षरकी ध्यानादि रूपसे उपासना कर्तव्यहै अर्थात् इस ॐकार अक्षरकी जपरूपसे वा ध्वनिरूपसे अरु मात्राओंके भेद विचाररूपसे उपासनाकरे; अरु मात्राओंके क्रमशः लय चिंतनपूर्वक मात्रादिकों के अधिष्ठानअक्षर परब्रह्मसे अपनेको अभेद अनुभवकर तादात्म्य स्थिति (निर्विकल्प समाधि)रूपसे ध्यानरूप उपासनाकरे। जैसे शालिग्राम नामक शिलाविषे विष्णुबुद्धि करके तिसका पूजनादिरूप उपासन, अरु तिसे शालिग्रामरूप आलम्बन करके तिसकरके लक्षित लक्ष्य सर्वव्यापी हिरण्यगर्भ वा श्यामसुन्दर चतुर्भुजादि

एषां भूतानां पृथिवीरसः पृथिव्या आपोरसः अपामोषधयोरसः ओषधीनां पुरुषोरसः पुरुषस्य वाग्रसो वाच ऋग्रसऋचःसाम साम्नः उद्गीथोरसः ॥ सएष रसानाꣳ रसतमः परमः परार्द्ध्योऽष्टमो यदुद्गीथः १ । २ । ३ ॥ इति ॥

नामरूप अवयववान् वैकुंठाधीश विष्णुका ध्यान लोक विषे प्रसिद्ध है तैसे ॥ अरु परमात्माकी मुख्य उपासना विषे मुख्य आलम्बन अरु परमात्मा का प्रतीक (स्मारकप्रतिमा) होनेसे, इस ओंकारको सर्व वेदान्त उपनिषदों विषे सर्वसे श्रेष्ठ करके कहाहै, अतएव यह श्रेष्ठ है, अरु, जप, कर्म्म, स्वाध्यायादिकोंमें सर्व से प्रथम ओंकारका स्मरण करते हैं, अरुजिस जपादिकर्म्म में प्रथम इसके उच्चारण स्मरणपूर्वक जप कर्म्मादिकोंको करते हैं सोई फलवान् होताहै, एतदर्थ भी यह सर्वसे श्रेष्ठ है। अतएव इसवर्णात्मक ओंकार अक्षर उद्गीथकी उपासना सर्वोत्तमहै। ताते श्रद्धा भक्ति जितेन्द्रिय समाहित चित्त होय इस ओंकार की उपासना कर्त्तव्य योग्य है। अरु सामवेदीय उद्गाता (सामवेद का गायन करनेवाला) ऋत्विज् विशेष यज्ञादिकों में ओंकारका गायन करता है अतएव इसको उद्गीथ कहते हैं। अर्थात् उद्गाता जो सामका गायन करता है सो 'ॐ' इस अक्षर के स्मरणपूर्वक करता है। ताते ओंकार को उद्गीथ विशेषण से कहतेहैं॥ अरु यह जो ओंकारकी उपासना, श्रेष्ठता, विभूति, फलादिक है सो इस ओंकार का उपव्याख्यान है॥ अब इस ओंकारकी सर्वोत्तमता को श्रवण करो, हे सोम्य "एषां भूतानां पृथिवी रसः" इन सर्व चराचर भूतोंका पृथिवीरस (गति, परायण, अवष्टंभ) है अर्थात् गति कहिये उत्पत्ति का कारण है, अरु परायण कहिये सर्व चराचर भूतोंकी स्थिति का हेतुहै, अरु अवष्टंभ कहिये प्रलय में निदान है। यह गति, परायण,

अरु अवष्टंभ, इनतीनों पदोंका भेदहै॥ ऐसी जो सर्वचराचिरभूतों का रस, पृथिवी तिसका जल रस है "।अप्सु ह्योताच प्रोताच" यह बृहदारण्य के पञ्चमाध्यायकी श्रुतिहै । इस , रस , शब्दका अर्थ कारणता अरु सारभूतता विषे जानना । तिस जल का ओषधि रस है। शंका, ओषधि को जलके कारणत्व का अभाव होनेसे उसको जलका रसत्व कैसे है। तहां समाधान कहते हैं, ओषधि जलका परिणाम सार है, एतदर्थ उसको जलका रस कहते हैं। अरु ओषधी का रस (सार) पुरुष " कहिये शरीर, है. क्योंकि यह शरीर अन्नरूप ओषधि का परिणाम (सार) है ताते। अर्थात् "एषां भूतानां" यहां से लेके "आपोरसः" यहां पर्यन्त रस शब्द का अर्थ कारण (आश्रय) परत्वजानना, अरु इससे आगे रसशब्द का अर्थ सारपरत्व है ऐसे जानना। ॥ अरु शरीररूप पुरुषका रस वाणी है, क्योंकि शरीर के अवयवों में वाणी श्रेष्ठ है ताते , अरु वाणीकोही लोक विषे सरस रसना रसवती, इत्यादि विशेषणों से कहते हैं। अरु तिस वाणीका रस, कहिये सार, ऋचाहै। अरु तिस ऋचाओंका सामरसतर है 'अर्थात् सारहै। अरु तिस ऋचाओं के सारतर साम का उद्गीथ ॐकार, सारतर है। इस प्रकार यह उद्गीताख्य ॐकारचराचर भूतोंका उत्तरोत्तर रसों का अतिशय करके रसतर है। अर्थात् जैसे इक्षु रसका सार गुड़ वा राव है, तिसका सार शक्कर है; तिसका सार खांड़ है, तिसका सार बूरा है, तिसका सारतर कन्द वा मिसरी है, तैसे। ॥ अरु परमात्मा का प्रतीक होने से इस ॐकारको परार्द्ध्य कहते, हैं अर्थात् परमात्माकी उपासना का स्थान होने से यह वर्णात्मक ॐकार अक्षर परमात्मावत् मुमुक्षुओं करके उपास्य है।इत्यभिप्रायः ॥ अरु पृथिव्यादि रसों की संख्या से यह अष्टम है, अतएव इसको अष्टम कहा है, अर्थात् भूतोंका रस पृथिवी १, पृथिवीका जल २, जलका ओषधि ३, ओषधिका शरीर ४, शरीरका वाणी ५, वाणीका ऋचा ६;

एषां भूतानां पृथिवीरसः पृथिव्या आपोरसः अपा-मोषधयोरसः ओषधीनां पुरुषोरसः पुरुषस्य वाग्रसो वाच ऋग्रसऋचःसाम साम्नः उद्गीथोरसः ॥ सएष रसानाꣳ रसतमः परमः परार्द्धोऽष्टमो यदुद्गीथः १ । २ । ३ ॥ इति ॥

नामरूप अवयववान् वैकुंठाधीश विष्णुका ध्यान लोक विषे प्रसिद्ध है तैसे ॥ अरु परमात्माकी मुख्य उपासना विषे मुख्य आलम्बन अरु परमात्मा का प्रतीक (स्मारकप्रतिमा) होनेसे, इस ॐकारको सर्व वेदान्त उपनिषदों विषे सर्वसे श्रेष्ठ करके कहाहै, अतएव यह श्रेष्ठ है, अरु, जप, कर्म्म, स्वाध्यायादिकोंमें सर्व से प्रथम ॐकारका स्मरण करते हैं, अरुजिस जपादिकर्म्म में प्रथम इसके उच्चारण स्मरणपूर्वक जप कर्म्मादिकोंको करते हैं सोई फलवान् होताहै, एतदर्थ भी यह सर्वसे श्रेष्ठ है। अतएव इसवर्णात्मक ॐकार अक्षर उद्गीथकी उपासना सर्वोत्तमहै। ताते श्रद्धा भक्ति जितेन्द्रिय समाहित चित्त होय इस ॐकार की उपासना कर्त्तव्य योग्य है। अरु सामवेदीय उद्गाता (सामवेद का गायन करनेवाला) ऋत्विज् विशेष यज्ञादिकों में ॐकारका गायन करता है अतएव इसको उद्गीथ कहते है। अर्थात् उद्गाता जो सामका गायन करता है सो 'ॐ' इस अक्षर के स्मरणपूर्वक करता है । ताते ॐकार को उद्गीथ विशेषण से कहतेहैं॥ अरु यह जो ॐकारकी उपासना, श्रेष्ठता, विभूति, फलादिक है सो इस ॐकार का उपव्याख्यान है ॥ अब इस ॐकारकी सर्वोत्तमता को श्रवण करो, हे सोम्य " एषां भूतानां पृथिवी रसः " इन सर्व चराचर भूतोंका पृथिवीरस (गति, परायण, अवष्टंभ) है। अर्थात् गति कहिये उत्पत्ति का कारण है, अरु परायण कहिये सर्व चराचर भूतोंकी स्थिति का हेतुहै, अरु अवष्टंभ कहिये प्रलय में निदान है। यह, गति, परायण,

अरु अवष्टंभ, इनतीनों पदोंका भेदहै॥ ऐसी जो सर्वचराचरभूतों का रस, पृथिवी तिसका जल रस है "अप्सु ह्योताच प्रोताच" यह बृहदारण्य के पञ्चमाध्यायकी श्रुतिहै। इस, रस, शब्दका अर्थ कारणता अरु सारभूतता विषे जानना। तिस जल का ओषधि रस है। शंका, ओषधि को जलके कारणत्व का अभाव होनेसे उसको जलका रसत्व कैसे है। तहां समाधान कहते हैं, ओषधि जलका परिणाम सार है, एतदर्थ उसको जलका रस कहते हे। अरु ओषधी का रस (सार) पुरुष 'कहिये शरीर, है क्योंकि यह शरीर अन्नरूप ओषधि का परिणाम (सार) है ताते। अर्थात् "एषां भूतानां" यहां से लेके "आपोरसः" यहां पर्यन्त रस शब्द का अर्थ कारण (आश्रय) परत्वजानना, अरु इससे आगे रसशब्द का अर्थ सारपरत्व है ऐसे जानना। ॥ अरु शरीररूप पुरुषका रस वाणी है, क्योंकि शरीर के अवयवों में वाणी श्रेष्ठ है ताते, अरु वाणीकोही लोक विषे सरस रसनो रसवती, इत्यादि विशेषणों से कहते हैं। अरु तिस वाणीका रस, कहिये सार, ऋचाहे। अरु तिस ऋचाओंका सामरसतर है 'अर्थात् सारहै। अरु तिस ऋचाओं के सारतर साम का उद्गीथ ॐकार, सारतर है। इस प्रकार यह उद्गीताख्य ॐकारचराचर भूतोंका उत्तरोत्तर रसों का अतिशय करके रसतर है। अर्थात् जैसे इक्षु रसका सार गुड वा राव है, तिसका सार शकर है, तिसका सार खाड़ है, तिसका सार बूरा है, तिसका सारतर कन्द वा मिसरी है, तैसे। ॥ अरु परमात्मा का प्रतीक होने से इस ॐकारको परार्द्ध कहते, हैं अर्थात् परमात्माकी उपासना का स्थान होनेसे यह वर्णात्मक ॐकार अक्षर परमात्मावत् मुमुक्षुओं करके उपास्य है। इत्यभिप्रायः॥ अरु पृथिव्यादि रसों की संख्या से यह अष्टम है, अतएव इसको अष्टम कहा है, अर्थात् भूतोंका रस पृथिवी १, पृथिवीका जल २, जलका ओषधि ३, ओषधिका शरीर ४, शरीरका वाणी ५, वाणीका ऋचा६

त्रयो धर्म्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथम स्तपएव द्वितीयो ब्रह्मचार्य्याचार्य्यकुलवासी । तृतीयो ऽत्यन्तमात्मानमाचार्य्यकुले ऽवसादन्सर्वे एतेपुण्यलोका भवन्ति ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति इति ॥

ऋचाका साम ७, सामका उद्गीथ ॐकार ८, । इसप्रकार पृथिव्यादि उत्तरोत्तर रसोंका अष्टम रस होने से ॐकार को "रसतमः" सर्वोत्कृष्ट रसतर कहाहै ॥ हे सौम्य ! अब इस छान्दोग्य उपनिषद् के द्वितीय प्रपाठकके षष्ट खण्ड विषे प्रणवको अमृतत्व (मोक्ष) प्राप्ति का साधन कहा है, तहां तिसकी विधि के अर्थ प्रथम "त्रयोधर्मस्कन्धाः" धर्म के तीनस्कन्ध (भेद) कहे हैं, तहां "यज्ञोऽध्ययनं दानमिति, प्रथम" अग्निहोत्रादि कर्म्म करना, अरु नियम से ऋगादि वेदों का अध्ययन करना, अरु भिक्षुक याचक को दानदेना, यह धर्म्मका प्रथम स्कन्ध है, सो मुख्यकरके गृहस्थका धर्म्महै । यहां जो प्रथमाश्रमी ब्रह्मचारी के धर्म्मको त्यागके गृहस्थ के धर्म्मको प्रथम कहाहै सो वानप्रस्थ की अपेक्षा से आर्षछान्दस प्रयोग से क्रमव्यत्ययसे वा, गृहस्थ को अन्य तीनोंका रक्षक पोषक होने से कहा जानना ॥ अरु "तप एव द्वितीयः" कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतरूप तप, धर्म्मका द्वितीय स्कंध है, सो वानप्रस्थका धर्म्म जानना । यहां जो वानप्रस्थ के धर्मको । जो तृतीयहै, द्वितीयकरके कहाहै सो गृहस्थ के प्रथमकी अपेक्षासे जानना । अरु "ब्रह्मचार्य्याचार्य्यकुलवासी तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्य्यकुलेऽवसादन्" आचार्य्य कुल में वास करनेका शील, कहिये स्वभाव, है जिसका, ऐसा आचार्य्य कुलवासी ब्रह्मचारी, अर्थात् केवल वेदाध्ययनकरने मात्रही को आचार्य कुलमें वास न करके आजन्मपर्यन्त ब्रह्मचर्यपूर्वक गुरुकुल में वास करके वहांही देहत्यागकरना, इस नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के लखावने के अर्थ "अत्यन्त" यहपद दियाहै । अर्थात् विधिपूर्वक जो नैष्ठिक

ब्रह्मचर्य्यहै सो धर्म्मका तृतीय स्कंधहै । इस उक्तप्रकारके धर्म्मवान्, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, यहतीनोंअपने अपने धर्म्माचरणके प्रभावसे स्वर्गादि पुण्यलोकको प्राप्तहोतेहैं, अतएव इन तीनोंको "पुण्यलोका" इस विशेषणसे कहाहै ॥ अरु इनतीनों की अपेक्षासे जो चतुर्थ संन्यासीहै सो "ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति" ब्रह्मजो ॐकार तिसकी उपासनामें स्थित होने से तिस उपासनाके प्रभावकरके अमृतत्त्व(मोक्ष) को प्राप्तहोताहै। अर्थात् यहां जो केवल संन्यासीको ही प्रणवोपासना कहा है तिसका हेतु यह जानना कि सामान्य रीतिसेतो चारोही आश्रमके पुरुष प्रणवोपासनाके अधिकारी हैं परन्तु संन्यासीको अन्य अग्निहोत्रादि कर्म्मोंके त्यागपूर्वक शमदमादि करतसन्ते केवल प्रणवोपासनाका अधिकारहै, तातें उसको प्रणवोपासनाका अधिकार विशेष होनेसे उसको "ब्रह्मसंस्थो" यह विशेषण दियाहै। अरु पूर्वोक्तप्रकार ॐकारकेलक्ष्य परमात्माकी ॐकाररूप आलम्बन से उपासना करनेवाला अमरणभाव (मोक्ष) को प्राप्तहोताहै, अतएव कहाहै कि "ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति" प्रणवोपासक मोक्षको प्राप्तहोता है ॥ इति ॥

इति सामवेदीय छान्दोग्य उपनिषद्सम्बंधी
प्रणवोपासनविचार समाप्तम् ॥

अथ यजुर्वेदीय बृहदारण्यक उपनिषद् सम्बन्धी प्रणवोपासन विचार प्रारभ्यते ॥

ॐ३ खं ब्रह्म ।

खं पुराणं वायुरं खमिति ह स्मा ह कौरव्यायणी पुत्रो वेदोऽयं ब्राह्मणा विदुर्वेदैनेन यद्वेदितव्यम् ॥ इति ॥

हे सौम्य! अब यजुर्वेदीय बृहदारण्यक उपनिषद्‌के सप्तमाध्याय सम्बन्धी प्रणवोपासनविचार संक्षेपमात्र कहताहौं सो श्रवणकरो यहां सो " ॐ३ खं ब्रह्म " यह ब्राह्मणभागका मन्त्र है। तिसमें ॐकारका वाच्य जो ब्रह्म तिसका खं विशेषण है (अर्थात् निराकार सर्वव्यापी परिपूर्ण एकरस ब्रह्म है सो विशेष्य है, अरु तैसा होनेसे, खं, उसका विशेषण है। अरु विशेष्य विशेषणका समानाधिकरण होनेसे इसका, नीलकमलवत्, " खं ब्रह्म " ऐसा निर्देश (उपदेश) है अरु ब्रह्मशब्द विशेषकरके बृहत् (बड़े) का बोधकहै, अतएव उसको आकाशका विशेषण देके, खं ब्रह्म, कहा है। जो सो खं विशेषणवाला ब्रह्म है सो, ॐ, शब्दका वाच्य होनेहे ' ॐ' यह शब्दरूप है, अरु उक्तप्रकार के विशेष्य विशेषणकरके अरु वाच्य वाचकता करके उभयथा भी उसका सामानाधिकरण अविरुद्ध है, अतएव ब्रह्मोपासन साधनेके अर्थ, ॐ, यहशब्द युक्तहीहै। अरु श्रुत्यन्तरमें भी कहा है तथाच " एतदालम्बनंश्रेष्ठमेतदालम्बनम्परम् " " परमोमित्यात्मानं युंजीत " " ॐमित्येवं ध्यायथ आत्मानमित्यादि " अरु ॐकारका अन्यार्थ असंभवहै, जैसे अन्यत्र " ॐमिति शंसत्योमित्युद्गापतीति " कहाहै सो, स्वाध्यायके आरम्भ अपवर्ग के विषे ॐकारका प्रयोग विनियोग होनेसे कहाहै नतु तहां अर्थान्तरकेहेतु एतदर्थ ध्यान साधनत्वकरके ॐकारका उपदेश है। अरु यद्यपि ब्रह्म, आत्मा, इत्यादिक जो शब्दहै सो ब्रह्मवस्तु के

वाचकनामहै, तथापि श्रुतियों के प्रमाणसे ब्रह्मका उपदेश ॐकार करकेही है, अतएव ब्रह्मप्राप्तिकी इच्छावालेकोब्रह्मप्राप्तिके अर्थ ॐकार सर्वोत्तम साधनहै । अरु यहां जो ॐकार ब्रह्मका, खं, आकाश विशेषण है तिसकरके भूताकाशको न ग्रहणकरके ॐकारके लक्ष्य चिदाकाश (चैतन्याकाश) का ग्रहणहै, सो कैसा है पुराण कहिये चिरन्तन है । अर्थात् उत्पत्त्यादि रहित अनादि है । अरु उसको " सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यम् " " सूक्ष्माच्चतत्सूक्ष्मतरं विभाति " इत्यादि प्रमाणकरके पृथिव्यादि भूतों से आकाश सूक्ष्महै अरु आकाशसे सर्वशक्तिकी समष्टतारूप अव्याकृतनाम आकाश, जो चिदाकाशरूप अक्षरविषे ओतप्रोत है, सूक्ष्महै । अरु तिससे सूक्ष्म ॐकारका लक्ष्य चैतन्याकाश परम सूक्ष्महै, अतएव उसको सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म कहते हैं । ताते उस महासूक्ष्म अक्षर आत्मा ब्रह्मको आलम्बन विना जाननेको कोई भी शक्यनहीं, अतएव जैसे लोक विष्णुआदिक देवताके आकार से अंकित पाषाणादिकोंविषे विष्णु आदिकोंकी भावना करते हैं, तैसेही श्रद्धाभक्ति भाव विशेषकरके परब्रह्मका प्रतीक जो ॐकार अपरब्रह्म तिसविषे परब्रह्मकी भावनाकर उपासना करनी । अरु " वायुरं खमिति ", वायुरं, कहिये जिस आकाशविषे वायु विद्यमानहोय तिस आकाशको, वायुरं, कहते हैं । अर्थात् वायु कहिये सूत्रआत्मा समस्त जगत्को, जैसे सूत्रमें मालाके मणिके तैसे, अपनेविषे धारके जिस परमाकाशविषे स्थितहै तिस चैतन्याकाश प्रणवके लक्ष्यको, वायुरं, कहतेहैं, सो कौन जानता है, कौरव्यायणीका पुत्र जानता है, अतएव, खं, इस शब्दका अर्थ यहां चैतन्याकाशही युक्त है, ऐसा मानते हैं । तात्पर्य्य यहहै कि, खं, शब्दकरके निरुपाधि ब्रह्म, अरु, वायुरं, इसकरके सोपाधिब्रह्म,सो उभयप्रकारके ब्रह्मका बोधक ॐकारही है, क्योंकि परब्रह्मका प्रतीकहोनेसे, प्रतिमावत् साधनरूप से प्रतिपाद्य है । तथाच " एतद्वैसत्यकामपरञ्चापरञ्चब्रह्मयदों-

कारइति "अरु यह ॐकार वेद है, जो जानने योग्य वस्तु है सो जिसकरके जानीजाय तिसका नाम वेद है, सो मुमुक्षुओंकरके अज्ञानावस्थामें जानने योग्य ज्ञेयरूप जो परब्रह्म आत्मा सो दुर्विज्ञेय होनेसे ॐकाररूप आलम्बनद्वाराही जानाजाताहै, अरु ऋगादि वेदोंका वीज (कारण) होनेसे ॐकारही वेद है 'जैसे नामकरके नामी जानाजाता है तैसे, ताते ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण 'यह ॐकारही वेदहै इसप्रकार जानते मानते हैं ॥

इति यजुर्वेदीयवृहदारण्यउपनिषद्सम्बन्धीप्रणवो-
पासन विचारसमाप्तम् ॥

हे सौम्य! इन ईशादि सर्व उपनिषद् करके प्रतिपाद्य ॐकारोपासन कहने का अभिप्राय यह है कि मुमुक्षुको ब्रह्मभावरूप मोक्षकी प्राप्तिके अर्थ त्रिमात्रिक प्रणवोपासनारूप आलम्बन सर्वोत्तमहै "नातःपरमस्ति" इससे उत्तम और आलम्बन कोई नहीं। अरु विष्णुआदिकोंकी प्रतिमावत् यह ॐकार परमात्मा की प्रतिमास्मारक (स्मृतिकरावनेवाला)है। अरु यही उसअनामी परमात्माका मुख्य नामहै, अतएव इसको परमात्मप्राप्ति में मुख्य आलम्बन जानके मुमुक्षुओंकरके इस ॐकारकी उपासना अवश्य कर्त्तव्यहै ॥

इतिश्रीईशादिसर्वउपनिषद्सम्बन्धीप्रणवोपासन
विचारसंक्षेपतःसमाप्तम् ॥

अथ हिरण्यगर्भादिसप्तसिद्धान्तसम्बन्धीप्रणवोपासनविचार ॥

हेसौम्य!समस्त शास्त्रोंके सात सिद्धान्त हैं, तहांप्रथम हिरण्य-

गर्भ (ब्रह्माजी) का सिद्धान्त १। द्वितीय सांख्यशास्त्रके कर्ता कपिलदेवका सिद्धान्त २। तृतीय कर्मवादी अपान्तरतम मुनिकासिद्धान्त ३। चतुर्थ सनत्कुमारों का सिद्धान्त ४। पञ्चम ब्रह्मनिष्ठों का सिद्धान्त ५। षष्ठ पशुपति शिवजीका सिद्धान्त ६। सप्तमपञ्चरात्र विष्णुजीका सिद्धान्त ७॥ इसप्रकार सात सिद्धान्त हैं तहां सातों सिद्धान्तकारोंने तीनमात्राके तीनतीन भेदसे एक ॐकार के नवनव भेदसे उपासना किया अरु कहाहै, अतएव सातों सिद्धान्तकरके एक ॐकारकी मात्राके६३ भेद हुयेहैं। अब इन प्रत्येक सिद्धान्तकारों करके कहे जे ॐकारकी मात्राकेभेद सोभी तुम्हारे प्रति कहताहौं तिसको भी श्रवणकरो॥

१ प्रथम हिरण्यगर्भ का सिद्धान्त ॥

हे सौम्य! हिरण्यगर्भ सिद्धान्तके मतवादी पुरुष ऐसा कहतेहैं कि जिस जिज्ञासुको परमात्मयोग (परमात्मा जीवात्माकाअभेद) पावनेकी इच्छाहोय सो ॐकारकी इसप्रकार उपासनाकरे कि जो परमात्माकावाच्य ॐकार त्रिमात्रिकरूपहै सो 'तीनमात्राका रूप है, तीन ब्रह्मरूपहै, तीनअक्षररूप है, ऐसा जानके जो ॐकारकी उपासना करताहै सो परमपदको प्राप्तहोताहै, अब इसका विस्तार श्रवणकरो। अग्नि, वायु, सूर्य्य, यह तीन ॐकारकी मात्राहैं। अरु १ ऋग्, यजु, साम, यह तीन वेद ॐकार के ब्रह्महैं। अरु 'अकार' उकार, मकार, यह तीन ॐकारके वर्णात्मक अक्षरहैं। इसप्रकारका है स्वरूप जिसका ऐसा जो ॐकारहै सो परमपदहै। [अर्थात् उक्त प्रकार का ॐकार परब्रह्मका प्रतीक होने से इसको परमपद कहते हैं क्योंकि इसकी उपासना से मुमुक्षुओं को परमपद (ब्रह्मपद) की प्राप्ति होती है, ताते इसको परमपद कहते हैं। अरु यही ॐकार परब्रह्म प्राप्तिका मुख्य आलम्बन होनेसे मुमुक्षुकी परमगतिहै "गतिरन्यनास्ति" यहां इस मोक्षमार्ग विषे इस ॐकारोपासनसे इतर गति (आश्रय) अन्य कोई नहीं। इसप्रकार शास्त्रतः वा गुरुतः सम्यक्प्रकार जानके जो ॐकार

की उपासना करते हैं सो मोक्षको प्राप्त होते हैं वो पुनः जन्म मरणको प्राप्त होते नहीं। प्रथम जो ,अग्नि, वायु, सूर्य्य, यह तीन मात्रा कही है तिनका व्यष्टिमें इसप्रकार विचारहै कि ,जीव, ईश्वर, आत्मा, यह तीन मात्रारूप जानने, तहां ,सर्व अन्न का भोक्ता वै श्वानररूप से सर्व देहोमें स्थित है सो जीवहै, , भोक्ता होनेसे, अरु प्राणरूप सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ सर्व देह में व्याप्त ईश्वर है, सर्व संघातको धारणकर्त्ता सर्व में ज्येष्ठ श्रेष्ठहोने से। अरु ,सूर्य्य, साक्षी आत्माहै, सर्व का प्रकाशक सर्व से असंग सर्व का द्रष्टाहोने से। अरु ,ऋग्, यजु, साम इन तीनों के कहने से शब्द ब्रह्मको जानना, क्योंकि सर्व शब्दोंका बीजरूप ॐकार है। अरु , अकार , उकार, मकार, यह तीन वर्णात्मक अक्षर कहे हैं, तिनकरके जाग्रत् स्वप्न, सुषुप्ति, यह तीन अवस्था रूप कार्य्य कारणात्मक प्रपञ्च जानना, क्योंकि मांडूक्योपनिषद् विषे जाग्रदादि अवस्थारूप पादोंकी अकारादि मात्रा के साथ एकता कही है। अतएव प्रथम कही जो मात्रा तिसको जाग्रत् स्थानादिरूप प्रथमपाद अकारमात्र रूप जानना, अरु शब्दब्रह्म को सूक्ष्महोने से सूक्ष्म स्वप्नावस्थादि स्थानरूप को उकारमात्रा रूप जानना, अरु सर्व के साक्षी आत्मा को सर्व का कारण होनेसे उसको सर्व का कारण सुषुप्तिअवस्था प्राज्ञाभिमानीरूप मकार मात्रारूप जानना। इसप्रकार व्यष्टि समष्टिकी एकताकर पुनः तिसकी मकारादि मात्रासाथ एकता विचारके इन सर्व को ॐकाररूप जानके जो मुमुक्षु परब्रह्म के प्रतीक त्रिमात्रिक ॐकारकी उपासना करता है सो पुरुष ॐकार के लक्ष्यरूप परब्रह्मरूप परमपद को प्राप्त होताहै पुनः वो संसार विषे आवते नहीं। इसप्रकार हिरण्यगर्भ सिद्धान्त के मतवादी प्रणवोपासन मानते करते कहते हैं॥ इति प्रथम हिरण्यगर्भ सिद्धान्त १॥

अथ द्वितीय कपिलदेव सिद्धान्त २॥

हे सौम्य ! सांख्यशास्त्र के कर्त्ता कपिलदेवजी के सिद्धान्त

त्रिपे इसप्रकार कहाहै कि, जब मुमुक्षु पुरुष, तीन ज्ञान, तीन गुण, तीन कारण इन नौ भेदवाले एक ॐकारको जानें तब मोक्षको प्राप्त होवे। अब इनका भेदार्थ श्रवणकरो, तीनप्रकार का जो ज्ञान कहाहै सो इसप्रकार है कि एक व्यक्त ज्ञानहै दूसरा अव्यक्त ज्ञानहै, तीसरा ज्ञेय ज्ञानहै। तहां, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, पंचमहाभूत, अरु इनका कार्य घट पट देहादि प्रपंच है सो सर्व व्यक्तरूप आगमापायिअनित्यहै कधी इनका भावहोता है कधी अभावहोता है। ताते यह सत्य न होयके असत्यही है। इनका जो यथार्थज्ञान है सो प्रथम व्यक्त ज्ञानहै। अरु इनका जो कारण, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, यह पांच तन्मात्रा, अहंकार, महत्तत्त्व, अरु प्रकृति, यह आठों अव्यक्तरूप हैं, ताते जो इनका यथार्थ ज्ञानहै सो अव्यक्त ज्ञानहै। अरु ज्ञेय, कहिये जाननेयोग्य अर्थात् मुमुक्षुको अज्ञानपर्यन्त जानने योग्य अरु ज्ञानहुये अपना आप ज्ञानरूप। ऐसा जो चैतन्य आत्मा पुरुष तिसका जो यथार्थ ज्ञान सो ज्ञेयज्ञानहै। इसप्रकार व्यक्त अव्यक्त अरु ज्ञेय, इन तीनोंका जो जानना है सोई तीनप्रकारका ज्ञान है। हे सौम्य! अब इन सर्वको जिसप्रकार जाननाहै सो भी श्रवण करो, जो मूल प्रकृति है सो अव्यक्तरूप है अरु सूक्ष्म स्थूल सर्वका कारणहै, वो कार्य्य किसीका भी नहीं। अरु महत्तत्त्व अहंकार अरु पंचतन्मात्रा, यह सात कारणरूप भी हैं अरु कार्य्यरूप भी हैं, तहां कार्य्यतो प्रकृतिकेहैं अरु कारण, पंच महाभूत दश इन्द्रिय अरु एक मन इन, षोडश पदार्थों के हैं, अतएव इनको प्रकृति विकृति भी कहतेहैं, अरु उक्त षोडश पदार्थ केवल कार्यरूपही हैं वो कारण किसीके भी नहीं ताते उनको केवल विकृति रूपही कहतेहैं। अरु पुरुष जो चैतन्यहै सो न तो किसीका कारणहै न किसीका कार्य्यहै केवल स्वयंज्योति सर्वका साक्षी निराकार निर्विकार कूटस्थ है। अर्थात् व्यक्तजो स्थूल प्रपंचहै सो केवल कार्यरूप है, अरु महत्तत्त्व अहंकार अरु पंचतन्मात्रा यह सात

उक्त प्रकार कारणरूप भी हैं अरु कार्य्यरूप भी हैं, अरु अव्यक्त प्रकृति जिसको प्रधानभी कहतेहैं सो केवल कारणरूपहीहै ,अरु पुरुष ज्ञानरूपहै । इन सर्वको यथार्थ जानना तिसका नाम तीनप्रकारका ज्ञान है । अरु , सत्त्व, रज, तम, यह तीनगुणहैं, तहां सत्त्वगुणसे ज्ञान अरु दैवी सम्पदा होतेहैं, रजोगुणसे काम रागादि होतेहैं, तमोगुणसे प्रमाद आलस्य निद्रा क्रोध हिंसादि आसुरी सम्पदा होतेहैं । अरु पुनः सत्त्वगुणसे देवतादिक होतेहैं, रजोगुणसे मनुष्यादि होतेहैं, तमोगुणसे पशु वृक्षादि होतेहैं, पुनः सत्त्वगुणसे स्वर्गादि उत्तमलोक होतेहैं, रजोगुणसे मनुष्य लोकादि मध्यम लोकहोतें हैं, अरु तमोगुणसे नरकादि अधम लोक होतेहैं, इसप्रकार त्रिगुणात्मक सर्व कार्य्य जानना । यह तीन ॐकारके गुणहैं ॥ अरु तीन कारणहैं तहां एक, मन, द्वितीयबुद्धि, तृतीय , अहंकार, इसही तीनकरके सर्व प्रवृत्तिहोती है अतएव यह तीनों कारणहैं ॥ हे सौम्य!यह सर्व कथनसे यह जानना, जो ॐकारका लक्ष्य परब्रह्महै सोई अव्यक्तरूपहै अरु सोई व्यक्तरूप है अरु सोई पुरुष ज्ञेयरूपहै । ताते कारणरूप भी वोहीहै अरु कार्य्यरूप भी वोहीहै अरु साक्षीरूप भी वोहीहै, ताते सर्व ॐकाररूपही है । अरु ॐकार विषे जो दो मात्राहैं अकार अरु उकार तिसको कार्य्य कारणात्मक प्रकृतिरूप जानना अरु यह व्यंजन जो मकारहै जिसको अनुस्वार कहतेहैं सो चैतन्य पुरुषरूप है । अरु ॐकार तीनमात्राकरके त्रिगुणरूप है एतदर्थ समस्त प्रपंच त्रिगुणात्मक ॐकारही है, अरु व्यंजनरूप निर्गुण परम पुरुषहै ताते सर्व ॐकारही है । अरु इस ॐकारका वाच्य प्रकृत्यात्मक प्रपंचहै । अरु इसका लक्ष्य सर्वका साक्षी प्रकाशक अधिष्ठान सच्चिदानन्द आत्माहै । ताते जो पुरुष उक्त प्रकार जानके परब्रह्मके वाचक प्रतीक ॐकारकी उपासना करताहै सो तिस उपासनरूप आलम्बन करके परमपदको प्राप्त होताहै ॥ हे सौम्य!पूर्व जो,व्यक्तज्ञान,अव्यक्तज्ञान अरु ज्ञेयज्ञान

यह तीन प्रकारका ज्ञान, अरु सत्त्व रज तम, यह तीनगुण, अरु मन बुद्धि अहंकार, यह तीन कारण कहे हैं। तहां स्थूलव्यक्त प्रपंचसहित व्यक्तज्ञान, अरु सत्त्वगुण अरु मन कारण, इस सर्व का समुच्चय जाग्रदवस्थारूप प्रथम पादको अकाररूप प्रथम मात्रा साथ एककरे, पुनः अव्यक्त प्रपंचसहित अव्यक्तज्ञान अरु बुद्धिकारण अरु रजोगुण इन सर्वका समुच्चयरूप स्वप्नावस्था को, क्योंकि स्वप्नका प्रपंच सूक्ष्महोनेसे अव्यक्तहै, अरु तिसका रजोगुणहै बुद्धि तिसका कर्त्ता है, तातेअव्यक्त प्रपंचसहित अव्यक्तज्ञान रजोगुण अरु बुद्धिकारण, इन तीनोंके संघातरूप स्वप्नावस्था द्वितीय पादको दूसरी उकारमात्रा साथएककरे, अर्थात् सूक्ष्मप्रपंचको उकार मात्रारूप जाने, अरु ज्ञेयज्ञान, तमोगुण, अरु अहंकार कारण, इनतीनोंका संघातरूप सुषुप्त्यवस्थारूपपादको तीसरी मकारमात्रा साथ एककरे। इसकारण तीनों पादोंको विभागसे विचारके मात्राओंकेसाथ एककरके एक परब्रह्म सर्वाधिष्ठान अक्षर परमात्मा का प्रतीक जो ॐकार तिसकी उपासना करे तब तिसउपासन विचाररूप आलम्बनके प्रभावसे उपासक मुमुक्षु ॐकारके लक्ष्य सर्वके अधिष्ठान आश्रयअक्षर परमात्मरूप परमपदको प्राप्तहोताहै॥ इति द्वितीय कपिलदेव सिद्धान्त २॥

अथ तृतीय अपान्तरतममुनि सिद्धान्त ३॥

हे सौम्य! अपान्तरतम मुनि कहतेहैं कि जो जिज्ञासु पुरुष ॐकार ब्रह्मको, त्रिमुख, तीन देवता, तीन प्रयोजन, इन नव नामरूपकरके सुशोभितहै,यथार्थ जानके, तिसकी सम्यक्प्रकार उपासना करता है सो परमपदको प्राप्तहोता है॥ अब इसका अर्थ सुनो। तीन जो अग्नि हैं सोई तीन मुख हैं, तहां एक गार्हपत्य नाम अग्निहै, दूसरा दक्षिणाग्निहै, अरु तीसरा आहवनीय नाम अग्निहै। तहां गृहस्थाश्रमका जो महानस (रसोईके स्थान)विषे जो अग्निहै कि जिसकरके पाक सिद्धहोताहै, तिस अग्निको गार्ह-

पत्य नामसे कहते हैं , अरु जिस अग्निविषे अग्निहोत्र होता है तिसको दक्षिणाऽग्नि कहतेहैं। अवइसका भेदसुनो जिसदिनइन ब्राह्मणादि वर्णत्रयीके पुरुषोंका यज्ञोपवीत संस्कार होताहै उस दिवस जो वेदोक्त मंत्रोंसे अग्निस्थापित होताहै तिसका नाम दक्षिणाऽग्निहै, तिसविषे प्रातःकाल अरु सायंकाल दोनों कालों विषे वेदोक्त मंत्रोंसे नित्य आहुति देना,इसप्रकार अग्निहोत्रहोता है तिसको वा जिसविषे वशीकरणादि प्रयोगार्थ हवनहोताहै तिसको दक्षिणाऽग्नि नामसे कहतेहैं, अरु जिस अग्निविषे यज्ञादि होतेहैं अरु जिसकी आराधनासे सर्व मनोरथ सिद्ध होतेहैं तिस अग्निको आहवनीय नामसे कहते हैं। इसप्रकार जो उक्त तीन अग्निहैं तिसको त्रिसुख कहतेहैं। अरु , ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, यह तीन देवताहैं। अरु धर्म्म अर्थ काम, यह तीन प्रयोजनहैं ॥ अब पुनः श्रवणकरो तीनजो अग्नि कही हैं सो जगत्के उत्पत्ति पालनसंहारका हेतु (कारण) है, तहां "यज्ञाद्भवतिपर्जन्यो"इत्यादि प्रमाणसे आहवनीय अग्निसे यज्ञाहुतिद्वारा मेघ होतेहैं मेघोंद्वारा वर्षाहोती है वर्षाद्वारा अन्नहोताहै अन्नद्वारा प्रजाहोती है,तातेआहवनीय नामवाला अग्नि जगदुत्पत्तिका कारण है । अरु गार्हपत्याग्निजो (पाकशाला) का अग्निहै सो अन्तरबाह्यका अन्न परिपक्व करताहै, ताते सो जगत्के पालन (स्थिति) का हेतुहै । अरु जो अग्निहोत्रका अग्नि है तिस विषे अग्निहोत्रकर्त्ता यजमानके शरीरपातोत्तर उसके शरीरकादाहहोताहै,ताते दक्षिणाऽग्नि जगत्के संहारका कारणहै, अतएव उक्तप्रकारके तीनों अग्नि उक्त प्रकार जगत्के उत्पत्ति पालन संहारका कारणहैं। अरु यह सर्व जगत्के निर्वाहक ईश्वरहैं, एतदर्थ इनको त्रिमुखकरके कहतेहैं॥ अरु ब्रह्मा विष्णु रुद्र, यह जो तीन देवताहैं सोभी जगत्की उत्पत्तिपालन संहारका हेतु हैं, तहां ब्रह्मा जगत्को उत्पन्न करता है, अरु विष्णु जगत्का पालनकरताहै, अरु रुद्र जगत्का संहारकरताहै, ताते उक्त तीनों देवताभी जगत्की उत्पत्ति स्थिति संहार

का कारण होने से जगत्के निर्वाहक ईश्वरहैं। अरुधर्म, अर्थ काम यह जो तीन प्रयोजनहैं सोभी जगत् के प्रवर्त्तक हेतुहैं, तातेसर्व्व जगत् ॐकारका वाच्यहोने से ॐकाररूपहै अरु जगत्का वाचक ॐकारही नामनामी की एकता से जगत्रूप से सुशोभित है अरु ॐकारही जीवईश्वर ब्रह्मरूपहै, अर्थात् ॐकारकालक्ष्य प्रत्यगात्मा अकारमात्रा स्थूल प्रपञ्च जाग्रदवस्थारूप उपाधिका अभिमानी हुआ विश्व जीवरूपहै, अरु उकारमात्रा सूक्ष्मप्रपञ्च स्वप्नावस्था रूप उपाधि साथ मिल तिसका अभिमानी हुआ तैजस स्वप्नका कल्पक ईश्वरहै, अरु मकारमात्रा जाग्रत् स्वप्न स्थूल सूक्ष्म, का कारण सुषुप्त्यवस्थाका अभिमानी मायाविशिष्ट सर्वका कारण होने से ब्रह्म है अतएव जीव ईश्वर ब्रह्म, यह तीनों रूपसे सोपाधि हुआ ॐकार का लक्ष्य प्रत्यगात्माही सुशोभित है। इस प्रकार यथार्थ जानके जो ॐकारोपासना करते हैं सो मोक्ष को प्राप्त होते हैं। इसप्रकार अपान्तर मुनि कहते हैं॥ हे सौम्य! अब इसका विचार श्रवण करो, यहां जो, तीन अग्नि, तीन देवता, तीन प्रयोजन, कहे हैं तहां जगदुत्पत्तिका कारण जे आहवनीय अग्नि अरु ब्रह्मादेवता अरु धर्म्म; इन तीनों को जाग्रदवस्था स्थूलभोग विश्वाभिमानी, इसस्थूल प्रथम पाद साथ अभेदकर पश्चात् उस प्रथमपादको अकार मात्रासाथ एक विचार उस को अकार मात्रारूप जाने। अरु दूसरा जो जगत् की स्थितिका हेतु जो, गार्हपत्य अग्नि, विष्णुदेवता, अरु अर्थ, इनतीनों को, स्वप्नावस्था सूक्ष्मभोग तैजसाभिमानी, इस सूक्ष्म द्वितीय पाद साथ एक कर पश्चात् उस द्वितीय पादको द्वितीय उकार मात्रासाथ अभेदकर उसको उकारमात्रा रूप जाने अरु तृतीय जो, दक्षिणाऽग्नि, रुद्रदेवता, अरु काम, इनतीनों को सुषुप्त्यवस्था आनन्द भोग अरु प्राज्ञाभिमानी, इसकारण तृतीयपाद साथ अभेद विचार पुनः तिस तृतीयपाद को तृतीय मकार मात्रासाथ एक कर तिसको मकार मात्रारूप जाने॥ इसप्रकार उक्त तीनों अग्नि

देवता प्रयोजन को विभाग से अकारादि तीनों मात्रा साथ एक कर प्रपञ्च रूपनामी अरु ॐकार नाम इनको अभेद जानके जो ॐकारकी उपासना करताहै, अर्थात् ॐकार के जप अरु पादों के भेद विचार उपासनरूप आलम्बनकरके जो तिसके अधिष्ठान अक्षर चैतन्य आत्मा को सम्यक् प्रकार जानताहै सो उपासक परमपदको प्राप्तहोताहै॥ इति अपान्तरतम मुनिका सिद्धान्त३॥

अथ चतुर्थ सनत्कुमार सिद्धान्त ४ ॥

हे सौम्य! सनत्कुमार सिद्धान्तवाले पुरुष ॐकारकी उपासना इस प्रकार करते कहते हैं कि जो जिज्ञासु पुरुष, तीनकाल, तीनलिंग, तीनसंज्ञा, यह नवनाम रूपवाला जानके ॐकारकी उपासना करताहै, सोमोक्षको प्राप्तहोताहै। अब इसकाअर्थ भेद श्रवणकरो तीनकाल उसको कहते हैं, जो भूत, भविष्यत्, वर्त्तमानरूप कालहै। तहां भूतकल उसको कहते हैं जो पूर्व व्यतीतहुआ, अरु वर्त्तमानकाल उसको कहते हैं जो वर्त्तमान है, अरु भविष्यत्काल उसको कहते हैं जो आगे आवना है, अब इसको पुनः श्रवण करो। हे सौम्य! यह जो युग वर्त्तता है तिसके पूर्व जो युग व्यतीत हुआ सो भूतकाल कहिये है, अरु जो युग अब वर्त्तमान है सो वर्त्तमानकाल है अरु जो युग आगे आवना है सो भविष्यत्काल है। इसही प्रकार इस वर्त्तमान युगके आवान्तर जो वर्ष व्यतीत हुये सो भूतकाल है, अरु जो वर्ष वर्त्तता है सो वर्त्तमानकाल है, अरु जो वर्ष अग्रिम आवना है सो भविष्यत्काल है, तैसेही एक वर्ष के आवान्तर जो मास व्यतीत हुये तिनको भूतकाल कहते हैं, अरु जो मास वर्त्तता है तिसको वर्त्तमानकाल कहते हैं, अरु जो मास अग्रिम आवने हैं तिनको भविष्यत्काल कहते हैं ऐसेही एक मासके आवान्तर जो दिवस व्यतीतहुये तिनकी भूतकाल संज्ञा है, अरु जो दिवस वर्त्तता है तिसकीवर्त्त-

मान संज्ञा है, अरु जो दिवस अग्रिम आवने हैं तिनकी भविष्यत्काल संज्ञा है। इसही प्रकार एक वर्त्तमान दिवसमें जो प्रहर व्यतीतहुआ तिसकी भूतकाल संज्ञा है, अरु जो प्रहर वर्त्तताहै तिसकी वर्त्तमान संज्ञा है, अरु जो प्रहर आगे आवना है तिसकी भविष्यत् संज्ञाहै। अरु तैसेही एकप्रहरके आवान्तर जो घड़ी व्यतीत हुई सो भूतकाल हुआ अरु जो घड़ी वर्त्तती है सोवर्त्तमान है अरु जो घड़ी आगे आगन्तुक (आवनेवाली) है तिसको भविष्यत् जानो। इसप्रकार परार्द्ध से लेके घड़ी निमेषकला काष्ठा परमाणु पर्यन्त यावत् कालावयवहैं सो सर्व पूर्वपूर्व के आवान्तर होतसन्ते भूत वर्त्तमान अरु भविष्यत् भावकरके युक्तही हैं। अरु सर्वनाम रूपात्मक पदार्थों को अपने स्वभावसे अन्यथा करना यह कालका लक्षण है, जैसे आम्रका फल प्रथमअतिलघु अरु कसाइला होताहै पश्चात् कुछ वड़ा अरु खट्टाहोने लगताहै पुनः वड़ाहोके पूर्णखट्टाहोताहै पुनःशनैःशनैः मधुरहोता है पुनः उत्तर सड़के नष्ट होजाता है सो यह सर्वकाल का किया होता है, ताते यावत् नामरूप क्रियावान् वस्तु हैं तिनको एक रस न रहनेदेना यह कालका स्वरूप स्वभाव है, अरु जो विभाग रहित एकरस एककाल है सो किसी उपाधि की विशेषता सेही भूत वर्त्तमान अरु भविष्यत् संज्ञाको पाय परार्द्ध से परमाणु पर्यन्त अति दीर्घ अरु अतिअल्प संज्ञाको पावता है। हे सौम्य! इस कहने करके यह सिद्धहुआ कि एकही काल की उपाधिके संबंधसे तीन संज्ञाहुई हैं, तैसेही एकही ॐकार (परमात्मा) की मायारूप उपाधि करके अनेक नामरूप संज्ञाहुई हैं, परन्तु वास्तवकरके निरुपाधि अक्षर ॐकार एकही है। इस प्रकार त्रिकालको जानना। अरु, स्त्री, पुरुष., नपुंसक, यह तीन ॐकार के लिंग हैं, अर्थात् एक ॐकार अक्षर का विस्तार यावत् शब्द ब्रह्म है सो अरु शब्दों के अर्थ पदार्थ ये सर्व उक्त तीनों लिंगों विषेही वर्तते हैं। अरु तीन जो संधी कही हैं

तहां एक, बहिस्सन्धी है, दूसरी सन्धसन्धी है, तीसरी क्रान्त सन्धी है, सो यह तीन सन्धी हैं, सो यह, विश्व, तैजस, प्राज्ञ, रूपहैं। हे सौम्य! इस कहने से यह जानना कि एक ॐकारही उक्तप्रकार तीन कालरूप, तीन लिंगरूप, अरु तीन सन्धीरूप से सुशोभित है ताते सर्व ॐकार रूपही है, तिससे इतर रंचकमात्र भी नहीं। इसप्रकार ॐकार को जानके जो मुमुक्षुपुरुष तिसकी उपासना करता है सो मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ हे सौम्य! अब इसकी मात्राओं का क्षेपक विचार भी श्रवणकरो। भूतकाल, स्त्रीलिंग, अरु बहिस्सन्धी, इन तीनोंकोजाग्रदवस्था स्थूलभोग, विश्वाभिमानी, इस प्रथम पादसाथ एककर पुनः उस प्रथम पाद को प्रथम अकारमात्रा साथ एक विचारे। पश्चात् वर्त्तमानकाल पुरुषलिंग, अरु सन्धसन्धी, इनतीनोंको स्वप्नावस्था, बिरलभोग, तैजस अभिमानी, इस द्वितीयपाद साथ एककर पुनः उसद्वितीयपाद को द्वितीय उकारमात्रा साथ एकता विचारे। पुनः भविष्यत्काल नपुंसकलिंग, क्रान्तसन्धी, इनतीनों को, सुपुप्त्यवस्था, आनन्द भोग, प्राज्ञाभिमानी, इस तृतीयपाद साथ एककर पुनः उस तृतीयपादको मकार मात्रा साथ अभेद विचारे, अरुपुनः विचारे कि यह उक्तसर्व ॐकारही है अरु इस ॐकारका आश्रयअधिष्ठान अक्षर परमात्माहै, अरु तिसअक्षर परमात्माका प्रतीक अरुवाचक यह वर्णात्मक ॐकार है ताते इस परब्रह्मके प्रतीक ॐकारकी उपासनारूप आलम्बन से उस सर्वाधिष्ठान परमात्म पदकी प्राप्तिहोती है, अरु यह प्रणवोपासना परमपद की प्राप्तिमें सर्वोत्तम मुख्य आलम्बन है। इसप्रकार विचार के जो समाहित चित्त शमदमवान् हुआ इस ॐकारकी उपासना करता है, सो मुमुक्षुपुरुष कोप्राप्त होताहै ॥ इति चतुर्थ सनत्कुमार सिद्धान्तः ४ ॥

अथ पंचम ब्रह्मनिष्ठ सिद्धान्तः ५॥

हे सौम्य! ब्रह्मनिष्ठ सिद्धान्तवाले कहते हैं कि हम ॐकारको तीनस्थान रूप, तीन पदरूप तीन प्रज्ञारूप, जानके उपासना करते हैं तहां, हृदय, कंठ, मूर्द्धा, यह तीन स्थान हैं, क्योंकि ॐकारउच्चारकरने से इन तीनों स्थानोविषे प्रकट होता है ताते यहतीन उसके स्थान हैं। अरु, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, यह तीन इसके पाद हैं। अर्थात् इस संधान विशिष्ट आत्मारूप ॐकार के उक्त तीनोंपाद उक्त तीनों स्थानों विषे क्रमशःवर्तते हैं, तहां मस्तक (नेत्र) विषे जाग्रदवस्था, अरु कंठरूप स्थानविषे स्वप्नावस्था, अरु हृदयरूप स्थानविषे सुषुप्त्यवस्था, इस प्रकार उक्त तीनों स्थानों विषे क्रमशः तीनोंपाद वर्त्तते है, अरु बहिःप्रज्ञा, अन्तःप्रज्ञा अरु घनप्रज्ञा, यह तीन इसकी प्रज्ञा है। अर्थात् नेत्रस्थान जाग्रदवस्था विषे बाह्यके घटपटादि पदार्थों को विषय करनेवाली जो प्रज्ञा (बुद्धि) तिसको बाह्यप्रज्ञा कहते है। अरु कण्ठस्थान स्वप्नावस्था विषे स्वप्नके पदार्थोंको विषय करनेवाली जो प्रज्ञा तिसको अन्तःप्रज्ञा कहते हैं। अरु हृदयस्थान सुषुप्त्यवस्थाविषे सर्व विशेष प्रपंच के अभाव से कारण अविद्या विषे लय हुई जो प्रज्ञा तिसको घनप्रज्ञा कहते है, अरु इन तीनों प्रकारकी प्रज्ञाके सम्बन्धसे तद्विशिष्ट चिदाभास को बाह्यप्रज्ञ, अन्तःप्रज्ञ घनप्रज्ञ इसप्रकार तीनों प्रज्ञावाला कहते हैं। अरु "यद्भूतं भवद्भविष्यदिति सर्व ॐकारएव" इत्यादि श्रुति प्रमाण से, जो कुछ होगया, अरु जो कुछहे, अरु जो कुछ होगा, सो सर्व ॐकारही है। अतएव तीनस्थान रूप भी अरु तीन पद रूप भी अरु तीन प्रज्ञारूप भी, एक ॐकारही है, अरु इसही करके इस ॐकारको सर्वव्यापी भी कहते है। अथवा बहिःप्रज्ञ जो विश्वहै सो विश्वरूप है, अरु अन्तःप्रज्ञ तैजसरूप है, अरु घनप्रज्ञ प्राज्ञरूप है, ताते विश्व तैजस प्राज्ञ, इन तीन प्रकारहोय के सर्व

देहोंविषे एक ॐकारही स्थितहै। तहां बाह्य जो स्थूल वैश्वानर नाम प्रपंच है तिस बाह्यका भोक्ता विश्व है । अरु अन्तर सूक्ष्म प्रकृति (स्वप्नके पदार्थ)का भोक्ता तैजसहै। अरु कारण आनन्द का भोक्ता प्राज्ञ है। ताते जो इन तीन प्रकार के भोग्य भोक्ताको जो जानता है सो जाननेवाला सर्वका साक्षी मुक्तरूप है। अरु जब सात्त्विकी प्रकृतिहोती है तब यह जीव (चैतन्यपुरुष) ब्रह्माहोके स्थूल प्रपंचको रचता है अर्थात् जाग्रत् जगत् (जैसे के तैसे पदार्थ) दृष्ट आवते हैं। अरु जब रजोगुणात्मक प्रकृतिहोती है तब यह जीव तैजसभाव को प्राप्तहुआ अन्तर प्रवृत्ति स्वप्नरूप सूक्ष्म जगत्को रचता है। अरु जब तमोगुणात्मक प्रकृति होती है तब स्थूल सूक्ष्म अन्तरबाह्य सर्व का अभाव कर सुषुप्तिस्थानविषे प्राज्ञरूपहुआ आनन्दको भोक्ता है। अतएव जो उक्तप्रकार के भोग्य भोक्तास्थान इनका जाननेवाला चतुर्थ सर्वका साक्षी आत्मा है सो सर्व से असंग हुआ शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव है। अरु सो सर्व संघात साथ मिलाहुआ भी तिनके अरु तिनके धर्म कर्म स्वभावादिकों से लिपायमान होता नहीं, ताते सदा शुद्ध है, ताते जो, तीनस्थान, तीनपद, तीनप्रज्ञा, इन नव ९ नाम रूप करके सुशोभित है सो एकअक्षर ॐकारही है। अरु सो अक्षर ॐकार, जैसे रज्जु सर्पका तैसे, सर्व जगत्का कारण सन्तजनों ने वर्णनकिया है। अरु वेद विषे भी कहाहै कि ॐकार अक्षरही स्वमाया करके सर्वको उत्पन्न करताहै, जैसे मरुस्थल वा ऊषरभूमि अपने उत्तरतरूप स्वभाव करके लहरादि संयुक्त नहीं वो उत्पन्न करे है वा उत्पन्न होवे है तैसे, अरु सो अक्षर चैतन्य स्वभाव होने से सर्वज्ञ जाना है। अरु सोई ॐकार का स्वरूप परमात्म पुरुष परमेश्वर परब्रह्म परम पुरुष परमात्मा आदि नामों से कहा जाता है। अरु सोई परमात्मा स्वमाया विशिष्ट ईश्वर हुआ सर्वको उत्पन्न करता है, अरु सोई जीव (चिदाभास) रूप से सर्वका भोक्ता है अरु सोई सर्व विषे प्रवेशकरके तटस्थहुआ सर्वका साक्षी है। इसप्रकार जो

एकही अक्षर(अविनाशी अजन्मा ॐकारकर्त्ता भोक्ता अरु साक्षी रूप से सुशोभित हैं, परन्तु सो महासूक्ष्म अविषय होने से अति दुर्विज्ञेय है, ताते जो जिज्ञासु पुरुष तिसपरम अक्षर परमात्माकी तिसके प्रतीक, वाचक त्रिमात्रिक वर्णात्मक ॐकार रूप आलम्बन द्वारा यथोक्तरीत्या उपासना करताहै सो मोक्षको प्राप्तहोताहै॥ हे सौम्य! अब इसका क्षेपक विचारभी श्रवणकरो। प्रथम कहा जो, तीनस्थान, तीनपद, तीनप्रज्ञा, तिनमेंसे प्रथम मूर्द्धास्थान, जाग्रदवस्थासाभिमानी पाद, अरु बहिःप्रज्ञा इन तीनों को प्रथम अकारमात्रा साथ एककरे। पश्चात् कंठ स्थान, स्वप्नावस्था साभिमानी रूप पाद, अरु अन्तःप्रज्ञा, इन तीनों को द्वितीय उकारमात्रा साथएककरे। तिसके पश्चात् हृदय स्थान, सुषुप्तिअवस्था साभिमानी रूपपाद, अरु घनप्रज्ञा, इनतीनोंको तृतीय मकारमात्रा साथ एककरे। इसप्रकार तीन स्थान, तीनपद, तीनप्रज्ञा, इनकोक्रमशः अकार उकार मकार, इनतीनों मात्रासाथ एककरके पश्चात् इनसर्व वाच्यको लक्षरूप परमात्मा विषे अध्यस्थ जान इनका असद्भावसे बाधकर एक सत्यरूप सर्वाधिष्ठान चैतन्य आत्माकी अहमथे उपासना करनेवाला मुमुक्षु मोक्षको प्राप्तहोताहै। परन्तु तिसको निर्विशेष महासूक्ष्म होनेसे विना आलम्बनके तिसकी उपासना करनेको कोई समर्थ नहीं ताते तिसअक्षरपरमात्माके प्रतीकवाचक वर्णात्मक त्रिमात्रिक ॐकार अक्षरके जप अरु अर्थकी भावना विचाररूप उपासनाके आलम्बनसे तिसके लक्ष अक्षर परमात्माकी उपासना करता है सो मुमुक्षु मोक्षको प्राप्तहोताहै॥ इति ब्रह्मनिष्ठ सिद्धान्त ५॥

अथ षष्ठपशुपतिसिद्धान्त ६॥

हे सौम्य! पशुपति (शिवजी) के शिद्धान्तके मतावलम्बीपुरुष ऐसा कहतेहैं कि जो विभु ॐकार नवनाम रूपसे स्थितहै तिसकी हम उपासना करते हैं। तहां, तीन अवस्थारूप, तीन भोग्यरूप,

तीन भोक्तारूप, इसप्रकार नवनामरूपकरकेएक ॐकारहीसुशोभितहै । तहां प्रथम तीन अवस्थाको श्रवणकरो , प्रथम शान्त, द्वितीय घोर, तृतीय मूढ़, यहतीन अवस्था हैं। सो , जाग्रत् , स्वप्न, सुषुप्ति, कोभी , शान्त, घोर, मूढ़,इन नामों से कहतेहैं। अरु इन जाग्रदादि प्रत्येक अवस्थाविषे यहशान्त घोर अरु मूढ़, यह तीनों अवस्था वर्तती हैं । तहां जाग्रत् अवस्था जो सत्त्वगुणात्मक है तिसविषे चित्त शान्तरूप होताहै, अरु स्वप्नावस्था जो रजोगुणात्मकहै तिसविषे चित्त घोररूप होता है, अरुसुषुप्तिअवस्था जो तमोगुणात्मकहै तिसविषे चित्त मूढ़रूप होताहै । अब इस प्रत्येक अवस्थाके अवान्तर भेदको भी श्रवणकरो । जाग्रत्विषे जोकुछ पदार्थहै सो ज्यों कात्यों (जैसेकातैसा) भासताहै तहांजो चित्तकी अवस्थाहै सो शान्तावस्थाहै, अरु जाग्रत् विषे जो विपर्य्यय भासताहै ,जैसेहै तो रज्जु अरु भासताहै सर्प, तहांजो चित्तकी अवस्था है तिसको घोर अवस्था कहतेहैं, अरु जाग्रत् विषे सुषुप्तिवत् कुछ भी नहीं भासता तहांजो चित्तकी अवस्था है तिसका नाम मूढ़ अवस्था है ॥ तैसेही स्वप्नावस्था विषे जो पदार्थ स्फुरण हुआहै सो जैसा हुआहै तैसाही भासता है तहां चित्तावस्थाका नाम शान्त अवस्थाहै, अरु स्वप्नविषे जो औरका औरही भासताहै,जैसे स्फुरण हुआ हाथी सो भासनेलगा पक्षी, ऐसी जो स्वप्न में चित्तावस्था है तिसका नाम घोर अवस्थाहै, अरु स्वप्नविषे जो पदार्थ स्फुरण हुआहै सो भासता नहीं (जाग्रत्हुये स्मरणमें आवतानहीं) तहां जो चित्तकी अवस्थाहै तिसका नाम मूढ़ अवस्था कहतेहैं ॥ अरु सुषुप्तिअवस्थाविषे चित्त लीनहुआहै, तिससे जाग्रत्हुये कहता है कि मैं बड़े सुखसे सोताथा, सो जो सुषुप्तिमें चित्तकी सुखावस्था है सो शान्त अवस्थाहै । अरु जो सुषुप्तिसे जाग्रत्हुये कहताहै कि मुझको अस्थवस्त निद्राआई सो सुषुप्तिमें चित्तकी घोर अवस्था है, अरु जो सुषुप्तिसे जाग्रत् हुआ कहता है कि मैं ऐसा बेसुध सोता कि मुझको कुछभी ज्ञान न रही. ऐसी जो सुषुप्तिमें चित्तावस्था है

तिसका नाम सुषुप्ति मूढ़ावस्थाहै ॥ हे सौम्य! अब इन तीनोंको औरप्रकारभी श्रवणकरो। जाग्रत्‌विषे जो चित्तको सुख विश्राम होता है तहां चित्तावस्था का नाम शान्तावस्था है, अरु जाग्रत् विषे जो चित्तको दुःख से विश्रामहोता है तिस चित्तावस्थाका नाम घोर अवस्था है, अरु जाग्रत् विषे जो मूर्छादि अवस्था है तिसका नाम मूढ़ अवस्थाहै, अरु जागत् विषे जो दैवी सम्पदा शास्त्र प्रमाण यज्ञ दान अध्ययन जप पाठ पूजासेलेके जो सात्विक कर्म्म व्यवहारहैं तिनविषे चित्तकी प्रवृत्ति जिस अवस्थाविषे होती है तिसका नाम शान्ताअवस्थाहै,अरु जाग्रत्‌विषे जो व्यवहारादिक राजसी कर्म्म है तिस विषे जब चित्तप्रवृत्त होता है तिस चित्तावस्थाका नाम घोर अवस्थाहै, अरु जाग्रत् विषे जो हिंसादि तमोगुणात्मक कर्म हैं तिसविषे प्रवृत्त होनेमें जो चित्तावस्थाहै तिस का नाम मूढ़ अवस्था कहते हैं ॥ हे प्रियदर्शन! तिनही प्रकार स्वप्नमें जो सुखानुभव होताहै चित्तको जिस अवस्थामें तिस अवस्थाका नाम स्वप्न शान्त अवस्थाहै, अरु स्वप्नविषे जो चित्तको दुःखानुभव होता है जिस अवस्थामे तिस चित्तावस्था का नाम स्वप्न घोरावस्था है, अरु स्वप्न विषे जो चित्तकी मूर्च्छादि अचेत अवस्थाहै तिसका नाम स्वप्न मूढ़ावस्थाहै ॥ इसही प्रकार सुषुप्ति अवस्थाविषे सोयाहुआ पुरुष उठके कहताहै कि मैं सुखसे सोया मुझको शान्ति प्राप्तहुई ऐसी जो सुषुप्तिमें चित्तावस्था तिसका नाम सुषुप्ति शान्तावस्थाहै, अरु सुषुप्तिसे उठके कहताहै कि आज मुझको दुःखसे निद्राआई मुझको कुछ सुख भान न हुआ परन्तु निद्रा आगई ऐसे जो सुषुप्ति में दुःखके संस्कारयुक्त चित्तावस्था तिसका नाम सुषुप्ति घोर अवस्थाहै, अरु सुषुप्तिसे उठके कहता है कि मैं ऐसा सोया जो मुझको सुखदुःखका कुछ भी भान न रहा ऐसी जो सुषुप्तिमें चित्तकी बेसुध अवस्था तिसकानाम सुषुप्ति मूढ़ अवस्था कहते हैं ॥ हे सौम्य! अब एकप्रकार और भी श्रवण करो, इस जाग्रदवस्थामें यथार्थ अनुभवसे अपनेआप चिदानन्द

आत्माविषे जो चित्तकी स्थिति तिस चित्तावस्थाकी अरु तिसकी प्राप्तिके अर्थ जो श्रवणादि साधनों विषे चित्तके प्रवृत्त वा स्थित होनेकी जो चित्तावस्था तिसकानाम क्रमसे उत्तम मध्यम शान्त अवस्थाहै,अरु विषयोंविषे जो चित्तकी स्थितिहोनी जिस अवस्था करके तिस चित्तावस्था का नाम घोर अवस्था है, अरु देहादि अनात्म अभिमान करके रागद्वेषादि आसुरी सम्पदाविषे जो चित्त की स्थिति तिस चित्तावस्थाका नाम मूढ़ अवस्था कहते हैं, इस ही प्रकार स्वप्नविषे धर्मादिक सत्त्वगुणी सम्पदाविषे जो चित्तकी प्रवृत्तिहोनी जिसकरके तिस चित्तावस्था का नाम स्वप्न शान्तावस्था है, अरु स्वप्नमें जो विषयोंविषे चित्तकी प्रवृत्तिहोनी जिस करके तिस अवस्था का नाम स्वप्न घोर अवस्थाहै, अरु स्वप्नविषे हिंसादिक आसुरी सम्पदा में चित्तका प्रवृत्त होनाहै जिस करके तिस चित्तावस्थाका नाम स्वप्न घोर अवस्थाहै, ॥ अरु इसही प्रकार सुषुप्ति विषे जो ब्रह्मविचार के संस्कारलेके चित्तलय होताहै तिस चित्तावस्थाका नाम सुषुप्ति शान्तावस्था है, अरु सुषुप्ति विषे जो विषयोंके संस्कार स्मृतिको लेके चित्तलय होताहै तिस चित्तावस्थाकानाम सुषुप्ति घोरअवस्थाहै,अरु सुषुप्तिविषे जो देहादि अनात्माभिमान संस्कारको लेके चित्त लय होताहै तिस चित्तावस्थाका नाम सुषुप्ति मूढ़ अवस्थाहै ॥–॥ हे सौम्य ! उक्तप्रकार कहा जो अवस्थाओं का स्वरूप भेद सो यह तीनों सूक्ष्म अवस्था ॐकारकीहैं॥ अव तीनप्रकारके जे भोग्यहैं तिनकोभी श्रवणकरो, अन्न, जल, अरु सोम (चन्द्रमा) यह तीनों भोग्यहैं, भोग्य कहिये भोगनेयोग्य वस्तुहै, अर्थात् जिसकरके ,तुष्टि, पुष्टि, अरु आनन्द होय तिसको भोग्य कहते हैं, तहां प्रत्यक्ष सर्व जीवोंको अन्न अरु जलकरके ,पुष्टि, तुष्टि, अरु आनन्द होताहै ॥ हे सौम्य ! ,अद , धातुसे अन्न शब्द वनताहै अरु ,अद, धातु भक्षण विषे वर्त्तता है ताते जो भक्षण कियाजाय तिसको अन्न कहते हैं, अतएव जो जीव जिसको भक्षण करता है सो तिसका अन्न है अरु ति·

सही से उसकी तुष्टि पुष्टि अरु आनन्द होता है, अरु जल सर्व जीवों को समान है ; अरु चन्द्रमा करके ओषधी वनस्पति तुष्ट पुष्ट अरु आनन्दित होती हैं, ताते ,अन्न, जल, अरु चन्द्रमा यह तीनोंकरके स्थावर जंगम सर्व ,तुष्ट, पुष्ट, अरु आनन्दित होतेहैं, एतदर्थ ,अन्न, जल, चन्द्रमा, यह तीनों भोग्यहैं ॥ अरु ,अग्नि, वायु (प्राण) अरु सूर्य्य, यह तीन भोक्तारूप हैं । सो यह अनुभव सर्वको प्रत्यक्षहै, देखो क्षुधापिपासा प्राणका धर्म्म है क्योंकि जहां प्राणहोता है तहांहीं क्षुधा पिपासा अरु भोगनेकी शक्तिहोतीहै, ताते देहभोक्ता न होयके प्राण भोक्ताहै । अरु अग्नि देवता भी प्रत्यक्ष भोक्ताहै, काष्ठादिकोंके सम्बन्धसे बाह्य हुतभुक्है,अरु प्राणरूप समिधके समन्धसे अन्तर हुतभुक् , अर्थात् भोजन किये अन्नका भोक्ताहै, ताते अग्निभी प्रत्यक्ष भोक्ताहै । अरु सूर्य भगवान्‌भी अपनी किरणों द्वारा सर्व रसजातिको प्रत्यक्ष भोक्ता है, ताते ,प्राण, अग्नि, सूर्य्य, यह तीनोंहीं भोक्तारूपहैं ॥ अर्थात् अग्निबाह्य समष्टि वैश्वानररूपसे हविषादिकों को भोक्ताहै अरु अन्तर व्यष्टि वैश्वानररूपसे भोजनकिये अन्नादिकों का भोक्ता है, अरु वायु बाह्य समष्टि सूत्रआत्मा रूपसे सर्वको अपने विषे धारण करनेद्वारा भोक्ताहै, अरु व्यष्टि प्राणरूपसे देहादिकोंका धारण करनेरूपसे भोक्ताहै, अरु सूर्य्य बाह्य सूर्य्यरूपसे सर्वका प्रकाशक होनेसे समष्टिका भोक्ताहै, अरु अन्तर चक्षुरूपसे व्यष्टि का प्रकाशक भोक्ताहै, इसप्रकार समष्टि व्यष्टिविषे ,अग्नि, वायु, सूर्य्य, यह तीनों भोक्ताहैं ॥ इसप्रकार जो तीन ,अवस्था, तीन भोग्य, अरु तीनभोक्ता, इननव ९ नामरूप होके एक ॐकारही सुशोभित है, तिसको यथार्थ जानके जो मुमुक्षु पुरुष उपासना करताहै सोमोक्षको प्राप्तहोताहै ॥-॥हे सोम्य!अब उक्त तीनोंकी अकारादि तीनोंमात्राके साथ एकताका क्षेपक विचारभी श्रवण करो यहां जो ,तीनअवस्था, तीनभोग्य, तीनभोक्ता, कहे हैं तहां शान्त अवस्था, अन्न भोग्य, अरु अग्नि भोक्ता, इन तीनोंको

प्रथम जाग्रत् अवस्था स्थूलभोग्य अरु वैश्वानरभोक्ता इसप्रथम पादके साथ एकता विचारकरे । पश्चात् घोर अवस्था जल भोग्य, अरु घ्राणभोक्ता, इन । तीनोंको , स्वप्नावस्था, विरलभोग्य तैजस भोक्तारूप द्वितीयपादके साथ एकविचारकरे तिसकेपश्चात् मूढ़ अवस्था चन्द्रमा भोग्य, अरु सूर्य्य भोक्ता, इन तीनों को, सुषुप्ति अवस्था, आनन्द भोग्य प्राज्ञभोक्ता, इस तृतीयपाद साथ एक विचारकरे । तिसके पश्चात् उक्त तीनों पादोंको क्रमशः अकारादि तीनों मात्रा ॐकेसाथ एकविचार सर्वको ॐकाररूप जानके एक ॐकारकी उपासनाकरे तहां विचारे कि यह ॐकार रूप अपरब्रह्मका जोलक्ष्य अक्षर परब्रह्महै तिसका यह वर्णात्मक अक्षर ॐकार प्रतीक अरु वाचक (नाम) है ताते इस त्रिमात्रिक ॐकाररूप श्रेष्ठ आलम्बनद्वार इसके अधिष्ठान अक्षर परब्रह्म कि जिसविषे यह तीनों मात्रारूप जगत् रज्जुमें सर्पवत् अध्यस्त है तिस परमात्मा परब्रह्मकी हम उपासना करतेहैं । इसप्रकार जानकेजो मुमुक्षु ॐकारकी उपासना करता है सो परमपदरूप मोक्षको प्राप्तहोताहै ॥ इति पशुपतिसिद्धान्तः ६ ॥

अथ सप्तम विष्णुपञ्चरात्र सिद्धान्तः ७ ॥

हे सौम्य! अब सप्तम विष्णुपञ्चरात्र सिद्धान्तको श्रवणकरो, विष्णुपञ्चरात्रके सिद्धान्तवादी कहते हैं कि जो ॐकार , तीन आत्मरूप है , तीनस्वभावरूप है, तीन व्यूहरूप है, इसप्रकार नव ९ नामरूपसे सुशोभित हुआ है तिसकी हम उपासनाकरते हैं, अरु और भी जो इस ॐकार की उपासना करता है सो मुमुक्षु मोक्षको प्राप्तहोता है । अब इनका भेद श्रवणकरो, तहां , बल, वीर्य, तेज, यह तीन आत्मा हैं , तहां जो देहविषे सामर्थ्य है तिसका नाम बल है, अरु जो इन्द्रियों की शक्ति है तिसका नाम वीर्य कहते हैं, अरु मन विषे जो उत्साह या उदारतादि धर्म है तिसका नाम तेज कहते हैं, अर्थात् देहसे जो चेष्टा

होती है सो सर्वबल कीहै, अरु चक्षुरादि ज्ञानेन्द्रियोंसे जो देखना सुनना सूंघना रसलेना मिलना आदिक क्रिया पञ्च विषयों का सेवन आदिक होता है सो सर्व वीर्य्य रूप है, अरु मन विषे जो उत्साह उदारतादिक हैं सो तेज है। सो यह बल वीर्य्य तेज तीन आत्मा हैं ॥ अरु ज्ञान, ऐश्वर्य्य, शक्ति, यहतीन स्वभाव हैं,तहां यह जो देह इन्द्रिय प्राण मन बुद्धि चित्त अहङ्कार महत्तत्त्व प्रकृतिआदिक अनात्मरूप हैं सो सर्व असत्य भ्रान्तिमात्र हैं, अरु इनका जो साक्षी आत्मा प्रत्यक् चैतन्य कूटस्थ अन्तर्यामी है सोई सत्य सर्वका प्रकाशक परमात्मा मैं हों, माया से आदिलेके जो प्रपञ्च हैं सो मेरी सत्ता के विषे उपजते हैं स्थित होते हैं अभाव होते हैं ,जैसे समुद्र विषे तरंग उपजते हैं वर्त्तते हैं लयहोते हैं, तैसेही मेरे विषे जगत् है, मैं चैतन्यरूप समुद्रहों मेरा एक अद्वैत अखण्ड सच्चिदानन्दरूप है, ऐसा जो निश्चय सो ज्ञान है ॥ अरु अणिमासे आदिलेके जो अष्ट सिद्धि आदिक हैं सो ऐश्वर्य्य रूप हैं ॥ अरु जो अन्य किसी से न बनिआवे तिसको बनावना तिसका नाम शक्तिहै। सो यह ज्ञान ऐश्वर्य्य शक्ति, तीन स्वभावहैं ॥ अरु संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध यह तीन व्यूहहैं॥ अतएव ,तीनआत्मा, तीनस्वभाव,तीनव्यूह, यह नवनाम रूप करके एक अव्यय पुरुष ईश्वर ॐकारही है। ॐकार से इतर कुछभी वस्तु नहीं " ॐकारएवेदंसर्वम् " अरु ॐकार जो नाम है सो प्रकृतिका वाचक है ताते भी सर्व ॐकाररूपही है। अर्थात् जो कुछ स्थूल सूक्ष्ममूर्त्त अमूर्त्त कार्य्य कारणात्मक जगत् है, अरु उत्पत्ति स्थिति संहार है सो सर्व ॐकार का लक्ष्य एक वासुदेवही है। तथाच " वासुदेवः सर्वमिति " गीता अ० ७ के श्लोकप्रमाण से, ताते एक अद्वैत वासुदेवसे इतर कुछ भी नहीं "सर्वमिदमहंच वासुदेवः" इसप्रकार ॐकारकालक्ष्य जोसर्वात्मा ब्रह्महै तिसकी जो मुमुक्षु उपासना करते हैं सो मोक्ष को प्राप्त होतेहैं॥-॥ हे सौम्य! अब इसका वेपक विचार श्रवणकरो। प्रथम

कहे जे , तीन आत्मा, तीन स्वभाव, तीन व्यूह, तहां तिनमें से ,बल आत्मा, अरु ज्ञान स्वभाव, अरु संकर्षणव्यूह, इन तीनों को जाग्रत् स्थानादि रूप प्रथम पाद से एकताकरे, पश्चात् ; वीर्य आत्मा , ऐश्वर्य्य स्वभाव, प्रद्युम्न व्यूह, इन तीनों की , स्वप्नस्थानादि रूप द्वितीय पाद से एकताकरे, तिसके पश्चात् , तेज आत्मा , शक्ति स्वभाव, अरु अनिरुद्ध व्यूह, इन तीनोंकी सुषुप्ति स्थानादि रुप तृतीय पाद से एकता करे। पुनः उनपादों की क्रमशः अकारादि तीनों मात्राओं के साथ अभेदता करके विचारे कि इन उक्त प्रकार की मात्रा जिस अधिष्ठान परमात्मा विषे कल्पितहैं अरु जो इन मात्रारूप प्रपञ्चका साक्षी प्रकाशक चैतन्य है तिस भगवान् वासुदेव की हम इस वर्णात्मक त्रिमात्रिक ॐकाररूप तिसके प्रतीक वा वकके आलम्बन से उपासना करते हैं इस प्रकार जानके जो ॐकारकी उपासना करता है सो वासुदेव पद को प्राप्त होताहै ॥ इति विष्णुपञ्चरात्रसप्तम सिद्धान्तः ७ ॥

हे सौम्य ! यह जो सातो सिद्धान्तियों के मतमे सर्व का उपास्य एक ॐकार अक्षर कहा है सो परब्रह्मका वाचक ,नाम, होने से अरु नाम नामी की एकतामे ब्रह्मरूप है, अरु इसअक्षर ब्रह्म की उपासना करके विगत रागादि दोष हुये योगी यती जो आत्म ज्ञानी हैं सो ॐकार प्रतीकके लक्ष्य सर्वाधिष्ठान चैतन्य विषे समुद्रमें नदीवत् अभेदता से प्रवेश करते हैं। हे प्रियदर्शन! यह जो ॐकार अक्षर है तिसका स्मरण अरु अर्थ विचार करत सन्ते इसके लक्ष्य अखण्ड सच्चिदानन्द चैतन्य आत्मा है सो मैं हों , क्योंकि इन जाग्रदादि अवस्थाओं का साक्षित्व मेरे विषे पाया जाताहै अरु यहजाग्रदादिअवस्था मेरेआश्रयवर्त्तनीहैंतातेइसका अधिष्ठानभी मैंही हों , अरु यहअवस्था परस्पर अरु अपने प्रकाशक साक्षीसे व्यभिचारको पावती है ताते असत्यहैं अरु इन ... पायाजाताहै ताते अव्यभिचारी

सें एक सत्यरूपहीं अरु चैतन्य आनन्द स्वरूपएकहीं तांते अवस्थादि सर्व उपाधि से रहित निरुपाधि सच्चिदानन्द लक्षणवान् आत्मा ब्रह्म मैंहौं। इसप्रकार परमात्माके साथ आपको अभेद जानके एकहुये ज्ञानवान् परमात्म पदरूप परमगति प्राप्तहोते हैं। तहां जो त्रिमात्रिक प्रणव का जापिक उपासक अपने मरणसमे ॐकारका स्मरण करताहुआ देहको त्यागता है सो "ॐमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्, यः प्रयाति त्यजन्देहं सयाति परमांगतिम्" इत्यादि प्रमाणों से परमगति को प्राप्तहोताहै। अरु जो ॐकारको एकमात्रारूप जानके उपासना करता है सो देह त्यागके इस मनुष्य लोकको प्राप्तहोय धर्माचरण पूर्वक यहांके भोगोंको भोगता है। अरु जो ॐकारको दो मात्रारूप जानके उपासना करता है सो पितृलोक को प्राप्तहोय वहांके भोगोंको भोग पुनः इसलोक विषे आवता है। अरु जो ॐकारको त्रिमात्रारूप जानके उपासना करता है सो पुरुष देह त्यागानन्तर ब्रह्मलोक को प्राप्तहोता है वहां ब्रह्माद्वारा ॐकारके लक्ष्यका उपदेश पाय ब्रह्मसाथ एकहुआ मोक्षहोता है। अरु जो वाचकरूप त्रिमात्रिक प्रणवोपासनाकर पुनः आचार्य्यके मुखसे तिसके लक्ष्य सच्चिदानन्द लक्षणवान् आत्माको अपना आप आत्मत्वसे साक्षात् अनुभव करता है सो देहादि अनात्म अहंकारसे रहितहुआ ब्रह्मही होता है "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" हे सौम्य! यह जो सातों सिद्धान्तकारों के मतसे ॐकारकी मात्राके तिरसठ ६३ भेदकहे हैं सो सर्व वाचकरूप त्रिमात्रिक ॐकारके सगुण स्थूल रूप हैं। अरु जो इनसेरहित ॐकार का लक्ष्य चौसठवां रूप है सो केवल निर्गुणरूप है। "केवलो निर्गुणश्च" अरु शास्त्रकारोंनेभी कहाहै कि जो विष्णु अक्षर है सो निरञ्जन, अर्थात् अविद्यारूपा श्यामतासे रहित परम शुद्ध, है परमशान्त आनन्द घन है। तथाच "निरञ्जनं शान्तमुपैति दिव्यम्" सो न स्थूल है सूक्ष्म है, न ह्रस्व है न

दीर्घ है, न प्लुतहै, न रक्तहै न पीतहै न श्वेत है न श्यामहै न हरितहै। इत्यादि सर्ववर्णरूपसे रहितहै सो न इन्द्रिया है न प्राण है न मनहै, न बुद्धिहै न इनकाविषयहै, ताते सर्वविशेषतासेरहित निर्विशेषहै निरन्तरहै अबाह्यहै सर्वाधिष्ठान परमशान्तसत्तामात्र है, तिसविषे एक दो संज्ञा कोई नहीं सर्व संख्यासेरहित निरक्षर है अरु सम विषम भावसे रहित सदा अच्युतहै ज्योंका त्यों एक रस है ताते परम अक्षर है सो कैसा परम अक्षर है जो अधोक्षज है, अर्थात् शब्द ध्वनिसे रहित है, अरु जो अक्षर परापश्यन्ति मध्यमा अरु बैखरी इनचारो वाचाके आश्रय होठ कंठ तालू नासिका, इत्यादि स्थानोंद्वारा प्रकटहोतेहैं सो क्षररूपहैं वोहोतेही भूतसंज्ञा को प्राप्त होते हैं वा भविष्यत् में रहते हैं वर्त्तमान में उनका अभावहै ताते सो क्षररूपहैं, अरु जो होठ तालू कंठादि स्थानों से प्रकटहोता नहीं अरु सर्व का प्रकाशक साक्षी अधिष्ठान है सो सदा वर्तमानरूप अक्षर है स्वयंभू है, अर्थात् अपनेआप करके आपही सिद्ध है, ऐसा जो परम ॐकारहै सो अचिन्त्य सर्व प्रमाणों का अविषय होने से अप्रमेय नित्य है अचल है पूर्ण है परम शिवरूप है सनातन पुरुष है अरु सोई विष्णु का परम पद, कहिये पावनेयोग्य, है तिसकी प्राप्ति से पुनः संसार भ्रम होता नहीं, ताते सोई परमधामहै, सोई क्षराक्षरसे रहित उत्तम पुरुष परम अक्षरहै, अर्थात् सर्व कार्य कारणसे रहित निराकार सर्वाधिष्ठान परमात्मा सर्वका अपना आपप्रत्यक् आत्मा है तिसही के सम्यक् ज्ञानसे मोक्ष होताहै तिससे इतर मोक्षका मार्ग कोई भी विद्यमान नहीं तथाच "नान्यः पंथा विमुक्तये" "नान्यः पन्थाविद्यते अयनाय" इत्यादि श्रुति प्रमाणसे॥

इति सप्तसिद्धान्तकारोंकेमतानुसारॐकारोपासन विचार समाप्तम्॥

अथ ॐकारस्य एकादिमात्रोपासन विचार प्रारभ्यते॥

हे सौम्य! अब ॐकारके अन्य विद्वान् उपासकों ने जिस २ प्रकार मात्राओंके भेदसे उपासना कियाहै सोभी तुम्हारे प्रति संक्षेपमात्र कहताहों तिसको भी श्रवणकरो हे प्रियदर्शन! वाष्कलयऋषि के मतावलम्बी पुरुष ॐकार को एकमात्रा रूप जान के भजते हैं। अरु साल अरु काइत्थ, इन आचार्यों के मतावलम्बी पुरुष ॐकार को दोमात्रा रूप जान के भजते हैं। अरु नारदऋषिके मतविषे ॐकारको ढाई २॥ मात्रारूप जानकेभजते हैं, अरु मौंडल किंवा माडूक्य ऋषिके मतविषे ॐकारको तीन मात्रारूप जानके भजतेहैं, अरु सत्त सिद्धान्ती आदि अन्यऋषियोंने भी ॐकारको तीनमात्रारूप जानकेही भजन कियाहै। अरु पराशरादिक जे अध्यात्म चिन्तक मुनिहैं तिनके मतविषे ॐकार को चारमात्रारूप जानके उपासना करतेहैं। अरु भगवान् वशिष्ठ ऋषिके मतविषे ॐकार को साढ़ेचार ४॥ मात्रारूप जानकेउपासना करतेहैं। अरु अन्य ऋषियोंने अन्य अन्य मात्रारूप से ॐकारका भजन कियाहै। अरु भगवान् याज्ञवल्क्यजीने ॐकार अक्षर को अमात्रारूप भजन कियाहै॥ अतएव वेद शास्त्रद्वारा किंवा आचार्य्य वा अपने अनुभवद्वारा जैसा जिसने ॐकारका स्वरूपमात्रा जानाहै तैसेही उसने उपासना कियाहै। अरु सर्वकाही भजना सफल है, क्योंकि ॐकार ब्रह्मकी अनन्तमात्रा हैं ताते जिसने जैसा जानके भजन किया है तिसने एक ॐकारही का भजनकियाहै एतदर्थ सर्वका भजन सफल है सो यह विशेष वाच्यरूप ॐकारका भजनहै, अरु जो लक्ष्यरूप निर्विशेष ॐकार ब्रह्महै सो वास्तवकरके सर्वमात्रासे रहित अमात्रिक है उसविषे मात्रारूप विशेषतानहीं। हेसौम्य! इस ॐकारके, पर अरु अपर, वा समात्रिक अरु अमात्रिक, वा वाच्यरूप अरु लक्ष्यरूप, इत्यादि

प्रकार दोरूपहैं सो पूर्व प्रश्नोपनिषद् सम्बन्धी ॐकारकी व्याख्या में कहआयेहैं । तहां एक सगुणरूप है दूसरा निर्गुण रूपहै, तहां सगुणतो समात्रिक शब्दमय वाच्यरूप ॐकार अक्षर ब्रह्महै अरु दूसरा निर्गुण शब्दसे रहित अमात्रिक लक्ष्यरूप परब्रह्महै । तहां अब सगुण ॐकार ब्रह्मकी मात्राओं के भेदसे ऋषियों ने जिस जिस प्रकार उपासना किया अरु कहाहै तिसको भी संक्षेपमात्र श्रवणकरो ॥

हे सौम्य ! जो वाष्कलऋषि हैं कि जिनके मतविषे ॐकार को एकमात्रारूप जानके उपासना करते हैं सो इसप्रकार कहते हैं कि जितनाकुछ स्थूल सूक्ष्म विराट्‌वपुहै सो, सर्व ॐकारका ही स्वरूप है तिससे इतर कुछ भी नहीं । अर्थात् ॐकार जो ईश्वर है सो दो प्रकारका है, तहां एक सगुणरूप दूसरा निर्गुण रूप, तिनके भजन करनेवाले अपने २ अधिकारानुसार भजन करते हैं, तहां सगुण ॐकारके उपासक जानतेहैं कि इससगुण रूपका अधिष्ठान (आश्रय) निर्गुणहै ताते यह अपने अधिष्ठानसे अपृथक् होनेसे यही ॐकार ब्रह्महै इससे इतर निर्गुण नहीं, अरु निर्गुण ब्रह्मके उपासक जानते हैं कि ॐकार निर्गुण ब्रह्महै सो अपनी इच्छा शक्ति करके सगुणरूप हुआहै, ताते निर्गुणसे इतरसगुण नहीं वोहीरूप हैं । इसप्रकार सगुण निर्गुणकी एकता होनेसे एक ॐकार ब्रह्मही उभयप्रकारसे सुशोभितहै, ताते उभयप्रकार के उपासक कल्याणको प्राप्त होतेहैं, अरु उस एकही ॐकारब्रह्म का यह स्थूल सूक्ष्म कार्य्य कारणात्मक विराटात्मा उसका वपुहै ताते ॐकार एकमात्रा रूपही है, अतएव हम इस एकमात्रारूप ॐकार की उपासना करते हैं । यह ॐकार को एक मात्रारूपसे जानके भजन करनेवाले ऋषियों का मत है १ ॥

हे सौम्य ! अब, साल अरु कइस्त आदिक जे ॐकार की दो मात्रारूप जानके उपासना करनेवाले उपासक हैं सो इसप्रकार कहतेहैं कि ॐकार दो मात्रारूप है, तहां एक स्थूलरूप कार्य्य

मात्राहै, अरु दूसरी सूक्ष्मरूप अव्याकृत कारण मात्राहै, इसप्रकार कार्य कारणरूप स्थूल सूक्ष्म दो मात्रा हैं जिसकी तिस ॐकार ब्रह्मकी हम उपासना करते हैं। अथवा जो ॐकार चैतन्य ब्रह्म है तिसकी दो मात्रा हैं, तहां एक यह स्थूलरूप जाग्रत् जगत् अरु दूसरी सूक्ष्मरूप स्वप्न जगत, इन दोनों मात्राओंकालक्ष्यरूप साक्षी चैतन्य है कि जिसके आश्रय उक्त दोनों मात्राहैं अरु वा आप मात्राओं से रहित अमात्रिकहै तिसकी हम इस समात्रिक ॐकार के आलम्बनसे उपासना करते हैं॥ यह ॐकार की दो मात्रारूपसे उपासना करनेवाले ऋषियों का मतहै २॥

हे सौम्य! नारदऋषि आदिक जे ॐकारको ढाई २॥ मात्रा रूप जानके उपासना करते हैं सो इसप्रकार कहते हैं कि जो अकार जाग्रत्रूप जगत् है, अरु उकार स्वप्नरूप जगत् है, अरु, मकार सुषुप्तिरूप अर्धमात्रा है कि जिसविषे जाग्रत् स्वप्न दोनों लीन होते हैं तातेही इसका नाम सुषुप्ति अर्द्धमात्राहै, इसप्रकार ढाई २॥ मात्रारूप जगत् है वपु जिसका तिस ॐकार ब्रह्मकी हम उपासना करते हैं। अथवा अकार स्थूलदेह जाग्रत जगतसमेत प्रथम मात्रा, अरु उकार सूक्ष्म देह स्वप्नरूप जगत् समेत द्वितीय मात्रा अरु अर्धमात्रा चैतन्य तत्त्व है सो सर्व का ज्ञाताहै तिसका ज्ञाता कोई नहीं, अतएव उसका नाम अर्धमात्रा है, इस प्रकार ढाई २॥ मात्रारूप वपु है जिसका तिस ॐकार परब्रह्मकी हम इस ढाई मात्रावाले वाच्यरूप अपरब्रह्म ॐकार के आलम्बन से उपासना करते हैं। यह ॐकारको ढाई २॥ मात्रा रूप जानके भजन करनेवाले उपासकोंका मतहै २॥

हे सौम्य! मांडलऋषि आदिक जे ॐकारको तीन मात्रारूप जानके उपासना करनेवाले उपासक हैं सो इसप्रकार कहते हैं जो, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, यह तीन अवस्था अरु अकार उकार मकार, यह तीन मात्रा; अरु ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, यह तीन देवता, इनका संघातरूप है वपु जिसका, अरु जो है इस स्थूल सूक्ष्म

कारणरूप सर्व जगत् का आश्रय अधिष्ठान, अरु जिसविषे स्वरूपकरके मात्रादि उपाधि अध्यस्त (कल्पित) होने से कोई नहीं, तिस सर्व्वाधिष्ठान निर्विशेष लक्ष्यरूप ॐकार की हम उपासना करते हैं। अरु ॐकार की तीन मात्रारूप से उपासना अनेक प्रकार से कही है, अरु सप्तसिद्धान्तकारोंने भी तीनमात्रा रूपसे कही है, यह ॐकार को तीन मात्रारूप जानके भजनकरनेवाले उपासकों का मत है ३ ॥

हे सौम्य! अब ॐकार को साढ़ेतीन ३ ॥ मात्रारूप जानके उपासना करनेवाले ऋषि इसप्रकार कहते हैं कि, अकार, उकार, मकार, रूप, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति यह तीन मात्रा हैं अरु अर्ध मात्रारूप चैतन्य ब्रह्म है। अथवा कोई एक ऐसा कहते हैं कि, प्रथम मात्रा अकार स्थूल जगत्, अरु दूसरी मात्रा उकार सूक्ष्म जगत् अरु तीसरी मात्रा जीव कला, अरु अर्धमात्रा सर्वाधिष्ठान चैतन्य परमपद रूप है कि जिसविषे जीवकला संयुक्त स्थूल सूक्ष्म सर्व मात्रा लीन होती हैं, अरु जिसविषे मात्रा कोई नहीं ऐसा जो लक्ष्यरूप ॐकार है तिसकी हम समात्रिक ॐकारके आलम्बनसे उपासनाकरतेहैं। यह ॐकारको साढ़ेतीन ३ ॥ मात्रारूप जानके उपासना करनेवाले उपासकों का मतहै ३ ॥

हे सौम्य! अब पराशरआदिक ऋषि जो ॐकारको चारमात्रा रूपजानके उपासना करनेवालेहैं सो इसप्रकार कहतेहैं कि, प्रथम मात्रा अकाररूप स्थूलविराट् पुरुष, अरु द्वितीयमात्रा उकाररूप सूक्ष्म हिरण्यगर्भ, अरु तृतीयमात्रा मकाररूप कारण अव्याकृत, अरु चतुर्थ विन्दुरूप चैतन्य पुरुष, कि जिस अधिष्ठानके आश्रय अध्यस्तरूपसे स्थूल सूक्ष्म कारण व्यष्टि समष्टि तीनों शरीररूप प्रपंचहै, सो सर्वाधार चैतन्य परमपदहै, अतएव अध्यस्तकीपृथक्सत्ताके अभावसे सर्व चैतन्यहीहै, तातेहम ॐकारके लक्ष्य निर्विशेष सर्व्वाधिष्ठान अमात्रिक ॐकारकी इस चारमात्रारूप समात्रिक ॐकारके आलम्बनसे उपासना करतेहैं। यह ॐकारको

चारमात्रारूपसे जानके उपासना करनेवालों का मत है ४ ॥

हे सौम्य ! वशिष्ठादिक ऋषि जो ॐकारको साढ़ेचार ४॥ मात्रारूप जानके उपासना करते हैं सो इसप्रकार कहते हैं कि अकार प्रथममात्रा यहस्थूल जगत् है; अरु उकार दूसरीमात्रा यह सूक्ष्म जगत् है, अरु मकार तृतीयमात्रा सुषुप्तिहै, अरु चतुर्थमात्रा नादरूप परमशक्ति है, अरु अर्धमात्रा चैतन्यपुरुषहै, कि जिसके आश्रय चारोमात्रा सिद्धहैं अरुवो आपमात्रासे रहित अमात्रिक है, तिस लक्ष्यरूप ॐकारकी हम इस साढ़ेचार मात्रात्मक वाच्य रूप ॐकारके आलम्बनसे उपासना करते हैं । यह ॐकारकोसाढ़े चारमात्रारूप जानके उपासनाकरनेवाले उपासकोंका मत है ४॥

हे सौम्य ! कोई एक ऋषि इस ॐकारको पांचमात्रारूप विचारके भजनकरते हैं, सो ऐसा कहते हैं कि अकार अन्नमयकोश अरु उकार प्राणमयकोश, अरु मकार मनोमय कोश, अरु अर्ध मात्रा विज्ञानमयकोश, अरु विन्दुरूप आनन्दमय कोशहै। यहउक्त, पांचोमात्रा जिस चैतन्य अधिष्ठानके आश्रय अध्यस्तहैं, अरु जो इनमात्राओं से रहित पंचकोशातीत है, तिस लक्ष्यरूप ॐकारकी उक्त समात्रिक ॐकारके आलम्बनसे उपासना करते हैं । यह ॐकारको पांचमात्रारूप जानके उपासना करनेवाले उपासकों का मत है ५ । ८ ॥

हे सौम्य ! कोई एक ऋषि ॐकार को षट्मात्रारूप जानके भजते हैं, सो ऐसा कहते हैं कि, जो अकाररूप जाग्रत् जगत् है उकाररूप स्वप्न जगत् है, अरु मकाररूप सुषुप्तिहै, अरु अनहद शब्दसे आदिलेके जो वाचाहैं सो शब्दरूपा चतुर्थमात्रा है, अरु विन्दुरूप कारणप्रकृति पञ्चममात्राहै, अरु षष्ठरूप साक्षी चैतन्य आत्मा है । ऐसाहै विशेष स्वरूप जिसका अरुआप अपने स्वरूप से निर्विशेष है तिस लक्ष्यरूप ॐकारकी हम सविशेषरूप वाचक ॐकार के आलम्बन से उपासना करते हैं । यह ॐकारको षष्ठ-मात्रारूप जानके उपासना करनेवालोंका मत है ६ । ९ ॥

हे सौम्य ! कोई एक आचार्य्य ॐकारको सप्तमात्रारूप जानके भजते हैं, सो ऐसा कहते हैं कि पृथिवी, अप, तेज, वायु आकाश, यह भूतोंकी शब्दादिरूप पञ्चमात्रा पञ्चतत्त्व अरु अहंकार अरु महत्तत्त्व, यह सात मात्राहैं अरु अष्टम आप चैतन्यपुरुष है। तिसकी हम सप्तमात्रात्मक ॐकारके आलम्बन (आश्रय) से उपासना करते हैं। यह ॐकारको सप्तमात्रारूप जानके भजन करनेवाले उपासिकोंका मत है ७। १०॥

हे सौम्य ! इसप्रकार ३८, ४९, ५२, ६३, ६४, मात्रापर्य्यन्त ॐकारकी उपासना करते हैं सो आचार्य्य ऐसा कहते हैं कि यावत् स्वर व्यञ्जनादिक वर्णअक्षरहैंसोसर्व ॐकारकीमात्राहैं क्योंकिसो सर्वकारण ॐकारसे फुरी है अरु स्फुरण होती है अतएव सर्वमात्रा ॐकारकाही है, इसही से सर्व जगत् ॐकार रूपहै जिस किसी पदार्थ का नाम है सो सर्व उक्त मात्राओं के अन्तरगत है, अरु जेतने कुछ वर्णाक्षर हैं सो सर्व ॐकारकी मात्राहैं, ताते वर्णात्मक जो ॐकार अक्षर है सो सर्व नामोंके विषे ओतप्रोतहै, एतदर्थ भी ॐकार रूपही सर्व जगत् है, ॐकारही वाच्यरूप होयके इस प्रकार सर्व नामों के मध्य आदि अन्त मध्य ओत प्रोत है अरु लक्ष्यरूप जो चैतन्य आत्मा है सो अस्ति भाति प्रियरूप करके व्याप्त है ताते भी वाच्य वाचक सर्व ॐकारही हैं ॥

इति ॐकार की एक आदि मात्राओंका उपासनविचार ॥

अथ ॐकारके ॐकारादि दश नामोंका अर्थ विचार प्रारभ्यते ॥

ॐकारं प्रणवं चैव सर्वव्यापिनमेवच । अनन्तञ्च तथा तारं शुक्लं वैद्युतमेवच ॥ तूर्यं हंसं परब्रह्म इति नामानि जानते ॥ यह सार्द्ध श्लोक है ॥

हे सौम्य ! इस ॐकार ईश्वरके दश नाम मुख्य हैं सो सर्व

सार्थ, कहिये अर्थ सहित हैं, अरु जिज्ञासु करके जानने योग्य हैं, अतएव अब इसके नामों के अर्थको भी संक्षेपमात्र श्रवण करो ॥

अथ प्रथम नाम ॐकार १ ॥

हे सौम्य! प्रथम नाम ॐकार है तिसका यह अर्थ है कि जब शरीर ग्रीवा अरु शिर, इनको सम सीधेकर पद्मासन बैठ इन्द्रियों को विषयों से अरु मनको संकल्पों से रोक ह्रस्व दीर्घ प्लुत ध्वनिपूर्वक ॐकारका यथास्थानसे उच्चारण करते हैं तब चरण से लेके मस्तक पर्य्यन्त सब शरीरगत नाड़ियों को ऊँचा करता है, अथवा प्राणायामकी रीति से इसका उच्चार करता है तब प्राण ब्रह्मरंध्र ऊंचे स्थानको प्राप्त होताहै, एतदर्थ इसका नाम ॐकार है ॥ १ ॥ अथवा जो योग क्रियाकी रीतिसे प्राणायाम द्वारा स्थान विशेष में ध्वनिको साधके ॐकार का आन्तर्य उच्चारण करता है तिसके प्राण ब्रह्मरंध्रको प्राप्त होते हैं, अरु देहान्त समय उसके प्राण " तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति " इत्यादि प्रमाण से, सुषुम्ना नाड़ी द्वारा ब्रह्मरंध्रसे निकल ब्रह्मलोक को प्राप्त होताहै, अतएव इसका नाम ॐकार है ॥ २ ॥ अथवा ॐकारके दो अक्षर, कहिये मात्रा, हैं तिनका अर्थ योग क्षेम (पालन अरु रक्षा) है अर्थात् जो पुरुष इस ॐकार की उपासना करते हैं तिनकी रक्षा अरु पालन ॐकार करताहै, अर्थ यह जो उपासक को वांछित पदार्थ को प्राप्तिकरदेता है अरु प्राप्तकी रक्षा करता है, इसप्रकार अपने उपासकका योग क्षेम ॐकार करताहै । अर्थात् सकाम उपासकको संसारके भोग्यपदार्थ प्राप्तकरके पालन, अरु रक्षाकरताहै, अरु जो उसके निष्काम जिज्ञासु उपासक हैं तिनको प्राप्तहुई जो ज्ञान भूमिका तिसका पालन (वृद्धि) अरु रक्षा करताहै । अथवा अपने उपासक जिज्ञासुको जो कदापि ज्ञानभूमिका अप्राप्य है तो तिसकी प्राप्ति करदेता है अरु जो ज्ञानभूमिका प्राप्त है तो कामक्रोधादि आसुरीसम्पदा से तिसकी रक्षा करताहै, अतएव इसका नाम ॐकार है । अथवा

ॐकारका अर्थ अंगीकारभीहै, अर्थात् जो कोई ॐकारको सम्यक् प्रकार भजन करनेवाला उपासकहै तिसके कहेहुये वर शापादिक वाक्य देवता आदिक सर्वही अंगीकार करते हैं, एतदर्थ इसका नाम ॐकार है॥ ४॥ अथवा ॐकार का अर्थ ब्रह्म भी है क्योंकि जो इसकी समाहित चित्तसे सम्यक् प्रकार उपासना करते हैं तिनको अपने आप आत्मा ब्रह्म की अभेदता प्राप्त करता है, अर्थात् उस उपासकको ब्रह्म आत्मा का अभेद ज्ञान होता है, एतदर्थ भी इसको ॐकार कहते हैं॥ ५॥ यह सर्व ॐकार नामके अर्थ हैं॥ १॥

अथ द्वितीयनाम प्रणव २॥

हे सौम्य! अब ॐकार के प्रणव नामका अर्थ श्रवण करो। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वणवेद, अरु ब्रह्मा आदिक सर्व देवता ऋषि मुनि मनुष्य दैत्य आदिक जो हैं सो सर्व तीन अक्षररूपहै जो ॐकार तिसको मन वाणी शरीरकरके प्रणाम करते हैं, ताते ॐकार का नाम प्रणव है। "सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति"॥ २॥

अथ तृतीयनाम सर्वव्यापि ३॥

हे सौम्य! अब ॐकार के तृतीय सर्वव्यापि नामका अर्थ श्रवणकरो। यह जो स्थूल सूक्ष्म स्थावर जंगम कार्य कारणात्मक शरीर हैं, यावत् वेद स्मृति पुराण इतिहास शास्त्रादिक विद्याहैं, तिन सर्व विषे व्यापरहा है। अर्थात् उस सर्व विषे नाना भेद भावकरके एक विष्णु ॐकारही को वर्णन किया है, ताते इस ॐकार को सर्वव्यापि वर्णन किया है वा कहते हैं। अथवा एक ॐकारही अनेक मात्रा होयके वेदादि सर्व विद्याविषे ओत प्रोतहै, क्योंकि यावत आदि यावत् स्वर व्यंजनात्मक मात्राहैं सो सर्व ॐकारकाही विस्तारहै, ताते ॐकार सर्वव्यापि है॥ २॥ अथवा जो अक्षर आत्मा अस्ति भाति प्रियरूपहोके स्थितहै अरु सोई

ॐकारका वाच्यलक्ष्य है ताते भी ॐकार को सर्वव्यापि कहते हैं॥ ३॥ यह ॐकारके तृतीय सर्वव्यापिनामका अर्थहै॥ इति ३॥

अथ चतुर्थनाम अनन्त ४॥

हे सौम्य! अब ॐकारके चतुर्थ अनन्तनामका अर्थ श्रवणकरो जब जिज्ञासु इस ॐकारका सम्यक् प्रकार यथाविधि भजन करताहै तब तिस अपने उपासकको अपने अनन्त ब्रह्मपद विषे प्राप्तकरताहै, ताते ॐकारकानाम अनन्तहै॥ १॥ अथवा इस ॐकार ब्रह्मका देशकाल वस्तुकरके अन्तपाया ज्ञाता नहीं, क्योंकि वायु अग्नि जल पृथिवी आदिकोंकी अपेक्षा आकाशका अन्तनहीं ताते सो अनन्तहै उसहीके अन्तरगत वायु आदि तत्त्वोंका अन्त होताहै, अतएव चारों तत्त्वों की अन्तताकी अपेक्षा आकाशकी अनन्तता है, सो आकाशकी अनन्तता ॐकारके लक्ष सर्वाधिष्ठान आत्माके भरपूर अस्तित्वके ज्ञानहुये एक परमाणुमात्र भी न रहके अपने अन्तको प्राप्तहोती है, ताते ॐकारका नाम अनन्तहै॥ २॥ अथवा ॐकारके वाच्यनाम रूपात्मक जगत्काअंत विना सर्वाधिष्ठान चैतन्यआत्माके साक्षात् ज्ञानके अन्य किसी देवता दैत्य ऋषि मुनि आदिकों करके पायाजाता नहीं, एतदर्थ भी ॐकारका नाम अनन्तहै॥ ३॥ यह ॐकारके चतुर्थ अनन्त नाम का अर्थ है॥ ४॥

अथ पंचम नाम तारकाअर्थ ५॥

हे सौम्य! अब ॐकारका पंचमनाम जो तार है तसकाभी अर्थ श्रवणकरो। सर्व जे आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक, दुःखहैं, तहां काम क्रोध तृष्णा चिन्ता आदिकों के क्षोभसे जो अन्तःकरण विषे दुःख होताहै तिसकानाम आध्यात्मिक दुःखहै, अरु ज्वरादिक रोग जन्य, अथवा सर्प सिंहादिकों के भय जन्य जे दुःखहैं तिनकानाम आधिभौतिक दुःख है। अरु ग्रहादि देवताओंके कोपजन्य जे दुःखहै तिनकानाम आधिदैविक दुःखहै।

इत्यादि सर्व दुःखोंसे अपने उपासकको तारदेताहै एतदर्थ ॐकारका नाम तारहै॥ १॥ अथवा यहजो नामरूप क्रियात्मकमहा दुःखमय अपार संसार सागरहै तिसविषे जन्म जरा मरण काम क्रोध लोभ मोहादिरूप बड़ेबड़े ग्राह मकरादि, सर्वकोग्रासकरनेवाले हैं, अरु तृष्णा कामना अभिलाषा इच्छा आदिक बड़ी २ शेषलोक से ब्रह्मलोक पर्य्यन्त उछलती सर्वको अपनेविषे आकर्षणकर तृणवत् अधो ऊर्ध्वको प्राप्तकरती तरंगें हैं,तिसविषेज्ञानरूपा तारुविद्यासे रहित जे अज्ञानी जीवहैं सो पड़े मग्नहोते हैं अरु दुःखपावते हैं पुकारते रोवते हाडूबे हाडूबे शब्दकरते हैं, अरु इस संसारसागरमें मग्नहोते जीव सो देवता आदिक बड़े श्रेष्ठ पूजनीय भजनीयहैं तिनको अपनात्राण (रक्षक) समझके उनका आश्रय लेते हैं, परन्तु उनको भी उक्त सागरमें मग्नहोते सुनते अरु जानते हैं तब उनकी ओर से भी निराश निराधारहुये जन्म जन्मान्तरपर्य्यंत दुःखही पावते हैं। ऐसा जो परमदुःखमय असार अपार संसार महादुस्तर सागर, तिससागरसे अपने उपासकको यह ॐकारतार देताहै, अतएव ॐकारकानाम तारहै॥२॥ अर्थात् ऋगादि सर्व वेदोंकरके यहॐकारही तारक प्रख्यातप्रतिपाद्यहै, ताते जिन वर्णत्रयी के मनुष्यों को संस्कारपूर्वक वेदाध्ययनका अधिकारहै तिनको संसारदुःखकी सकारण निवृत्तिके अर्थ सर्वोत्तम तारक ॐकारकी यथाशास्त्रविधि उपासनाकरना योग्य है। अरु जे वर्णत्रयीसे इतर वेदाध्ययनादिकके अनधिकारी पुरुष हैं तिनको अपनेकल्याणार्थयथाविधि पुराणोक्त रामनामादि तारक की उपासना कर्त्तव्ययोग्य है क्योंकि उनका कल्याण उन्हीसे है "स्वधर्मे विगुणश्रेयो" यह ॐकारकेपंचमतारनामकाअर्थ है॥ ५॥

अथ षष्ठः नाम शुक्ल का अर्थ ६॥

हे सौम्य! अब ॐकारके शुक्ल नामका अर्थश्रवण करो। वर्णकरके जो शुक्लहोय कहिये शुद्ध होय,सो कहिये शुक्ल। अर्थात् जो

सर्व मलसे रहित निर्मल शुद्ध होवे तिसका नाम शुक्र कहते हैं तहां सर्वमलोंका कारण अविद्या है तिसअविद्यारूप महामलसे रहित सदाशुद्धएक ॐकारही है एतदर्थ ॐकारकानाम शुक्र है। "शुद्धमपापविद्धम्"। "तदेवशुक्रंतद्ब्रह्मतदेवामृतमुच्यते" इत्यादि अनेक श्रुतियों के प्रमाणसे॥१॥अथवा ॐकार अपने उपासकको शुद्ध अपने लक्ष्य आत्मपद विषे प्राप्तकरता है ताते ॐकार का नामशुक्रहै॥२॥अथवा तीनप्रकारकेजे कायिक वाचिक मानसिक पापहैं तिनको नाशकरके अपने उपासकको शुद्ध करताहै एतदर्थ ॐकारकानामशुक्रहै॥३॥अथवा तीनप्रकारके जे कर्मरूप पाप हैं तिन पापोंसे अपने भक्तोंको शुद्ध करता है ताते ॐकार का नाम शुक्रहै॥४॥हेसौम्य! अब इनतीनप्रकारके कर्मरूप पापोंको श्रवणकरो। प्रथम एक क्रियमाण कर्म्महै, दूसरा संचित कर्म है, तीसरा प्रारब्धकर्म्महै। सो यह तीनप्रकारके कर्म्मरूप पाप तर्कसमें बाणवत् अन्तःकरणरूप तर्कसविषे रहते हैं। सो कैसा है अन्तःकरणरूप तर्कस जो साक्षी आत्माके आभास वा प्रतिबिम्ब करके युक्त है, अरु अविद्याका कार्य होने से अज्ञान अंश करकेभीयुक्तहै,तिसअन्तःकरणरूप तर्कसविषेतीनोंप्रकारकेकर्म्म रूप बाणरहते हैं, अरु स्वतः अन्तःकरणजड़है ताते विना चैतन्याभास अरु अज्ञानके कर्मधारने में समर्थ नहीं, जब अन्तःकरण चैतन्याभास अरुअज्ञानकरकेयुक्तहोताहै तबही कर्म्मोंकोधारनेविषे समर्थ होताहै॥ हे सौम्य!अबअन्तःकरणका स्वरूप श्रवणकरोजो क्याहै। अरु अज्ञान क्याहै, अरु चैतन्यक्याहै, अरु सो कर्म्मों को धारता कैसे है, सो सर्वश्रवणकरो। जैसे मृत्तिका, अरु जल, अरु आकाश, यहतीनों मिलते हैं तबघट उत्पन्नहोय पदार्थों को धारता है तहां न तो केवल मृत्तिकाही पदार्थ को धारसकी है न केवल जलही पदार्थ को धारसक्ता है, अरु न केवल आकाशही पदार्थ को धारसक्ता है, जब मृत्तिका जल अरु आकाश तीनों मिलतेहैं तब घटरूपहोय पदार्थको धारते हैं, तैसेही सत्त्वगुणरूप

मृत्तिका अरु अज्ञानरूप जल अरु चैतन्यरूप आकाश यह तीनों मिलते हैं तब अविद्याके सत्त्वगुण भागका परिणाम अन्तःकरण होय तीनों प्रकारके कर्मोंको धारता है सोभी प्राणरूप सूत्रके आश्रय धारता है। ऐसा जो अन्तःकरणरूप तर्कस है तिसविषे कर्मरूप बाण रहते हैं, अथवा अन्तःकरणरूप मन्दिरहै तिसविषे तीनोंप्रकारके कर्मरूप अन्नकेदाने भरेहुये हैं, तहाँ व्यतीतहुये जे अनेकजन्म तिनके कर्मों के सूक्ष्म संस्कार जे अन्तःकरण विषे संचित हैं तिनका नाम संचित कर्म्म है तिन कर्मोंमेंसे जो कर्मोंको अपना फल सुख दुःखादि भोगावना है अरु जिन कर्मों ने यह शरीर रचाहै तिनकानाम प्रारब्धकर्म्म है। अरुजो वर्तमान शरीरकरके अहंकारपूर्वककर्म कियेजाते हैं तिनकानाम क्रियमाण कर्म है। अरु सो क्रियमाण कर्म्मही तीनसंज्ञाको प्राप्तहुआ है। तहाँ कर्म्मकरने के समय उसको क्रियमाण कहते हैं, अरु करने केपश्चात् उसही कर्म्मकी संचितसंज्ञा होतीहै। अरु जब उसके फलभोग का समय आवताहै तब उस कर्म्मकी प्रारब्धसंज्ञा होती है। जैसे एकहीकाल भूतभविष्यत् अरु वर्त्तमान तीनसंज्ञाकोप्राप्त हुआहै, तैसेही एक क्रियमाण कर्म्म क्रियमाण संचित अरु प्रारब्ध, इन तीनसंज्ञाको प्राप्तहुआ है। तिसविषे जे प्रारब्धकर्म्म हैं तिसकाफल, जाति, आयुष्य, अरुभोग, इन तीनरूपसे प्राप्तहोता है। तहां जाति कहिये, देव दैत्य मनुष्य पशु पक्षी वृक्षआदिक तिनविषेभी, उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ, अरु अधम, सो सर्वजीवों को अपने अपने प्रारब्धका फलहै। अरु आयुष्य जोहै सो लव निमेषादिकों से लेके पराख्य ब्रह्मा के आयुपर्यन्त न्यूनाधिक्य सो सर्व प्रारब्ध कर्मके फल हैं। अरु भोग जोहैं नानाप्रकारके स्वर्ग नरकादिकों के उत्तम मध्यम निकृष्टरूप सुख दुःख सो सर्व प्रारब्धका फलहैं सोअवश्यमेव देहधारियोंको भोक्तव्यहैं। हे सौम्य! यह प्रारब्ध भोग, साधारण, अरु असाधारण, उभय प्रकार के भी चिन्तनीय हैं, तहां जैसे ज्वरादिक रोग हैं सो भी प्रारब्धकर्म

का फलहै परन्तु तिनकी ओषधी आदिक यत्न करनेसे निवृत्ति होती है सो साधारण है, अरु जिन रोगादिकोंकी प्रयत्न करनेसे भी निवृत्ति होती नहीं सो असाधारण कहिये असाध्य जानना। अरु यह तीनोंप्रकारके प्रारब्ध कर्म के फल भोग भोगनेहीसे निवृत्तहोतेहैं अन्य किसीप्रकारसे भी इनकी निवृत्ति होती नहीं। अरु संचित क्रियमाण, यहदोनों कर्म ज्ञानवान्के ज्ञानाग्निकरके नष्ट होजातेहैं। अरुप्रारब्धकर्म्म देहकेआश्रयरहताहै सो अपनाफलदेके नष्टहोताहै मध्यमें मिटतानहीं। जैसेकिसी शस्त्रधारीके तर्कसविषे जोबाण होताहै तिसको अरु जो बाण चलावनेकेलिये हाथमें धारणकियाहै तिसकोनाशकरनेको वोशस्त्रधारी समर्थहोताहै, अरु जोबाण उसकेधनुषसे चलचुकाहै तिसको नाशकरनेमें वो समर्थ होता नहीं वोबाण जो धनुषसे चलचुका है सोजब अपने वेगसे रहितहोताहै तब गिरपड़ताहै पुनः आगे चलतानहीं, तैसेही तर्कसके बाणोंवत् संचित कर्म्म हैं, अरुहाथके बाणवत् क्रियमाण कर्म्महैं, सो यह संचित अरु क्रियमाण दोनों कर्म्म आत्मज्ञानकी प्राप्तिहुये नाशहोजातेहैं। अरु जो तीसरा प्रारब्धकर्म्म है सोधनुषसे चलेहुये बाणवत्है, सो ज्ञानप्राप्तहुयेभी रहताहै वोजब अपने भोगदातव्यरूप वेग से रहित होताहै तब अपने आश्रय शरीरसहितगिरपड़ताहै पुनः आगेको चलता नहीं। अर्थात् ज्ञानवान्का प्रारब्ध जब अपना भोग देचुकता है तब सशरीर के नष्ट होजाता है तब उस विद्वान् को पुनः जन्मके आरंभक कोई भी कर्म्म अवशेष रहते नहीं, क्योंकि जब वो आचार्य से तत्त्वमस्यादि महावाक्यों को श्रवण करता है तब अपने आप जो जानता है कि मैं अविद्यात्मक स्थूल सूक्ष्म कारण इन तीनों शरीरों से रहित अशरीरी आत्मा हों ताते अजन्मा अक्रिय हों, अतएव मेरे साथ शरीर अरु तदाश्रित कर्म कोई नहीं, मैं इतने काल से अपने अज्ञानरूप पिशाच के वश हुआ अपने को कर्त्ता भोक्ता सुखी दुःखी मानता रहा, परन्तु अब श्रुति अरु आचार्य्य की कृपा

से मेरा उक्त पिशाच निवृत्त हुआ तथा जानो जो मैं तो सर्व शरीरादि उपाधिसे रहित निर्विकार निराकार निःक्रिय असंग आत्मा हौं मैं कर्त्ता भोक्ता नहीं, अतएव न मैं पूर्व कर्त्ता रहा न मुझको आगे को कुछ कर्त्तव्य है, मैंतो सर्वदा अकर्त्ता अभोक्ता एकरस चैतन्य आत्मा हौं। इसप्रकार विद्वान् को अपने आप आत्मस्वरूप का साक्षात् सम्यक् ज्ञान होनेसे, तिसही ज्ञानरूप अग्निद्वारा संचितकर्म्म जो तर्कसके वाणवत् हैं सर्व भस्म होते हैं। तथाच "क्षीयन्तेचास्यकर्माणि" "ज्ञानाऽग्निदग्धकर्माणि" इत्यादि श्रुतिस्मृतियों के प्रमाणसे। अरु सम्यक् आत्मज्ञानहोने के उत्तर कुछभी कर्त्तव्य अवशेष रहतानहीं, क्योंकि कर्मके हेतु कामना का उसविषे अत्यन्ताभाव है। अरु अवशेष रहा जो प्रारब्धकर्म्म सो अपना भोग देके नष्ट होता है, अरु तिस प्रारब्धके भोगकालमें भी वो विद्वान् प्रारब्ध का भोक्ता नहीं क्योंकि आत्मा अभोक्ता है। ताते प्रारब्ध के सुख दुःखादि भोगों का भोक्ता साभास लिंगशरीर जीवात्मा है, अरु स्थूलशरीर भोगालय है, अरु इन दोनों का कारण अविद्या है। अरु मैंतो इन सर्व से पृथक् इन सर्व का प्रकाशक साक्षी हौं हे सौम्य! इसप्रकार अपनेआप अकर्त्ता अभोक्ता सत्यस्वरूप आत्माको यथार्थ अनुभव करके ज्ञानवान् संचितादि सर्व कर्म से अरु तिनके फल सुख दुःखादिकों से रहित सर्वदा अकर्त्ता अभोक्ता ज्यों का त्यों है। अरु यावत लोक दृष्टया ज्ञानी का देह भासता है तावत् प्रारब्ध भी मानना है वा यावत् प्रारब्ध भासता है तावत तदाश्रित शरीर भी मानना है, तथापि ज्ञानी के स्वरूप में देह अरु प्रारब्ध अरु तदाश्रित सुख दुःखादि भोग इत्यादि कुछभी नहीं। अतएव ज्ञानवान का प्रारब्ध कर्म अपना फल देके समाप्त हुआ पुनः शरीरारंभ का कारण होता नहीं क्योंकि उसका संचितकर्म जो प्रारब्धरूप के फलकी प्रवृत्तिका हेतु है सो ज्ञानाग्नि करके नाशको प्राप्त होताहै ताते। अरु अज्ञानीका एक शरीरका आरंभक अरु उन शरीरकेर...

अपने फल सुख दुःखादिकों का भोगावनेवाला प्रारब्ध कर्म अपना फल देके समाप्त होनेपर अवरता है तबही उसके संचित कर्मोंमें से जो कर्म्म अपना फल देनेको सम्मुख होतेहैं तब वो प्रारब्धरूप से पुनः शरीरके आरंभक अरु सुख दुःखके भोगावने वाले अरु अपने अनुसार कर्मों के करावनेवाले होते हैं, ताते अज्ञानी को क्रियमाण अरु क्रियमाण से संचित अरु संचित से पुनः प्रारब्ध, प्रारब्ध से पुनः क्रियमाण, इसप्रकार घटी यन्त्रवत् कर्मचक्र भ्रमावताही रहताहै उसके कर्मबिना सम्यक् ज्ञान के हुये अन्य किसीप्रकार से भी अभाव होते नहीं॥ हे प्रियदर्शन! प्रारब्ध भोग जो ज्ञानी अरु अज्ञानी के विषे तुल्य हैं सोभी तीन प्रकारके हैं; तहां एक इच्छितरूप है, दूसरा अनिच्छितरूप है, तीसरा परेच्छितरूपहै। सो यह तीनप्रकारके प्रारब्धके अनुसार तिनके फलक्रिया भोग सर्व जीवोंको प्राप्तहोतेहैं। सो तीनोंप्रकार की प्रारब्ध क्रिया भोग श्रीकृष्ण परमात्माने गीताविषे निरूपण कियाहै सो ज्ञानी अज्ञानी दोनोंको तुल्यहै, परन्तु अज्ञानीको साभिमानहै ताते बन्धनका कारणहै, अरु ज्ञानवान् निरभिमान है ताते उसको बन्धन का कारण है नहीं। अब तीनों प्रकार की प्रारब्ध क्रिया भोग, देखावतेहैं। तथाच। भगवानुवाच। "सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि, प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति।" अर्थ। भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! अपने प्रारब्ध कर्म्मके अनुसार सर्व प्राणी चेष्टा करते हैं, अर्थात् ज्ञानवान् भी अरु अज्ञानी भी सर्व अपने २ पूर्व कर्म्म संस्कारों के आश्रय चेष्टा करतेहैं, अरु उसही स्वभाव (प्रकृति) को प्राप्त होते हैं तब पुनः निग्रह किसका करिये। अर्थात् पूर्व शरीरों से किये जे कर्म्म सो संस्कार रूपसे अन्तःकरणविषे स्थितहैं, तिन संस्कारों का जो प्रबुद्ध होना (जागना) है, तिसही के आश्रय ज्ञानी अरु अज्ञानी सर्व चेष्टा करते हैं तब उनका निग्रह क्यों करिये। यह तो इच्छापूर्वक क्रिया भोग हैं, क्योंकि पूर्व जन्मों

के क्रिये जे इच्छापूर्वक शुभाशुभ कर्म्म सो संस्कारररूपसे अन्तः करणं में स्थित होय इन शरीरोंको अपनेआश्रय वर्त्तावे हैं, एतदर्थ इस स्वाभाविक चेष्टाका नाम इच्छापूर्वक चेष्टा है, अर्थात् इच्छित प्रारब्ध क्रिया भोग है ॥ हे सौम्य! अब अनिच्छित को भी श्रवणकरो पूर्व अर्जुन ने श्रीकृष्णपरमात्माप्रति प्रश्नकिया है कि "अथ केन प्रयुक्तोयं पापंचरति पूरुषः, अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादपिनियोजितः" हे भगवन्! उत्तम पुण्यरूप क्रिया करने की इच्छा सबको होतीहै, सुखप्राप्तिवास्ते, पापकर्म की इच्छा कोई भी करता नहीं, दुःख की अप्राप्तिवास्ते, तथापि जिस पापकर्म्म की इसको इच्छा नहीं तिसही पाप कर्मों में प्रवृत्त होते हैं सो किसकी प्रेरणासे होते हैं, जैसे राजाकी प्रेरणासे, विनाही अपनी इच्छाके भृत्य युद्धरूप कर्म करताहै कि जिस क्रिया में मरण पर्यन्त का भयहै, तैसेही यह पुरुष जो विना अपनी इच्छाके पापरूप कर्म, कि जिसमें परिणाम नरकादिकों का भय है, करताहै सो किसकी प्रेरणासे करता है, यह आप कृपाकर मुझसे कहिये ॥ हे सौम्य! इसप्रकार जब अर्जुन ने प्रश्नकिया तब श्रीकृष्ण भगवान् ने उत्तर कहा कि "कामएषः क्रोधएषः रजोगुण समुद्भवः, महाशनोमहापाप्मा विद्धेनामिह वैरिणम्" हे अर्जुन! यह जो काम अरु क्रोध है सो रजोगुण से उपजे हैं अरु बड़े भोजन के करनेवाले पापात्मा हैं, अरु जिज्ञासु के नित्यही वैरी हैं। तिनकी प्रेरणासे यह जीव अनिच्छित भी पापकर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं। अर्थात् यह जो कामना है सोई अपनी अपूर्णतासे क्रोधरूप परिणाम को पावती है, क्योंकि जब कोई किसी पदार्थ की कामना से किसी क्रियामें प्रवर्त्त होताहै, तिस क्रियामें जब कोई द्वेषी पुरुष विघ्नकरता है तब वोही कामना जो पूर्व रजोगुणात्मकरही सो क्रोधरूप से तमोगुणात्मक परिणामको प्राप्तहोती है, सो विवेक शून्य पापात्मा है, अरु कामना भोगोंकरके तृप्तहोती नहीं, आहुतिसे अग्निवत्, अतएव सो

महाशना है अरु जिज्ञासुकी तो यह नित्यही वैरी है॥ हे सौम्य! इसही कारणसे श्रीकृष्णपरमात्मा ने कहा है कि "। जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपंदुरासदम्" । हे अर्जुन! इस कामरूप बलवान् शत्रुको जयकरो, तिस विना कल्याण नहीं ॥ अरु पूर्व जन्मों के जे रजोगुणात्मक कर्मोंके समूह सो सूक्ष्म संस्कार रूपसे अन्तःकरण बिषे स्थित हैं, सो जब अपना फल देने को सम्मुख होते हैं तब प्रारब्धरूप भावको प्राप्तहोय कामना रूप से प्रवुद्ध होते (जागते) हैं, तब तिसके वशहुआ जीव अनिच्छित भी पाप कर्म्मों में प्रवृत्त होता है, सो क्रिया अरु तिसका फल भोग, सो सर्व अनिच्छित क्रिया भोग है। ताते इस को अनिच्छित क्रिया भोगकहते हैं ॥ अब परइच्छित प्रारब्धको श्रवणकरो। हे सौम्य! श्रीकृष्ण भगवान्ने कहा है कि, हे अर्जुन! अपने पूर्वकर्म्मों के संस्कारजन्य प्रकृति 'कहिये स्वभाव' तिसके वश हुआ जो तू सो अपने अज्ञानभ्रम करके भ्रमाहुआ अपना धर्मरूप जे युद्ध-कर्म सो नहीं भी करता, तथापि परवश हुआ युद्ध कर्म्म करेहीगा, इसबिषे संशय कुछ नहीं, ताते यह जो तेरी युद्धरूप क्रिया है अरु तिसका जो परिणाम फलभोग है सो दोनों पर इच्छित है। अरु कामना अरु क्रिया यह परस्पर ओत प्रोत हैं, क्योंकि कामनाविना क्रिया होवे नहीं, अरु क्रियाहै सो कामना को लखावती है, अरु यह दोनों अविद्या के आश्रय है, अरु सो अविद्या अनादि होनेसे तदाश्रित काम क्रिया भी अनादि है, तथापि सर्व्वाधिष्ठान आत्मसत्ता के साक्षात् ज्ञानसे अविद्या अरु तदाश्रित सर्व काम कर्म्मादिकों का अभाव होता है, ताते अविद्या अरु तिसका कार्य समस्त नामरूप क्रियात्मक जगत् असत्य है। अरु अज्ञानावस्था पर्यंत जे अनादि-कालसे अनेक-जन्मों के काम कर्म्मादिकों के संस्कार सो जब अपना फल भोगदेने के अर्थ सम्मुख होते हैं। तब वोही संचित से प्रारब्ध संज्ञाको प्राप्तहोय 'इच्छित' अनिच्छित, अरु परेच्छित, इन तीनप्रकार

से प्रवृत्त होते हैं, तातें प्रारब्ध क्रिया भोग तीनप्रकार के हैं ॥

हे सौम्य! तुम्हारी दृढ़ता के अर्थ पुनः कहते हैं तिसको भी श्रवण करो, तहां प्रथम इच्छारूप क्रियाभोग श्रवण करो 'जैसे कोई एकरोगी पुरुषहै तिसको औषधकर्त्ता वैद्यने आज्ञाकियाकि तू कुपथ्य भोजन मतकरियो जो करेगा तो दुःख भोगेगा, सो यह आज्ञा वैद्यकी श्रवण करके भी वो रोगी पुरुष कुपथ्य की इच्छाकर पुनः सोई भोजनकरके दुःख भोगता है। सो कुपथ्य भोजनरूप क्रियाको वैद्यद्वारा क्लेशदायक जानके भी पुनः सोई कुपथ्य भोजन करना अरु दुःख भोगना, सो यहक्रिया अरु भोग दोनों स्वइच्छित प्रारब्ध है। तैसे चौर्यादि निषिद्ध कर्मोंके ताडनादि दुःखरूप फलको जानके भी तिस चौर्यादि कर्ममें प्रवृत्त होना अरु तिसके फल ताड़नादि दुःखोंको भोगना, सो यह सर्व क्रिया भोग स्वइच्छित प्रारब्धहै ॥ अब अनिच्छित कोभी श्रवण करो, हे सौम्य! जैसे कोई एकपुरुष किसी ग्रामको जाता है सो उसग्रामके मार्गपर चलते २ उसमार्ग को भूलके अन्यग्राम के मार्गपर चलने लगा तब उसमार्गविषे उसको कंटकादि चुभने से अति दुःखहुआ वा किसी उत्तम पदार्थ की प्राप्तिसे उनको हर्षहुआ 'सो उस पुरुषकी उसमार्ग में' कि जिसपर भूलके चलता है, गमनकिया, अरु दुःख सुखकाभोग सो उस पुरुषको अनिच्छित क्रिया भोग है, क्योंकि उस पुरुषको उस मार्ग पर चलने की वा तिस मार्गजन्य सुख दुःख भोगनेकी पूर्व से इच्छा नहीं॥हे सौम्य! अब परेच्छितकोभी श्रवणकरो, हे प्रियदर्शन! कोई एक निर्धनपुरुष अपने किसी प्रयोजनार्थ कहींको जातारहा किंवा कहीं बैठारहा तिसको अकस्मात् किसीराजकीय बलवान् पुरुषने अपने बन्धनमें कर अपना जो कुछ सामान(भार)था सो बलात्कार से उसके मस्तकपर धरके उसको ताड़नासहित अपने अनुकूल मार्गपर चलावनेलगा। सो उसनिर्धन मनुष्यका उस राजकीय मनुष्यके वशहोय उसकेभारको उठावना उसके अनुकूल मार्गपर

चलना, अरु उसकी की हुई ताड़नाके क्लेशको भोगना, सो सर्वक्रिया भोग उसको परेच्छित है ॥ हे सौम्य! अब इसपर वृद्धोंकी साक्ष्य श्रवणकरो जैसे अपनी सत्यवती माता के वश हुये व्यासदेवजीने राजापांडु, धृतराष्ट्र, अरु विदुर इनकी माताकेसाथ उनके संतानार्थ विषय भोग किया सो व्यासदेवजी ने अपनी इच्छा पूर्वक नहीं किया किन्तु केवल अपनी माताकी आज्ञाकेवश होय के किया सो उनका परेच्छित प्रारब्ध क्रिया भोगहै ॥ हे सौम्य! एकप्रारब्ध के तीन प्रकारके क्रियाभोग भेद तुमसेकहा, सो सर्वको समान भोक्तव्यहैं क्योंकि प्रारब्धकर्म विना भोगे अन्य किसीप्रकार से भी अभाव होतेनहीं। तिन तीनोंमेंसे आत्मज्ञानीको, इच्छित अरु अनिच्छित दोप्रकारकी प्रारब्धक्रिया भोग अभाव होजातेहैं। क्योंकि उस ज्ञानवान्को सर्वात्म भाव उदयहुआ है, तब वो इच्छा अनिच्छा कौनकीकरे, क्योंकि "यत्रद्वैतमिवभवति तदितर इतरम्पश्यति" इत्यादि प्रमाणसे इच्छा अनिच्छा द्वैतभाव प्रिय अप्रिय वस्तुविषे होतीहै, अरु द्वैतभाव अविद्याके आश्रयहोता है, सो द्वैतभावका आश्रय अविद्या ज्ञानवान्की अभाव होतीहै ताते ज्ञानी विषे इच्छा अनिच्छाका भी अभावहै। अरु एकलोक दृष्ट्या शरीरयात्रामात्र जो ज्ञानीविषे भोजनादि क्रिया भासतीहै सोपरेच्छित है, क्योंकि जो किसीने कुछ भोजन करायदिया तो करलिया वा किसीने वस्त्र ओढ़ाया तो ओढ़लिया, अरु जोकोई तर्ककरे कि उस ज्ञानीके मुखमें ग्रास किसी अन्यने देदिया परन्तु उसको चबायके कंठके नीचे उदरमें उतारना यहजो क्रिया है सो तो ज्ञानवान् विषे स्वइच्छित होनेमें उसको बन्धनका हेतु होगी; सो कहनाबने नहीं क्योंकि ज्ञानवान्के विषे जो शरीरकी स्थितिमात्रके अर्थ भोजन शौचादिक क्रियाहै सो निराभिमानता से होनेकरके बंधनका कारण होवेनहीं। तथाच "शारीरंकेवलं कर्म्मकुर्वन्नाप्नोतिकिल्बिषम्"। "लिप्यतेनसपापेभ्योपद्मपत्रमिवाम्भसि"। "नलिप्यते कर्म्मणा पापकेनेति" इत्यादि प्रमाणों से

अरुवास्तव करके ज्ञानीके स्वरूपमें सो प्रेरच्छितभी नहीं क्योंकि उसकी दृष्टिमें सर्व्वात्मभाव होनेसे स्वपरका भेदनहीं; उसको तो सर्व भेद भावसे रहित एक अपना आप आत्माहीं भासताहै "सर्व्वं खल्विदं ब्रह्म" "ब्रह्मैवेदं सर्व्वं" "आत्मैवेदंसर्वम्" "पुरुषएवेदंसर्व्वम्" "नेह नानास्ति किञ्चन" इत्यादि श्रुतियों के प्रमाणसे एक अद्वितीय आत्माही है, इतर रंचकमात्रभी नहीं। ताते ज्ञानीके विषे संचित, क्रियमाण, अरु प्रारब्ध, तीनों प्रकारके कर्मोंका अभावहै। अरु जो लोकदृष्ट्या ज्ञानीविषेक्रिया भोग प्रत्यक्षदेखते हैं सो देहकेआश्रय इच्छा अनिच्छासेरहित साधारण आभासमात्रहै क्योंकि देहकाहोना प्रारब्धकर्म्म संस्कारके आश्रयहै ताते ज्ञानीका यावत्देहहै तावत्प्रारब्धहै यावत्प्रारब्धहै तावत् देहहै, इसप्रकार देह अरु प्रारब्धका व्यापार अन्योन्याश्रय है, एतदर्थ यावत् ज्ञानी का देहहै तावत् देह सम्बन्धसे ज्ञानीके विषे प्रारब्ध, क्रिया भोग भासतेहैं सो ज्ञानी के स्वरूप विषे उपाधिकृत आभासमात्र मिथ्या है ज्ञानी के स्वरूप में प्रारब्ध क्रिया भोग नहीं। ताते प्रणवोपासक ज्ञानवान्के संचित, आगामी, प्रारब्ध तीनों कर्मोंका अभावहोता है अर्थात् ॐकारके उपासक मुमुक्षु को तीनों प्रकारके कर्म्मरूप पापों से ॐकार शुद्धकरता है ताते ॐकार का नाम शुक्र है॥ हे सोम्य! अब और श्रवण करो, यह संचितादि तीनप्रकारके जे कर्म्म हैं सो देहाभिमानी अज्ञानी को सत्य हैं, अरु ज्ञानवानके तीनों कर्म्म अभाव होजातेहैं, तहां संचितकर्म तो ज्ञान होनेही ज्ञानाग्नि करके नष्टहोजाते हैं, ताते उनको आगे पुनर्जन्म का अभाव होता है, जैसे कोई पुरुष अपने अन्न करके भरेहुये मन्दिर को भस्म करदे तब वो अग्नि करके दग्धहुये अन्नके दाने अपने अंकुर उपजावने को समर्थ होतेनहीं। तैसेही ज्ञानवान्का अन्तःकरणरूप मन्दिर संचितकर्मरूप अन्नके दानेसहित ज्ञानाग्निकरके दग्धहोजाताहै सो पुनः शरीररूप अंकुर उपजावनेको समर्थ होतानहीं। सोअन्तः

करणका अभाव इसप्रकारहोताहै, जो ज्ञानवान्का चित्तसत्पदको प्राप्तहोताहै । हे सौम्य ! जिसकरके असम्यक्ज्ञान दर्शनहोय, अर्थात् सत्यरूप आत्माविषे असत्य बुद्धिहोय, अरु असत्य देहादिकों बिषे सत्यात्म बुद्धिहोय तिसका नाम असम्यक् ज्ञानदर्शन मन है, अरु अज्ञान, जीव, है। अरु जब आचार्य्यके उपदेशद्वारा सत्य आत्मानुभव विज्ञान होता है तब अज्ञानरूप जीव, मन, भाव नष्टहोजाताहै, तब केवल शुद्ध आत्मपद ज्योंकात्यों शेषरहताहै, तिसको चित्सत् कहते हैं। इसप्रकार जब चित्सत् पदको प्राप्त होताहै, तब अन्तःकरण जो है मनभाव सो सञ्चित कर्म्मोंसहित अग्निके मन्दिरवत्, नष्टहोजाता है तब पुनः सो देह उपजावने को समर्थ होतानहीं ॥ अरु जो क्रियमाण कर्महैं सो ज्ञानीके बिषे उपजतेही नहीं, क्योंकि क्रियमाण कर्म्म जो उपजते हैं सो अज्ञानके आश्रय अन्तःकरण बिषे उपजतेहैं, सो अन्तःकरण ज्ञानवान्का सहित अज्ञान के नष्ट होता है, ताते वा ज्ञानवान् सदा अक्रिय आत्मपदविषे प्राप्तहुआहै ताते, उसविषे क्रियमाण (आगामी) कर्म्म उपजतेनहीं। अरु ज्ञानीकी जीवन्मुक्त अवस्था बिषे जो देह क्रिया दिखतीहै, सो देहके प्रारब्धसे है सो सर्वको समान होती है, परन्तु सोई क्रिया जब अनात्म अहंकार पूर्वक होती है तब क्रियमाणभावको प्राप्तहोय पुनः सञ्चित संज्ञाकोपाय अपना फल जे सुख दुःखादिक सो प्रारब्धरूपसे भोगावे है, अरु नानाप्रकारके देव मनुष्य पशु तिर्यगादि उत्तम मध्यम निकृष्ट अधमादि देहोंको उपजावेहै। ताते देहाभिमानी अज्ञानीको उसकी साभिमानक्रिया जन्मदायक होतीहै । अरु वोहीक्रिया जो पूर्वसंस्कार से प्रारब्धवशात् देहविषे दीखती है सो जब अहंकार पूर्वक नहीं होती तब वो क्रियमाण संज्ञाको न प्राप्तहोनेसे संचित अरु प्रारब्ध इ भावको भी प्राप्तहोती नहीं क्योंकि क्रियाबन्धनका मूल अनात्म अभिमानही है, सो जिसका अज्ञान कारण सहित अभावहुआहै, तिसकी जो वर्तमान शरीरविषे क्रिया है सो, क्रिय-

माण, संचित, अरु प्रारब्ध, इन संज्ञाको प्राप्तहोय पुनःजन्मका कारण होतीनहीं। अरु देहकरके जो क्रिया होती है सो पूर्वजन्म के केवल प्रारब्ध संस्कारसे होती है "पूर्वसंस्कारवातेन चेष्टते शुष्कपर्णवत्" सो प्रारब्ध देहके साथहै सो देहके साथही नाशवान् होनहारहै। क्योंकि प्रारब्धके अभावसे देहका अभाव अरु देहके अभावसे प्रारब्धका अभाव यह अन्योन्य अनुमान सिद्धहै अरु प्रारब्ध अरु शरीर अन्योन्याश्रय दोषयुक्त होने से दोनोंही असत्य हैं। अतएव हे सौम्य! ज्ञानवान् को क्रियमाण कर्मनहीं, क्यों जो ज्ञानवान् सर्व अनात्म अभिमानसे रहित अक्रिय आत्मपदको प्राप्तहुआ है, एतदर्थ ज्ञानवान्के शरीरकी क्रिया क्रियमाणभावको प्राप्तहोती नहीं॥ जैसे भोजनरूप जो क्रिया है सो मानो पूर्व संस्कारजन्यप्रारब्ध जन्य क्रियाहै, सो क्रिया जब होती है तब वो नीरोगीपुरुषके देहविषे पुष्टिरूप क्रियमाण संज्ञाको प्राप्त होतीहै, अरु वोही प्रारब्धजन्य भोजनक्रिया सरोगी पुरुषके देह विषे पुष्टिरूप क्रियमाण संज्ञाको प्राप्तहोती नहीं। तैसेही जिज्ञासुपुरुष जब साक्षात् आत्मज्ञानरूप रोगकरके युक्तहोता है तब उसके शरीरविषे प्रारब्ध जन्य क्रिया भोगदृष्ट आवतेहैं, तथापि वो क्रिया क्रियमाणतारूप पुष्टताको प्राप्तहोती नहीं अरु जिस पुरुषको साक्षात् आत्मज्ञानरूप रोगनहीं ऐसा जो नीरोगी अज्ञानी है तिसको प्रारब्धरूप क्रियासे क्रियमाण क्रिया उपजती है नीरोगीके भोजनवत्, यह वैधर्मीदृष्टान्त जानना, । अतएव हे सौम्य! उक्तप्रकार ज्ञानीपुरुष विषे संचित अरु क्रियमाण ये दोनों क्रियानहीं, अरु जो पूर्वक कर्मसंस्कारों से प्रारब्धजन्य क्रिया है सो क्रियमाणवत् भासती है परन्तु वास्तवकरके ज्ञानवान्के स्वरूपविषे सोभी नहीं देह के आश्रय प्रतीत होती है सो ज्ञानवान् अरु अज्ञानी दोनों को तुल्य है, परन्तु अज्ञानी तो तिसविषे अहंकारपूर्वक रागद्वेष सहित अपनेआप को अज्ञानवश हुआकर्त्ता भोक्ता माने है, ताते उसकी क्रिया, क्रियमाण, संचित, अरु प्रारब्ध,

इन तीनों संज्ञा को प्राप्त होय पुनः शरीरोत्पत्ति अरु सुख दुःख रूप भोगका कारण होती है। अरु ज्ञानवान् की शरीरक्रिया पूर्व के प्रारब्धवशात् होती है, परन्तु तिसविषे ज्ञानवान् को अहंकार रागद्वेष कर्त्ता भोक्ताबुद्धि नहीं, ताते ज्ञानवान् की क्रिया पुनर्जन्म अरु सुखदुःखरूप भोगोंका कारण होती नहीं। ताते हे प्रियदर्शन! ॐकार के उपासक ज्ञानवान् के संचित, क्रियमाण, अरु प्रारब्ध, तीनों कर्म नाशकरके उसको उसका उपास्य ॐकार अपने लक्ष्य सदा शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव अक्रिय आत्मपदविषे प्राप्तकरता है, अतएव ॐकार का नाम शुक्र है॥ अथवा स्थूल सूक्ष्म कारण, तीनों शरीरों का अभिमानरूप पाप है तिसको भी नाशकरके अपने उपासकको शुद्धकरताहै एतदर्थ भी ॐकारका नाम शुक्रहै॥ अथवा तीन जे त्रिपुटियां, ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, ध्याता ध्यान ध्येय, कर्त्ता कर्म क्रिया, इत्यादिक हैं, तिन अज्ञान जन्य त्रिपुटियोंको नाशकरके अपने उपासकको ॐकार शुद्ध करताहै ताते ॐकारका नाम शुक्र है॥ अथवा अज्ञान अनात्मा देहादिकोंके आश्रय जे बंधनका हेतु वर्णाश्रमका अभिमान अरुतिस के आश्रय कर्तृत्व भोक्तृत्व का अभिनिवेश, तिन रूपसर्व पापोंसे अपने उपासक को मुक्त शुद्धकरके ॐकार अपने लक्ष्य परब्रह्म परमात्मपद को प्राप्तकरता है ताते ॐकारका नाम शुक्र है "यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं हवैस पाप्मना विनिर्मुक्तः" इत्यादि॥ हे सौम्य! यह तुम्हारे प्रति ॐकार के षष्ठ शुक्रनामका अर्थ संक्षेपमात्र कहा तिसका विचारकर शुद्ध होवो ६॥

अथ सप्तमनाम वैद्युत ७॥

हे सौम्य! अब ॐकार के सप्तम वैद्युतनाम का अर्थ संक्षेप मात्र श्रवणकरो। विद्युत नाम है प्रकाश का सो ॐकार अपने ज्ञानरूप प्रकाश करके अपने उपासक के अज्ञानरूप अंधकारको कि जिसके आश्रय बारम्बार जन्ममरणके महाभयका देनेवाला

संसाररूप असत्य सर्व अपनेआप शुद्ध अद्वैत जन्म मरण से रहित अज अविनाशी आत्माविषे, सत्य प्रतीत होता है, अभाव करके, अपनाआप रज्जुस्थानीय आत्मरूप पदार्थ ज्यों का त्यों प्रत्यक्षकर देखावता है "ज्ञानदीपेन भास्वतः" इत्यादि प्रमाणसे ताते ॐकार का नाम विद्युत है ॥ अथवा ॐकार अपने उपासक को विद्युतवत् विशेष प्रकट दर्शनदे पुनः अपने सामान्यरूप को प्राप्तहोता है "यदेतद्विद्युतोव्यद्युतदा" इत्यादि केनोपनिषद्के प्रमाणसे । एतदर्थ भी ॐकार का नाम विद्युत है ७ ॥

अथ अष्टमनाम हंस ८ ॥

हे सौम्य ! अब ॐकारके अष्टम हंसनाम का अर्थ श्रवणकरो। हंसनाम सूर्यका है, जैसे सूर्यरात्रिको अरुतज्जन्य अंधकार को अरु तज्जन्य अभास को नाशकरता है। तैसेही ॐकाररूप सूर्य है तिसकी जो पुरुष, विचार ध्यान उच्चार जप आदि, क्रमसे उपासना करता है, तिस उपासक के अन्तःकरण में सूर्यवत ज्ञानरूपसे उदयहोय, मूलाविद्या रूपारात्रि, अरु तदाश्रित तमोगुणरूप अन्धकार, अरु तदाश्रित स्वरूप का अनाभास, तिनको अभावकरके अपने लक्ष्य शुद्ध तुरीयरूप आत्माको प्रकाशता है। ताते ॐकार का नाम हंस है । तथाच "आदित्य उद्गीथ एव प्रणवः", इत्यादि श्रुति के प्रमाणसे ॥ अथवा हंस उस पक्षीविशेषको भी कहते हैं कि जो मिश्रित हुये दुग्ध अरु जलको पृथक् २ करता है, तैसेही ॐकाररूप हंस अपने उपासक के हृदय की चिज्जड़ग्रंथी, जो दुग्ध अरु जलवत् मिश्रित, है तिस चिज्जड़ ग्रंथी को खोलके चैतन्यरूप दुग्ध अरु जड़रूप जल को पृथक् २ करके अपने उपासक को आत्मरूप दुग्धकी प्राप्तिकराय अजर अमर अभयपद को प्राप्त करता है, अतएव ॐकार का नामहंस है । तथाच "हंसः शुचि." इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे । अर्थात् ॐकार अपने उपासक की अविद्यारूपारात्रि अरु अनात्म जड़रूप

जलको नाशकरके स्वयंज्योतिःसर्व का परमसार नित्य निरंजन निर्विकार अपने आप आत्मपद विषे प्राप्त करता है, अतएव ॐकार का नाम हंस है ८॥

अथ नवमनाम तुरीय ९॥

हे सौम्य! अब ॐकारके नवमनाम तुरीयका भी अर्थ श्रवण करो। हे प्रियदर्शन! तुरीय उसको कहते हैं, जो सूक्ष्म स्थूलकारण, यह तीन शरीर, अरु जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति, यहतीन अवस्था, अरु विश्व तैजस प्राज्ञ, यह तीन अभिमानी, अरु स्थूल विरल अरु आनन्द, यहतीन भोग्य, इत्यादिकोंका जो साक्षी प्रकाशक अधिष्ठान अरु उक्त सर्व से पृथक् है तिस निर्विशेष चैतन्य आत्माका नाम तुरीयहै। अरु सोई त्रिमात्रिक वाचक ॐकारका लक्ष्य है अरु त्रिमात्रिक ॐकारके आलम्बनसे यही मुमुक्षुओं करके उपास्यदेवहै, अरु यही एक अद्वितीय सर्वका अपना आप प्रत्यगात्मा हैं इसही के साक्षात् सम्यक् ज्ञान से मोक्ष होती है। तिस अपने लक्ष्यरूप तुरीय आत्माकी प्राप्ति अपने उपासक को कराय तीनों अवस्था रूप नामरूप क्रियात्मक असत्य संसार सागर से तार देता है, तातें ॐकारका नाम तुरीय कहते हैं ९॥

अथ दशम नाम परब्रह्म १०॥

हे सौम्य! अब ॐकार के दशम ब्रह्म नामका अर्थ श्रवणकरो। परा पश्यन्ति मध्यमा अरु वैखरी, इनचारों वाचाकरके जो प्रकट होताहै सो ॐकारका वाच्य शब्दमय ब्रह्म है। तहां परा उसको कहते हैं, पश्यन्ति मध्यमा अरु वैखरी, इनतीनोंकी समावस्था है वा सामान्य शब्दके उत्थान से रहित केवल ध्वनिमात्र है। वा जहांसे पश्यन्ती का उत्थान होताहै, सो परावाचा है। अरु पश्यन्ति स्फुरणरूप तिसविषे यह स्फुरण होताहै जो कुछ कहो, इसस्फुरणका नाम पश्यन्ती वाचा है। अरु जब वो स्फुरण निश्चयात्मक होता है कि अब यह कहोंही, तिसका नाम

मध्यमावाचा है। अरु उसही निश्चय से करके होठजीभहिलाय के प्रकटकहा तब तिसको वैखरीवाचा कहते हैं। तिस वैखरी विषे चारोवेद षट् आदिशास्त्र अष्टादशादिस्मृति अष्टादशपुराण इतिहासादि जो विद्या हैं अरु नानाप्रकार की नानादेश की भाषाहैं, अरु नानाप्रकार के पशु पक्षी आदिकोंकी नानाभाषा हैं सो सर्व स्थूलरूप वैखरी विषे स्थित हैं। तथाच "। सर्वेषां वेदानां वागेकायनम् "। "। वाग्वैनामनो भूआति "। इत्यादि श्रुतिः। तहां से स्वर वर्णात्मक शब्दरूप से प्रकट होयहै, सो सर्व ॐकार का वाच्य शब्दब्रह्म है तहां वेदरूप शब्दमय ब्रह्मॐकार तिसकी उपासना। अध्ययन विचार रूप से, करने करके शब्दमय ब्रह्मकरके प्रतिपाद्यजे ॐकारका लक्ष्य निर्विशेष परब्रह्म परमात्म। तिसकी अपने आप आत्मत्व से प्राप्तिहोती है। तथाच "। शब्दब्रह्मणि निष्णातःपरब्रह्माधिगच्छति "। इति॥ तातें इस ॐकार को परब्रह्म कहते हैं १०॥

इति ॐकारस्यदशनामअर्थविचारसमाप्तम्॥

अथ अन्य प्रकार से ॐकार की मात्रादि विचार ॥

१	अकार	उकार	मकार	यह तीन मात्रा
२	अग्नि	वायु	सूर्य्य	यह तीन ऋषि
३	गायत्री	त्रिष्टुप्	बृहती	यह तीन छन्द
४	ब्रह्मा	विष्णु	रुद्र	यह तीन देवता
५	श्वेत	रक्त	कृष्ण	यह तीन वर्ण
६	जाग्रत्	स्वप्न	सुषुप्ति	यह तीन अवस्था
७	भू 'भूर्लोक'	भुव 'पितृलोक'	स्वर् 'स्वर्गलोक'	यह तीन व्याहृति वा लोक
८	उदात्त	अनुदात्त	स्वरित	यह तीन स्वर
९	ऋग्	यजु	साम	यह तीन वेद
१०	गार्हपत्य	दक्षिणाग्नि	आहवनीय	यह तीन अग्नि
११	प्रात	मध्याह्न	साय	यह तीन सन्धि
१२	भूत	भविष्यत्	वर्त्तमान	यह तीन काल
१३	सत्त्व	रज	तम	यह तीन गुण
१४	उत्पत्ति	पालन	संहार	यह तीन क्रिया
१५	कर्म	उपासन	ज्ञान	यह तीन काण्ड
१६	विराट्	हिरण्यगर्भ	अव्याकृत	यह तीन शरीर
१७	स्त्री	पुरुष	नपुंसक	यह तीन लिंग
१८	होता	अध्वर्यु	उद्गाता	यह तीन ब्राह्मण
१९	ज्ञान	वैराग्य	भक्ति	यह तीन स्वभाव
२०	बुद्धि	अन्तर	मन	यह तीन प्रज्ञा
२१	धन	जल	चन्द्रमा	यह तीन भाग
२२	अग्नि	वायु	सूर्य्य	यह तीन भासा

हे सौम्य ! यह जो ॐकार की मात्राओं का भेद स्वरूप कहा है सो अकार उकार मकार इन तीन मात्राओं का विस्तार है और समस्त जगत् इसके अन्तर्गत है ताते ॐकार परेश सर्वत्र हैं ॥

अथरामगीताकेअनुसारमात्राओंकालयचिंतवन॥

पूर्वंसमाधेरखिलं विचिन्तयेदोंकारमात्रंसचराचरंजगत्। तदेववाच्यंप्रणवोहिवाचकोविभाव्यतेऽज्ञानवशान्नबोधतः १।४८॥

हे सौम्य! अब परब्रह्म की प्राप्ति में सर्वोत्तम जे प्रणवोपासन तिसकी मात्राओं के क्रमशःलय चिन्तवन द्वारा तिसके लक्ष्य परब्रह्मकी आत्मत्वभावसे जिसप्रकार साक्षात् प्राप्ति होती है सो प्रकार तुम्हारे प्रति संक्षेपसे कहताहौं तिसको सावधान होयके श्रवण करो॥ तहां प्रथम, श्लोकका अक्षरार्थ "समाधि से पूर्व सम्पूर्ण जे चराचर जगत् [तिसको] ॐकार मात्रही चिन्तवन करे निश्चय करके प्रणव (ॐकार) नामहै [अरु]सो (जगत्) ही नामी है [सो नाम नामीका भेद] अज्ञानवशात्है ज्ञान से नहीं"। हे प्रियदर्शन! जो विवेकी साधन सम्पन्न आत्मजिज्ञासु पुरुष है सो निर्विकल्प समाधि के प्राप्त होनेके पूर्व सम्पूर्ण चराचर जगत्को एक ॐकारमात्रही चिन्तवनकरे। क्योंकि "ॐकारएवेदंसर्व्वम्"। यह सर्व ॐकारही है। ऐसी श्रुतिकी आज्ञा है, ताते निश्चय करके प्रणव जो ॐकार सो नाम है अरु जगत्ही उसका वाच्यकहिये नामीहै। क्योंकि "तस्योपव्याख्यानं भूतंभवद्भविष्यदिति सर्व ॐकारएव" इस मांडूक्यउपनिषद् की श्रुति प्रमाणसे। अर्थात् ॐकार नामहै अरु जगत् नामीहै ताते निर्विकल्प समाधिके पूर्व (सविकल्प समाधि विषे) जगत्को ॐकार रूपही चिन्तवन करे, सो नाम नामीभी मुमुक्षुके समझावनेके अर्थ आचार्य्यों ने कहलिया है वास्तव करके तो नाम नामीका भी भेदनहीं जो भेद भासताहै सो अज्ञान वशसे भासताहै, सम्यक् ज्ञान होनेसे नाम नामीका भेदनहीं। अर्थात् जब

अकारसंज्ञः-पुरुषोह्हिविश्वकोह्युकारकस्तैजसईर्यतेक्रमात् । प्राज्ञोमकारःपरिपठ्यतेऽखिलैःसमाधिपूर्वेनतुतत्त्वतोभवेत् २ । ४९ ॥

वाच्यरूप त्रिमात्रिक प्रणवोपासक को उस उपासना के प्रभाव से लक्ष्यरूप अमात्रिक निर्विशेष निरुपाधि आत्मतत्त्वका साक्षात्काररूप अपरोक्ष सम्यक्ज्ञान होताहै तव वृत्ति के अभावसे,नाम, नामी, यहभी संज्ञा रहतीनहीं, केवल एक अद्वैत परमशांत शिव विज्ञानघन आत्मतत्त्वही प्रकाशता है "शिवं शान्तमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेय " इत्यादि प्रमाणसे १ । ४८ ॥

हे सौम्य ! यह जो वर्णात्मक ओंकारहै तिसके तीन अक्षर (मात्रा) हैं, तहां प्रथम अकार, द्वितीय उकार, तृतीय मकार, अरु इसका वाच्य जो जगत् है तिसके तीनपाद हैं, प्रथम स्थूल विराट्, द्वितीय सूक्ष्म हिरण्यगर्भ, तृतीय कारण अव्याकृत, अरु क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, यह तीन अभिमानी देवता हैं। अरु ओंकारका लक्ष्य जो प्रत्यगात्माहै तिसकी तीनमात्रा हैं ,जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, अरु इनके अभिमानी आत्मा को क्रमसे , विश्व, तैजस, प्राज्ञ, कहते हैं अतएव , अक्षर, पद, मात्रा, इन तीनोंका एकही पर्य्यायहै ताते वाचक जे वर्णात्मक ओंकार तिसका जो वाच्य समष्टि व्यष्टि जगत् सो परस्पर अभेदहै एतदर्थही जाग्रदभिमानी विश्व पुरुष अकार संज्ञकहै, तिसकी स्थूल विराडभिमानी ब्रह्मा देवताके साथ एकताहै । अरु क्रमश स्वप्नाभिमानी तैजसको उकार ऐसाकहतेहैं,तिसकी सूक्ष्माभिमानी हिरण्यगर्भ विष्णुदेवता के साथ एकता है । अरु सम्पूर्ण ज्ञानवान् प्राज्ञको मकार कहते हैं, अर्थात् सुषुप्त्यभिमानी प्राज्ञकी अरु अव्याकृताभिमानी रुद्रकी मकार मात्राके साथ एकता है । सो यह सर्व निर्विकल्प समाधि के पूर्व है । अर्थात् मुमुक्षुपुरुषको यावत् अमात्रिक सर्व्वाधिष्ठान निर्विशेष आत्मास्थिति को प्राप्तहोने रूप

विश्वंत्वकारं पुरुषं विलापयेदुकारमध्ये बहुधाव्यवस्थितम्। ततोमकारे प्रविलाप्यतैजसं द्वितीयवर्णं प्रणवस्यचान्तिमे ३ ॥ ५० ॥

निर्विकल्पसमाधि न प्राप्तहोय तावत् उक्तप्रकार चिन्तवनकर्त्तव्य है, अरु जब तिसविचारसे निर्विकल्प आत्मस्थितिको प्राप्तहोवे तब नहीं, क्योंकि स्थूल सूक्ष्म कारण, ब्रह्मा विष्णु रुद्र, जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति, विश्व तैजस प्राज्ञ, अकार उकार मकार, इत्यादि विशेषता का भेद भाव रंचकमात्र भी रहता है नहीं किन्तु सैंधव लवणवत् एक विज्ञानघन आत्मतत्त्वही प्रकाशता है २। ४६ ॥

हे सौम्य! इस श्लोक का उत्तर श्लोक से अन्वयहै ताते इन दोनों श्लोकों का मिश्रित अक्षरार्थ कहते हैं। बहुत प्रकार से स्थित विश्वसंज्ञक अकार पुरुषकोतो उकारमें लयकरे तदनन्तर प्रणवका द्वितीयवर्ण तैजस संज्ञक (उकारको) पिछले अक्षर मकार विषे लयकरे॥ तदनन्तर पुनः प्राज्ञसंज्ञक कारण मकार को भी इसपर चैतन्यघन आत्माविषे विलीनकरे [तदनन्तर] सोमैं सर्वकाल नित्य मुक्त विज्ञान दृष्टि उपाधिसे रहित निर्मल परब्रह्म हौं [ऐसी निश्चय भावनाकरे]॥ हे प्रियदर्शन! जो बुद्धिमान् साधन सम्पन्न मुमुक्षु पुरुष है सो आत्मवेत्ताकी प्राप्ति के अर्थ यह बिचारकरे कि अनेकप्रकार नानारूपसे स्थित विश्व संज्ञक अकार पुरुष को उकार विषे लीनकरे। तदनन्तर ॐकार का द्वितीय-अक्षर जो सूक्ष्म तैजस संज्ञक उकार तिसको भी कि जिसविषे प्रथम विश्व अकार पुरुषको लीनकिया है। प्रणव के अन्तिम अक्षर मकार विषे लीनकरे। पुनः तिसके अनन्तर प्राज्ञसंज्ञक कारण मकार कोभी इस सर्वसेपर चैतन्य घनआत्मा विषे लीनकरे इस प्रकार मात्राओं के लय चिन्तनके अनन्तर, सो सर्वाधिष्ठान कि जिसविषे उक्त समष्टि व्यष्टि स्थूल सूक्ष्मसर्व प्रपंचमात्रा अध्यस्त (अविद्या करके कल्पित) है, सो मैं सर्वकाल

नित्यमुक्त सर्वज्ञ विज्ञान दृष्टि सर्व उपाधिसे रहित शुद्धनिर्मल प्रकृतिसे पर साक्षात् निर्विशेष ब्रह्महो ॥ तथाच ॥ " अयमात्मा ब्रह्म " " शुद्धमपापविद्धम् " " शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यंते सआत्मा सविज्ञेय " " सआत्मा तत्त्वमसि " " अहंब्रह्मास्मीति " इत्यादि श्रुतियों के प्रमाणसे अहंब्रह्म भावनाविषे प्रत्यादृढकरके सर्व उपाधिके अभावसे निर्विकार निराकार अपने आप आत्मा को प्राप्तहोवे ॥ – ॥ हे सौम्य ! यह कही जो मात्राओं की लीनता तिसको व्यष्टि समष्टि की एकतासे पुनः सविस्तर कहते हैं, हे प्रियदर्शन! प्रथम कहा कि अकार जो प्रथम मात्रा है तिसको उकार रूप द्वितीय मात्राविषे लयकरे, जिसका अर्थ यह है जो अकार जाग्रत्रूप जगत् है अरु विश्व तिसका अभिमानी है, तिसको वैश्वानर भी कहते हैं, अरु ब्रह्मा इसका देवता है, अरु सत्त्वगुणहै । ऐसी जो प्रथम अकार मात्राहै तिसको उकाररूपस तैजसरूपजानो । अर्थात् जाग्रत् जगत्को सूक्ष्मस्वप्नरूपजानो, क्योंकि स्वप्नही अपने तीव्र संवेगकरके जाग्रत्रूपहो भासताहै , जैसेस्वप्नमेंसोयाहुआ पुरुष स्वप्नकोदेखता तिसके तीव्रसंवेगसेही विनाजाग्रत्के प्राप्तहुये उठके चल देता है, अरु भूम संज्ञाको प्राप्तहुये जाग्रत अरु स्वप्नकी स्मृतिमात्र तुल्यहै ताते जाग्रत जगत को स्वप्नरूप जानो । अरु स्थूल जाग्रदभिमानीको सूक्ष्मस्वप्नाभिमानी तैजस का स्वरूपजानो क्योंकि जैसे स्वप्नतीव्र संवेग करके जाग्रत्रूपहो भासताहै तैसे तिसस्वप्नका अभिमानी जाग्रतका अभिमानीहो भासताहै ताते । अरु ब्रह्मा जो स्थूल जाग्रत जगत्का देवताहै तिसको सूक्ष्मस्वप्न जगतका देवता जो विष्णु है तिसही कारूप जानो क्योंकि सूक्ष्मसेस्थूल अरु विष्णुसे ब्रह्माहुयेहैं । अर्थात् यह जो स्थूल जाग्रत्जगतहै सोसूक्ष्मस्वप्नरूपहै । अरुजाग्रदभिमानी विश्वको स्वप्नाभिमानी तैजसरूपजानो अरु ब्रह्माको विष्णुरूप जानो । इसप्रकारके चिन्तननसे प्रथम अकारमात्राको द्वितीय उकार मात्रा विषे लयकरो । अरु यह जो उकार सूक्ष्म

मात्राहै कि जिसविषे स्थूल अकार मात्रा लीनहुई है उस उकार मात्राको मकार मात्रा विषे लीनकरो अर्थात् सूक्ष्म स्वप्न जगत् को सुषुप्तिरूपजानो, अरु स्वप्नाभिमानी तैजसको सुषुप्त्यभिमानी प्राज्ञरूप जानो, अरु विष्णु जो सूक्ष्मका देवता है तिसको कारणका देवता रुद्ररूप जानो। अर्थात् स्वप्न सुषुप्तिरूपही है, अरु तैजस प्राज्ञरूप है, अरु विष्णुरुद्र रूप है। इस प्रकारके चिन्तवनसे सूक्ष्म उकार को कारण मकार विषे लीनकरे। अब कारण मकार जो तृतीय मात्रा है तिसको भी अमात्रिक रूप परमात्मा विषे लयकरो। अर्थात् सर्व परमात्म रूपही जानो। तथाच "सर्वं खल्विदंब्रह्म" "ॐकार एवेदंसर्वं" "ब्रह्मैवेदं सर्वं" "पुरुषएवेदंसर्वम्" "आत्मैवेदं सर्वम्" "अहमेवेदं सर्वम्" "वासुदेवः सर्वमिति" "मत्तः परतरंनान्यत् किंचिदस्ति" इत्यादि श्रुतिस्मृतियोंके प्रमाणसे यह सर्व अध्यस्तप्रपंच अपना अधिष्ठान परमात्म स्वरूपही है क्योंकि अध्यस्तकी अधिष्ठानसे पृथक्सत्ताका अभावहै। अर्थात् यह जाग्रत्रूप स्थूल जगत् संयुक्त स्थूल शरीर अरु विश्व इसका अभिमानी अरु ब्रह्मादेवता, इन सर्वको सूक्ष्मउकारविषे लीनकरो तहां इसप्रकार जानो जो उकार रूप सूक्ष्म स्वप्न सम्पूर्ण लिंगशरीरोंका अभिमानी तैजस विष्णुदेव हिरण्यगर्भ है तिससे सम्पूर्ण स्थूलशरीर विराट् पुरुष ब्रह्मादेवता जाग्रदवस्थाफुरीहै ताते यह सर्ववोहीरूपहै। इसप्रकार के विचारसे अकारमात्रा स्थूलजगत्को सूक्ष्म उकाररूप जानो॥ अरु जो सूक्ष्म उकार मात्रा है, तिसको कारण मकार मात्रारूप जानो। अर्थात् सर्व कारण शरीर सुषुप्ति अवस्था अरु तिसका अभिमानी प्राज्ञ, अरु रुद्र देवता सर्वका कारण अव्याकृत तिससे सूक्ष्म शरीर स्वप्नावस्था तिसका अभिमानी तैजस तिन सर्वकी समष्टिताका अभिमानी जो हिरण्यगर्भ सो फुरा है। तथाच। "अव्याकृत वा इदमग्रआसीत्" "हिरण्यगर्भो जायमानः" इन श्रुति वाक्योंकी ऐक्यतासे। ताते स्थूल सूक्ष्म सर्व कार्य्य, कारण

अव्यक्त रूपहै । तथाच "अव्यक्तादीनि-भूतानि" गीतोक्तिप्रमाणसे । ऐसी जे सर्वका कारण मकारमात्रा । अर्थात् समस्तव्यष्टि कारण शरीरों की समष्टिता अव्याकृत,अरु समस्त सुषुप्ति अवस्थाकी समष्टिना अविद्या अरु सम्पूर्ण सुषुप्त्यभिमानी-प्राज्ञ की, समष्टिता रुद्रदेवता यह सर्व कारणरूप मकार मात्रा, सो अर्द्धमात्रारूप, अर्थात् अमात्रिक परमात्मा चैतन्यघन निर्विशेष सर्वाधिष्ठान आत्मासेही फुरेहैं, ताते आदिकारण प्रकृति अरु तिसका कार्य्य स्थूल सूक्ष्म सम्पूर्ण जगत्‌रूपसे एक परमात्माही प्रकाशित है अर्थात् अस्ति भाति प्रियरूपसे एक परमात्माही सुशोभित है, तिससे इतर द्वैत कुछभी नहीं । तथाच "सच्चिदं सर्वम्" "चिच्चिदंसर्वम्" "पुरुषएवेदं सर्वम्" "ब्रह्मैवेदं- विश्वमिदं वरिष्ठम्" "मायामात्रमिदंद्वैतं" "नेहनानास्ति किंचन" इत्यादि श्रुतिके प्रमाणसे सर्व ब्रह्मरूपही है । हे प्रियदर्शन! इस प्रकारके विचारसे ,अकार, उकार, मकार, यह तीनमात्रा रूप स्थूल सूक्ष्म कारणरूप प्रपंच है ॐकारका लक्ष्य परमात्म रूप ही है, अरु सो परमात्मा अज है एतदर्थ वो कार्यरूपसे जन्मभाव को प्राप्तहोता नहीं किन्तु सर्वाधिष्ठान होनेसे सर्व रूपसे सुशोभितहै, जैसे सीपि रजतरूप कार्य भावको प्राप्तहुये विनाही अपने स्वभावकरके रजतरूप से सुशोभित है सोभी शुक्ति के अज्ञान पर्यन्तही है. ज्ञानहुये रजत कहनेमात्र को भी नहीं तैसेही एक परमात्माही कार्यभाव को न प्राप्तहोयके जगत्‌रूपसे सुशोभित है हुआ कुछनहीं , एक अद्वैत चिन्मात्र सत्ताही है- तिससे इतर एक परमाणुमात्र भी नहीं , जैसे जलसे इतर समुद्र अरु तद्गत लहर झाग बुद्बुदादि कुछभी नहीं,जैसे अग्निसे भिन्न दाहकता उष्णता प्रकाशकत्तादि कुछ नहीं, वा जैसे वायुसे भिन्न स्पंदता निस्पंदता नहीं, जैसे आकाशसे इतर शून्यता नीलिमादि कुछ नहीं, तैसेही ॐकार के-लक्ष्य परमात्मा से इतर वाच्यरूप-जगत् कुछ नहीं, अरु इतरवत्-भासता है सोई भ्रान्ति वा उसकी

स्वभावभूत माया है। हे प्रियदर्शन ! यहाँ जो परमात्मा के विषे स्वभाव वा माया कही है तिसकरके सांख्यवत् पृथक् प्रकृति का ग्रहण नहीं क्योंकि "अव्यक्तात्पुरुषः परः" अव्याकृत कहिये प्रकृतिसे पर कहिये श्रेष्ठ है कार्यभाव को न प्राप्त होने से। ताते सांख्यमत कल्पित प्रकृतिवत् स्वभाव को न ग्रहण करके परमात्माका जो सर्व से विलक्षण भावहै सोई उसका स्वभाव जानना, जैसे मरुस्थल वा ऊपर पृथ्वीका जो पृथ्वीके अन्यदेश भाव से विलक्षणपना है सोई उसका स्वभाव (अपनेआप होना) है तिस अपने स्वभाव करके वो पृथ्वी तरंगादिकों सहित जलरूप हो भासती है परन्तु जलरूप होती नहीं, तैसेही चैतन्यतत्त्व परमात्माका जो सर्व से विलक्षण अपनेआप चैतन्य भावरूप स्वभाव है, सोई उसकी अभिन्न माया है, तिस अपना स्वभाव व मायाकरके वो परमात्मा कार्य कारणात्मक स्थूल सूक्ष्म चराचर जगत्‌रूपहो भासता है हुआ कुछनहीं, अरु बिनाही हुये जो नाना प्रपंच हुयेवत् भासता है सोई उसकी अघटघटनापटीयसी, उक्त माया है, अतएव एक अद्वैत चिन्मात्र तत्त्व जो ॐकार का लक्ष्य है तिससे इतरवाच्य नहीं, वाच्य अरु वाचक सर्व परमात्मतत्त्व ही है। ताते हे प्रियदर्शन ! सम्पूर्ण जगत् को उक्तप्रकारसे एक ॐकार का लक्ष्य परमात्मरूप जानके मुमुक्षुपुरुष अपने मोक्षार्थ निर्विकल्प समाधि, (निर्विशेष आत्मस्वरूपस्थिति) के अर्थ उक्त प्रकार ॐकारोपासना को शमादि साधन पूर्वक शास्त्रप्रमाण से आलम्बन (आश्रय) करे॥ हे सौम्य! इस ॐकारोपासनासे इतर यावत् उपासनाहै सो सर्व ॐकारकी अंगभूत उपासनाहै, अरु ॐकारकी जो उपासनाहै सो अंगीउपासनाहै। अर्थात् ब्रह्मकी उपासना में ॐकारसे इतर जो उपासनाहै सो सर्वगौणउपासनाहै, अरु ॐकारकी जो उपासना है सो मुख्य उपासना है, अरु परमात्मा के नामों में जो ॐकार नामहै सो मुख्यनामहै अरुऔर जे नामहैं सो गौणनामहैं, क्योंकि गुणों के सम्बन्धसे हैं। जैसे सूर्य्यके कर्त्ता ई-

श्वर आदिक जे नाम हैं सो गुणों के सम्बन्ध करके गौणहैं।अरु भानु जो नाम है सो मुख्य स्वाभाविकनाम है । अथवा देवदत्त विषे ,जे, पिता पुत्र भ्राता आदिक नाम हैं सो गौण हैं, अर्थात् गुण सम्बन्धसे कल्पित है, अरु पुरुष जो नाम है सो स्वाभाविक मुख्य नामहै । तैसेही परमात्माका जो ॐकारनाम है सो मुख्य नाम है, तातें ॐकारकी जो उपासना है सो प्रतीकोपासना की रीतिसे त्रिमात्रिक वाच्य की अरु अहमग्रे उपासना की रीतिसे अमात्रिक लक्ष्य परमात्मा की मुख्योपासना है, अतएव सर्व उपासनाओं में श्रेष्ठ एक प्रणवोपासना है अन्य नहीं । सो ॐकार ब्रह्मरूप है, तहां एक अपर त्रिमात्रिक शब्द ब्रह्म है एकपरब्रह्म है । तहां जो मन बुद्धि इन्द्रियादिकों करके जानने विषे आवता है ,अर्थात् जो मन इन्द्रियादिकों का विषय है सो सर्व अर्थरूप होनेसे शब्द ब्रह्मके अन्तर्गत है क्योंकि किसी शब्दका अर्थरूपही है अरु सोई ॐकारका वाच्य है । अरु जो मन बुद्धि इन्द्रियादिकों का विषयन होत सन्ते सर्वका प्रकाशक साक्षी विज्ञानघन चैतन्य आत्माहै सोई ॐकारकालक्ष्य परब्रह्महै,तिस लक्ष्य रूपकी जो उपासनाहै सो निरालम्बन होनेसे वाच्यरूप ॐकारके आलम्बनसे होती है । जैसे मनकी वा जीवात्मा की जो सन्तुष्टता प्रसन्नता होती है सो शरीरके लालन पालनरूप आलम्बनद्वाराही होती है तैसे । अतएव जिज्ञासु मुमुक्षु पुरुष अपने आप सत्यस्वरूप आत्मदेव की प्राप्तिके अर्थ ॐकार की उपासनाकरे, यही उपासना सर्ववेदोंने कही है । तथाच "सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यञ्चरन्ति तत्तेपदं संग्रहेण ब्रवीम्योम् ।" "ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत " इत्यादिक अनेक श्रुतियों ने मुमुक्षुके मोक्षार्थ एक प्रणवोपासनाही मुख्य करके कहा है, अतएव मोक्षार्थी को अपने मोक्षार्थ एक ॐकारोपासना को आलम्बन करना श्रेय है । तथाच "एतदालम्बनंश्रेष्ठमेतदालम्बनंपरम्,

एतदालम्बनंज्ञात्वाब्रह्मलोकेमहीयते ॥ इत्यादिश्रुतिप्रमाणसे। अरु मुमुक्षुके प्रयोजनार्थ यह प्रणवोपासनाही सर्वसे मुख्य है और नहीं, एतदर्थ हे प्रियदर्शन! जो तुमको मोक्षहोने की इच्छाहै तो उक्त प्रकार प्रणवोपासनाकरो, अरु यह जो रामगीता के ४८, ४९, ५०, ५१, इनचारश्लोक करके प्रणवोपासना तुम्हारे प्रतिकहाहै सो श्रीभगवान् रामचन्द्रजीने अपने प्रियभ्राता जिज्ञासुलक्ष्मणजी प्रतिकहाहै, अरु यह मांडूक्योपनिषद्के अनुसार हीं कहा है, ताते श्रुति स्मृति पुराणादिकों के प्रमाणसे मुमुक्षुको परमश्रेय (मोक्ष) प्राप्तिके अर्थ एकप्रणवोपासना को ही यथाशास्त्र आलम्बन करना योग्यहै, आगे, यथेच्छसितथाकुरु॥

॥ शिष्यउवाच ॥ हे कृपासागर! हे गुरो! आपनेजो मुमुक्षु को मोक्ष प्राप्तिके अर्थ सर्वोत्तम आलम्बनरूप प्रणवोपासना कही सो निर्विकल्प समाधि (आत्मरूपस्थिति) से पूर्व मुमुक्षु करके अवश्यही कर्त्तव्य है अतएव अब आप कृपाकरके इस प्रणवोपासना का क्रम कृपाकरके कहिये ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥ हे प्रियदर्शन! ॐकार जो एक अक्षर है तिसका जपकरना अरु इसके अर्थकी भावना करनी। तथाच ॥ तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥ यह पातंजल शास्त्रके प्रथम पाद का २८ वां सूत्र है तिसके प्रमाणसे, ॐ,इस अक्षर का जप अरु इसके अर्थ की भावना करनी तिसका नाम उपासना है। अब तिसका प्रकार सावधान होय के श्रवण करो। ॐकार नाम है परमेश्वर का तिसका जपकरना तहां कोई पुरुष तो, ओम, ओम्, ओम्, इसप्रकार सहित स्वरके उच्चार करते हैं, अरु कोई एकपुरुषहोठ अरु जिह्वा को न हिलायके इसका मनोमय जप करते हैं, अरु कोई एक पुरुष प्राणायामद्वारा जपकरते हैं, सो प्राणायाम इस प्रकारते हैं कि प्रथम पूरक, अर्थात् मुख बन्दकरके नासिका के वामछिद्र को दक्षिणहाथ की मध्यमा अरु अनामिकायेदोनोंअंगुलीसों दबाय नासिका के छिद्रके मार्ग बाहसे अन्तर को

खींचना इसका नाम पूरक है। पश्चात् उस छिद्र कोभी अंगूठा सों दबाय बन्दकर प्राण को अन्तर रोकना तिसका नाम कुंभक है; अरु जब प्राण न रुके तब नासिका का वामछिद्र खोल उस मार्ग से धीरेधीरे प्राण को बाहर छोड़ना, इसका नाम रेचक है तहां प्राण का जो पूरक है तिसविषे ॐकार का ३२ बार मनोमय उच्चार करना, अरु कुंभकविषे ॐकार का ६४ बार उच्चार करना, अरु रेचकविषे १६ बार ॐकार का उच्चार करना। इस प्रकार एकबार पूरक कुंभक रेचक करने से एक प्राणायाम होता है। सो इसप्रकारके प्राणायाम जितने होयसकें तेतने करना इनके अभ्यास करने से प्राणवायु वश अरु पापों का नाश होता है एतदर्थ कोई एक पुरुष उक्तप्रकार के प्राणायामोंद्वारा ॐकार का जपकरते हैं। अरु कोई एक पुरुष इसप्रकार भी करते हैं कि ॐकारकी जो, अकार, उकार, मकार; यह तीनमात्राहैं तिनको क्रमशः, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, रूप स्वरसहित ॐकारकाउच्चारकरते हैं, सो मूलाधारसे मस्तकके ब्रह्मरंध्रपर्यन्त ध्वनिको प्राप्तहोतेहैं। इत्यादि अनेकप्रकार प्रणवके जपके हैं, तिनमें से जिसप्रकार अपनेसे श्रद्धासहित होताजाने तिसप्रकार करे। यह तो ॐकारके जपकरनेका क्रम संक्षेपमात्र तुमसेकहा॥ अबइस ॐकारकेअर्थकी भावना भी श्रवणकरो। हे प्रियदर्शन! ॐकारके अर्थकी जोभावना करनी है सो दो प्रकार की है तहां एक सगुण वाच्यरूप अरु द्वितीय निर्गुण लक्ष्यरूप, तहां जो सप्त सिद्धान्तकारोंके मतमें ६३ तिरसठि नामरूप भेद करके कही है, सो अरु ॐकारके मात्रा ऋषि, छन्द देवता आदि ६६ छियासठ भेदसे कही है सो। अथवा जो एक मात्रासेलेके, ३८, ४६, ५२, ६३, ६४, मात्रापर्यन्त कही है सो, इन तीनों प्रकार से जो ॐकारब्रह्म के अर्थ की भावना कही है सो ॐकारके वाच्य सगुण ब्रह्म की भावना है। अरु ॐकारके लक्ष्य निर्गुण ब्रह्म की भावना प्रणवोपासक इस प्रकार करते हैं कि जिस ॐकार ब्रह्मकी हम उपासना करते हैं

तिस त्रिमात्रिक अपरब्रह्म रूप प्रणव शब्दका वाच्य तिसका जो ज्ञाता प्रकाशक साक्षी सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द स्वरूपलक्षणवान् परब्रह्म आत्माहै, सोई सर्वत्र, सर्व, अस्ति, भाति, प्रियरूप होके व्याप्त होरहाहै, तहां अस्ति कहिये, यहहै, यहहै, यहहै, इसप्रकार से हैं हैं है यह अस्ति सत्तारूप जो व्याप्त होरही है, अरु जोकि यह नहीं, यह नहीं, यह नहीं, इसप्रकार सर्व निषेध के अन्त में निषेध के भावका प्रकाशक कि जिस करके अस्ति नास्ति सिद्ध होते हैं, अरु अस्ति नास्ति शब्दके अर्थ के अनुभवका आश्रय कि जिसविषे अनुभव होता है। अरु जो अस्ति नास्ति भावनारूप कल्पना का आश्रय आदि अन्त अवशेष है अरु अस्ति नास्ति आदिक कल्पना का अधिष्ठान परम अस्ति रूप सत्ता है, सोई अपने पूर्वोक्त स्वभाव करके अस्ति नास्ति भावाभाव रूप का आश्रय हुआ सुशोभितहै ताते वोही सर्वाधिष्ठान सत्ता सर्वरूप से सुशोभित है॥ अरु भाति कहिये जो प्रकाशताहै। अर्थात् जो पदार्थ भासता है सो भातिरूपरुहै, क्योंकि एक दूसरेको प्रकाशता है, जैसे अन्धकार के अभावको प्रकाश प्रकाशता है, अथवा रात्रिके अभावको दिवस प्रकाशता है जो इससमय रात्रिवा अन्धकार का अभाव है। अरु दिवस किंवा प्रकाश में रात्रि किंवा अन्धकार का अभाव है, सो दिवस किंवा प्रकाश में जो अपने अभावरूप से रात्रि किंवा प्रकाश सो अपने अभावरूप से दिवस किंवा प्रकाशके भावको प्रकाशे है, क्योंकि जो कदापि उस दिवस किंवा प्रकाशके भावकालमें रात्रि किंवा अन्धकारका अभावरूप अस्तित्व न होता तो इसकाल में दिवस किंवा प्रकाश है, इस प्रकार दिवस किंवा प्रकाश के अस्तित्वको प्रकशता कौन। ताते अभाव रूप हुये रात्रि किंवा प्रकाश, सो दिवस किंवा प्रकाशके भावको प्रकाशते हैं॥ अथवा दीपकजो प्रकाशरूप है सो अप्रकाशरूप घटपटादि पदार्थोंको प्रकाशता है, तैसेही अप्रकाशरूप घटपटादि पदार्थ सो आप अप्रकाश रूपहोतसन्ते भी प्रकाश रूप

दीपकको वा दीपककी प्रकाशरूपता को सिद्धकरे हैं, क्योंकि जो कदापि अप्रकाश रूप घटपटादि पदार्थ न होता तो दीपकप्रकाशरूप है इसप्रकार दीपककी प्रकाशरूपता कैसे सिद्ध होती वा किस आधारसे सिद्ध होती अतएव अप्रकाश रूप घटपटादि पदार्थ दीपककी प्रकाशरूपताको प्रकाशे है ॥ हे प्रियदर्शन ! उक्त प्रकार भाव अभाव प्रकाश अप्रकाश आदिक यावत् भूत भौतिक कार्य कारणात्मक पदार्थ हैं सो सर्व भातिरूप हैं, अतएव अस्तिमात्र स्वयं प्रकाश निर्विशेष सर्वाधिष्ठान आत्मसत्ता है सोई उक्तप्रकार अस्ति भातिरूप से सुशोभित है । तथाच "तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" अरु प्रिय कहते हैं आनन्दको' क्योंकि सब को आनन्दही प्रिय है, सो आनन्दरूप ब्रह्म है सोई सर्वत्र सर्वरूप से व्याप्त है अतएव सर्वही आनन्द रूपहै। ताते जो कछु कर्तव्य अकर्त्तव्य गुण दोष पाप पुण्य राग द्वेष ग्रहण त्याग, इत्यादिहै सो सर्व आनन्द रूपही है क्योंकि जिसमें जिसको आनन्द भासता है सोई वो करता है, अरु जो कोई शुभाशुभ करता है सो सर्व आनन्दके अर्थही करताहै। अरु जो कोई जो कुछकरता है उसको उसही में आनन्द होता है क्योंकि जो उसको उसमें आनन्द न होय तो कोई कुछ भी न करे। अरु जो जिस आनन्दके अर्थ ग्रहण त्याग शुभ अशुभ आदिक करतेहैं सो आपही परमानन्द रूप है, अरु सोई सर्वानन्द हुआ है । तथाच । "आनन्दाद्धेवखल्विमानिभूतानि जायन्ते" इत्यादि भृगुवल्लीकी श्रुतिप्रमाणसे। अतएव जहां है जोहै सो सर्वआनन्दहीहै॥इसप्रकार केवल अद्वितीय निराकार निर्विकार सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द ब्रह्मही इसप्रकार अस्ति भातिप्रियरूप होरहा सुशोभित होरहाहै। ताते ॐकार एवेदंसर्वम्" "सर्वं खल्विदंब्रह्म" "नेहनानास्ति किंचन" सर्व ॐकार ब्रह्मही है जिससे इतर रंचकमात्र भी नहीं। इसप्रकार ॐकार के लक्ष्य निर्गुण ब्रह्मकी भावनारूप उपासना करते हैं, भावना कहिये सोहंभाव से निदिध्यासन करते हैं ॥ हे

प्रियदर्शन! उक्तप्रकार ॐकारका जप अरु तिसके अर्थकी भावना करनी, जोप्रत्यक् चैतन्य सर्वका अन्तर्यामि सर्व अवस्थाका साक्षी अखंड अज अविनाशी चेतन्य ब्रह्म सो मैं हौं, इसप्रकार जब अपना आप साक्षात् अनुभव अभ्यास करता है तब तिसके जे अन्तराय विघ्न हैं सो सर्व अभाव होजाते हैं। तथाच "ततःप्रत्यक् चैतन्याधिगमोप्यंतरायाभावश्च" यह पातञ्जल शास्त्र के प्रथमपाद का २९ सूत्र प्रमाण है॥

शिष्यउवाच॥ वो निर्विकल्प समाधि में विघ्नकरनेवाले अन्तराय कौन कौन हैं सोभी आप कृपाकर कहिये॥

श्रीगुरुरुवाच॥ हे प्रियदर्शन! अन्तराय विघ्नों के नाम अरु स्वरूप पातञ्जलशास्त्र के ,३०, ३१, दो सूत्रों करके कहे हैं तिनको भी अब सावधान होय श्रवणकरो "व्याधिस्त्यान संशय प्रमादालस्याविरति भ्रान्ति दर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्त विक्षेपास्तेऽन्तरायाः। ३०। दुःखदौर्मनस्यांगमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेप सह भुवः। ३१।, व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व, अनवस्थितत्व। दुःख, दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व, श्वास प्रश्वास,॥ यह चतुर्दश १४ आवान्तरविघ्न समाधिमें चित्त को विक्षेप करनेवाले हैं। अब इनके स्वरूप श्रवणकरो, व्याधि उसको कहते हैं कि जो उदरस्थ अन्नरस धातु है सो, कफ, वात, पित्त, इनके क्षोभ से बिगड़ता है तब उस धातु के विषम होने से ज्वरादि व्याधि होती है तिसका नाम व्याधि है १। अरु, स्त्यान, उसको कहते हैं जो चित्तको अकर्मण्यता है, अर्थात् शुभकर्म, प्राणायामादि, विषे चित्तका न प्रवर्तहोना तिसका नाम, स्त्यान, है २। अरु, संशय, उसको कहते हैं जो ईश्वर है या नहीं अरु जो है तो ज्ञानयोग से साध्य है वा नहीं, अर्थात् ज्ञानयोगाभ्यास से सो प्राप्तहोना है वा नहीं, इसप्रकार की जो भावना तिसका नाम संशय है ३ अरु, प्रमाद, उसको कहते हैं कि समाधि के यम नियमादि सा

दीपकको वा दीपककी प्रकाशरूपता को सिद्धकरे हैं, क्योंकि जो कदापि अप्रकाश रूप घटपटादि पदार्थ न होता तो दीपकप्रकाशरूप है इसप्रकार दीपककी प्रकाशरूपता कैसे सिद्ध होती वा किस आधारसे सिद्ध होती अतएव अप्रकाश रूप घटपटादि पदार्थ दीपककी प्रकाशरूपताको प्रकाशे है ॥ हे प्रियदर्शन ! उक्त प्रकार भाव अभाव प्रकाश अप्रकाश आदिक यावत् भूत भौतिक कार्य कारणात्मक पदार्थ हैं सो सर्व भातिरूप हैं, अतएव अस्तिमात्र स्वयं प्रकाश निर्विशेष सर्वाधिष्ठान आत्मसत्ता है सोई उक्तप्रकार अस्ति भातिरूप सें सुशोभित है । तथाच " तस्य भासा सर्वमिदं विभाति " अरु प्रिय कहते हैं आनन्दको' क्योंकि सब को आनन्दही प्रिय है, सो आनन्दरूप ब्रह्म है सोई सर्वत्र सर्वरूप से व्याप्त है अतएव सर्वही आनन्द रूपहै । ताते जो कछु कर्त्तव्य अकर्त्तव्य गुण दोष पाप पुण्य राग द्वेष ग्रहण त्याग, इत्यादिहै सो सर्व आनन्द रूपही है क्योंकि जिसमें जिसको आनन्द भासता है सोई वो करता है, अरु जो कोई शुभाशुभ करता है सो सर्व आनन्दके अर्थही करताहै । अरु जो कोई जो कुछकरता है उसको उसही में आनन्द होता है क्योंकि जो उसको उसमें आनन्द न होय तो कोई कुछ भी न करे । अरु जो जिस आनन्दके अर्थ ग्रहण त्याग शुभ अशुभ आदिक करतेहैं सो आपही परमानन्द रूप है, अरु सोई सर्व्वानन्द हुआ है । तथाच । "आनन्दाद्धेवखल्विमानिभूतानि जायन्ते" इत्यादि भृगुवल्लीकी श्रुतिप्रमाणसे । अतएव जहां है जोहै सो सर्व्वआनन्दहीहै॥इसप्रकार केवल अद्वितीय निराकार निर्विकार सर्व्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द ब्रह्मही इसप्रकार अस्ति भातिप्रियरूप होकर सुशोभित होरहाहै । ताते ॐकार एवेदंसर्वम्" " सर्व्वं खल्विदंब्रह्म " " नेहनानास्ति किंचन " सर्व्व ॐकार ब्रह्मही है तिससे इतर रंचकमात्र भी नहीं। इसप्रकार ॐकार के लक्ष्य निर्गुण ब्रह्मकी भावनारूप उपासना करते हैं; भावना कहिये सोहंभाव से निदिध्यासन करते हैं ॥ हे

प्रियदर्शन ! उक्तप्रकार ॐकारका जप अरु तिसके अर्थकी भावना करनी, जोप्रत्यक् चैतन्य सर्वका अन्तर्यामि सर्व अवस्थाका साक्षी अखंड अज अविनाशि चैतन्य ब्रह्म सो मैंहों, इसप्रकार जब अपना आप साक्षात् अनुभव अभ्यास करता है तब तिसके जे अन्तराय विघ्न हैं सो सर्व अभाव होजाते हैं। तथाच "ततःप्रत्यक् चैतन्याधिगमोप्यंतराया भावश्च" यह पातञ्जल शास्त्र के प्रथमपाद का २६ सूत्र प्रमाण है॥

शिष्यउवाच ॥ वो निर्विकल्प समाधि में विघ्नकरनेवाले अन्तराय कौन कौन हैं सोभी आप कृपाकर कहिये ॥

श्रीगुरुरुवाच ॥ हे प्रियदर्शन ! अन्तराय विघ्नों के नाम अरु स्वरूप पातञ्जलशास्त्र के ३०, ३१, दो सूत्रों करके कहे हैं तिनको भी अब सावधान होय श्रवणकरो "व्याधिस्त्यान संशय प्रमादालस्याविरति भ्रान्ति दर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्त विक्षेपास्तेऽन्तरायाः। ३०। दुःखदौर्मनस्यांगमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेप सह भुवः। ३१। व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व, अनवस्थितत्व। दुःख, दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व, श्वास प्रश्वास, ॥ यह चतुर्दश १४ आवान्तरविघ्न समाधिमें चित्त को विक्षेप करनेवाले हैं। अब इनके स्वरूप श्रवणकरो, व्याधि उसको कहते हैं कि जो उदरस्थ अन्नरस धातु है सो, कफ, वात, पित्त, इनके क्षोभ से विगड़ता है तव उस धातु के विषम होने से ज्वरादि व्याधि होती है तिसका नाम व्याधि है १।

धर्मोंविषे चित्तको उदासीनता होनी, तिसका नाम, प्रमाद, है ४। अरु, आलस्य, उसको कहते हैं कि जो देह अरु चित्त का गुरुत्वभाव होना, अर्थात् देह अरु चित्तका जो जड़वत् होरहना है सो ज्ञान में प्रवृत्ति के अभावका कारण है अतएव तिसको आलस्य कहते हैं, ५। अरु अविरति उसको कहते हैं जो विषयों के संयोगसे भोगकी इच्छाका होना, तिसका नाम, अविरति है ६। अरु, भ्रान्तिदर्शन, उसको कहते हैं कि जो विपर्यय ज्ञानदर्शन है अर्थात् जैसे सीपी विषे रूपे का भासना, तैसेही शुद्ध निष्क्रियादि लक्षणवान् आत्माविषे कर्तृत्व भोक्तृत्वादि अनात्म धर्म्मका भासना, तिसका नाम भ्रान्तिदर्शन है ७। अरु, अलब्धभूमिकत्व, उसको कहते हैं कि जो ज्ञानकी, शुभेच्छा, सुविचारणा, तनुमांसा, सत्त्वापत्ति, असंशक्ति, पदार्थाभावनि, अरु तुरीया, यह सप्तभूमिका कही हैं तिनमें से कोई भी भूमिका, अरु योगकी जो चित्त की निरोधतारूपी एकाग्रता सो किसी विक्षेप के निमित्त से न प्राप्तहोनी तिसकानाम, अलब्धभूमिकत्वहै ८। अरु, अनवस्थितत्व, उसको कहते हैं जो ज्ञानकी उक्त भूमिका में से कोई एक प्राप्तहुई भूमिकाविषेभी चित्तकी स्थिरता न होनी तिसका नाम, अनवस्थितत्वहै, ९। हेसौम्य! इसकहेप्रकार नवअन्तरायविघ्नहैं अरु इनकेहोनेसे पांच और होते हैं तिनकोभी श्रवणकरो। ,दुःख, उसको कहते हैं कि जो, आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक, यह जो तीनप्रकारके दुःख हैं तिनकानाम दुःख है १०। अरु ,दौर्मनस्य, उसको कहते हैं कि जो अन्तर बाह्यके कोईभी कारणों करके चित्तकी विक्षेपता, अर्थात् चित्तकी असमाधानता, तिसका नाम दौर्मनस्य है ११। अरु अङ्गमेजयत्व, उसको कहते हैं कि जो रोगादिकोंसे शरीरका कांपनाहै १२ अरु, श्वास, उसको कहते हैं जो प्राणका शीघ्र शीघ्र चलना वा मुखनासिकाके मार्ग बाहरका जानाहै, तिसकानाम श्वासहै १३। अरु, प्रश्वास, उसको कहते हैं जो प्राणका बाहरसे अन्तर आवना है, तिसका नाम प्रश्वास है॥

हे सौम्य ! यह जो १४ चतुर्दश विघ्न कहे हैं सो चित्तको विक्षेप करके आत्मलाभार्थ जे समाधि तिस विषे विघ्नके कर्त्ता हैं " तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः " तिसकी निवृत्तिके अर्थ एकतत्त्वका अभ्यासकरे, अर्थात् उक्त विघ्नों के अभावकरने के अर्थ अरु आत्मदेवकी साक्षात् प्राप्तिके अर्थ ॐकार ब्रह्मके अर्थ भावना अरु जप निर्जन एकान्त पवित्र देशविषे स्थितहोय यम नियमादि योगांग साधन पूर्वक करे । जे कोई ॐकारके वाच्य की उपासना करते हैं अर्थात् त्रिमात्रिक प्रणवोपासना करते हैं, तिन के जे निर्विकल्प समाधि में विक्षेपकर्त्ता विघ्न हैं सो सर्व अभाव होजाते हैं, अरु वो उपासक समाधि विचारद्वारा सर्व बन्धनों से रहितहुआ अपनेआप चैतन्य स्वरूप आत्मा ब्रह्ममेंअभेद स्थिति पाय मोक्ष होता है ॥

हे सौम्य ! यह जो त्रिमात्रिक ॐकारका लक्ष्य आत्माहै तिसको सर्व उपनिषद् चिन्मात्र ब्रह्मकरके कहते हैं " अयमात्माब्रह्म " जो मन बुद्धि इन्द्रियादिकों का अविषय है तिसको नेति नेति, इत्यादि श्रुतिके निषेध मुख वाक्यों करके सर्व विशेषताके अभावसे निर्विशेष सत्त्वका अपना आप लक्ष्य करावे हैं, अतएव यही चैतन्य आत्मा अक्षर ब्रह्महै । अरु इसही को बृहदारण्यक उपनिषद्विषे भगवान् याज्ञवल्क्यजीने गार्गिके प्रति निर्विशेष अक्षरब्रह्म कहा है । तथाच । सहोवाचैतदक्षरं गार्गिब्राह्मणा अभिवदन्त्यस्थूलमनण्व ह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवायव नाकाशमसङ्गमरसमगन्धमचक्षुमश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमप्राणममुखममात्रमनन्तरमबाह्यं न तदश्नाति किञ्चन न तदश्नाति कश्चन " अर्थ याज्ञवल्क्य कहते हैं कि हे गार्गी ! जिसके विषे तू प्रश्न करती है तिसको ब्राह्मण (ब्रह्मवेत्ता) अक्षर कहते हैं । प्रश्न । हे याज्ञवल्क्य ! उस वचनातीत को ब्राह्मण अक्षर कैसे कहते हैं वो तो वाणीआदिक किसीका भी विषय नहीं । उत्तर । हे गार्गी ! उसको ब्राह्मण ऐसा कहते हैं कि वो स्थूल नहीं अस्थूल

है, तो सूक्ष्म होगा, वो असूक्ष्म है, तो छोटाहोगा, वा अह्रस्वहै, , तो दीर्घहोगा, वो अदीर्घ है इसप्रकार वो द्रव्योंके धर्मसे रहित अद्रव्य है । 'तो वो लोहित गुणवान्होगा, वो अग्नि आदिकोंके लोहितादि गुण रहित है, ताते अलोहित है' तो वो स्नेहादिक जलकेधर्मवाला होगा, वो जलके स्नेहादि धर्म रहित अस्नेह है 'तो वो छायाहोगा, वो अछाया है 'तो वो तमहोगा, वो अतम है 'तो वो वायुहोगा, वो अवायुहै 'तो वो आकाशहोगा, वोअनाकाश है 'तो वो सर्वका सङ्घातहोगा, वो असंग है 'तो वो रस होगा, वो अरसहै 'तो वो गन्धहोगा 'तो वो अगंधहै 'तो वो चक्षुष्मान्होगा, वो अचक्षुहै 'तो वो श्रोत्रहोगा, वो अश्रोत्र है 'तो वो वाग्होगा, वो अवाग्है 'तो वो मनहोगा, वो अमनहै 'तो वोतेज होगा, वो अतेजहै 'तो वो प्राणहोगा, वो अप्राण है 'तो वो मुखादिद्वार होगा, वो द्वाररहित अमुखहै 'तोवो मात्राहोगा, वो अमात्र है, तो वो अन्तरहोगा, वो अनन्तर है, 'तो वो बाह्य होगा, वो अबाह्य है, अर्थात् वो न भोग्य है न भोक्ता है, सर्व विशेषणों से रहित निर्विशेषहै । हे गार्गी! इसप्रकार ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणों ने उस को निषेध मुख करके कहाहै क्योंकि वो सर्व के निषेधकी अवधिहै ताते "। साकाष्ठासापरागतिम् ।" सो इन विशेष सत्ता पराकाष्ठा अरु मुमुक्षुओं की परागति है ॥ हे सौम्य! ऐसाजो परम अक्षरहै सोईवर्णात्मक ॐकाररूप अक्षरका लक्ष्य परब्रह्म है, अरु सोई अक्षर सर्वका अन्तरात्मा होयके सर्वका प्रेरकहै, उसहीकी आज्ञा से सूर्य्य चन्द्र पृथिवी आदिक अपनेअपने व्यापारमें नियमपूर्वक प्रवर्त्त होरहे हैं उसअक्षर की जैसी जिसको आज्ञाहै सो तैसेही करता है, अरु सोई सर्व का नियामक स्वामी है अतएव उसके किये नियमसे बाह्य वर्त्तने को कोई भी समर्थ नहीं । तथाच "। एतस्यवा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्य्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतएतस्यवा अक्षरस्य प्रशासने गार्गिद्यावापृथिव्यौविधृतेतिष्ठतः ॥ एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि निमेषा मुहूर्त्ता अहो-

रात्राण्यर्द्धमासा मासा ऋतवः संवत्सराइति विधृतास्तिष्ठन्त्ये तस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि प्राच्योऽन्या नद्यः स्यन्दन्ते श्वे तेभ्यः पर्वतेभ्यः प्रतीच्योऽन्यायां याश्च दिशं मन्वेति ॥ एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि ददतो मनुष्याः प्रशंसन्तियजमानंदे-वा दर्वीपितरोऽन्वायत्ताः ॥ इत्यादि ॥ हे सौम्य! उक्त प्रकार जो सूर्य्यादि सर्वका नियामक प्रेरक स्वामी सर्वाधिष्ठान परम अक्षर ॐकारक लक्ष्यहै तिसकात्रिमात्रिक ॐकार प्रतीक अरु वाचकहै अतएव त्रिमात्रिक प्रणवके आलम्बन से जो उस लक्ष्यरूप परम अक्षरकी अभेद अहमग्रे उपासना करताहै सोई ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणहै अरु सोई मोक्षको प्राप्तहोता है॥

शिष्यउवाच ॥ हे गुरो! हे भगवन्! जिस अक्षरका आप ऐसा प्रभाव अरु प्रताप कहतेहो। तिसको हम प्रत्यक्ष कैसे जानें सो आप कृपाकर आज्ञा करिये॥

गुरुरुवाच ॥ हे प्रियदर्शन! ऐसा प्रश्न क्यों करतेहौ वो तो सर्वका अपना आप प्रत्यगात्मा है अरु यही सर्वका अनुभवकर्त्ता अनुभव रूप अक्षरहै, अरु यही सर्वका द्रष्टा श्रोता मन्ता बोद्धाहै इससे इतर न कोई द्रष्टाहै न श्रोताहै न मन्ता है न बोद्धाहै, हे सौम्य! ऐसा जो सर्वका ज्ञाता अनुभवी अक्षर आत्माहै सो "तत्त्वमसि" सो तू है तेरा क्षय कदापि नहीं ताते सर्वका ज्ञाता तूही है तेराज्ञाता अन्य कोई नहीं, तूही चक्षुरादि सर्वका द्रष्टाहै तेरा द्रष्टा कोई नहीं, तूही सर्व का श्रोता है तेरा श्रोता अन्य कोई नहीं, तूही सर्वका मनन करता है तेरा मन्ता कोई नहीं, अरु तूही सर्वका विज्ञाता है तेरा विज्ञाता कोई नहीं, अत एव सर्व क्षराक्षर का ज्ञाता प्रकाशक अधिष्ठान परम अक्षर तूही है तू अपने आपको अनुभवकर॥

हे सौम्य! यह जो सर्व वेद शास्त्रोंद्वारा निर्णय करके निर्विशेष प्रत्यगात्मा अक्षर कहा है सोई वर्णात्मक त्रिमात्रिक ॐकार अक्षर का लक्ष्य निर्गुण ब्रह्म परम अक्षर है, अरु सोई

सर्व का अपना आप प्रत्यगात्मा है इसही के सम्यक् ज्ञान से मोक्ष होता है, तातें ॐकारके लक्ष्य प्रत्यगात्मा के जानने के अर्थ त्रिमात्रिक ॐकार की जप अरु अर्थ की भावना रूप उपासना कर्त्तव्य योग्यहै क्योंकि यह परब्रह्मकी आत्मत्वसे प्राप्ति में परमोत्तम आलम्बन है । अतएव इस त्रिमात्रिक ॐकारकी यथा शास्त्र उपासनारूप आलम्बनसे अपने आप सत्यस्वरूप आत्माको यथार्थ अनुभव कर पराशान्तिको प्राप्तहोवो, आगे जो तुम्हारी इच्छा ॥-॥ इति ॥-॥

इति श्रीमाण्डूक्योपनिषद्गौडपादीयकारिकाअरुक्षेपक भाषा भाष्यकारकृतसंग्रहप्रकरणसंहिता समाप्ता ॥

ॐहरिः ॐतत्सद्ब्रह्मार्पणम् ॥

ॐशान्तिः शान्तिः शान्तिःॐ ॥
